Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुदत्त

पत्रलता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

167930

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्ष साहित्य
Complete Vedic Books Store
Yog, Vedic, Ayurvedic, Relegious
All Yog & Organic Products
(M) 9541317278, 8869821448
Web: aarshsahitya.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्रलता

ऐतिहासिक उपन्यास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर श्री गुरुदत्त के अन्य उपन्यास

- प्रभातवेला
- उमड़ती घटाएँ
- कुमारसम्भव
- अमृत मंथन
- परम्परा
- अग्नि परीक्षा
- परित्राणाय साधूनाम्
- कालचक्र
- लुढ़कते पत्थर
- अस्ताचल की ओर (३ भाग)
- विक्रमादित्य साहसांक
- मेघवाहन
- सागर तरंग
- भैरवी चक्र
- दिग्विजय
- बहती रेता
- खण्डहर बोल रहे हैं (३ भाग)
- पुष्यमित्र
- गंगा की धारा
- लेखा नाल शाहाँ दे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्रलता

(हर्षवर्द्धनकालीन ऐतिहासिक उपन्यास)

आर्ष साहित्य
Complete Vedic Books Store
Yog, Vedic, Ayurvedic, Relegious
All Yog & Organic Products
(M) 9541317278, 8869821468
Web: aarshsahitya.com

गुरुदत्त

Central Library
167930
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar
081
167930

हिन्दी साहित्य सदन
३०-पी, कनाट सरकस, नई दिल्ली-११०००१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
089.9143
GUR-P

© भारती साहित्य सदन १९५६

23553624, 23551344, 9213527666
हिन्दी साहित्य सदन
2, बी.डी. चैम्बर्स, 10/54, देशबन्धु गुप्ता रोड़
करोल बाग, नई दिल्ली-110005

मूल्य : एक सौ पचास रुपये मात्र

PATRALATA : Novel by Gurudutt

प्रकाशक : हिन्दी साहित्य सदन
३०-पी, कनाट सरकस, नई दिल्ली-११०००१
संस्करण : प्रस्तुत रूप में प्रथम बार (१९९५)
मुद्रक : अजय प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधार-भूमि

यह हर्षवर्धन की जीवन-कथा नहीं है। यह तो उस काल में प्रचलित विचार-धाराओं के संघर्ष और उस संघर्ष से उत्पन्न परिणामों की कहानी है।

महात्मा बुद्ध संसार से भग्नाश हो जीवन-मरण के चक्र से निकलने के लिए पुत्र, पत्नी, माता-पिता और राजपाट को छोड़कर जंगल में चले गए। यहाँ पर पठन-पाठन, त्याग-तपस्या और चिन्तन से एक धारणा बना बैठे। वह धारणा थी कि चेतना प्रकृति के प्रवाह में भँवर-मात्र है। सांसारिक दुःखों से छूटने का उपाय, इस भँवर को प्रकृति-रूपी प्रशान्त सागर में शान्त कर देना है। जब भँवर निश्चल जल में विलीन हो जायगा, तब परम सुख प्राप्त होगा।

वास्तव में यह नास्तिक्य की व्याख्या है। नास्तिक्य में जो कुछ अयुक्तिसंगत प्रतीत होता था, उसको युक्ति से सिद्ध करने का प्रयास है।

इस व्याख्या के सत्य-असत्य होने का निर्णय करना इस पुस्तक का विषय नहीं है। इस पुस्तक में तो इस व्याख्या की जन-मन पर उत्पन्न प्रतिक्रिया और साथ ही उस प्रतिक्रिया का देश में अन्य प्रचलित विचारधाराओं से संघर्ष का उल्लेख है।

भारत-भूमि पर विचार-भेद कोई आश्चर्य अथवा चिन्ता की बात नहीं थी। यह चिन्ता की बात तब बनी, जब राज्य की ओर से किसी एक ही विचारधारा को समर्थन मिला और अन्य का विरोध हुआ।

सर्वप्रथम यह अशोक के काल में हुआ। अशोक अति क्रूर प्रकृति का व्यक्ति था और जब वह बौद्ध हुआ तो उसकी क्रूरता का रूप बदल गया। क्रूरता अपने मन की बात को बलपूर्वक मनवाने को कहते हैं। जहाँ पहले राजा की इच्छा अस्त्र-शस्त्रों के बल से मनवाई जाती थी, वहाँ बौद्ध काल में बौद्ध-भिक्षुओं की इच्छा राज्य के बल और धन से मनवाई जाने लगी; अतः बौद्ध विचारधारा का प्रभाव राज्य-बल से बढ़ाया जाने लगा।

इसमें सन्देह नहीं कि प्राचीन वैदिक विचारधारा के मानने वालों का पतन हो गया था। कालान्तर में परिस्थितियाँ बदलीं और विचार-भेद उत्पन्न हो गया। इससे आचरण में भी अन्तर आ गया।

मनुष्य स्वभाव से सुगम मार्ग स्वीकार करना चाहता है और प्रायः सुगम मार्ग की खोज में अपने लक्ष्य को भी भूल, दूसरी ही ओर चल पड़ता है। उन्नति का मार्ग कठिन और दुःखमय देख वह सुगम मार्ग, जो प्रायः पतन का मार्ग होता है, स्वीकार कर लेता है।

जीवन में ब्रह्मचर्य, तपस्या तथा स्वाध्याय, कठिन होने के कारण, सुख, वासना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और प्रमाद के सम्मुख त्याज्य हो जाते हैं। यही महात्मा बुद्ध के साथ हुआ। जीवन-मरण की समस्या को न सुलझा सकने पर वे परेशान थे। जो मार्ग उपनिषद् इत्यादि ग्रन्थों में वर्णित था, उसका अनुसरण न कर सकने पर वे सुगम मार्ग की खोज में चल पड़े। अपनी जीवन-मीमांसा को विद्वानों को न समझा सकने पर छोटे स्तर के लोगों को समझाने में लग गए। संस्कृत भाषा में अपने मन की बात न कह सकने पर जनसाधारण की भाषा में ही बात करने लगे। पठन-पाठन तथा स्वाध्याय अति दुस्तर होने पर उपदेशों से कार्य चलाने लगे। इस प्रकार एक पृथक् मत चलाने में सफल हो गए।

हमारे कथन का प्रमाण यह है कि बौद्ध साहित्य, जो महात्मा बुद्ध के जीवनकाल से लेकर अशोक के काल तक निर्माण हुआ, वह न के तुल्य ही है। अशोक के काल के पश्चात् बौद्ध साहित्य बनने लगा तो बौद्ध मत का रूप भी बदलने लगा। बौद्ध मत का यह नवीन रूप महायान कहलाया।

तदनन्तर हीनयान, जो महात्मा बुद्ध का मत था और महायान में संघर्ष चल पड़ा। वास्तव में महायान उन आक्षेपों के प्रकाश में, जो ब्राह्मण धर्म ने बौद्ध धर्म पर किए थे, एक अन्य सुगम मार्ग है। परिणाम में यह हीनयान से भी अधिक हानिकर सिद्ध हुआ। कोई मार्ग, जिसका केवल मात्र ध्येय सुगमता स्वीकार करना हो, सदैव पतन की ओर ले जाने वाला होता है।

जब बौद्ध धर्म का विस्तार होने लगा और जब यह अनुभव किया गया कि केवल मात्र भिक्षु निर्माण करने से कुछ नहीं बन सकता, तब महायान की स्थापना हुई। भिक्षु तो बन गए, परन्तु उनके पालन-पोषण के लिए अन्न, वस्त्रादि भी चाहिए थे। उनके लिए जन-साधारण, जो जीवन के लिए आवश्यक सामग्री उत्पन्न करते हों, की आवश्यकता पड़ गई।

इसके साथ ही जब गुप्तकाल में ब्राह्मण देवी-देवता और अवतारवाद का प्रचलन हुआ तो बौद्धों ने भी उन देवी-देवताओं के खण्डन को कठिन मान भगवान् तथागत को एक अवतार प्रसिद्ध कर लिया। यह महायान हो गया।

यह विचार-परिवर्तन तथा सुगमता की ओर भागने की नीति किसी प्रकार भी जाति के लिए हानिकर न होती, यदि सम्राट् अशोक और हर्षवर्धन बौद्ध धर्म के प्रचार में राज्य-बल का प्रयोग न करते। अशोक ने तो केवल यह किया कि राज्य की पूर्ण शक्ति बौद्ध धर्म के प्रचार में लगा दी, परन्तु हर्षवर्धन ने तो राज्य-बल से न केवल बौद्ध धर्म का प्रचार किया, प्रत्युत अबौद्धों का विरोध भी किया।

भारत में यह नया प्रचलन था कि विचारधाराएँ विद्वानों की युक्तियों और अनुभवों के आश्रय न रहकर, राज्य-बल का आश्रय पाने लगीं।

अशोक के काल का पूर्ण ज्ञान बौद्ध-लेखकों और अशोक द्वारा निर्मित स्तूपों तथा शिलालेखों से ही मिल सका है और उनमें अशोक की प्रशंसा किसी प्रकार भी अकाट्य प्रमाण नहीं हो सकती।

इसी प्रकार हर्षवर्धन के काल का पूर्ण वृत्तान्त बाण के 'हर्षचरित' और ह्वेनसांग के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हर्ष जीवन-चरित्र' से मिलता है। बाण तो अपना 'हर्षचरित' समाप्त नहीं कर सका और ह्वेनसांग हर्ष के मरने से पूर्व ही भारत छोड़कर चला गया था। दोनों के कथन अधूरे हैं। बाण हर्ष का वेतनधारी सेवक था और वह जो कुछ हर्ष की प्रशंसा में लिख गया है, पूर्णतया सत्य ही है यह नहीं कहा जा सकता। ह्वेनसांग के अपने कथन में ही परस्पर-विरोध है। ऐसा प्रतीत होता है कि ह्वेनसांग बौद्ध था और वह बौद्ध-सम्राट् की प्रशंसा कर बौद्ध धर्म की महिमा बढ़ाना चाहता था।

ह्वेनसांग के लेखों के अप्रामांणिक होने में प्रमाण तो बहुत हैं। यहाँ केवल दो दिए जाते हैं।

श्री भगवतीप्रसाद पांथरी द्वारा लिखित 'हर्षवर्धन शीलादित्य' नामक पुस्तक के पृष्ठ ४७ पर लिखा है :

"ह्वेनसांग ने कन्नौज का वर्णन देते हुए भूल से हर्ष के पूर्वजों···प्रभाकरवर्धन और राज्यवर्धन को भी कन्नौज का राजा बतलाया है···। ह्वेनसांग के इस भ्रमात्मक विवरण के आधार पर कतिपय विद्वानों ने···।"

डॉक्टर रमाशंकर त्रिपाठी द्वारा लिखित 'प्राचीन भारत का इतिहास' नामक पुस्तक के पृष्ठ २२४ पर लिखा है :

"ह्वेनसांग का वक्तव्य है कि 'हर्ष, जब तक उसने पाँचों भारतों पर अधिकार न कर लिया, छः वर्ष तक निरन्तर युद्ध करता रहा···' सर्वथा अयुक्त (अयुक्तिसंगत) है। ···इसी प्रसंग में ह्वेनसांग के दूसरे वक्तव्य का अनुवाद कि :

'हर्ष ने ३० वर्ष तक बिना अस्त्र उठाए शान्तिपूर्वक शासन किया', ठीक नहीं क्योंकि···हर्ष को अपने घटना-बहुल शासन के अन्त तक युद्ध करते रहना पड़ा।"

ह्वेनसांग के लेखों में अनेक भ्रममूलक बातें हैं और वे केवल एक बौद्ध-सम्राट् की चारणों की भाँति प्रशंसा मात्र हैं।

इन दोनों लेखकों ने हर्षवर्धन की प्रशंसा के गुण गाए हैं। वास्तव में हर्षवर्धन की नीति देश में भारी वैमनस्य उत्पन्न करने वाली सिद्ध हुई थी।

प्रस्तुत उपन्यास में कई लेखकों के विचारों के विपरीत लेखक ने कुछ बातें लिखी हैं, परन्तु वे ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर ही हैं, जो इस प्रकार हैं :

"यह प्रकट है कि हर्षवर्धन ने अपने पैतृक राज्य थानेश्वर और अपनी बहन के साम्राज्य कन्नौज को मिलाया, परन्तु अन्य कोई भारी विजय प्राप्त नहीं की।" डॉक्टर रमाशंकर त्रिपाठी अपने 'प्राचीन भारत का इतिहास' में पृष्ठ सं० २२३ पर इस प्रकार लिखते हैं :

"हर्षवर्धन की दिग्विजयों के विषय में हमें सविस्तार सामग्री उपलब्ध नहीं। ह्वेनसांग के वृत्तान्त में अवश्य कुछ प्रशंसात्मक विजय-प्रसंग है। उदाहरणतया, 'पूर्व की ओर बढ़कर उसने उन राज्यों पर आक्रमण किया, जिन्होंने उसकी अधीनता स्वीकार न की थी। छः वर्षों तक वह पाँचों भारतों के साथ लड़ता रहा।' इस प्रकार ह्वेनसांग ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी राज्य का नाम नहीं बताया, जिसको उसने विजय किया हो। कहीं-कहीं आक्रमण अवश्य किए प्रतीत होते हैं, परन्तु सफलता उतनी नहीं मिली, जितनी कि चीनीयात्री अपने वृत्तान्त में लिखता है।"

इतिहासकार पुनः लिखता है :

"ह्वेनसांग द्वारा लिखित जीवन से पता चलता है कि हर्ष ने स्वयं महाराष्ट्र के पुलोकिश के विरुद्ध सैन्य-संचालन किया, परन्तु परिणाम विरुद्ध हुआ और दक्षिणाधिप ने उसे बुरी तरह परास्त किया···

"इसमें सन्देह नहीं कि हर्ष शशांक का कुछ बिगाड़ नहीं सका।"

इस विषय में श्री भगवतीप्रसाद पांथरी लिखते हैं—"किन्तु इतना निश्चय है कि शशांक बिना कोई भारी हानि उठाए अपने राज्य को वापस लौट गया।"

इतिहास पढ़ने से इतना तो ज्ञात होता है कि हर्ष दिग्विजय पर निकला था, परन्तु वह छोटे-छोटे सामन्तों को अपने अधीन कर सकने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सका। न तो मालवा विजित हुआ और न ही गौड़ राज्य। दक्षिण का चालुक्य ज्यों-का-त्यों ही बना रहा।

इस बात का उल्लेख नहीं मिलता कि बाण कब और कहाँ मरा। कदाचित् वह हर्ष की सेवा छोड़कर चला गया था। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से कुछ ऐसा ही समझ में आता है। यह भी प्रतीत होता है कि बाण उज्जैन से उदासीन होकर चला गया था।

कई इतिहास-लेखकों ने यह लिखा है कि हर्ष ने अपना राज्य पक्षपातरहित होकर चलाया है। लेखक का मत इस कथन के विपरीत है। हर्ष जब कन्नौज में आया तो वह धीरे-धीरे बौद्ध विचारधारा को मानने वाला बनता गया और जब तक वह पूर्ण रूप से बौद्ध सम्प्रदाय के अनुकूल नहीं हो गया, तब तक वह कन्नौज के सिंहासन पर बैठ नहीं सका।

इस कथन में युक्ति यह है कि यद्यपि राज्यश्री मालव-नरेश और शशांक के अधिकार से छूटते ही बौद्ध भिक्षुणी बन गई थी, तो भी हर्ष कई वर्ष तक कन्नौज की राजगद्दी पर बैठ नहीं सका और वह राज्यश्री के स्थान पर राज्य-कार्य चलाता रहा।

ऐसा उल्लेख आता है कि कई वर्ष पीछे, बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर के कहने पर (अर्थात् आज्ञा पर) वह कन्नौज की राजगद्दी पर बैठा। इससे यह सिद्ध होता है कि हर्षवर्धन का परिवार शैव था और कन्नौज में बौद्धों का प्राबल्य था, इस कारण वे हर्ष के राज्यारोहण का विरोध करते रहे। जब हर्ष बौद्ध हो गया तो उनका विरोध समाप्त हो गया और बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर ने राज्यारोहण की स्वीकृति दे दी।

हर्ष बौद्धों की कृपा से राज्यारोहण कर सका था। अतएव वह सदैव उनके पक्ष में रहा और बौद्ध भिक्षु उसके गुण गाते रहे। इस विषय में भगवतीप्रसाद पांथरी अपनी पुस्तक में 'महात्यागोत्सव' का वर्णन इस प्रकार करते हैं :

"पहले दिन बुद्ध की मूर्ति स्थापित की गई और सम्राट् शीलादित्य ने बहुमूल्य जवाहरात भेंट किए। मूर्ति की पूजा के पश्चात् समस्त राजाओं ने बहुमूल्य वस्तुएँ, वस्त्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और भोग-सामग्री वितरित की और फूल बिखेरे गए।

"दूसरे दिन आदित्य देव की मूर्ति स्थापित की गई और पहले दिन की अपेक्षा आधी वस्तुएँ दान में वितरित की गईं।

"तीसरे दिन ईश्वर देव (महादेव) की मूर्ति स्थापित की गई और दूसरे दिन की तरह ही दान वितरित किया गया।

"चौथे दिन बौद्ध धर्म संघ के १०,००० बौद्ध पण्डितों तथा भिक्षुओं को दान दिया गया। प्रत्येक बौद्ध पण्डित को १०० स्वर्ण मुद्राएँ, एक मोती, एक सूती वस्त्र, विभिन्न प्रकार की पेय और खाद्य सामग्री तथा इत्र और फूल प्राप्त हुए।

"इसके बाद लगातार २० दिन तक ब्राह्मणों को दान दिया गया और दस दिन तक अन्य धर्मावलम्बियों को दान दिया गया।"

यह सब वृत्तान्त ह्वेनसांग के लेखों से लिया गया है। ह्वेनसांग ने उक्त वृत्तान्त से यह बात स्पष्ट कर दी है कि बौद्धों के साथ अन्य धर्मावलम्बियों से अधिक श्रेष्ठ व्यवहार किया गया था।

ह्वेनसांग ने बहुत-सी बातें लिखी हैं, जिनसे उसकी तात्कालिक देश की अवस्था से भी अनभिज्ञता प्रकट होती है। इस कारण वह जब लिखता है कि हर्ष पक्षपातरहित था, तो वह अपने अज्ञान का ही प्रदर्शन करता है। वास्तविकता तो उसके 'महात्याग-उत्सव' से स्पष्ट होती है।

जो कुछ भी हो, यह तो स्पष्ट ही है कि मलाई-मलाई बौद्ध सम्प्रदाय वालों को मिली और खुर्चन अन्य धर्मावलम्बियों को।

महाराज हर्षवर्धन का पक्षपातपूर्ण व्यवहार महाधर्म सम्मेलन में और भी स्पष्ट हो जाता है।

श्री पांथरी इस विषय में लिखते हैं :

"कन्नौज की सभा में भाग लेने के लिए हर्ष के आदेशानुसार देशभर से अट्ठारह-बीस राज्यों के राजा अपने यहाँ से प्रमुख श्रमणों तथा ब्राह्मणों को लेकर पधारे।

"ह्वेनसांग लिखित 'लाइफ़' के अनुसार महायान और हीनयान सम्प्रदाय के ३०० विदग्ध आचार्य, ३००० ब्राह्मण और नालन्दा से लगभग १००० आचार्य अपने शिष्यों-सहित वहाँ पधारे थे।"

इसका अर्थ यह हुआ कि निमन्त्रण तो बौद्ध-अबौद्ध दोनों को दिया गया था, परन्तु उसी पुस्तक में आगे चलकर लिखा है :

"किन्तु जो बौद्ध धर्म में आस्था नहीं रखते थे और जिन्हें भवन में जाने नहीं दिया जा सकता था, उन्हें सम्राट् के आदेशानुसार भवन के प्रवेश-द्वार के बाहर बैठने को कहा गया।"

फिर लिखा है—"सभा के मुखिया और प्रमुख वक्ता के रूप में ह्वेनसांग के लिए सम्राट् के निर्देशानुसार एक बहुमूल्य मंच तैयार करा दिया गया।"

'रेकार्डर्स' के अनुसार इस सभा के वादविवाद में भिन्न विदग्ध पण्डितों ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गम्भीरतापूर्वक तर्क-वितर्क किया। परन्तु प्रमुख वक्ता ह्वेनसांग थे, जिन्होंने महायान धर्म के सिद्धान्तों की व्याख्या की और उसकी महानता पर प्रकाश डाला।

इस सम्मेलन का आगे विवरण इस प्रकार है—"पाँच दिन सभा होने के पश्चात् हीनयान सम्प्रदाय वालों को जब यह प्रतीत हो गया कि ह्वेनसांग ने उनके मत का खण्डन कर दिया है, तो वे रोष से भरकर उसकी हत्या करने का षड्यन्त्र करने लगे। यह बात जब हर्ष को विदित हुई तो उसने एक घोषणा-पत्र प्रेषित किया, जिसमें कहा गया :

'चीन के धर्माचार्य, जिनका अध्यात्म-ज्ञान विशाल है, जिनकी प्रवचन-शक्ति गुरु-गम्भीर है, जो लोगों को सही बात बताने और महान् धर्म के सत्य रूप का दर्शन कराने व मूर्खों तथा राहभूलों का उद्धार करने यहाँ आए हुए हैं, किन्तु वंचना और असत्य का अनुगमन करने वाले, झूठ का परित्याग करने के स्थान तथा प्रायश्चित्त करने के स्थान उनके विरुद्ध घातक षड्यन्त्र रचने का विचार कर रहे हैं—अतः यदि कोई धर्माचार्य को क्षति पहुँचाएगा, या छूएगा तो उसका तत्काल सिर उड़ा दिया जाएगा। साथ ही जो कोई उनके विरुद्ध बोलेगा, उसकी जीभ काट ली जाएगी।'

"इस घोषणा के परिणामस्वरूप असत्यवादियों का बल खिसक गया। सभा के अठारह दिन व्यतीत हो गए परन्तु किसी ने वाद-विवाद में भाग नहीं लिया।

"इसके पश्चात् राजाज्ञा से ह्वेनसांग का बहुत ही मान किया गया। हर्ष शीलादित्य ने ह्वेनसांग को १०,००० स्वर्ण मुद्राएँ, ३०,००० रजतमुद्राएँ तथा १०० बहुमूल्य सूती वस्त्र उपहार में दिए⋯अन्त में हर्ष ने धर्मविजेता ह्वेनसांग की एक विशाल हाथी पर नगर में सवारी निकलवाई और सर्वत्र यह घोषणा की गई कि चीनी धर्माचार्य ने धर्म की विजय स्थापित कर असत्यपूर्ण विरोधी सिद्धान्तों का खण्डन किया⋯ह्वेनसांग को 'महायान देव' की उपाधि से अलंकृत किया गया⋯।"

इस विवरण से निम्न परिणामों पर पहुँचा जा सकता है :

१. यह सभा सर्वधर्म-सम्मेलन नहीं थी।
२. इसमें केवल महायान और हीनयान पर विवेचना होती रही।
३. अबौद्धों को मंडप में प्रवेश नहीं दिया गया।
४. हीनयान वालों के विरुद्ध हर्ष ने जली-कटी सुनाई।
५. बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर की उपस्थिति में ह्वेनसांग की प्रशंसा की गई और उसका ही सबसे अधिक सम्मान किया गया।
६. यह धर्मचर्चा उस प्रकार की नहीं थी, जैसी शंकराचार्य और मंडन मिश्र के भीतर हुई थी। यह तो राज्यशक्ति से एक पक्ष का पृष्ठपोषण ही था।
७. जब हीनयान वालों ने देखा होगा कि ह्वेनसांग को बलपूर्वक विजयी बनाया जा रहा है, तो उन्होंने ही कदाचित् राजा पर आक्रमण का षड्यन्त्र किया होगा।
८. जब हत्यारे से पूछा गया कि उसने सम्राट् पर आक्रमण क्यों किया तो उसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधर्मियों का नाम ले दिया।

९. हत्यारे को जो दण्ड दिया गया, उसका कहीं वर्णन नहीं, परन्तु यह वर्णन है कि पाँच सौ ब्राह्मण पकड़ लिए गए और मुख्य नेताओं को प्राणदण्ड देकर शेष को देश-निर्वासन की आज्ञा दे दी गई।

१०. इस घटना का लेखक वही व्यक्ति है, जो स्वयं वैमनस्य का कारण था। पूर्ण सभा का संचालन उसने किया था। पूर्ण उत्सव में झगड़ा तथा वाद-विवाद, हीनयान और महायान वालों में होता रहा और अन्त में केवल मात्र हत्यारे के कहने पर ब्राह्मणों को दोषी मान उनको दण्ड दिया गया।

लेखक का मत है कि जैसे पूर्ण सभा की कार्यवाही पक्षपातपूर्ण थी, वैसे ही सम्राट् की हत्या के षड्यन्त्र की बात और ब्राह्मणों पर दोषारोपण की बातें भी पक्षपातपूर्ण ही होंगी।

ब्राह्मणों द्वारा सम्राट् की हत्या में उतना कारण नहीं हो सकता था, जितना हीनयान वालों द्वारा होने में।

हीनयान वालों ने पहले ह्वेनसांग की हत्या का षड्यन्त्र किया और कदाचित् बाद में सम्राट् की हत्या का षड्यन्त्र भी उन्होंने किया होगा।

सम्भव यह है कि हत्यारे ने अपनी जान छुड़ाने के लिए उनका नाम ले दिया हो, जिन पर सन्देह करना सुगम और भयरहित हो। किसी बौद्ध पर दोषारोपण करना सुगम नहीं होगा।

हर्ष के जीवन और उसके काल की अधिकांश घटनाएँ और विशेष रूप में इस सर्वधर्म सम्मेलन का विवरण ह्वेनसांग का लिखा हुआ है। यह सिद्ध किया जा चुका है कि ह्वेनसांग बहुत कुछ भ्रममूलक बातें लिख गया है। इस सभा में तो वह एक पक्ष का पोषक था। वह बौद्ध सम्प्रदाय का समर्थक था। इस कारण, सम्भव है, कि हत्यारे के कथन पर विश्वास करने से बौद्धों का मान बचाने के लिए ब्राह्मणों को दण्ड देना उचित मान लिया गया हो।

कुछ भी हो, इस घटना का, विशेष रूप में ब्राह्मणों को दण्ड देने का एक भयंकर परिणाम हुआ। देश में ब्राह्मण धर्मानुयायी और बौद्ध धर्मानुयायी परस्पर एक-दूसरे के घोर शत्रु हो गए।

देश में साम्प्रदायिक बातों की ओर प्रजा का ध्यान बँट जाने के कारण राजनीतिक स्थिति अत्यन्त दुर्बल पड़ गई और तब वह आश्चर्यजनक घटना घटी, जिसकी तुलना इतिहास में कहीं नहीं मिलती।

अशोक के राज्य के पचास-साठ वर्ष पश्चात् ही देश की अवस्था इतनी दुर्बल हो गई थी कि शक, पार्थियन इत्यादि विदेशियों ने देश में घुसकर अधिकार कर लिया था। इसी प्रकार हर्षवर्धन के राज्य के कुछ ही काल पश्चात् मुसलमानों के सफल आक्रमण आरम्भ हो गए। आश्चर्यजनक बात यह हुई कि एक विदेशी आक्रमणकारी, ग़ज़नी से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलकर सोमनाथ के मन्दिर तक पहुँचा और वहाँ से सहस्रों नर-नारियों को पकड़कर उन्हें दास बना, सही-सलामत ग़ज़नी लौट गया। पूर्ण देश के लोग मुख देखते रह गए। यह आक्रमणकारी बार-बार आया और भारत की धन-दौलत, नर-नारी लूटकर ले गया, परन्तु जनता के कान पर जूँ तक नहीं रेंगी। यह चमत्कार उस फूट, राजनीतिक शैथिल्य और आलस्य-प्रमाद के कारण ही सम्भव हो सका, जो बौद्धों और वैष्णवों के कारण देश में चल रहा था और जिसका बीजारोपण अशोक के काल में हुआ था तथा जिसकी सिंचाई हर्षवर्धन शीलादित्य के काल में हुई थी।

जब-जब देश में बौद्ध विचारधारा का प्राबल्य हुआ, देश राजनीतिक विचार से दुर्बल हुआ। सामाजिक शान्ति और भ्रममूलक सुरक्षा के मोह में जनता में संसार की दुष्ट प्रवृत्तियों के विरोध की क्षमता कम हुई।

इसका एक प्रमाण तो भारत में मुसलमानों के राज्य के समय मिला। मुसलमानों के राज्य में बलपूर्वक धर्म-परिवर्तन कराने के उदाहरण प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। इनमें जहाँ सहस्रों ब्राह्मण धर्मावलम्बी खड्ग की धार के नीचे भी धर्म छोड़ने को उद्यत नहीं हुए, वहाँ एक भी बौद्ध धर्मावलम्बी का ऐसा उदाहरण नहीं मिलता, जिसने मरना स्वीकार किया हो परन्तु धर्म-त्याग करना स्वीकार न किया हो।

इस्लाम का विरोध कैसे हुआ, किन विचार के व्यक्तियों ने किन साधनों से किया, यह इस पुस्तक का विषय नहीं है। भारत के इतिहास के पृष्ठों पर सन् ९०० से १८०० ई० तक की घटनाएँ लिखी गई हैं। उन पर विचार करने के लिए किसी अन्य पुस्तक का आश्रय लिया जाएगा।

इस पुस्तक का विषय तो उस काल पर प्रकाश डालना है, जिसने भारत को मुसलमानों के सफल आक्रमण के लिए तैयार किया। इसमें उन कारणों पर विवेचना करने का यत्न किया गया है, जिससे वह भारत, जिसने सिकन्दर के आक्रमण का विरोध किया था, ग़ज़नी और गोरी का विरोध करने में असमर्थ हो गया।

सिकन्दर का विरोध पांचाल देश की जनता ने किया था। इस विरोध में मगध आदि किसी बड़े राज्य का हाथ नहीं था। यह तो सर्वविदित ही है कि सिकन्दर की सेना सतलुज तक पहुँचते-पहुँचते थक गई थी; परन्तु महमूद ग़ज़नी के विरोध में जनता का कोई भी हाथ नहीं था। जनता में यह क्लीबता कैसे आ गई, इसी प्रश्न की विवेचना इस पुस्तक का विषय है।

पुस्तक उपन्यास मात्र है। पात्र काल्पनिक हैं। फिर भी ऐतिहासिक पुरुषों का विवरण, जो इस पुस्तक में आया है, इतिहास में लिखे अनुसार ही अंकित करने का यत्न किया गया है।

पुस्तक एक ऐसे विषय पर है, जिस पर पाठकों में मतभेद हो सकता है। लेखक का अपना एक मत है और वह मत किन आधारों पर बना है, इसका उल्लेख यहाँ कर दिया गया है। शेष तो पाठकों के विचार करने की बात है।

—गुरुदत्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम परिच्छेद

१

राजभवन के एक विशाल आगार के मध्य में, कन्नौजाधिपति महाराज ग्रहवर्मन मौखरी एक आसन पर बैठे थे। उनके साथ ही महारानी राज्यश्री गम्भीर भाव में बैठी ध्यानपूर्वक बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर का उपदेश सुन रही थीं। बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर महाराज तथा महारानी के सामने एक उच्च आसन पर विराजमान थे।

सप्ताह में एक बार महाप्रभु अवलोकितेश्वर राजप्रासाद में ज्ञानोपदेश के लिए आया करते थे। आज भी इसी निमित्त आए हुए थे और महाराज तथा महारानी दोनों आदरयुक्त मुद्रा में उनके सामने बैठे हुए थे।

ज्ञानोपदेश तो समाप्त हो चुका था। इसके पश्चात् राजकार्य के विषय में वार्तालाप होने लगा था। महाराज ग्रहवर्मन ने राज्य की नवीनतम समस्या का उल्लेख किया था। महाराज ने कहा था, "मालवाधिराज देवगुप्त ने अपनी सेना में वृद्धि करनी आरम्भ कर दी है। हमने उनके राज्य में अपने गुप्तचर भेजे थे। उनकी सूचना है कि पिछले तीन वर्षों में सेना तीन गुना हो गई है। अश्व, रथ, हाथी और पैदल सेना इतनी अधिक हो गई है कि उनको रखने के लिए शिविर कम पड़ने लगे हैं। नगर में, कस्बों में और देहातों में सैनिक-ही-सैनिक दिखाई पड़ते हैं। अस्त्र-शस्त्र भी दिन-रात बनाए जा रहे हैं। इस तैयारी का कारण अभी तक पता नहीं चला। इतना तो विदित हो चुका है कि मालव राज्य का मन्त्री समुद्रगुप्त गौड़राज्याधिपति शशांक के पास भेजा गया है।"

बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर ने इसके उत्तर में कहा, "ग्रहवर्मन! तुमने किसी के साथ किसी प्रकार की शत्रुता नहीं की। तुम्हारे मन में किसी को हानि पहुँचाने का विचार-मात्र भी नहीं है। तब कोई तुमसे शत्रुता क्यों करेगा? यदि किसी ने तुम्हारे राज्य पर आक्रमण किया भी तो अपनी करनी का फल वह स्वयं भोगेगा।"

"परन्तु भगवन्! यदि आक्रमण हुआ तो प्रजा दुःखी होगी।"

"संसार के सुख-दुःख का उत्तरदायित्व तुम पर उसी सीमा तक है, जिस सीमा तक तुम्हारी ओर से धर्मोल्लंघन होता है। धर्म की सीमाओं से बाहर जाकर तुम अपना उत्तरदायित्व निभाओगे तो अपने साथ अन्याय करोगे। तुमने घोर तपस्या से जो निर्वाण-मार्ग पार किया है, वह सब व्यर्थ जाएगा।"

"तो आप मुझको क्या सम्मति देते हैं?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अपने मन से भय निकाल दो। यह सांसारिक वैभव मिथ्या है। यदि यह न भी रहा तो भी तुम्हें कुछ हानि न होगी। शान्त-चित्त होकर भगवान् तथागत के पथ के अनुगामी बने रहो। शेष प्रकृति पर छोड़ दो। मन का मन साक्षी है। कोई कारण नहीं कि तुम जैसे सरलचित्त व्यक्ति पर किसी प्रकार का कष्ट आए। तुम्हारी सत्यप्रियता तथा धर्मपरायणता देखकर तो पत्थर भी पिघल जाएँगे। आक्रमण करने वाले तुम्हारा अहिंसा-व्रत देखकर तुम्हारे चरण छूएँगे।"

बोधिसत्त्व महाराज उपदेश देकर चले गए। उनके जाने के पश्चात् कितने ही काल तक महाराज ग्रहवर्मन तथा महारानी राज्यश्री गम्भीर विचार में बैठे रहे। पश्चात् अपने विचारों में लीन, वे अपने-अपने आसनों से उठ, पृथक्-पृथक् अपने-अपने आगारों की ओर चल पड़े।

महारानी राज्यश्री आजकल किसी अज्ञात भय से त्रस्त रहा करती थीं। जब-जब भी वे अवलोकितेश्वर का उपदेश सुनकर आती थीं उनके हृदय में साहस और स्फूर्ति भर जाया करती थी; परन्तु आज उनके कथन में उन्हें कुछ भी बल प्रतीत नहीं हुआ था। इस कारण उनके मन में न तो साहस ही उत्पन्न हुआ था और न स्फूर्ति। वे अपने आगार में पहुँचीं तो उन्होंने अपनी सखी कात्यायिनी को वहाँ प्रतीक्षा करते पाया।

कात्यायिनी चित्रकार थी। वह महारानी जी का चित्र बना रही थी और इस समय हाथ में तूलिका लिए, निर्माणाधीन चित्र का अध्ययन कर रही थी। महारानी जी आईं तो उसने उनसे कुछ काल के लिए सामने बैठ, चित्र को पूरा कराने का आग्रह करने के विचार से उनके मुख पर देखा। परन्तु वहाँ शोक और गम्भीरता अंकित देख चुप रही। महारानी धम्म से अपने आसन पर बैठीं तो कात्यायिनी ने तूलिका रंग के पात्र में रख दी और महारानी के पास आकर उनके समीप बैठ पूछने लगी, "महारानी जी ! क्या बात है ?"

"नहीं जानती कि क्या हुआ है ! जब से विवाह कर यहाँ आई हूँ यहाँ की बातें विलक्षण ही प्रतीत हुई हैं। इनको देखकर मेरा मन बैठता जाता है।"

"यह स्वाभाविक ही है महारानी जी ! आप श्री प्रभाकरवर्धन की सुपुत्री और श्री राज्यवर्धन की भगिनी हैं, जिनके प्रासादों में आठों प्रहर सुभट्ट नग्न खड्ग लिए घूमते रहते हैं; जहाँ दिन-रात खड्ग-भालों की झंकार गूँजा करती है और जहाँ वीरता की गाथाएँ गाई जाती हैं। इसके विपरीत यहाँ दिन-रात सुरीले स्वरों में 'बुद्धं शरणं गच्छामि' आदि की ध्वनि उठती रहती है। ऐसे वातावरण में भला आपका मन कैसे प्रसन्न रह सकता है ?"

"कात्यायिनी !" महारानी ने कुछ सतर्क होकर कहा, "तुम सदैव यहाँ और वहाँ की तुलना किया करती हो। यह व्यर्थ है। मैं कहती हूँ कि मेरे मन की वर्तमान अवस्था का कारण यह नहीं है। मैं तो यहाँ के वातावरण को सर्वथा सुख और शान्तिप्रद मानती हूँ। वह कुछ और ही है, जो मैं समझ नहीं पाती। मुझको कुछ भय-सा लगा रहता है। किस बात का भय है, मैं समझा नहीं सकती।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो भगवान् अवलोकितेश्वर से पूछ लेतीं।"

"पूछा था। वे कहते थे कि प्रकृति का नियम है कि जब निर्वाण-प्राप्ति होने वाली होती है, तो मनुष्य ऐसा अनुभव करता है, जैसे वह निराधार आकाश में स्थित है। इससे उसे कभी-कभी भय-सा लगने लगता है। धीरे-धीरे जब मन को यह विश्वास हो जाएगा कि यह निराधार अवस्था में दृढ़ आधार पर स्थित है, तब मन आत्मविश्वास प्राप्त कर लेगा।"

"तो ठीक है। अवलोकितेश्वर महाराज बहुत ही योग्य व्यक्ति हैं। उनके कथन में अवश्य ही तथ्य होगा। चिन्ता की कोई बात नहीं हो सकती।"

"चिन्ता न सही, परन्तु प्रसन्नता भी तो नहीं होती। क्यों, यह कुछ समझ में नहीं आता।"

"महारानी जी! एक बात कहूँ?"

"हाँ-हाँ, कहो।"

"मन के द्वार दस इन्द्रियाँ ही तो हैं। इन्द्रिय-सुख प्राप्त करने का यत्न करिए। मन स्वयं सुखी हो जाएगा। मन का सुख ही तो आनन्द कहाता है।"

"कात्यायिनी! यह आज तुम आर्य-जीवन-मीमांसा छोड़ बौद्ध-जीवन-मीमांसा की बात क्यों कर रही हो? आर्य सिद्धान्त के अनुसार, आनन्द तो आत्मा का गुण है। मन को जो सुख मिलता है, वह क्षण-भंगुर है।"

"महारानी जी सत्य कहती हैं। परन्तु आप बौद्ध-मीमांसा को मानने वाली हो गई हैं न। अतएव मैं उसी के अनुसार ही बात कर सकती हूँ। यदि कहीं कहती कि आत्मा को आनन्दित करने के लिए भगवान् का भजन करना चाहिए तो आप, सदा की भाँति, उत्तर देतीं कि यह तुम क्या मूर्खों की-सी बातें करने लगी हो? आत्मा कहाँ है, जिसको आनन्दित करना है? परमात्मा कौन है, जो आत्मा को परमानन्द प्रदान करने की शक्ति रखता है?

"महारानी जी! इसी कारण मैंने यही उचित समझा कि आपको आपकी जीवन-मीमांसा के अनुसार सुख-शान्ति सुलभ करने का उपाए बताऊँ। आप तो आत्मा-परमात्मा का अस्तित्व मानती नहीं। इसीलिए मन को प्रसन्न करने के लिए इन्द्रिय सुख-प्राप्ति का मार्ग बता दिया है।"

"क्या करने को कहती हो तुम?"

"देखिए, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। इन इन्द्रियों के विषयों का भोग होना चाहिए। सप्ताह में एक दिन मधुर संगीत सुना जाए। दूसरे दिन सुन्दर दृश्य देखे जाएँ। तीसरे दिन नृत्य कराया जाए। चौथे दिन बहुत ही स्वादिष्ट पकवान बनवाकर खाए जाएँ। पाँचवें दिन सुगन्धित द्रव्य, कोमल गद्दे तथा अन्य सुखप्रद उपकरण भोग किए जाएँ।"

कात्यायिनी की, मन को आनन्दित करने के लिए, यह मीमांसा सुन महारानी राज्यश्री चकित रह गईं। महारानी को चुप देख कात्यायिनी ने आगे कहा, "तो महारानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जी ! आज्ञा हो तो हमारे राज्य के सर्वश्रेष्ठ गायक गायनाचार्य श्री कमलेश्वर भट्ट को आज सायंकाल संगीत सुनाने के लिए बुलाया जाए ?"

"महाराज से पूछना होगा।"

"परन्तु उनका हृदय तो डोल नहीं रहा। हृदय तो आपका बैठ रहा है। वे इसमें क्या कहेंगे ?"

"तो क्या उनको मेरे लिए कुछ नहीं करना चाहिए ?"

"यदि वे करें तो उचित ही है। तो आप उनसे कहिए।"

"क्या कहूँ ?"

"आप कहिए कि आपका चित्त नहीं लगता। इस कारण मनोरंजन के लिए राजप्रासाद में संगीत, नृत्य आदि का आयोजन हो। इससे आपकी इन्द्रियाँ तुष्ट होंगी और मन प्रसन्न होगा।"

महारानी राज्यश्री इस आशा में कि महाराज उनके लिए यह सब आयोजन करना स्वीकार कर लेंगे, प्रसन्न हो गईं और कात्यायिनी को अपना चित्र पूरा करने के लिए कह उसके सामने बैठ गईं।

२

महाराज ग्रहवर्मन बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर का उपदेश सुन सीधे राज्य-परिषद् की बैठक में जा पहुँचे और अपने मन्त्रिमण्डल से राज्य-कार्य के विषय में विचार-विनिमय करने लगे।

महामात्य पद्मराज, अमात्य विश्वेश्वर, सेनानायक सुषेण एवं कन्नौज के अन्य मंत्रिगण बैठे हुए थे। महाराज ने अपना आसन ग्रहण किया तो महामात्य पद्मराज ने परिस्थिति का वर्णन कर दिया।

उसने कहा, "महाराज ! समुद्रगुप्त गौड़ राज्य से मालवा लौट चुका है और उसके लौटने से वहाँ की राज्य-सभा तथा प्रजा में उत्साह की तरंग दौड़ गई है। हमारे गुप्तचरों का यह कहना है कि सैनिक तैयारियाँ और भी अधिक वेग से चलनी आरम्भ हो गई हैं।"

"तो मन्त्रिगण मुझे क्या राय देते हैं ?"

"महाराज ! हमें भी सेना में अविलम्ब भर्ती आरम्भ कर देनी चाहिए और अस्त्र-शस्त्र बनवाने के लिए ग्राम-ग्राम में भट्टियाँ चालू करवा देनी चाहिए।"

"तो युद्ध की तैयारी आरम्भ कर दी जाए ?"

"नहीं महाराज ! युद्ध की नहीं, प्रत्युत आत्म-रक्षा की। युद्ध के लिए तो मालवा पर आक्रमण करना ठीक रहता। परन्तु हमें तो अपने देश की रक्षा के लिए तैयार होना चाहिए।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ठीक है, परन्तु इसके लिए धन कहाँ से आएगा महामात्य !"

"अभी तुरन्त कार्यारम्भ के लिए तो कोष से निकालना चाहिए।"

"परन्तु कोष तो पहले ही रिक्तप्राय है। अभी पिछले मास एक लक्ष्य स्वर्ण मुद्राएँ महारानी के नाम पर बन रहे चैत्य के लिए दान में दी गई हैं।"

"कुछ तो कोष में होगा ही।" महामात्य ने कह दिया।

"बीस सहस्त्र स्वर्ण मुद्राएँ बोधिसत्त्व को देने के लिए वचन दिया गया है।" अर्थमन्त्री ने कहा, "वे बौद्ध धर्म-प्रचारार्थ देशाटन को जाना चाहते हैं।"

"उनको अपना भ्रमण अभी स्थगित करने के लिए कह दिया जाए।"

"यह असम्भव है।" महाराज ने कहा, "विशेष रूप में जब उनको यह पता चलेगा कि यह धन युद्ध की तैयारी में व्यय हो रहा है।"

"तो महाराज ! प्रजा पर कर बढ़ा दिया जाए।"

"कर बढ़ाने से असन्तोष बढ़ेगा और प्रजा मेरे ही विरुद्ध हो जाएगी।"

"प्रजा को यह बता दिया जाए कि पड़ोसी राज्य से युद्ध की आशंका है और प्रजा की रक्षा के लिए युद्ध-सामग्री इत्यादि तैयार करनी है। जब प्रजा को यह पता चलेगा कि उनकी बहू-बेटियों और बाल-वृद्धों को आक्रमण से कष्ट होगा, तो वे प्रत्येक प्रकार का त्याग करने के लिए तैयार हो जाएँगे।"

"मुझको इसमें सन्देह है। फिर भी महामात्य महाप्रभु से मिल लें और यदि उन्होंने हमारी योजना को स्वीकार कर लिया तो हम प्रजा पर कर भी लगा सकेंगे और सेना में वृद्धि भी कर सकेंगे।"

"यदि महाराज आज्ञा दें तो मैं आज ही उनकी सेवा में उपस्थित होकर इस विषय में बात करना चाहूँगा।"

"हाँ, कर सकते हो। हमने उन्हें परिस्थिति से परिचित कर दिया है।"

"एक और निवेदन है महाराज !"

"हाँ, बताइए।"

"आपके श्वशुर श्रीकण्ठाधिपति श्रीमान् प्रभाकरवर्धन जी को सहायता के लिए लिखा जाए। वे यदि इसमें कुछ हाथ बटाएँ तो हम सहज ही मालवा वालों के दाँत खट्टे कर सकते हैं।"

"वे कदाचित् कुछ सहायता नहीं कर सकेंगे। श्रीमान् प्रभाकरवर्धन स्वयं तो वृद्धावस्था को प्राप्त हो चुके हैं। उनका ज्येष्ठ सुपुत्र राज्यवर्धन गांधार देश में हूणों से युद्ध कर रहा है और श्रीकण्ठ की अधिकतर सेना राज्यवर्धन के साथ है।"

"यह तो ठीक है। हमको अपने पाँव पर खड़े होने का यत्न करना चाहिए। फिर भी सहायता के लिए जितने अधिक मित्र आ जाएँ, अच्छा ही है।"

महाराज ग्रहवर्मन ने बात बदल दी। उन्होंने कहा, "महामात्य ! आज महाप्रभु ने बताया है कि अभी तक हमारे राज्य में बौद्ध भिक्षुओं को यात्रा की वे सुविधाएँ प्राप्त नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, जो मगध में महाराज अशोक के काल में थीं। कुछ भिक्षु महाप्रभु के पास पहुँचे थे और राज्य के भण्डार से उचित मात्रा में अन्न न पाने के विषय में कह रहे थे।"

"मैं इस विषय में जाँच करूँगा महाराज!"

"सेनापति!" महाराज ने सुषेण को सम्बोधन कर कहा, "सेना की व्यवस्था के विषय में क्या कहना है?"

"महाराज! पिछले दो वर्ष से सेना को वेतन नहीं मिला। कोषाध्यक्ष ने इस मास सबको कुछ-न-कुछ देने का वचन दिया था, परन्तु अभी तक एक रजत भी इस कार्य के लिए नहीं मिला।"

उत्तर अर्थमन्त्री ने दिया, "मैंने एक लक्ष मुद्राएँ इस अर्थ एकत्रित की थीं परन्तु वे चैत्य बनाने के लिए दे दी गई हैं। अब पुनः इतना धन एकत्रित होने में दो मास लग जाएँगे।"

"अच्छी बात है। महामात्य महाप्रभु से मिल लें और उनसे स्वीकृति लेकर, कर-वृद्धि का आयोजन कर लें। वास्तव में कठिनाई यह है कि प्रायः सेट्ठी लोग बौद्ध उपासक हैं। यदि महाप्रभु की स्वीकृति मिल गई तो वे सहर्ष धन दे सकेंगे।"

अब अमात्य विश्वेश्वर ने कहा, "महाराज! उपाध्याय चक्रवर्ती जी का सन्देश आया है कि उनकी पाठशाला को वार्षिक सहायता-निधि नहीं भेजी गई। परिणामस्वरूप गौओं के लिए भूसा और दाना नहीं आ सका। गौओं का दूध सूख रहा है।"

"उपाध्याय जी से कह दिया जाए कि इस वर्ष गौओं को दाना न दिया जाए।"

"तो विद्यार्थियों के लिए दूध कम हो जाएगा।"

"उनको इतना तो त्याग करना ही होगा। अगले वर्ष अधिक दूध मिल जाएगा।"

इस प्रकार एक प्रहर तक राज्य-परिषद् की बैठक चलती रही और एक के पश्चात् दूसरी समस्या उपस्थित होती रही, परन्तु धनाभाव के कारण किसी भी समस्या का अन्तिम सुझाव न हो सका।

दो दिन के पश्चात् राज्य सभा की बैठक पुनः करने का निश्चय कर महाराज उठ खड़े हुए और मन्त्रिगण भी जाने को तैयार हो गए।

महाराज गए तो सुषेण ने महामात्य को एक ओर ले जाकर पूछा, "अब क्या होगा?"

"सर्वनाश बन्धु! शीघ्र ही राज्य पर आक्रमण होने वाला है और हमारे पास जो थोड़ी-बहुत सेना है, उसके वेतन के लिए भी धन नहीं है।"

"यह तो ठीक है कि महाराज निर्वाण-पथ के अनुगामी हैं और वे इतने वीतराग हो चुके हैं कि उनमें राग, लोभ, मोह आदि विकार नहीं रहे; परन्तु प्रजा का क्या होगा?"

पद्मराज ने कोई उत्तर नहीं दिया।

सुषेण पुनः कुछ विचार करके पूछने लगा, "तो आप बोधिसत्त्व के पास जा रहे हैं?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इसमें लाभ तो प्रतीत नहीं होता, परन्तु महाराज की आज्ञा है। पालन करनी ही होगी।"

"कब जा रहे हैं?"

"अभी जाने का विचार है।"

"तो मुझको भी साथ ले चलिए महामात्य!"

"मुझको कुछ भी आपत्ति नहीं। फिर भी आपके चलने से कुछ लाभ होगा क्या? मुझे तो कुछ समझ में नहीं आता।"

"मुझे तो लाभ होगा। मैं वहाँ मकरांका से मिल सकूँगा।"

"ओह! यह तो भूल ही गया था। क्या अब पुनः उससे सम्पर्क बन गया है?"

"नहीं मित्र! जब से वह भिक्षुणी बनी है, महाप्रभु की ही सेवा में रहती है। पहले तो वह मुझसे मिलती तक नहीं थी, परन्तु अब इतनी कृपा करती है कि चैत्य में जाने पर दर्शन दे देती है। वह सदैव मुझसे कहती रहती है कि मैं भी भिक्षु बन जाऊँ। वह हमारे गृहस्थों के जीवन को हेय मानने लगी है।"

"तो क्या आप भी ऐसा ही मानने लगे हैं?"

"उसके कहने से तो कुछ समझ में नहीं आता। हाँ, राज्य की अवस्था देख अवश्य वैराग्य उत्पन्न होने लगा है। मुझको कुछ ऐसा समझ में आ रहा है कि जिस नौका पर हम सवार हैं, वह मँझधार में डूबेगी और हम भी उसके साथ ही डूबेंगे। मैं इस नौका के डूबने से पहले ही इससे बाहर निकल जाना चाहता हूँ।"

"तो यह बौद्ध-दीक्षा आपको इस नौका से निकालने का उपाय प्रतीत होने लगा है?"

"हाँ; गृहस्थ में रहता हुआ यदि मन्त्री-पद से त्यागपत्र देता हूँ तो महाराज और प्रजा की दृष्टि में पलायक माना जाऊँगा। सब लोग यही कहेंगे कि मुसीबत के समय भीरुओं की भाँति घर में जा बैठा हूँ। इसके विरुद्ध बौद्ध भिक्षु बनने से तो मैं निन्दा के स्थान पर प्रशंसा का पात्र बन जाऊँगा।"

"बन्धु! जानना चाहते हो कि मेरे मन में इसका क्या अर्थ जान पड़ा है? मैं समझूँगा कि तुम न केवल भीरु हो, प्रत्युत वंचक भी। महाराज का काम छोड़ देने से कुछ तो सत्यप्रियता प्रकट होगी ही। तुम यह तो कह सकोगे कि महाराज की नीति से सहमत न होने से तुम त्यागपत्र दे रहे हो; परन्तु बौद्ध भिक्षु बनने से तो यह कहना पड़ेगा कि तुम्हें संसार से विरक्तता प्राप्त हो गई है, जिसका दूसरा नाम वंचना है।"

"कृष्ण की गीता के सिद्धान्तों से न? परन्तु बौद्ध-मीमांसा से तो यह महात्याग माना जाएगा।"

महामात्य पद्मराज हँस पड़ा। सुरक्षा मन्त्री ने भी हँसते हुए कहा, "मित्र! वेदान्त के मतानुसार यह सब कुछ मिथ्या है। सत्य केवल आत्मा है और आत्मा सबमें एक समान विराजमान है। इस कारण भी मैं समझता हूँ कि इस व्यर्थ रक्तपात से, जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनिवार्य प्रतीत हो रहा है, मैं पृथक् हो जाऊँ। वास्तव में भगवान् बुद्ध की मीमांसा का अनुकरण करूँ अथवा आचार्य वादरायण की मीमांसा का, बात एक ही होगी। संन्यास ही मेरी समस्या का सुझाव है।

"और फिर इन मीमांसकों की बात छोड़ दूँ तो भी मेरे घर की परिस्थिति अब सूनी एवं नीरस हो गई है। जब से मकरांका गई है, मुझको घर आत्मा-रहित प्रतीत होने लगा है। मैं इस एकाकी जीवन से ऊब गया हूँ।"

दोनों मन्त्री लम्बे-लम्बे पग उठाते हुए राजभवन से निकल राजपथ पर चले जा रहे थे। वे पूर्वी नगर-द्वार को जा रहे थे और दोनों के मस्तिष्क में भविष्य विकट रूप धारण कर हलचल मचा रहा था। दोनों समझ रहे थे कि कन्नौज का भविष्य अन्धकारमय है, परन्तु दोनों के मन में इस सम्भावित, अन्धकारपूर्ण भविष्य की प्रतिक्रिया भिन्न-भिन्न थी।

पद्मराज काशी के एक आचार्य परजाता का शिष्य था। उसके रोम-रोम में भारत-युद्ध नामक ग्रन्थ में वर्णित कृष्णार्जुन संवाद का एक वाक्य चक्कर लगा रहा था :

'यस्त्विंद्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते॥'

पद्मराज और सुषेण नगर-द्वार से निकले तो पद्मराज ने अपने मन में उठ रहे उद्‌गार वर्णन कर दिए। उसने कहा, "बन्धु! मैं भी यह देख रहा हूँ कि कन्नौज में महाप्रलय सम्भावित है। परन्तु इससे भयभीत होकर भाग जाने और बौद्ध-विहार में मुख छिपाने के स्थान पर कर्म करते हुए अपने स्थान पर डटे रहना मैं अधिक उचित समझता हूँ।"

"तो मित्र! यह समझ लो कि तुम्हारा इहलोक समाप्त हुआ और उसके पश्चात् क्या होगा, कोई नहीं जानता।"

"तुम्हारे कहने का अर्थ है कि मैं मार डाला जाऊँगा? मुझे इसका भय नहीं। मैं तो भगवान् कृष्ण के इस कथन को मानता हूँ :

'गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः।

"कौन जीवित रहेगा अथवा कौन मरेगा, यह पण्डितों के सोच का विषय नहीं। विद्वान् तो यह जानते हैं :

'धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।' "

"परन्तु मित्र! धर्म क्या है? क्या तुम इस नपुंसक और मिथ्याचारी राजा की सेवा करना धर्म समझते हो?"

पद्मराज हँस पड़ा। हँसकर उसने कहा, "तो क्या तुम समझ रहे हो कि मैं ग्रहवर्मन की सेवा कर रहा हूँ? नहीं! मैं तो कन्नौज राज्य का सेवक हूँ। राज्य का अर्थ ग्रहवर्मन नहीं, प्रत्युत यहाँ की कोटि-कोटि प्रजा है। उनके प्रति मेरा जो धर्म है, वही मैं पालन कर रहा हूँ। दुर्भाग्य यह है कि मैं राज्य के सब सेवकों का कार्य नहीं कर सकता। मेरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

R 089.9143
GUR-P
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
167830
Gurukula Kangri University, Haridwar

शक्ति सीमित है। मैं तो ग्रहवर्मन को भी राज्य का सेवक-मात्र ही समझता हूँ। वह अपने धर्म का पालन नहीं कर रहा। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि मैं भी अपना धर्म-पालन करना छोड़ दूँ।"

इस समय वे चैत्य के द्वार पर पहुँच गए। राज्य के दो मन्त्रियों को पैदल ही आते देख श्रावक, जो चैत्य-द्वार पर बैठे थे, आश्चर्यचकित रह गए। वे इसका अर्थ नहीं समझ सके थे।

उनके आने की सूचना तुरन्त महाप्रभु को भेज दी गई।

३

महाप्रभु अवलोकितेश्वर ने मन्त्रिगण से पूछा कि वे किस उद्देश्य से आए हैं। पद्मराज ने मालवा की सैनिक तैयारी का वर्णन कर निवेदन किया, "महाप्रभु! मन्त्रिमण्डल की यह सम्मति है कि कन्नौज की सुरक्षा का प्रबन्ध होना चाहिए। इसके लिए सेना में वृद्धि तथा प्रचुर मात्रा में अस्त्र-शस्त्र निर्माण होने चाहिए। राज्यकोष तो बौद्ध सम्प्रदाय के कार्यों में ही व्यय हो चुका है। इस कारण कर-वृद्धि की आवश्यकता है। महाराज कर-वृद्धि की आज्ञा देने से पूर्व भगवान् का आशीर्वाद चाहते हैं।"

"महामात्य!" महाप्रभु ने गम्भीर भाव धारण कर कहा, "मैं इसमें अपनी सहमति नहीं दे सकता। मेरी दृष्टि में मालवाधिपति देवगुप्त किसी प्रकार भी असुर अथवा राक्षस नहीं। कन्नौज में देवगुप्त का राज्य होता है अथवा ग्रहवर्मन का, मेरे लिए चिन्ता का विषय नहीं। हाँ, नर-रक्तप्रवाह की चिन्ता मुझे अवश्य है।

"अतएव मेरी सम्मति में न तो सेना बढ़ाने की आवश्यकता है और न ही अस्त्र-शस्त्र के निर्माण की। यह धन का अपव्यय होगा।"

"तो भगवन्! देवगुप्त की सेना कन्नौज पर अधिकार कर लेगी और फिर विजयी सेना यहाँ की प्रजा पर अत्याचार भी कर सकती है। वह हत्याएँ भी कर सकती है: स्त्रियों का सतीत्व भी हरण हो सकता है। महाराज ग्रहवर्मन की या तो हत्या हो जाएगी अथवा वे आत्महत्या कर लेंगे।"

"ऐसा क्यों होगा? देखो महामात्य! यदि मालवा की सेना कन्नौज में आई तो तुम उसके स्वागत का प्रबन्ध कर देना। महाराज देवगुप्त को यहाँ का राज्य देने के लिए विधान कर देना। ऐसी अवस्था में देवगुप्त की सेना क्यों किसी की हत्या करेगी?

"मानव-जन्म अति मूल्यवान परिस्थिति है। यह जन्म तो कई जन्म-जन्मान्तर के पश्चात् किसी प्राणी को मिलता है। राज्य जैसी तुच्छ वस्तु के लिए इसका हनन करना घोर पाप होगा। प्रत्येक मनुष्य के लिए इस जीवन को दीर्घ करने का अवसर मिलना चाहिए जिससे वह अपने निर्वाण-मार्ग पर अग्रसर हो सके। युद्ध का मार्ग इसमें बाधक है। हम पंचशील सिद्धान्त के मानने वाले हैं। पंचशील की धुरी शान्ति है। शान्ति ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य की उन्नति का साधन है और शान्ति युद्ध से प्राप्त नहीं हो सकती।"

"भगवन्! आपकी यह नीति अशुद्ध है। कन्नौज राज्य ने शान्ति भंग करने का आयोजन नहीं किया। अतएव यदि कोई हत्या होती है, तो उसका पाप हम पर नहीं हो सकता। यह पाप तो मालवाधिपति को ही लगेगा। हम तो अपने अधिकार की रक्षा के लिए ही सेना तथा अस्त्र-शस्त्र निर्माण करना चाहते हैं।"

"नहीं! तुम मेरी युक्ति नहीं समझे। मालवा के कन्नौज पर आक्रमण में कौन दोषी होगा, कौन निर्दोष, यह जानना हमारा कार्य नहीं है। प्रकृति के नियम इसका निर्णय करेंगे। हमें तो यह देखना है कि मानव-जीवन व्यर्थ न जाए। सहस्रों सैनिक जो युद्ध में मारे जाएँगे, निर्वाण-पथ पर की उन्नति में बाधा पाएँगे। मैं यह नहीं चाहता, इस कारण मैं इसकी अनुमति नहीं दे सकता।

"जाओ, महाराज से कह दो कि युद्ध करना घोर पाप है। मैं कभी भी इस पाप के लिए सम्मति नहीं दे सकता। मेरी सम्मति है कि महाराज अपना एक दूत मालवा भेजें, जिसके द्वारा वे देवगुप्त पर अपनी शान्तिप्रियता प्रकट कर दें। फिर भी यदि वह आक्रमण करे तो उसको अपना एक भूला हुआ बंधु मान, राजभवन में आमन्त्रित करें और उससे वार्तालाप द्वारा किसी ऐसे निर्णय पर पहुँचें, जिससे दोनों राज्य शान्तिपूर्वक रह सकें।"

पद्मराज तो कुछ ऐसी ही सम्मति की आशा कर रहा था फिर भी वह महाप्रभु के पास आया था और उसने परिस्थिति का वर्णन कर दिया था। अब बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर का आदेश सुनकर वह उठ खड़ा हुआ और जाने से पूर्व निवेदन करने लगा, "महाप्रभु! हम बौद्ध नहीं हैं। अतः हमें आपके इस शील सिद्धान्त पर विश्वास नहीं है। हम लोग तो यह मानने वाले हैं—

'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।'

"परन्तु मैं यहाँ का राजा भी तो नहीं। केवल मंत्रणा देने वाला हूँ। अतः जाकर महाराज को आपका आदेश सुनाकर, अपनी मंत्रणा भी दे दूँगा। यदि महाराज ने मेरी मंत्रणा नहीं मानी तो महामात्य-पद का त्याग कर, एक नागरिक के रूप में अपनी रक्षा का प्रबन्ध करूँगा।"

"क्या मंत्रणा देने जा रहे हो महामात्य!"

"यदि महाराज ने महाप्रभु के आदेश से भिन्न निर्णय किया तो मेरी सम्मति यह होगी कि महाप्रभु अवलोकितेश्वर को बंदीगृह में डाल दिया जाए और राज्य के सब युवकों को, जिनकी आयु बीस और तीस वर्ष के भीतर है, सेना में भर्ती कर लिया जाए। सबको अस्त्र-शस्त्र चलाने की शिक्षा देनी आरम्भ कर दी जाए और पूर्व इसके कि मालव-नरेश कन्नौज पर आक्रमण करे, मालवा पर आक्रमण कर उसकी ईंट-से-ईंट बजा दी जाए।"

"शान्तं पापं! शान्तं पापं!! महामात्य! तुम बहुत ही दुष्ट प्राणी हो। हमारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदेश महाराज को सुना देना और यदि एक धर्मात्मा, सत्यप्रिय और निष्पाप प्राणी की सम्मति मानो तो तुरन्त राज्य छोड़कर चले जाना, अन्यथा कहीं बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर को बन्दी करने के स्थान पर स्वयं बन्दी न बन जाओ। जाओ, मेरे मन की शान्ति भंग मत करो।"

जब महामात्य लौटा तो सुषेण महाप्रभु के सम्मुख खड़ा हो गया। उसको खड़ा देख महाप्रभु ने पूछा, "क्या चाहते हो अमात्य सुषेण!"

"महाराज! भिक्षुणी मकरांका के दर्शनों का अभिलाषी हूँ। स्वीकृति दीजिए।"

"भिक्षुणी इस समय चैत्य के प्रबन्ध-कार्य में व्यस्त है। कदाचित् वह नहीं मिल सकेगी।"

"भगवन्! उससे पूछ तो लीजिए। यदि अवकाश होगा तो वह आ जाएगी।"

महाप्रभु ने ताली बजाई। एक भिक्षुक महाप्रभु के आगार में प्रविष्ट हुआ।

महाप्रभु ने आज्ञा दी, "जाओ, भिक्षुणी मकरांका को कहो कि अमात्य सुषेण दर्शनार्थ आए हैं।"

भिक्षु गया तो सुषेण महाप्रभु को नमस्कार कर बाहर, चैत्य के प्रांगण में आ गया। वहाँ एक पीपल के वृक्ष की छाया में खड़ा हो प्रतीक्षा करने लगा।

लगभग चौथाई घड़ी प्रतीक्षा के पश्चात् एक स्त्री, जिसका सिर मुँड़ा हुआ था और जिसने पीत वसन धारण किए हुए थे, आकर सुषेण के सम्मुख खड़ी हो गई। यह भिक्षुणी मकरांका थी। उसकी आयु तीस वर्ष के लगभग प्रतीत होती थी। रूप-रेखा तीखी और सर्वथा गौरांग थी। जब वह अमात्य के सम्मुख आकर खड़ी हो गई तो अमात्य ने कहा, "देवी! स्वास्थ्य कैसा है?"

"ठीक है।"

"चित्त प्रसन्न है?"

"हाँ! सब प्रकार से ठीक हूँ।"

"तुम्हारा पुत्र मदन तुमको बहुत स्मरण करता है।"

"तो उसको ले आते।"

"तुम क्यों नहीं आतीं?"

"इस कारण कि पहली बार जब मैं वहाँ गई थी तो तुमने मुझ पर बलात्कार करने का प्रयत्न किया था। इससे मेरे चित्त में कितने ही दिन तक अशान्ति रही थी। ऐसी बातों से मेरी उन्नति में बाधा उत्पन्न होती है।"

"परन्तु क्या तुम्हारा चित्त मदन से मिलने को नहीं करता?"

"नहीं भन्ते! मैं राग-द्वेष से ऊपर उठ रही हूँ। परन्तु वह तो बालक-मात्र ही है। उसको अभी ज्ञान नहीं, इस कारण यदि वह मुझसे मिलना चाहता है तो यहाँ आकर मिल सकता है।"

"तो ले आऊँगा। अगली बार जब मिलने आऊँगा तो उसे लेता आऊँगा। क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम मुझे भी इसी कारण दर्शन देने की कृपा करती हो कि मेरे चित्त को शान्ति प्राप्त हो ? अथवा क्या तुम्हारा भी मन करता है कि मुझसे मिलो ?"

"भन्ते ! मेरा मन मिलने को नहीं करता। भगवान् तथागत की अपार कृपा है कि मैं वीतराग हो चुकी हूँ। मेरे लिए आप प्रकृति का एक ऐसा अंश-मात्र हैं, जिसके सम्मुख यह शरीर कुछ काल के लिए जा पड़ा था। भगवान् तथागत की कृपा है कि अब मैं आपसे उच्चकोटि की प्राकृतिक विभूति के आलोक में पहुँच गई हूँ।"

"तो तुम मुझसे मिलने क्यों आती हो ?"

"केवल इस कारण कि भगवान् आपके मन में भी प्रकाश करें और आप भी सन्मार्ग पर अग्रसर हो सकें।"

"मैं कभी-कभी इतना व्याकुल हो उठता हूँ कि नवीन विवाह करने का विचार करने लगता हूँ। फिर यह आशा कर कि तुम मेरी प्रार्थना स्वीकार कर, मुझ पर कभी तो कृपादृष्टि करोगी, यहाँ तुम्हारे दर्शन के लिए आ जाता हूँ। तुम निर्वाण-पथ पर कितना आगे बढ़ चुकी हो, मैं नहीं जानता। हाँ, मैं तुम्हारे अभाव को नित्य अनुभव करता हूँ।"

"भन्ते ! अब मेरे जाने का समय हो गया है। मुझको इतना ही अवकाश था। मेरा तो केवल यह कहना है कि इन्द्रियों को उत्तेजना देने से चित्त को शान्ति नहीं मिल सकती। चित्त की शान्ति के लिए उत्तेजना से दूर होने की आवश्यकता है। मेरा कहा मानिए, भिक्षु धर्म ग्रहण कीजिए। महाप्रभु से कहकर आपको कूर्माचल प्रदेश में किसी शीत स्थान पर कुछ वर्षों के लिए रहने का प्रबन्ध करवा दूँगी। वहाँ आपकी इंद्रियों को शान्ति मिलेगी और तदनन्तर मन को भी शान्ति मिलेगी। अच्छा, अब मैं चलती हूँ।"

इतना कह मकरांका घूमकर जिस ओर से आई थी, उधर ही चली गई।

४

महाराज ग्रहवर्मन राज्य-परिषद् की बैठक से उठकर प्रासाद के अन्तःपुर में चले गए। अन्तःपुर के द्वार पर एक प्रतिहारिन ने हाथ जोड़ शीश नवाकर निवेदन कर दिया, "महाराज ! महारानी जी दर्शन की अभिलाषा रखती हैं।"

महाराज, महारानी के आगार की ओर चले गए। महारानी उन्हें द्वार पर ही, उनकी प्रतीक्षा करती मिलीं। इस कारण वे विस्मय में पूछने लगे, "महारानी जी की क्या आज्ञा है ?"

"ऐसा न कहिए महाराज !" राज्यश्री ने महाराज की बाँह-में-बाँह डाल, उन्हें भीतर ले जाकर आसन पर बैठाकर कहा, "महाराज ! मैं तो आपकी दासी हूँ। मुझको आज्ञा का अधिकार नहीं। मैं तो कुछ निवेदन करना चाहती हूँ।"

"हाँ, हाँ, कहो, क्या चाहती हो ?"

"कई दिनों से चित्त उदास-सा रहता है। महाप्रभु का आज का कथन सुनकर तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्त इतना खिन्न हुआ है कि हृदय डोल उठा है। सखी कात्यायिनी ने इसको स्थिर करने का एक उपाय बताया है। मैं श्रीमान् से स्वीकृति चाहती हूँ।"

"वह उपाय क्या है?"

"कात्यायिनी का मत है कि मन के द्वार पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। अतः मन को प्रसन्न करने के लिए इन्द्रियों को प्रसन्न करना आवश्यक है। इन्द्रियों की प्रसन्नता उनको उनके विषयों में तुष्टि देने से होती है। अतएव मैं चाहती हूँ कि इस भवन में नृत्य-संगीत इत्यादि का आयोजन हो जाया करे।"

"इससे क्या होगा? नृत्य और संगीत तो इन्द्रियों को तुष्टि प्रदान करने के स्थान पर उत्तेजित करने वाले सिद्ध होंगे। इससे शान्ति की अपेक्षा अशान्ति उत्पन्न होगी।"

"नहीं महाराज! मन-बहलाव का इससे अच्छा उपाय और क्या हो सकता है?"

"प्रातः उठकर जब 'बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि' की मधुर ध्वनि कर्णगोचर होती है, तो कितनी शान्ति मिलती है चित्त को!

"जब नित्य भिक्षुओं और भिक्षुणियों की मण्डलियाँ दान-दक्षिणा के लिए पीत वसनों में प्रासाद के आगे से निकलती हैं, तो कौन नृत्य उससे अधिक शोभा और शान्तिवर्धक हो सकता है! मैं तो समझता हूँ कि नृत्य और संगीत से, शान्ति की अपेक्षा अपूर्ण इच्छाओं के चिन्तन से अशान्ति ही मिलेगी।"

"तो आपकी सम्मति है कि आयोजन न किया जाए?"

"नहीं देवी! मेरा यह अभिप्राय नहीं है। मैंने तो यह कहा है कि इच्छित प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा।"

"परीक्षा करके तो देखना चाहिए।"

"तो यह आयोजन कर सकती हो। इसके लिए धन का प्रबन्ध हो जाएगा।"

"धन्यवाद! दासी आपकी कृपाओं के लिए सदा आभारी रहेगी।"

पश्चात् इधर-उधर की बातचीत आरम्भ हो गई। महाराज अभी राज्यश्री के आगार में ही थे कि प्रतिहारिनी ने आकर सूचना दी कि महामात्य पद्मराज मिलने आए हैं।

महाराज ने महारानी की ओर देखा तो महारानी समझ गईं और प्रतिहारिनी से बोलीं, "महामात्य को यहीं ले आओ।"

पद्मराज ने आकर महारानी को झुककर प्रणाम किया और महाराज द्वारा इंगित आसन पर बैठकर बोला, "महाराज! महाप्रभु अवलोकितेश्वर ने आदेश दे दिया है। आज्ञा हो तो वर्णन करूँ।"

"हाँ, हाँ। बताओ। महाप्रभु की क्या आज्ञा है?"

"उनका आदेश है कि मैं महाराज से निवेदन कर दूँ कि युद्ध घोर पाप है। वे इस पाप के लिए सम्मति नहीं दे सकते। महाप्रभु चाहते हैं कि महाराज अपने एक दूत द्वारा मालवाधिराज के पास शान्ति का सन्देश भेजें। फिर भी यदि मालवा-नरेश आक्रमण करें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो उनको एक भूला हुआ बन्धु मान, आप उन्हें राजभवन में आमन्त्रित करें और उनसे बातचीत कर, ऐसे निर्णय पर पहुँचें, जिससे दोनों राज्य शान्तिपूर्वक रह सकें।"

इस आदेश को सुन महाराज ग्रहवर्मन गम्भीर विचार में पड़ गए। महामात्य ने उस वार्तालाप का भी संक्षेप में वर्णन कर दिया, जो उसके और महाप्रभु के मध्य चलते-चलते हुआ था।

महाराज ने वार्तालाप का अन्त सुन आश्चर्यचकित हो पूछा, "तो महामात्य महाप्रभु से लड़ आए हैं ?"

"नहीं महाराज ! हाँ, उनसे अपना मतभेद प्रकट कर आया हूँ।"

"परन्तु महामात्य ने तो यह कहा है कि वह उनको बन्दीगृह में डाल देंगे।"

"युद्धकाल में विरोधी पक्ष वालों के साथ यह एक प्रकार की छूट मानी जाती है कि उनको बन्दीगृह में सुरक्षित रखा जाए। यही कारण है कि उन्होंने मुझको आज्ञा दे दी है कि या तो मैं राज्य छोड़कर चला जाऊँ अथवा वे मुझको बन्दीगृह में डलवा देंगे।"

"यही तो झगड़े की बात है।"

"नहीं महाराज ! मैं तो समझता हूँ कि महाप्रभु का मुझको देश-निर्वासित करना अथवा बन्दी बनाना किसी प्रकार का झगड़ा करना नहीं। इसी प्रकार मेरा उनको बन्दी बनाना भी झगड़ा करना नहीं। युद्ध-समाप्ति पर हम पुनः मित्र-रूप में मिल सकेंगे।"

"तो फिर महामात्य का क्या विचार है ?"

"मैंने सन्देश दे दिया है। अब महाराज अपनी इच्छा बतायें कि विग्रह चाहते हैं अथवा सन्धि। सन्धि करनी है तो दूत भेज दिया जाए और यदि विग्रह करना हो तो अविलम्ब सेना को गठित कर मालवा पर आक्रमण कर देने की तैयारी की जाए।"

"हमारी सम्मति है कि दूत भेजना चाहिए और हमें ऐसा प्रत्येक प्रयत्न करना चाहिए, जिससे दोनों राज्यों में शान्ति बनी रहे।"

"तो ठीक है। मेरा निवेदन है कि श्रीमान् के विचारों को प्रकट करने के लिए महाप्रभु अवलोकितेश्वर ही सर्व प्रकार से उपयुक्त दूत रहेंगे।"

"महामात्य पद्मराज क्यों नहीं ?"

"महाराज ! मैं इसे मिथ्या मार्ग समझता हूँ। मुझे इसमें सफलता की आशा नहीं दिखाई देती।"

"सफलता-असफलता का तो प्रश्न ही नहीं है। आप जाइए और मालवाधिपति देवगुप्त को मेरी ओर से निमन्त्रण दे दीजिए कि वे हमारे राज्य में पधारें।"

"महाराज ! क्षमा करें। यह कार्य मुझसे नहीं हो सकेगा। मैं इसी समय महामात्य-पद का त्याग करता हूँ।"

"तो क्या तुम चाहते हो कि हम अपने महामात्य को बन्दी करने की आज्ञा दे दें ?"

"सेवक उपस्थित है और आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहा है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस समय राज्यश्री ने कहा, "महाराज! यदि महामात्य एक निश्चित अवधि के भीतर देश से बाहर निकल जाना स्वीकार करें तो उनको बन्दी बनाने में कुछ भी प्रयोजन नहीं रह जाता।"

महाराज ग्रहवर्मन कुछ काल तक विचार करने के उपरान्त बोले, "पद्मराज! हम महारानी जी का प्रस्ताव स्वीकार करते हैं। हमारा यह आदेश है कि यदि आप सोलह प्रहर के भीतर कन्नौज राज्य छोड़कर चले नहीं जाते तो बन्दीगृह में डाल दिए जाएँगे।"

"आज्ञा शिरोधार्य है महाराज! अब जाने की अनुमति चाहता हूँ।"

"तो कहाँ जा रहे हैं पद्मराज!"

"महाराज! अभी यह निश्चय नहीं किया कि राज्य छोड़कर जाऊँ अथवा नहीं। कन्नौज मेरी जन्मभूमि है और आदिकवि मुनि वाल्मीकि के कथनानुसार मैं जन्मभूमि को स्वर्ग से भी बढ़कर मानता हूँ। अतः जन्मभूमि में बन्दी बनकर रहना भी बाहर स्वतन्त्र घूमने से अधिक उचित प्रतीत होता है। फिर भी अब मन्त्रिप्रद और इसके कर्तव्यों से मुक्ति पाकर अपने परिवार के प्रति कर्तव्य का निर्णय करने जा रहा हूँ। इसके पश्चात् ही जन्मभूमि के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करने का विचार करूँगा।"

"अच्छी बात है। यदि पद्मराज की समझ में कभी यह आए कि वह अपनी जन्मभूमि के प्रति कर्तव्यपालन यहाँ के महाराज की सेवा में रहकर कर सकता है, तो वह सदैव आमन्त्रित है और महाराज उसका अपराध क्षमा कर, उसको पुनः किसी उचित पद पर नियुक्त कर देंगे।"

"इस आश्वासन के लिए मैं आभारी हूँ।"

पद्मराज ने झुककर प्रणाम किया और आगार से बाहर निकल गया। उसके चले जाने के उपरान्त महाराज ग्रहवर्मन ने महारानी से पूछा, "प्रिय! क्या विचार कर रही हो?"

"महाराज! मेरा मन कहता है कि यह कुछ अच्छा नहीं हो रहा।"

"वास्तव में यह पद्मराज आर्य है। इसने कभी भी बौद्ध-मीमांसा को स्वीकार नहीं किया। यह आचार्य बादरायण के मत को भी अशुद्ध मानता है। यह उस ठग वासुदेव का उपासक है, जिसने भारत-युद्ध में वंचना खेलकर क़ौरवों की पराजय कराई थी और असंख्य प्राणियों की हत्या कराई थी। इस कारण इसको तो एक दिन यहाँ से जाना ही था। इस विपत्ति के समय यह अपने को कर्तव्य से मुक्त पाकर भाग्यशाली मानता होगा।"

"महाराज! मैं तो यह कह रही हूँ कि इस विपत्ति के समय एक योग्य बुद्धिशील व्यक्ति का हमसे दूर चले जाना उचित प्रतीत नहीं हुआ।"

"जब हमने राज्य त्याग करने का निश्चय कर लिया है तो फिर पद्मराज-जैसे व्यक्ति को समीप रखने की हमारी सामर्थ्य ही कहाँ है? यदि यह हमारे समीप नहीं है तो हम अपनी नीति का पालन भी भलीभाँति कर सकेंगे।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"परन्तु महामात्य तो हमारी नीति को अशुद्ध मानता था। उसका कहना है कि राज्य छोड़ना उचित नहीं। देश की रक्षा करना अधिक उचित है। साथ ही देश की रक्षा आक्रमण करने में है न कि आक्रमण किए जाने पर लड़ने में।"

"ठीक है, परन्तु हमारा सिद्धान्त यह है कि सांसारिक विभूतियों के लिए रक्त-प्रवाह किसी प्रकार भी उन्नति का मार्ग नहीं हो सकता। मनुष्य-मात्र के लिए सखा-भावना का, किंचित्-मात्र सुख-सुविधा के लिए, हनन करना निर्वाण-पथ में बाधा खड़ी करना है।"

"पर महाराज! दूसरे भी जब इसको मानें, तभी तो इस सिद्धान्त का पालन किया जा सकता है। हम चाहे चुपचाप बैठे रहें, तो भी दूसरों के न मानने पर हत्या होगी और रक्तपात भी होगा ही।"

"दूसरे क्या करते हैं और क्या नहीं करते, यह हमारे विचार करने का विषय नहीं। हमें तो अपना व्यवहार ठीक रखना है। हमारी उन्नति तो हमारे व्यवहार के अधीन है। दूसरों के कर्मों का फल दूसरों को मिलेगा।"

महारानी राज्यश्री इस युक्ति का उत्तर नहीं दे सकीं। उन्होंने कहा, "तो महाराज! अब मालवा को दूत भेजने का विचार कर लीजिए। क्या महाप्रभु इस हेतु जाना उचित समझेंगे?"

"यह तो वे ही बता सकते हैं। उनसे पूछना पड़ेगा।"

"यह भी तो अब विचार करना होगा कि महामात्य-पद पर किसको नियुक्त किया जाए।"

"यह भी महाप्रभु से विचार करके निश्चित किया जाएगा।"

"तो ठीक है। महाप्रभु को बुलाकर विचार कर लीजिए। नीति-संचालन में आलस्य करना उचित नहीं।"

"हम महाप्रभु को यहाँ आने का निमन्त्रण भेजे देते हैं। वे कल मध्याह्न का भोजन हमारे यहाँ करें, तो कैसा रहे?"

"कल में अभी सात प्रहर शेष हैं। इतने काल में क्या कुछ हो सकता है, कहना कठिन है।"

"कुछ नहीं होगा मेरी रानी! भगवान् तथागत के आशीर्वाद से सब कुछ ठीक होगा।" इतना कह महाराज उठकर महारानी के आगार से विदा हो गए।

महाराज के जाते ही कात्यायिनी आ गई। कात्यायिनी महारानी के सम्मुख बैठकर पूछने लगी, "महारानी जी! क्या हुआ है हमारे संगीत-समारोह के आयोजन का?"

"महाराज ने तो स्वीकृति दे दी है, परन्तु मेरा विचार बदल गया है। मुझको देश पर भारी विपत्ति आती दिखाई दे रही है। ऐसे समय में राजप्रासाद में राग-रंग शोभा नहीं देगा।"

"क्या विपत्ति आ रही है महारानी जी!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मालवा में सैनिक तैयारी हो रही है। महामात्य का विचार था कि यह कन्नौज पर आक्रमण के लिए है और इसका विरोध करने के लिए यहाँ भी सैनिक तैयारी आरम्भ कर देनी चाहिए। महाराज तथा महाप्रभु अवलोकितेश्वर इस तैयारी और सम्भावित आक्रमण के विरोध की स्वीकृति नहीं देते। इस कारण महामात्य अपने पद का त्याग करके चले गए हैं।"

कात्यायिनी कुछ काल तक आश्चर्य में पड़ी रही। महारानी भी गम्भीर मुद्रा बना प्रासाद की छत की ओर देख रही थीं। इस प्रकार दोनों अपने विचारों में लीन थीं। अचानक कात्यायिनी के मन में एक बात आई और उसने उसे महारानी के सम्मुख रख दिया। उसने कहा, "महारानी जी ! एक बात का भय मेरे मन में उत्पन्न हो गया है। कहीं ऐसा न हो कि महामात्य और महाराज परस्पर-विरोधी पक्षों के नेता बन आक्रमण से पूर्व ही देश का नाश कर दें।"

"क्या कह रही हो तुम ? महामात्य पद-त्याग के पश्चात् अपने को बंदी बनाने के लिए तैयार थे।"

"तो महाराज ने उन्हें बंदी बनाया क्यों नहीं ? विपत्ति के समय तो एक ही नीति चलनी चाहिए। विरोधी विचार वालों के लिए कारागार ही उचित स्थान होता है।"

"यह तो महामात्य भी कहते थे। उनका कहना था कि यदि उनकी नीति चलनी है तो बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर को बंदीगृह में डाल देना चाहिए और यदि महाप्रभु की नीति चलनी है तो वे स्वयं बंदी होने के लिए तैयार हैं।"

"यही तो एक मार्ग है। जिस राज्य में युद्धकालिक परिस्थिति में नीति स्थिर और दृढ़ नहीं होती, वहाँ विनाश अवश्यम्भावी होता है।"

"महामात्य को महाराज की आज्ञा हुई है कि वे सोलह प्रहर के भीतर राज्य छोड़कर चले जाएँ।"

"इतना विलम्ब ? एक प्रहर के भीतर ही क्यों नहीं ?"

"विलम्ब करने से क्या अन्तर पड़ जाता है ?"

"महामात्य पद्मराज वासुदेव कृष्ण की विचारधारा को मानने वाले हैं। वे अपने विचार बदल भी सकते हैं।"

"कुछ नहीं होगा कात्यायिनी ! तुम पद्मराज को नहीं पहचानतीं। वह सत्यवादी और देशभक्त नागरिक है। वह कोई ऐसा कार्य नहीं करेगा, जिससे देश को हानि पहुँचे।"

"फिर भी यदि आप आपत्ति न करें तो मैं पता करूँ कि पद्मराज जी की अब क्या करने की इच्छा है।"

"तुम कैसे पता करोगी ?"

"पद्मराज की लड़की अलकनन्दा मेरी शिष्या है। वह मुझसे चित्रकला सीखती है। मैं आज जब उसके घर जाऊँगी तो बातों-ही-बातों में पता करने का यत्न करूँगी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ठीक है। तुम पता करो। यदि कुछ गड़बड़ प्रतीत हो तो उनको सन्मार्ग पर लाने का यत्न करना।"

५

कात्यायिनी बत्तीस-तैंतीस वर्ष की आयु की युवती थी और अभी तक कुँवारी थी। विवाह को अपनी कला-साधना में बाधा समझ उसने विवाह न करने का निश्चय कर लिया था। यों तो उसके माता-पिता गांधार के रहने वाले थे। गांधार पर हूण-आक्रमण के समय वे जन्म-स्थान छोड़ भारत के अन्तर्गत राज्यों का भ्रमण करते हुए कन्नौज में आकर टिक गए थे। यहाँ पर वे अपना व्यवसाय स्थापित कर जीविकोपार्जन कर रहे थे। उस समय कात्यायिनी पाँच वर्ष की बालिका-मात्र ही थी। वह कन्नौज में ही बड़ी हुई और यहीं उसने शिक्षा पाई तथा चित्रकला में प्रवीणता प्राप्त कर यवन-चित्रकार पराशर की शिष्या बन गई। पराशर ने कात्यायिनी को जब शिष्या बनाया था, उस समय वह पैंतीस वर्ष का अविवाहित युवक था। कात्यायिनी उस समय चौदह वर्ष की थी।

चित्रकला में योग्यता प्राप्त करने के साथ-साथ वह पराशर के प्रेम में फँसती गई। परन्तु पराशर दिन-प्रतिदिन अधिक मद्यसेवी और वेश्यागामी बनता गया। कात्यायिनी ने कई बार प्रयत्न किया कि उसका गुरु विकृत मार्ग छोड़ दे, जिससे वह उसे अपना जीवनसाथी बना ले, परन्तु पराशर कात्यायिनी में पुत्री-तुल्य भावना रखता था। इस कारण वह उससे विवाह के लिए तैयार नहीं हो सका और न ही अपना आचरण सुधार सका।

समय व्यतीत होने पर, चित्रकला में प्रवीणता प्राप्त करने के साथ-साथ कात्यायिनी को यह ज्ञान होता गया कि कला-साधना एक न समाप्त होने वाला मार्ग है और अब, जब वह उस पथ पर चल पड़ी है, तो जीवन-भर उसे उस पर चलते रहना है। अपने गुरु से असफल प्रेम और कला में तल्लीनता के कारण उसका ध्यान विवाह से हट गया। अब वह बत्तीस-तैंतीस वर्ष की हो गई थी और एक विशेष विचारधारा में बहने लगी थी। वह कला को ही अपना जीवनसाथी मानने लगी थी।

कुछ वर्षों से उसके चित्रों की ख्याति कन्नौज और उससे बाहर फैलने लगी थी। इससे उसको ग्रहवर्मन के राजप्रासाद में प्रवेश मिल गया। उसने महाराज तथा महारानी के कई चित्र बनाए। कन्नौज राज्य के भी कई प्राकृतिक सौन्दर्य के स्थानों के चित्र बनाए।

पद्मराज ने अपनी पुत्री अलकनन्दा में चित्रकला के प्रति रुचि देखी तो उसे कात्यायिनी की शिष्या बना दिया। कात्यायिनी इस शिक्षा के लिए शुल्क नहीं लेती थी। फिर भी पद्मराज के परिवार से उसे कई प्रकार से लाभ होता रहता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद्मराज की पत्नी विरोचना उसकी सखी बन चुकी थी और दोनों में बहुत-कुछ विचार-साम्यता भी थी। कात्यायिनी की शिक्षा बौद्ध-प्रभाव के अधीन हुई थी। पराशर भी बौद्ध-उपासक था। परन्तु विरोचना वैष्णव धर्म को मानने वाली थी। दोनों में इस विषय पर विचार-विनिमय होता रहता था और कात्यायिनी धीरे-धीरे विरोचना के प्रभाव में आकर वैष्णव मतानुगामी बनती जाती थी।

वैष्णव मत वालों ने कन्नौज में वासुदेव का एक विशाल मन्दिर बनवाया हुआ था। उस मन्दिर में कीर्तन तथा देवदासियों का नृत्य होता रहता था। वासुदेव भगवान् कृष्ण के मन्दिर का पुजारी विष्णुकान्त महान् संगीतज्ञ था और कात्यायिनी विष्णुकान्त से संगीत सीखने लग गई थी। विष्णुकान्त का उसे सिखाने का आशय यह था कि वह कात्यायिनी को किसी दिन देवदासी बना लेगा। कात्यायिनी के विचारों में परिवर्तन का श्रेय कुछ सीमा तक विष्णुकान्त के संगीत को भी था। जब विष्णुकान्त अपना चौतारा लेकर गाता :

'रे मन भज नित्य नन्द किशोर
ललित त्रिभंग मनोहर छविमय ऋषि मुनि मानस चोर।
रे मन भज···
अतुलित परम प्रेम रसनिधि, नित नव मधुर निधान
अति उदार सौन्दर्य सुधार्णव, पा हों नन्द विभोर।
रे मन भज···'

तो कात्यायिनी आनन्द-विभोर हो नृत्य करने लग जाती थी।

कुछ दिन से कात्यायिनी महारानी राज्यश्री को उदास देख रही थी और विष्णुकान्त के सुझाव पर ही उसने महारानी से राजभवन में संगीत-समारोह कराने के लिए कहा था। इस समारोह के फलीभूत होने से पूर्व ही राज्य पर संकट तथा महामात्य के त्यागपत्र की बात कात्यायिनी को पता चल गई। पश्चात् महारानी से अनुमति प्राप्त कर पद्मराज से मिलने और उसके विचार जानने के लिए उसकी लड़की अलकनन्दा के आगारों में जा पहुँची।

आज पद्मराज के प्रासाद में महाराज ग्रहवर्मन के प्रासाद से भिन्न वातावरण था। महाराज के प्रासाद में सदा शान्ति और गम्भीर वातावरण रहता था और इसका प्रभाव राज्य-भर में पड़ता रहता था। केवल वासुदेव के मन्दिर की स्थिति भिन्न थी। वहाँ दिन-रात मृदंग, वीणा बजती रहती थी और पायलों की झंकार तथा देवदासियों की मधुर संगीत-ध्वनि उठती रहती थी।

पद्मराज महामात्य-पद से त्यागपत्र देकर अपने आवास में पहुँचा और वहाँ आते ही उसने अपनी पत्नी विरोचना को पूर्ण परिस्थिति से परिचित करा दिया। विरोचना यह सुन आगबबूला हो उठी। पद्मराज ने विष्णुकान्त को बुलवाया और उससे सम्मति लेकर नगर के प्रमुख-प्रमुख वैष्णवों को अपने निवासस्थान पर विचार-विनिमय के लिए बुला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिया।

जब कात्यायिनी वहाँ पहुँची तो पद्मराज की बैठक में भारी जमाव हो रहा था। सब व्यक्ति आवेश में भरे हुए अपने-अपने विचार प्रकट कर रहे थे। जब कात्यायिनी अलकनन्दा को ढूँढ़ती हुई बैठक में पहुँची तो उसने विरोचना और अलकनन्दा, दोनों को पद्मराज के समीप बैठे हुए पाया।

विष्णुकान्त ने कात्यायिनी को देख भीतर बुला लिया और पूछा "राजप्रासाद से आई हो क्या ?"

"हाँ गुरुदेव !"

"कोई नवीन समाचार है ?"

"नहीं। महारानी जी ने यहाँ का समाचार जानने के लिए भेजा है।"

"तो बैठ जाओ। प्रजा के इस अंग का विचार सुन लो और महाराज तथा महारानी को इससे अवगत करा देना।"

विष्णुकान्त उठकर कहने लगा, "भक्तजन ! रोष करने से तो कोई समस्या सुलझ नहीं सकती। समस्याओं को सुलझाने के लिए विचार, नीति और शक्ति की आवश्यकता होती है। आज मध्यरात्रि से पूर्व वैष्णवों का एक आयोग महाराज से मिलने जाना चाहिए और उनसे निवेदन करना चाहिए कि या तो वे आक्रमणकारियों से प्रजा की रक्षा का प्रबन्ध करें अथवा राज्य का त्याग कर, कार्यभार किसी योग्य व्यक्ति को सौंप दें। सदैव अहिंसा के सिद्धान्तों का पालन करने से राज्य नहीं चल सकता।

"अहिंसकों के साथ तो अहिंसा ठीक है, परन्तु हिंसक पशुओं के साथ अहिंसा का प्रयोग न केवल अयुक्तिसंगत है, प्रत्युत आत्महत्या के तुल्य भी है।

"भगवान् कृष्ण ने दुष्टों का दमन करने के लिए भारत-युद्ध का आयोजन किया था। यद्यपि लाखों सैनिक उस युद्ध में मारे गए थे। फिर भी दुष्टों के विनाश के लिए यह करना आवश्यक था। युद्ध के पश्चात् पूर्ण देश-भर में सुख और चैन की वंशी बजने लगी थी। यही समस्या अब हमारे सामने उपस्थित है। मालवा राज्य दक्षिण-पथ के लिए तैयारी नहीं कर रहा है। उसकी दृष्टि कन्नौज पर है। अतः कन्नौज को अपनी स्वतन्त्रता बनाए रखने के लिए कुछ प्रयास तो करना ही चाहिए। इस ओर प्रयास करना राजा का कार्य है। परन्तु एक मिथ्या विचार के अधीन राजा अपने कर्तव्य का पालन नहीं करना चाहता। अतएव हमको राजा से कह देना चाहिए कि हमारे बाल-बच्चों, बहू-बेटियों की रक्षा करना उसका कर्तव्य है। राजा को हम इसी कारण कर देते हैं और यदि राजा यह नहीं कर सकता अथवा नहीं करना चाहता है तो उसको यह कार्य, अर्थात् राज्य-भार किसी अन्य योग्य व्यक्ति पर डाल देना चाहिए।

"मैं समझता हूँ कि हममें से पाँच व्यक्ति महाराज से आज रात ही मिलें। यदि महाराज कोई ऐसी योजना बताएँ, जिससे हमारी रक्षा का प्रबन्ध हो सके तो ठीक है, अन्यथा हमें अपनी रक्षा का प्रबन्ध स्वयं करना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यह रक्षा हम किस प्रकार करेंगे, अभी इस पर विचार नहीं किया जा सकता। साथ ही हम उस रक्षा की योजना में कहाँ तक सफल होंगे, अभी कहना भी असम्भव है। फिर भी हम पूरा प्रयत्न करेंगे।

"हम कल मध्याह्न के समय पुनः मिलें और उस समय की स्थिति के अनुसार अपने भावी कार्यक्रम पर विचार करें।

"महारानी जी की सखी कात्यायिनी यहाँ उपस्थित है। मैं इसके द्वारा नगर के पाँच प्रमुख व्यक्तियों के नाम महाराज के पास भेज देना चाहता हूँ, जिससे वे हमसे परामर्श कर सकें।"

कन्नौज के चार अन्य प्रमुख नागरिक विष्णुकान्त के अधीन महाराज से बातचीत कर, उसके परिणाम को अगले दिन मध्याह्न की सभा में उपस्थित करने के लिए नियत कर दिए गए।

कात्यायिनी यह सन्देश लेकर महारानी के पास जा पहुँची। वहाँ पहुँच कात्यायिनी ने कहा, "महामात्य ने तो केवल अपने त्यागपत्र के विषय में बताया था। उस सभा में मुख्य भाग वासुदेव मन्दिर के मुख्य पुजारी विष्णुकान्त जी ने लिया था और वह ही नागरिकों के नेता बन महाराज से भेंट करने आ रहे हैं।"

"महाराज उनसे भेंट करना स्वीकार नहीं करेंगे।"

"क्यों महारानी जी!"

"राज्य-कार्य में अनधिकृत लोगों का हस्तक्षेप सहन नहीं किया जाता।"

"परन्तु वे राज्य-कार्य में हस्तक्षेप करने नहीं आ रहे महारानी जी! वे तो अपनी रक्षा की माँग करने आ रहे हैं। वे महाराज से अपना भय वर्णन करना चाहते हैं और उस भय के निवारण करने का आग्रह करना चाहते हैं।"

इस समय महाराज और महाप्रभु अवलोकितेश्वर वहाँ आ पहुँचे। उनको आया देख महारानी और कात्यायिनी उठ खड़ी हुईं और प्रणाम कर प्रश्नभरी दृष्टि से उनकी ओर देखने लगीं। महाराज ने आने का कारण बताया, "देवी! महाप्रभु ने राज्य के महामात्य-पद को ग्रहण करना स्वीकार कर लिया है। वे कल मालवा की राजधानी अवन्ति जाने का विचार रखते हैं। उनको विश्वास है कि वे मालवाधिपति देवगुप्त से सन्धि करके ही लौटेंगे।"

"महाराज!" महारानी राज्यश्री ने कहा, "कात्यायिनी नगर से यह सन्देश लाई है कि नगर के कुछ गण्यमान्य लोग पुजारी विष्णुकान्त के नेतृत्व में आपसे भेंट करने आ रहे हैं।"

"कब?"

"आज ही मध्यरात्रि से पूर्व।"

"पर हम उनसे मिलना नहीं चाहते।"

"क्यों?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हम इसकी आवश्यकता अनुभव नहीं करते।"

"यह तो आपको विदित नहीं कि वे क्या कहने आ रहे हैं। अतएव आप कैसे कह सकते हैं कि उनसे भेंट की आवश्यकता नहीं? महाराज! नागरिकों से मिलकर उनके दुःख-सुख से अवगत रहना राजा के लिए अत्यावश्यक है।"

"तो हम महामात्य जी से निवेदन करते हैं कि वे जनता के प्रतिनिधियों से मिलकर जान लें कि वे क्या चाहते हैं।"

"यदि धृष्टता क्षमा करें तो मैं एक निवेदन करना चाहती हूँ।" कात्यायिनी ने अपनी बात बीच में रखने के लिए कहा।

"हाँ, कहो।"

"महाराज! महाप्रभु की नीति से वे लोग सहमत नहीं। अतएव वे आपके समक्ष अपना दृष्टिकोण रखने के लिए आ रहे हैं, जिससे आप निर्णय कर सकें कि राज्य में महाप्रभु की नीति चलेगी अथवा उन लोगों की। आपको तो निष्पक्ष रहना चाहिए। जो अधिक युक्तियुक्त और व्यवहार-योग्य उपाय बताये, उसे ही स्वीकार करना चाहिए। मेरा निवेदन है कि महाराज स्वयं उनसे भेंट करें और यदि महाप्रभु को आपत्ति न हो, तो वे भी उस समय उपस्थित हों और उस विचार-विमर्श में भाग लें।"

महाप्रभु ने कह दिया, "यह लड़की ठीक कहती है महाराज! आपको ही भेंट करनी चाहिए और उन लोगों की बातें सुननी चाहिए।"

इस प्रकार निश्चय हो गया और रात्रि भोजनोपरान्त नागरिकों का आयोग महाराज की सेवा में उपस्थित हो गया।

आयोग का मुख्य वक्ता विष्णुकान्त ही था। उसने महाराज, महारानी और महाप्रभु के समक्ष निवेदन किया, "महाराज की सेवा में हम कन्नौज नागरिकों के एक भाग के प्रमुख लोग यह निवेदन करना चाहते हैं कि श्रीमान् पद्मराजजी के त्यागपत्र से ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई है कि हमें अपने धन, सम्पद् तथा बहू-बेटियों के मान का भय उत्पन्न हो गया है। अतएव हम प्रार्थना करते हैं कि :

"प्रथम, मालवा-नरेश की सैन्य-तैयारी का विरोध करने के लिए अविलम्ब एक सुदृढ़ सेना का गठन किया जाए।

"द्वितीय, श्रीकण्ठ राज्य से अस्त्र-शस्त्र निर्माणकर्ता बुलाकर आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण कराया जाए।

"तृतीय, सेनाध्यक्ष को, जिसने राज्य की रक्षा की ओर ध्यान न देकर राज्य को दुर्बल बनाया है, पदच्युत कर किसी योग्य व्यक्ति को सेनाध्यक्ष बनाया जाए।

"चतुर्थ, राज्य के युवकों को सेना में भर्ती कर उनको युद्ध की शिक्षा दी जाए। इस तैयारी के लिए स्थानेश्वर से कुछ सुयोग्य सुभट्ट बुला लिए जाएँ। स्थानेश्वर के राजकुमार राज्यवर्धन ने हूणों को धकेलकर भारत-खण्ड से बाहर करने में योग्यता और वीरता का परिचय दिया है, उससे लाभ उठाने के लिए वहाँ के कुछ वीर सैनिक बुलाए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाएँ और उनकी वीर-गाथाएँ अपने सैनिकों को सुनाकर उनमें उत्साह उत्पन्न किया जाए।"

महाराज ग्रहवर्मन ने विष्णुकान्त का वक्तव्य सुनकर पूछा, "कोई और कुछ कहना चाहता है ?"

नागरिकों के चुप रहने पर महाराज ने अपनी नीति बताई। उन्होंने कहा, "हम आप लोगों के विचारों से सहमत नहीं हैं। हम शान्ति और प्रजा के सुखवर्धन के लिए युद्ध को उपयुक्त उपाय नहीं समझते। आततायी को समझाना और स्वयं प्रत्येक प्रकार के कष्टों को सहन करना ही इसका उपाय है, इससे विरोधी को अपने अनुकूल बनाया जा सकता है। अतएव हम इन उपायों का प्रयोग कर रहे हैं।

"हमने राज्य में सेना समाप्तप्राय कर दी है, जिससे किसी भी पड़ोसी अथवा दूरवर्ती राज्य को यह भय न रहे कि हम किसी पर आक्रमण करने का विचार रखते हैं। हमारे इस कार्य से पड़ोसी राज्यों को विश्वास हो जाना चाहिए कि हम किसी से भी शत्रुता करना नहीं चाहते।

"दूसरी बात जो हमने की है, वह युद्धप्रिय पद्मराज को महामात्य-पद से पृथक् होने की स्वीकृति देना है। उनके स्थान पर भगवान् बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर महाराज को महामात्य का पद देकर हम आशा करते हैं कि पूर्ण भारत-खंड में यह विख्यात हो जाएगा कि कन्नौज राज्य अपने विस्तार का इच्छुक नहीं और सब राज्यों का मित्र बनकर रहना चाहता है।

"इस अर्थ कल हमारे राज्य के नवीन महामात्य भगवान् अवलोकितेश्वर मालवा को प्रस्थान करने वाले हैं और हमें पूर्ण आशा है कि वे मालवा राज्य को यह विश्वास दिलाने में सफल हो सकेंगे कि हमसे मित्रता रखने में उन्हें लाभ ही होगा।"

विष्णुकान्त ने कहा, "महाराज के इस प्रयास की बात सुनकर हमें बहुत प्रसन्नता हुई है और हमें राज्य पर भरोसा उत्पन्न हुआ है, परन्तु एक बात हम कहना चाहते हैं कि यदि मालवा राज्य ने हमारे पूज्य महामात्य की बात नहीं मानी तो फिर हम आगे क्या आशा रख सकते हैं ?"

"हमको आत्मविश्वास से अपनी नीति पर कार्य करना चाहिए। सफलता निश्चित है। यदि महामात्य जी निराश लौटे तो हम देश तथा धर्म की रक्षा के लिए एवं अपनी नीति की सार्थकता सिद्ध करने के लिए असीम त्याग का उदाहरण उपस्थित कर देंगे।"

६

विष्णुकान्त तथा उनके साथी इस उत्तर से सन्तुष्ट नहीं थे। फिर भी वे महाराज के उद्‌गारों का आदर करते थे। अतः विष्णुकान्त ने महाराज का धन्यवाद करते हुए कहा, "महाराज ! राज्य की रक्षा के विषय में आपके विचारों को सुन हम प्रजागण आपके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत्यन्त आभारी हैं। यह जानकर हमें प्रसन्नता हुई है कि बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर महाराज हमारे लिए मालवा जाने का कष्ट कर रहे हैं। फिर भी हमारा निवेदन है कि महाप्रभु के मालवा राज्य से किसी प्रकार का समझौता करने में असफल होने पर, किसी प्रकार की कार्यवाही से पूर्व हमारी योजना पर विचार किया जाए और उसकी परीक्षा की जाए।"

इसका उत्तर महाप्रभु ने दिया, "आपकी योजना किसी प्रकार से नवीन तो है नहीं, जिसको सुनने या समझने की आवश्यकता हो। आदिकाल से शान्ति स्थापित करने के लिए युद्ध का उपाय प्रयोग में लाया जाता रहा है, परन्तु आज तक शान्ति स्थापित नहीं हो सकी। भगवान् तथागत की कृपा से सभ्य समाज के हाथ में यह एक नया प्रयोग आया है। इसकी परीक्षा हम करना चाहते हैं। यह परीक्षा एक-आध बार के असफल होने पर छोड़ी नहीं जा सकती। इसको बार-बार करने से ही मानव के मन में प्रकाश होगा और तब मानव-समाज सुख, शान्ति और आनन्दमय होकर इस सांसारिक कीचड़ में से निकल सकेगा।"

"भगवन्!" विष्णुकान्त ने कहा, "यह तो वास्तविकता से दूर है कि शान्तिमय उपाय पहले प्रयोग में नहीं लाए गए। वास्तव में युद्ध और शान्ति साथ-साथ चलती रही है। प्रत्येक युद्ध से पूर्व शान्तिमय उपाय ही प्रयोग में लाए जाते हैं। भारत-युद्ध से पूर्व ही भगवान् कृष्ण ने शान्तिमय ढंग से कौरवों और पाण्डवों की समस्या को सुलझाने का यत्न किया था। इतिहास पढ़ने वालों से छिपा नहीं है कि किस सीमा तक यह यत्न किया गया था, परन्तु जब इस उपाय से समस्या नहीं सुलझी तो विवश होकर युद्ध करना पड़ा था।

"सत्य पक्ष वाले युद्ध से पूर्व सदैव शान्तिपूर्वक समस्या को सुलझाने का प्रयत्न करते हैं। शान्तिमय उपायों के असफल होने पर ही युद्ध का आश्रय लिया जाता रहा है। हमारा निवेदन है कि यहाँ भी यही होना चाहिए।"

"नहीं, यह नहीं होगा।" महाराज ग्रहवर्मन ने कहा, "हम वार्तालाप के असफल होने पर एक नवीन प्रयोग करने वाले हैं। हम यह राजपाट अपनी इच्छा से आक्रमणकर्ताओं के हाथ में सौंप देंगे और इस प्रकार रक्तपात से इस राज्य की प्रजा को बचा लेंगे।"

विष्णुकान्त तथा अन्य प्रतिनिधि यह सुन आश्चर्यचकित रह गए। विष्णुकान्त ने कहा, "महाराज! यह आप नहीं कर सकते। प्रजा इसे पसन्द नहीं करती। यही बताने के लिए हम यहाँ आपके पास आए हैं कि राज्य आपके पास प्रजा की धरोहर है। यह आप एक अधूरे ज्ञान को रखने वाले के कहने पर किसी दूसरे को नहीं दे सकते।"

"कौन अधूरे ज्ञान वाला है?" महाराज ग्रहवर्मन ने माथे पर त्यौरी चढ़ाकर कहा।

"जिनकी योजनानुसार महाराज अपनी प्रजा को किसी अन्य को भेंट में दे रहे हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"परन्तु हम तो प्रजा की रुचि को जानकर ही ऐसा कर रहे हैं। यह शान्तिमय ढंग तो महात्मा बुद्ध का आयोजित है और हमारी प्रजा का मुख्य अंश बौद्ध है।"

"हमारा विचार ऐसा नहीं है। भले ही बौद्ध अधिक संख्या में हैं, परन्तु वे कदापि यह नहीं चाहेंगे कि वे मालवा की सेना के पाँव-तले रौंद दिए जाएँ।"

"हम जानते हैं कि उनको बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर पर पूर्ण विश्वास है और वे अपना सर्वस्व उन पर निछावर कर देंगे।"

विष्णुकान्त और उसके साथी निराश होकर लौट गए। अगले दिन मध्याह्नोत्तर के समय कन्नौज के मुख्य पंथागार में वैष्णवों का बहुत बड़ा जमघट एकत्रित हो गया। इसमें विष्णुकान्त ने महाराज से अपनी वार्ता का पूर्ण वृत्तान्त बताया। महाराज अपना राज्य तक मालवा-नरेश को देने के लिए तैयार हैं, इस बात को किसी ने पसंद नहीं किया। जब विष्णुकान्त ने कहा कि महाराज का कहना है कि बौद्ध-प्रजा अवलोकितेश्वर का पूर्ण समर्थन करती है और अवलोकितेश्वर शत्रु को राज्य सौंपने के विरुद्ध नहीं, तो लोग अति निराश हुए।

यह निश्चय किया गया कि अवलोकितेश्वर के मालवा से वापस लौटने पर पुनः पंचायत बुलाई जाए और इसमें बौद्धों को भी बुलाकर उन्हें समझाने का प्रयत्न किया जाए।

नागरिकों की यह सभा तो समाप्त हुई, परन्तु पद्मराज के लिए समस्या ज्यों-की-त्यों बनी रही। महाराज की आज्ञा थी कि सोलह प्रहर के भीतर राज्य छोड़कर चला जाए, अन्यथा उसे बन्दीगृह में डाल दिया जाएगा। अतएव पंथागार से लौट पद्मराज अपने परिवार को एकत्रित कर विचार-विनिमय करने लगा।

इस समय कात्यायिनी भी वहीं आई हुई थी और पद्मराज की समस्या को सुन रही थी। पद्मराज ने कहा, "मैं तो बन्दी होने के लिए तैयार हूँ। वास्तव में देश को छोड़कर भाग जाना मैं उचित नहीं समझता, परन्तु प्रश्न तो पूर्ण परिवार का है। वह क्या चाहता है?"

विरोचना ने दृढ़ता से कहा, "मैं आपका बन्दी होना ठीक नहीं समझती। हमें यहाँ से चले जाना चाहिए।"

कात्यायिनी ने पूछा, "क्या मैं कुछ कह सकती हूँ?"

"हाँ, हाँ! कहो।"

"मेरी सम्मति है कि महामात्य जी यहाँ से चले जाने की घोषणा कर दें और भूम्यान्तर्गत हो जाएँ। परिवार कन्नौज में ही रहे। मैं महारानी जी से मिलकर यत्न करती हूँ कि परिवार को यहीं रहने की स्वीकृति मिल जाए।"

"परन्तु इससे लाभ क्या होगा? मैं तो इस राज्य में किसी कार्य के योग्य रहा नहीं?" पद्मराज का कहना था।

"यह आपका विचार है न? मेरा विचार इसके विपरीत है। देखिए,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवलोकितेश्वर महाराज आज मालवा जा रहे हैं और लगभग आठ-दस दिन तक वापस लौटेंगे। मैं समझती हूँ कि वे सफल नहीं होंगे। उस समय आपकी कन्नौज में आवश्यकता होगी। आपको चाहिए कि नागरिकों की एक सभा बनाकर, राज्य की बागडोर हाथ में कर लें और मालव सेना का डटकर विरोध करें। श्रीकंठ से भी सहायता ली जा सकती है और लेनी चाहिए। मेरी एक सम्मति यह भी है कि जिस प्रकार मालव-नरेश ने गौड़ राज्य से सन्धि कर ली है, उसी प्रकार आपकी नागरिक परिषद् अपना दूत भेजकर कामरूप से सन्धि कर ले। गौड़ राज्य की पीठ पर कामरूप होगा और इस प्रकार गौड़ राज्य मालवा की सहायता नहीं कर सकेगा।

"परन्तु इस सबके लिए यह आवश्यक है कि कन्नौज राज्य बौद्धों के हाथ से निकलकर प्रजा के हाथ में आ जाए।"

पद्मराज को, कात्यायिनी के मुख से वही योजना सुन, जिस पर वह स्वयं विचार कर रहा था, बहुत प्रसन्नता और आश्चर्य हुआ। पद्मराज की योजना में यही सब ग्रहवर्मन से करवाने की बात थी और कात्यायिनी ने उससे एक पग आगे जाकर ग्रहवर्मन के स्थान पर प्रजा परिषद् के निर्माण की बात कह दी थी।

पद्मराज यह भी जानता था कि सेना, जैसी-कैसी भी है, प्रजा के हाथ में होनी चाहिए और उसको प्रजा के हाथ में रखने के लिए उसकी कन्नौज में उपस्थिति आवश्यक है। परन्तु प्रश्न परिवार का था। पद्मराज ने कात्यायिनी से कहा, "कल मध्याह्न से पूर्व मुझको कन्नौज से बाहर होने की आज्ञा है। इसी अर्थ मुझे आज मध्यरात्रि से पूर्व यहाँ से वेगगामी रथ पर सवार होकर चले जाना चाहिए। अतएव यदि मेरे परिवार के यहाँ रहने की स्वीकृति आती है तो आज सायंकाल से पूर्व आ जानी चाहिए।"

"मैं यत्न करती हूँ।" इतना कह कात्यायिनी महारानी राज्यश्री की सेवा में पहुँच गई।

राज्यश्री आज अति खिन्न मन थीं। उन्होंने समझा कि कात्यायिनी उनका चित्र पूर्ण करने के लिए आई है। इस कारण उन्होंने इसके लिए मना करते हुए कहा, "सखी! आज चित्र पर कार्य नहीं हो सकेगा। मेरा मन अशान्त है।"

"महारानी जी! मैं भी आज चित्र बनाने नहीं आई। मेरा मन आज रंगों से खेलने के लिए नहीं कर रहा। मुझे देश पर दासता की घोर घटाएँ छा रही प्रतीत हो रही हैं। उसके विषय में ही कुछ निवेदन करना चाहती हूँ।"

"हाँ, बताओ।"

"महारानी जी! कन्नौज में यह बात विख्यात हो गई है कि मालव सेना आक्रमण करने वाली है। महाराजा का नगर की रक्षा के लिए ध्यान न देना घोर चिन्ता का कारण बन गया है। साथ ही नगर में यह बात प्रचलित हो रही है कि पद्मराज को महामात्य-पद से निकालकर बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर को महामात्य नियुक्त कर दिया गया है। बोधिसत्त्व युद्ध-कला से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। इस कारण धनीमानी लोग उस आक्रमण से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्व ही नगर छोड़ जाने का विचार कर रहे हैं। बहुत-से लोग तो पद्मराज के साथ ही नगर छोड़ने की योजना बना रहे हैं।"

"तो फिर क्या होगा ?"

"होगा यह कि जिन लोगों का नगर में प्रभाव है, वे यहाँ से चले जाएँगे। इसके पश्चात् छोटे स्तर के लोग यहाँ लूटमार मचा देंगे। यह भी हो सकता है कि मालव सेना के आने से पूर्व ही राज्य में लूटमार मच जाने से विप्लव हो जाए और हमारी सेना, जिसको कई मास से वेतन नहीं मिला, इस लूटमार में भाग लेने लग जाए। सेना में असन्तोष तो है ही।"

राज्यश्री इससे गम्भीर विचार में मग्न हो गईं। कात्यायिनी के इस कथन से कि मालव सेना के आक्रमण से पूर्व ही राज्य में विप्लव खड़ा हो सकता है और राज्य की सेना, जो वेतन न मिलने से असन्तुष्ट है, इसमें भाग ले सकती है, उनकी चिन्ता और भी बढ़ गई।

उनके मन में एक विचार आया। उन्होंने कहा, "सखी ! राज्य प्रजा की रक्षा के लिए प्रयत्न कर रहा है। प्रजा को तो नगर में व्यवस्था रखने के लिए राज्य की सहायता करनी चाहिए। यह उनके हित में ही है।"

"यह तो ठीक है कि प्रजा अव्यवस्था नहीं चाहती, परन्तु जब प्रजा के मन में यह बात बैठ गई है कि अव्यवस्था तो होने ही वाली है, तो प्रत्येक उस अव्यवस्था से लाभ उठाने के लिए उस अव्यवस्था के होने में सहायक होने लगेगा। वास्तव में प्रजा का, राज्य और सेना में विश्वास ही उसको नियन्त्रण में रख सकता है। यह विश्वास पद्मराज जी के नगर छोड़ जाने से समाप्त हो जाता है।"

"परन्तु तुम ही तो कह रही थीं कि परस्पर-विरोधी विचार युद्धकाल में नहीं चल सकते। राज्य की नीति का विरोध करने वाले को बन्दी बना ही लेना चाहिए।"

"ठीक है महारानी जी ! परन्तु ऐसा प्रतीत हो रहा है कि प्रजा का विश्वास पद्मराज की नीति में अधिक है और अवलोकितेश्वर की नीति में कम।"

"पर प्रजा में तो बौद्धों की संख्या अधिक है और उनको बोधिसत्त्व जी की नीति में विश्वास होना ही चाहिए।"

"युद्ध अथवा लूटमार होने पर बौद्ध ही सबसे अधिक संख्या में भागेंगे। वे प्रायः धनिक वर्ग के हैं और उनकी ही संभावित अराजकता में हानि की सम्भावना अधिक है। वे धर्म से बौद्ध अवश्य हैं, परन्तु धन के लोभ में वे मनुष्य ही हैं। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, ये चारों मनुष्य की परम साधनाएँ हैं और उनको अवलोकितेश्वर की नीति में अर्थ की रक्षा प्रतीत नहीं होती।"

"तो फिर क्या किया जाए ?"

"किसी प्रकार पद्मराज के जाने को प्रकट नहीं होने देना चाहिए। सबको यह विदित होना चाहिए कि पद्मराज जी नहीं जा रहे। परिणाम यह होगा कि कोई भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धिशील व्यक्ति यहाँ ठहरने में आश्वस्त अनुभव करने लगेगा।"

"परन्तु उनको तो निर्वासन की आज्ञा हो चुकी है।"

"यह पद्मराज जी के लिए है न। उनके परिवार को जाने से रोका जाए। उनके रुक जाने पर भी लोग समझेंगे कि महामात्य नहीं गए और भय की कोई बात नहीं। जब लोग जानेंगे कि भूतपूर्व महामात्य, जो राजनीति के ज्ञाता हैं, अपने परिवार-सहित कन्नौज में ही हैं, तो वे समझेंगे कि किसी प्रकार का भय नहीं है।"

"उनके परिवार को रोकना तो असम्भव है। उसको पद्मराज जी से पृथक् करना अन्याय हो जाएगा, यह प्रजा में और भी अधिक असन्तोष उत्पन्न करने वाला होगा।"

"हाँ, यदि प्रजा को यह पता चल गया; परन्तु यह सब-कुछ ऐसे ढंग से किया जाना चाहिए कि जिससे इसमें महामात्य के जाने का भास न हो।"

"यह कैसे हो सकता है?"

"महारानी जी! महाराज से आज्ञा-पत्र लिखवा दें कि भूतपूर्व महामात्य श्री पद्मराज के लिए देश-निर्वासन की आज्ञा है, परन्तु उनके परिवार के लिए नहीं है। यह आज्ञा केवल पद्मराज जी के लिए है, जो महाराज की नीति का विरोध करते प्रतीत होते हैं।"

"क्या इस आज्ञा से उनके परिवार के लोग यहाँ रह जाएँगे?"

"मुझको बहुत आशा है कि वे रह जाएँगे और उनके यहाँ रहने को पद्मराज जी पसन्द भी करेंगे। वास्तव में वे देश को छोड़ना नहीं चाहते। वे तो केवल इस विशेष परिस्थिति में ही यहाँ से जाना चाहते हैं।"

"अच्छी बात है। मैं महाराज से कहकर यह आज्ञा दिलवा देती हूँ।"

७

पूर्ण प्रजा के मन में कन्नौज पर मालव राज्य द्वारा आक्रमण का भय उत्पन्न हो गया था। इस भय के साथ ही प्रजा के मन में यह अंकित हो गया कि महाराज ग्रहवर्मन अति दुर्बल आत्मा वाले हैं और युद्ध से भय खाते हैं। इस अवस्था में धनीमानी लोग वास्तव में चिन्ताग्रस्त हो, अपने धन को एकत्रित करने लगे थे और किसी अन्य राज्य में चले जाने की योजना बनाने लगे थे।

धनी लोग प्रायः बौद्ध थे। वे इस बात का विचार भी नहीं कर सकते थे कि राज्य की रक्षा के लिए प्रजा का भी कुछ कर्तव्य है। अहिंसा के अर्थ वे यही समझते थे कि जहाँ कहीं हत्या का प्रश्न-उपस्थित हो, वहाँ उन्हें स्वयं मर जाना है और दूसरे को कुछ नहीं कहना है। ऐसी अवस्था में नगर में भगदड़ मचने की ही सम्भावना सबसे अधिक थी। लोग पद्मराज के पास जाते थे और पूछते थे कि वे क्या करें। सब यह समझते थे कि वह महामात्य-पद पर रहने के कारण पूर्ण परिस्थिति से परिचित हैं। पद्मराज समझ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा था कि राज्य का विनाश अवश्यम्भावी है, परन्तु वह अपने मुख से यह कह नहीं सकता था। ऐसा करना वह देशद्रोह समझता था। अतएव वह उनको कहता, "विष्णुकान्त जी के पास जाओ अथवा किसी मन्त्री से जाकर पता करो। मैं इस विषय में कुछ भी सम्मति नहीं दे सकता।"

उसके इस प्रकार बात टालने पर लोग और अधिक घबराते थे। धीरे-धीरे यह चर्चा नगर-भर में फैल गई कि पद्मराज परिवार-सहित नगर छोड़ रहा है। तीसरे दिन प्रातःकाल नगर के लोग पद्मराज के घर के बाहर यह देखने एकत्रित हो गए कि वह चला गया है अथवा नहीं। यद्यपि पद्मराज के दर्शन नहीं हुए, तो भी उसके परिवार को घर में उपस्थित देख लोग सन्तोष अनुभव करते थे। अलकनन्दा खिड़की में आकर उपस्थित हुई तो लोगों ने हर्ष प्रकट करने के लिए पद्मराज की जय बोल दी।

कात्यायिनी रात को ही महाराज की आज्ञा पद्मराज को दे गई थी कि उसके परिवार को नगर छोड़ने की आवश्यकता नहीं है और उसको भी राज्य से बाहर जाने की आज्ञा तब तक के लिए ही है, जब तक मालवा से सन्धि नहीं हो जाती। इस आज्ञा से परिवार का कन्नौज में रहना निश्चित हो गया था और पद्मराज रात ही भूम्यान्तर्गत होने के लिए घर से चला गया था। यह निश्चय कराने पर कात्यायिनी को ऐसा अनुभव हुआ कि उसने पद्मराज के परिवार को नगर में रहने की प्रेरणा देकर अपने पर भारी उत्तरदायित्व ले लिया है। उसने अपने मन की आशंका महारानी को बताई, "महारानी जी! यह काम तो हो गया। मैं समझती हूँ कि प्रजा का चित्त स्थिर होने में इससे भारी सहायता मिलेगी, परन्तु पद्मराज के परिवार की रक्षा का प्रबन्ध होना चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि उसकी अनुपस्थिति में परिवार का कुछ अनिष्ट हो जाए।"

इसके लिए महारानी राज्यश्री ने अपनी असमर्थता प्रकट कर दी। नगर की सेना पर विश्वास नहीं किया जा सकता था। सुरक्षा मन्त्री सुषेण के गृह से सूचना आई थी कि वह भिक्षु हो गया है। उसने अवलोकितेश्वर के मालवा जाने से पूर्व ही दीक्षा ले ली थी और विहार में प्रविष्ट हो गया था। यद्यपि सुषेण ने अभी तक पद-त्याग नहीं किया था तो भी वह दिन-रात 'बुद्धं शरणं गच्छामि' इत्यादि का मन्त्र जपता रहता था।

कात्यायिनी यहाँ से निराश हो विष्णुकान्त के पास पहुँची। उसने पद्मराज के परिवार के विषय में जब बताया तो विष्णुकान्त ने कहा, "यह मुझे ज्ञात है। मुझको तुम्हारे इस प्रयत्न का भी ज्ञान है और जो कुछ भी मैं उनके परिवार की रक्षा के लिए कर सकता हूँ, कर रहा हूँ। वैष्णव युवक परस्पर मिलकर दल बना रहे हैं। ये लोग मिलकर मन्दिर, महामात्य के घर तथा अन्य स्थानों की रक्षा का पूरा प्रयत्न करेंगे। इन युवकों के लिए खड्ग, भाले आदि अस्त्रों के एकत्रित करने का प्रबन्ध हो रहा है।"

कात्यायिनी को इससे सन्तोष हुआ। इस समय उसको एक बात सूझ पड़ी। उसने कहा, "गुरुदेव! क्या यह अच्छा न होगा कि आप अपनी सुरक्षा-योजना में राजप्रासाद को भी सम्मिलित कर लें?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अच्छा तो है, परन्तु यह सम्भव प्रतीत नहीं होता। इसका कारण यह है कि प्रासाद की रक्षा के लिए हमारे पास युवकों की संख्या पर्याप्त नहीं। साथ ही राज्य के सैनिक, जितने और जो कुछ भी हैं, वे ही हमारे युवकों का विरोध करेंगे। हम यह नहीं चाहते कि इस दल को अपने राज्य के सैनिकों के विरुद्ध ही लड़ने में लगा दें।"

"यदि महाराज अथवा महारानी जी संकट के समय भागकर आपकी सुरक्षा में आना चाहें तो क्या आप उनकी रक्षा का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेंगे?"

"कात्यायिनी!" विष्णुकान्त ने खिन्न होकर कहा, "तुम कभी-कभी बच्चों की-सी बातें करने लगती हो। यदि राजपरिवार को यह पता चल जाए कि हम अपनी रक्षा के लिए लड़ने-मरने के लिए तैयार हैं और हम ऐसे कार्य को करने के लिए रक्तपात करने में भी हानि नहीं समझते, तो वे हमें देशद्रोही कहकर बन्दी बनवा सकते हैं। ऐसी अवस्था में वे भला हमारे पास रक्षा के लिए क्यों आएँगे?"

"मान लीजिए, यदि वे आते हैं तो आप क्या करेंगे?"

"यदि वे हमारे दल के संरक्षण में रह सकेंगे तो रहने दिया जाएगा।"

अगले दिन प्रातःकाल कात्यायिनी पद्मराज के परिवार का कुशल-मंगल पूछने गई और विरोचना देवी से मिलकर जब वह बाहर निकली तो एक बहुत बड़ा जन-समूह उसको घेरकर खड़ा हो गया। लोग उससे पूछने लगे, "देवी! तुम इस घर में रहती हो?"

"मैं विरोचना देवी की सखी हूँ और उनसे मिलने आई थी।"

"महामात्य जी घर पर हैं?"

"मुझे पता नहीं। मैंने विरोचना देवी से पूछा नहीं।"

"विरोचना देवी नगर छोड़कर जा रही हैं क्या?"

"क्यों, नगर क्यों छोड़ेंगी?"

"मालव सेना आक्रमण जो कर रही है।"

"किसने कहा है? कहाँ है मालव सेना?"

यह सुन लोग चुप हो गए।

इस सब आयोजन में बौद्ध-समाज सर्वथा पृथक् था। बौद्धों में धनिक वर्ग का बाहुल्य था और उस वर्ग के लोग नगर में अशान्ति की सम्भावना पर नगर छोड़ने की योजना बना रहे थे। श्रमण वर्ग बौद्ध-चैत्यों में जाकर 'बुद्धं शरणं गच्छामि' का जप करने में कल्याण मानता था।

महारानी राज्यश्री महामात्य को इस संकट के समय अकर्मण्य देख अशान्ति अनुभव कर रही थीं। महाराज जब पूजागृह से बाहर निकले तो उन्होंने हाथ जोड़ उनसे निवेदन कर दिया, "महाराज! सुना है कि प्रजा अति भयभीत है। उसको आश्वासन देने के लिए कुछ तो करना चाहिए।"

"जो कुछ करने योग्य है देवी, वह मैं कर रहा हूँ। मैं एक प्रहर-भर भगवान्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथागत का चिन्तन करके आया हूँ।"

"यह तो ठीक है, परन्तु मेरा निवेदन था कि महाराज अपना रथ निकालकर, उसमें बैठ नगर में घूम आएँ। इससे प्रजा को आश्वासन मिलेगा।"

"वास्तविक आश्वासन तो तब होगा, जब महामात्य यहाँ आकर अपनी मालव-यात्रा की सफलता की घोषणा करेंगे। उससे पहले तो किसी प्रकार का कार्य न केवल व्यर्थ होगा, प्रत्युत प्रजा के मन को और भी अशान्त करने वाला होगा।"

"महाराज! कम-से-कम सेनानायकों को बुलाकर उनको कुछ प्रोत्साहन देने से भी कुछ तो किया ही जा सकता है।"

"ऐसा करना कन्नौज राज्य में सैनिक तैयारी समझी जाएगी और शान्ति के प्रयास में जो कुछ हम कर रहे हैं, विघ्नकारक होगा।"

"तो क्या करना चाहते हैं आप?"

"मैं शान्त-चित्त हो भगवान् तथागत से प्रार्थना करना चाहता हूँ कि वे अपने प्रताप से हम क्षुद्र जीवों को सुमति दें। संसार में पाप शान्त हों, विग्रह समाप्त हो और मानव-कल्याण हो।"

महारानी चुप रहीं; परन्तु उनका मन चुप नहीं था। मध्याह्नोत्तर कात्यायिनी आई तो चुपचाप महारानी के चित्र पर कार्य करने लगी। वह तूलिका उठा महारानी के कपोलों का रंग ठीक करने लगी थी कि महारानी वहाँ आ पहुँचीं और पीछे खड़ी हो अपने चित्र को देखने लगीं। जब कात्यायिनी का ध्यान भंग नहीं हुआ तो राज्यश्री ने कहा "सखी! क्या देख रही हो?"

कात्यायिनी चौंककर उठी। उसने महारानी को देख तूलिका रंग के पात्र में रख दी और खड़ी हो कहने लगी, "महारानी जी कब से खड़ी हैं?"

"आधी घड़ी से ऊपर हो गई है। क्या देख रही थीं इस चित्र में? इस सब समय तुम्हारी तूलिका तो स्तब्ध हाथ में पकड़ी रह गई थी।"

"हाँ, मैं देख रही थी कि पिछले छः मास के सतत प्रयत्न करने पर भी चित्र में वह रूप और रंग नहीं ला सकी जो महारानी जी के मुख पर देख रही हूँ। मैं विचार कर रही थी कि ऐसा क्यों है? मैं क्या करूँ जिससे जैसा मैं आपको देखती हूँ, वैसा इस चित्र में चित्रित कर सकूँ।"

"मेरा तो विचार है कि तुमने इसको वास्तविक राज्यश्री से भी अधिक सुन्दर बना दिया है। अब समाप्त करो। यदि और अधिक कला-कौशल का इस पर प्रयोग किया तो इस पट पर की राज्यश्री से मैं ईर्ष्या करने लग जाऊँगी।"

कात्यायिनी ने मुस्कराकर कहा, "मैं समझती हूँ कि वह अवस्था कभी नहीं आएगी। आप अभी भी इससे कई गुना अधिक सुन्दर हैं।"

"किन्तु क्या आज का समय कला-साधना का है? नगर में नागरिकों के हृदयों में इस अशान्ति के रहते तुम किस प्रकार अपना मन इस कला-कार्य में लगा लेती हो?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं तो समझती हूँ कि इस नगर में अशान्ति तो कहीं भी देखने को नहीं। मेरा कहना तो यह है कि नगर कदाचित् आवश्यकता से अधिक शान्त है। इस निस्तब्धता में ही तो चित्त को एकाग्रता प्राप्त हो सकी है। उसी से लाभ उठाकर इस चित्र में रह गई त्रुटियों को जानने चली आई थी।"

"यह शान्ति तो अस्वाभाविक है।"

"कुछ भी हो महारानी जी! वास्तव में तो यह है ही। नगर के अधिकांश जन इस शान्ति में आनन्द से खाना-पीना कर रहे हैं। कल प्रजा में जो कुछ कटुता उत्पन्न हो रही दिखाई दे रही थी, आज महाराज श्री ग्रहवर्मन जी की अनुकम्पा से वह कटुता लुप्त हो गई है। बौद्ध लोग, जो इस राज्य में बहुत भारी संख्या में हैं, अब निश्चिन्त हो अपनी दिनचर्या में लगे हैं।"

"पर मेरा मन तो शान्त नहीं। मुझको तो यह आँधी के आने से पूर्व की शान्ति दिखाई देती है।"

"सत्य?"

"हाँ! न जाने क्यों, जब से मैंने सुना है कि मालवाधिपति सेना एकत्रित कर रहा है, मेरा मन अशान्त है।"

"महारानी जी! मेरे विचार में यह इस कारण है कि आपको उस भय के निवारण में कुछ किया जाता प्रतीत नहीं हो रहा। अथवा जो कुछ किया जा रहा है, उसके सफल होने में आपको विश्वास नहीं होता। इसी कारण आपके मन में अशान्ति है।"

महारानी गंभीर विचार में पड़ गईं। कात्यायिनी ने कहा, "मेरा विचार है कि महारानी जी को कुछ सोच-विचारकर कोई ऐसा कार्य करना चाहिए, जिससे भय का निवारण हो सके।"

"मैंने महाराज से कहा था कि वे रथ में चढ़कर नगर में घूम आएँ, जिससे लोगों में उत्साह बढ़े। उन्होंने बताया कि इससे कुछ लाभ नहीं होगा। वे तो भगवान् से यह प्रार्थना कर कि संसार में शांति बनी रहे, संतुष्ट हो अपने आगार में चले गए हैं।"

"यदि महारानी जी स्वयं ऐसा कुछ कर सकें तो ठीक नहीं रहेगा क्या?"

"मुझको इसमें कुछ लाभ प्रतीत नहीं होता। भगवान् की मूर्ति के सम्मुख दो घड़ी-भर बैठ आई हूँ। वहाँ बैठ समय व्यर्थ गँवाने में लाभ न मान, उठकर चली आई हूँ।"

"तो एक बात मैं बताऊँ?"

"हाँ, बताओ।"

"महारानी जी! चलिए, हम दोनों रथ में घूम आते हैं। नगर में घूमने से और चाहे कुछ न हो, चित्त तो स्थिर हो ही जाएगा।

"यदि इससे भी कुछ अधिक करने का विचार हो तो हम उनसे मिल सकते हैं, जो अपने परिवार की रक्षा के लिए विचार कर रहे हैं और प्रबन्ध कर रहे हैं। अथवा हम उन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोगों से भी मिल सकते हैं जो भगवान् तथागत के संरक्षण में रहकर शांत हो अपने व्यवसाय में लगे हुए हैं।"

"यह ठीक है, पर मैं महाराज की आज्ञा के बिना रथ में घूमने निकल गई तो राजपरिवार का अपमान हो जाएगा।"

"मैं तो एक साधारण स्त्री हूँ और एक साधारण माता-पिता की संतान हूँ। इस कारण मुझको तो साधारण प्रजा में विचरण करने में अपमान प्रतीत नहीं होता। महारानी जी के परिवार की परंपराओं को मैं नहीं जानती। अतएव आपके विषय में मैं कुछ सम्मति नहीं दे सकती।"

"तो महाराज से राय कर लूँ?"

"ठीक है, कर लीजिए।"

८

बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर मालवा की सीमा पर पहुँचे तो उन्होंने अपना एक दूत मालवा की राजधानी उज्जयिनी में भेज दिया। यह दूत तीव्रगामी अश्व पर महामात्य से कई दिन पूर्व ही पहुँच गया। उज्जयिनी नगर के द्वार पर उसको रोका गया तो उसने बताया, "मैं कन्नौज अधिपति महाराज ग्रहवर्मन के महामात्य का दूत हूँ। महामात्य स्वयं उज्जयिनी पधार रहे हैं और मालव-नरेश की सेवा में एक अत्यावश्यक निवेदन करने के लिए राज-सभा में उपस्थित होना चाहते हैं।"

यह सूचना महाराज देवगुप्त के पास भेज दी गई और वहाँ से आज्ञा आई कि कन्नौज के राजदूत का पंथागार में ठहरने का विशेष प्रबंध कर दिया जाए। साथ ही मालवा-नरेश ने अपना एक प्रमाणित दूत अवलोकितेश्वर को सम्मानपूर्वक लिवा लाने के लिए मार्ग में भेज दिया। इस दूत के साथ बीस सशस्त्र सैनिक भी थे।

अवलोकितेश्वर के साथ केवल चार पैदल सैनिक थे। वे जब उज्जयिनी से दो दिन के मार्ग पर रह गए तो उन्हें मालवा का दूत मिल गया। अवलोकितेश्वर स्वयं पालकी में थे। पालकी को खड़ा कर दूत ने अपना परिचय दिया और कहा, "मालव-नरेश श्री देवगुप्त जी ने आज्ञा दी है कि श्रीमान् जी को अत्यंत आदर और सम्मान के साथ उज्जयिनी में लाया जाए और श्रीमान् की सेवा की जाए।"

अवलोकितेश्वर इस सम्मान से बहुत प्रसन्न हुए। उज्जयिनी के दूत ने उनके मार्ग का पूरा प्रबंध अपने हाथ में ले लिया और शेष दो दिन का मार्ग छः दिन में समाप्त कर अवलोकितेश्वर को उज्जयिनी में पहुँचा, एक अति विशाल भवन में ठहराया और उनकी सेवा के लिए उस भवन में बीसियों सेवक नियुक्त कर दिए।

दस दिन तक अवलोकितेश्वर के खाने-पहनने, नृत्य-संगीत इत्यादि के मनोरंजन करने में इतनी सतर्कता से प्रबंध किया गया कि उनको अपने आने का उद्देश्य बताने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवसर ही नहीं मिला।

प्रातःकाल उठने के समय एक संगीतज्ञ महाप्रभु के शयनागार के बाहर बहुत ही मधुर ध्वनि में भैरव-रामकली आदि रागों में गायन करता, जिसको सुनकर महाप्रभु अत्यंत प्रसन्नता अनुभव करते। महाप्रभु के स्नानादि से निवृत्त होने तक यह गायन चलता। पश्चात् अति मधुर ध्वनि में दो घड़ी भर 'बुद्धं शरणं गच्छामि' आदि का गायन चलता। इस मंत्र का जाप स्वर, ताल और लय के साथ होता। इससे महाप्रभु आनंदविभोर हो उठते।

प्रातः अल्पाहार के पश्चात् उज्जयिनी के पुस्तकालय से महाप्रभु के स्वाध्याय के लिए बौद्ध ग्रंथ आ जाते। इस प्रकार मध्याह्न के भोजन का समय हो जाता।

अति स्वादिष्ट मिष्ठान्न तथा मांस इत्यादि पदार्थ भोजन में होते। इसके पश्चात् महाप्रभु विश्राम करते और सायंकाल विश्राम के पश्चात् फलाहार होता। फलाहार के उपरांत राज्य के रथ आ जाते और महाप्रभु को घुमाने के लिए ले जाते। उज्जयिनी के मंदिर, विज्ञान भवन अथवा नक्षत्रादि देखने के यंत्र दिखाए जाते। भ्रमण से लौटने के पश्चात् नट-नटियों के खेल-तमाशे का प्रबंध होता। फिर रात्रि का भोजन होता। इस समय भोजन के साथ सुवासित मद्य होती। खाने के समय नर्तकियों का नृत्य होता। यह कार्यक्रम मध्य रात्रि तक चलता और तब महाप्रभु सो जाते।

उक्त विधि से दस दिन व्यतीत हो गए। इस सब प्रकार के आनन्दोत्सवों में लीन महाप्रभु अवलोकितेश्वर महाराज को मालव-नरेश से मिलकर अपने उद्देश्य के विषय में वार्तालाप करने का स्मरण ही नहीं रहा। दसवें दिन महाप्रभु की समझ में आया कि कन्नौज में उनकी प्रतीक्षा उत्सुकतापूर्वक हो रही होगी। अतएव उन्होंने सेवकों के प्रमुख को बुलाकर कहा, "मालवा के महामात्य से जाकर कहो कि हम उनकी सेवा से बहुत प्रसन्न हैं और उनकी ओर से जो हमारा सम्मान किया गया है, उसके लिए हम उनके अत्यंत आभारी हैं। हमको शीघ्र ही कन्नौज लौटना है और हम उनके दर्शन कर अति प्रसन्न होंगे।"

इसके उत्तर में महामात्य चन्द्रसेन महाप्रभु से मिलने स्वयं आ पहुँचा। आकर उसने महाप्रभु के चरण-स्पर्श किए और निवेदन किया, "महाराज! क्या आज्ञा है?"

महाप्रभु इस आदर से प्रसन्न हो चन्द्रसेन को आशीर्वाद देने लगे, "चिरंजीव रहो भद्र! भगवान् तथागत तुम्हारा कल्याण करें और तुम्हें सन्मार्ग दिखाएँ। तुम्हारा गृह धन-धान्य, बंधु-बांधवों तथा पुत्र-पौत्रों से भरा रहें।

"महामात्य! हम मालव-नरेश से एक परमावश्यक विषय पर वार्तालाप तथा परस्पर कुछ निर्णय करने के लिए आए हैं। इतने दिन तक आपके राज्य ने हमारा जो सम्मान किया है और हमें सुख तथा आराम दिया है, उसके लिए कन्नौज राज्य आपका अत्यन्त आभारी है। हम चाहते हैं कि महाराज से हमारी भेंट का प्रबंध करा दिया जाए।"

"भगवन्! महाराज मृगया के लिए विंध्याचल गए हुए हैं। वे कुछ दिनों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लौटेंगे और आते ही उनकी आपसे भेंट करा दी जाएगी।"

महाप्रभु अवलोकितेश्वर इस आश्वासन से अति प्रसन्न हो बोले, "हमारा कार्य अत्यावश्यक है और हम अपने देश से अधिक दिन तक बाहर नहीं रह सकते। फिर भी कार्य की महिमा देख हम कुछ दिन और प्रतीक्षा करने के लिए तैयार हैं; परंतु हम चाहते हैं कि महाराज की सेवा में हमारा निवेदन भेज दिया जाए। यदि वे शीघ्र लौटने का कष्ट कर सकें तो हम अत्यंत आभारी होंगे।"

"भगवन्! आपका संदेश अविलंब महाराज के पास भेज दिया जाएगा और आशा करनी चाहिए कि या तो वे संदेश पाते ही लौट आएँगे अथवा वे आपको वहीं वन में बुलवा लेंगे।"

पहामात्य चन्द्रसेन के इस आश्वासन से महाप्रभु बहुत प्रसन्न हुए। इस प्रकार पाँच दिन और व्यतीत हो गए। पाँचवें दिन एक अश्वारोही कन्नौज राज्य की ओर से बहुत वेग से अश्व भगाता हुआ आया और सीधा महामात्य चन्द्रसेन के प्रासाद के बाहर जा खड़ा हुआ। ऐसा प्रतीत होता था कि महामात्य इस अश्वारोही की प्रतीक्षा कर रहा था। उसके अश्व से उतरते ही महामात्य बाहर आया। महामात्य को बाहर आते देख अश्वारोही ने जयघोष कर दी, "मालव-नरेश महाराजाधिराज देवगुप्त की जय हो। महाराज ने कन्नौज विजय कर लिया है। महाराज की आज्ञा है कि राज्य-भर में इस विजय की प्रसन्नता में उत्सव मनाया जाए और मंदिरों में पूजा का तथा निर्धनों को वस्त्र और भोजन-वितरण का प्रबंध किया जाए।"

महामात्य ने अपने उत्तरीय के नीचे से स्वर्ण-मुद्राओं की एक थैली निकाली और अश्वारोही के हाथ में फेंकी। अश्वारोही ने वह ले अपने माथे से लगा ली और प्रणाम कर अपने शिविर की ओर चला गया।

बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर मध्याह्न का भोजन कर रहे थे, जब नगर-भर में शंख, दुन्दुभि, भेरी तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के नरसिंहों का तुमुल नाद उठा। महामात्य अवलोकितेश्वर समझे कि मालव-नरेश मृगया से लौट आए हैं। इस कारण वे आशा करने लगे कि सायंकाल तक उनसे भेंट हो सकेगी और वे शीघ्र ही अपना कार्य सम्पन्न कर क़न्नौज वापस लौट सकेंगे।

महाप्रभु ने एक सेवक को आज्ञा दी कि शीघ्र ही जाकर महामात्य चन्द्रसेन से पता करे कि महाराज से किस समय भेंट हो सकेगी। उस सेवक को उस भवन से बाहर नहीं जाने दिया गया और एक सैनिक जाकर समाचार ले आया कि महामात्य चन्द्रसेन स्वयं सायंकाल महाप्रभु से भेंट करने आएँगे।

सायंकाल महाप्रभु को भ्रमण के लिए नहीं ले जाया गया। रात्रि के दीये जलने पर महामात्य चन्द्रसेन आया और महाप्रभु से कहने लगा, "भगवन्! महाराज देवगुप्त का संदेश आया है कि उन्होंने कन्नौज पर विजय प्राप्त कर ली है और उनकी आज्ञा है कि यदि महाप्रभु अब भी उनसे भेंट करने की इच्छा रखते हों तो उनको कन्नौज भेज दिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाए। महाराज वहाँ पर अभी कुछ मास तक रहेंगे।"

इस समाचार से तो महाप्रभु स्तब्ध रह गए। उनको क्रोध भी आया, परंतु बोधिसत्त्व की उपाधि के स्वरूप अपना क्रोध मन-ही-मन पी गए। पश्चात् शांत भाव में कहने लगे, "महामात्य चन्द्रसेन! मैं आपका अति कृतज्ञ हूँ कि आपने मेरी और मेरे सेवकों की सेवा की है। अब तो मैं महाराज ग्रहवर्मन का दूत नहीं रहा और अब मैं उस सम्मान का भी अधिकारी नहीं रहा, जो मुझे इतने काल से मिल रहा था। अब मैं कन्नौज लौट जाना चाहूँगा।"

"भगवन्! यह सम्मान जो पिछले पंद्रह-सोलह दिनों से आपको मिल रहा था, आपके कन्नौज के महामात्य के नाते नहीं था। यदि हम आपको महाराज ग्रहवर्मन का दूत समझते तो आपका स्थान बंदीगृह में होता। जो कुछ भी व्यवहार हमने आपके साथ किया है, वह आपके बौद्ध-संप्रदाय के एक उच्च अधिकारी होने के नाते किया है। हमारे राज्य में सब संप्रदायों का एकसमान आदर होता है। अतएव आप जैसे महान् आत्मा का सम्मान करना स्वाभाविक ही था। यदि महाप्रभु हमारे नगर में रहना चाहें तो अब भी आपका वैसा ही सम्मान और आदर होता रहेगा, जैसा अब तक होता रहा है।"

"आपका अत्यंत धन्यवाद। फिर भी यदि कोई बाधा न हो तो हम कन्नौज लौट जाना चाहेंगे।"

"आप जा सकते हैं। जिस समय आप चाहें, यहाँ से प्रस्थान कर सकते हैं। आपके लिए किसी प्रकार की बाधा अथवा प्रतिबंध नहीं है।"

चंद्रसेन नमस्कार कर जाते हुए कहने लगा, "मैं समझता हूँ कि आप यह जानने के लिए उत्सुक होंगे कि महाराज ग्रहवर्मन तथा राजपरिवार के अन्य सदस्यों का क्या हुआ? सूचना मिली है कि मालव सेना बिना किसी प्रकार की विघ्न-बाधा के कन्नौज तक पहुँच गई थी और कन्नौज की प्रजा तथा सेना की ओर से कोई विरोध नहीं हुआ। महाराज ग्रहवर्मन ने हमारे महाराज के वहाँ अंतःपुर में जाने पर आपत्ति की, तो महाराज देवगुप्त ने उन्हें अपने खड्ग का स्वाद चखा दिया और महाराज ग्रहवर्मन स्वर्ग सिधार गए। उनकी सुंदर रानी राज्यश्री महाराज देवगुप्त के अंतःपुर को सुशोभित कर रही हैं।

"प्रजा में सब प्रकार से शांति है। केवल मालव सैनिकों के मनोरंजन के लिए नगर से कुछ सहस्र युवतियों की सेवा उपलब्ध की गई है और महाराज की आज्ञा से उन युवतियों को भली-भाँति पुरस्कृत भी किया गया है।"

बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर इस समाचार से अपने मन में क्रोध से उबल रहा था, परंतु ऊपर से शांत स्वर में बोला, "शान्तं पापं, शान्तं पापं!"

महामात्य चन्द्रसेन ने कहा, "भगवन्! यह पाप नहीं है। यह तो कन्नौज की प्रजा के उद्धार का मूल्य है।"

इतना कह चन्द्रसेन चला गया और महाप्रभु ने अपने सेवकों से कहा, "शीघ्र यहाँ से प्रस्थान का प्रबंध कर दो।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९

श्री बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर को महामात्य-पद पर सुशोभित होकर मालवा गए दस दिन हो चुके थे। पद्मराज छिपकर अपने मित्रों के यहाँ दिन व्यतीत कर रहा था। इन दिनों, वर्तमान परिस्थिति में वह क्या करे, इस पर उसने गंभीरतापूर्वक विचार किया और विचार कर उसने एक योजना बना डाली। उसकी योजना इस प्रकार थी कि वह स्वयं स्थानेश्वर जाकर महाराज प्रभाकरवर्धन से सहायता माँगे। स्थानेश्वर से सेना लेकर कन्नौज पर अधिकार कर और महाराज ग्रहवर्मन को सिंहासन से पृथक् कर, राज्यश्री को सिंहासन पर बिठाकर मालवा के आक्रमण का विरोध करे। परंतु कठिनाई महारानी राज्यश्री से उनके पिता प्रभाकरवर्धन के नाम एक पत्र लेने की थी, जिससे उसे उनसे सहायता माँगने का अधिकार मिल जाए। इसके लिए उसने कात्यायिनी से संपर्क स्थापित किया और उससे महारानी राज्यश्री से भेंट करवाने में सहायता माँगी।

महारानी राज्यश्री कात्यायिनी के साथ नगर-भ्रमण के लिए जाने लगी थीं। इस भ्रमण में नगर के प्रमुख नागरिकों से भेंट भी करने लगी थीं। वह पुजारी विष्णुकांत से भी मिली थीं और विष्णुकांत ने उनके सम्मुख नगर की परिस्थिति स्पष्ट रूप में रख दी थी। उसका कहना था, "महारानी जी! आपको यह विदित होना चाहिए कि मालव-नरेश बौद्ध नहीं है। न ही वह किसी विशेष धर्म को अपनी जीवनचर्या का आधार मानता है। अतएव वह बौद्धों के शील-सिद्धांतों का सम्मान नहीं करेगा और महामात्य जी के मालवा से सफल होकर लौटने की कदापि आशा नहीं रखनी चाहिए।

"ऐसी अवस्था में हमारा निवेदन है कि सेना को प्रसन्न रखने के लिए उसका कम-से-कम आंशिक वेतन तो दे ही देना चाहिए। हमारे सुरक्षा मंत्री भिक्षुक हो गए हैं। उनके स्थान पर कोई अन्य उपयुक्त व्यक्ति की नियुक्ति शीघ्र होनी चाहिए अन्यथा सेना अनुशासनहीन हो जाएगी। इसके साथ ही प्रजा से सहयोग माँगा जाना चाहिए। मैं समझता हूँ कि प्रजा तन-मन-धन से राज्य की सेवा करेगी।"

महारानी नगर के सेट्ठियों से मिलीं। उनका कहना था, "हम महाराज के भक्त और धर्मानुयायी हैं। हम युद्ध नहीं चाहते। फिर भी अपने घर और परिवार की रक्षा के लिए हम उत्सुक हैं। राज्य यदि कहे तो हम धन से सहायता के लिए सदैव तत्पर रहेंगे।"

महारानी राज्यश्री जानती थीं कि सेट्ठी प्रायः बौद्ध हैं। इस कारण उन्होंने प्रश्न किया, "युद्ध में होने वाले रक्तपात से क्या आप लोग कल्याण की आशा रखते हैं?"

"रक्तपात को रोकने की हममें सामर्थ्य नहीं है। भगवान् तथागत भी रक्तपात को निर्मूल नहीं कर सके। कदाचित् उनका विचार इसको निर्मूल करने का था भी नहीं। यदि ऐसा होता तो वे कदापि मांसाहार नहीं करते। मांस तो रक्तपात के बिना संभव नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"महारानी जी ! हम तो यह समझे हैं कि भगवान् का आशय यह था कि निर्वाणाभिमुख लोग रक्तपात से बचें। अन्य, जो इतर प्राणी हैं, वे रक्तपात करें तो कुछ हानि नहीं। उनके रक्तपात से निर्वाणाभिमुखी प्राणी लाभ उठाएँ तो और भी अच्छा है। इसका अर्थ यह हुआ कि अबौद्धों की सेना तैयार कर उनसे युद्ध करवाना धर्मविरुद्ध नहीं है।"

यद्यपि यह मीमांसा राज्यश्री को पसंद नहीं थी, तो भी तात्कालिक बौद्ध-व्यवहार के प्रतिरूप ही थी। उस रात वह महाराज के साथ बैठकर भोजन करने लगीं और भोजन में जब हिरण का मांस परसा गया तो उन्होंने सेट्ठियों की वही युक्ति महाराज के सम्मुख रख दी।

महाराज ने युक्ति का कुछ उत्तर न दिया, परंतु अबौद्धों की सेना बनाने के लिए भी वे तैयार नहीं हुए। उन्होंने कहा, "हमें अवलोकितेश्वर के आने तक ठहरना ही चाहिए और पश्चात् हम देखेंगे कि क्या हो सकता है।"

"महाराज !" महारानी का कहना था, "मनुष्य, जो बौद्ध-मीमांसा को न तो समझ सकते हैं और न मानते हैं, वे पशुओं से किसी प्रकार भी श्रेष्ठ नहीं। उनका जीवनांत कर देना किसी प्रकार से भी निर्वाण-पथ में बाधाजनक नहीं। कदाचित् उनका जीवनांत उनको निर्वाण-पथ पर अग्रसर करने के लिए सहायक सिद्ध हो।"

ग्रहवर्मन ने हँसते हुए कहा, "तो तुम मनुष्य-मनुष्य में भेद मानती हो ? बौद्धों को उच्चकोटि के प्राणी और अन्यों को निम्न कोटि के प्राणी समझती हो ? ऐसा तो तथागत भगवान् का आशय नहीं था।"

"महाराज ! मेरे मानने अथवा न मानने का तो प्रश्न ही नहीं। यह बात तो स्वयंसिद्ध है कि बौद्ध मत संसार के अन्य मतों से उन्नत है। उस मत को मानने वाले निस्संदेह उच्चकोटि के प्राणी होंगे।"

"तो क्या आर्य मतावलंबियों का यह कहना कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों से श्रेष्ठ प्राणी हैं और उनकी रक्षा करना और उनको सहायता पहुँचाना पूर्ण जाति का कर्तव्य है, ठीक हुआ ?"

"परंतु उनमें तो ब्राह्मण की संतान ब्राह्मण होती है। उसकी योग्यता अथवा आचरण पर ध्यान नहीं दिया जाता।"

"हमारे यहाँ भी तो एक बौद्ध की संतान बौद्ध होती है। एक बौद्ध बालक भी क्या निर्वाण-मार्ग का राही है, जानने का कोई साधन नहीं। यदि बौद्धों की रक्षा के लिए अबौद्धों का रक्तपात क्षम्य हो जाए, तो फिर क्षत्रियों के युद्ध करने में, जो ब्राह्मणों से निम्न कोटि के प्राणी माने जाते हैं, क्या हानि है ?

"देखो देवी ! तुम्हारी युक्ति अति प्रबल है। भगवान् मांस खाते थे, अतः हत्या तो होती ही होगी। इसी प्रकार राज्य की रक्षा के लिए कुछ हत्याएँ हो जाएँ तो हानि ही क्या है ? मुझको तो केवल एक आपत्ति है कि मेरे पास कोई साधन नहीं, जिससे मैं कह सकूँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि युद्ध के समय कौन सैनिक उन्नत विचारों का है और कौन नहीं है। किसकी हत्या क्षम्य होगी और किसकी नहीं।

"इसी कारण मैं यह कहता हूँ कि बोधिसत्त्व महाप्रभु को आ जाने दो तब इस प्रश्न पर विचार कर लेंगे।"

एक दिन भ्रमण के लिए जाते समय कात्यायिनी ने कहा, "महारानी जी ! भूतपूर्व महामात्य पद्मराज जी आपसे मिलना चाहते हैं।"

"कहाँ हैं वे ? उनको तो देश-निर्वासन का दण्ड हो चुका है।"

"जी, महारानी जी ! परंतु वे किसी कार्य-विशेष से ही यहाँ हैं। आपसे कुछ विचार-विनिमय करना चाहते हैं।"

"हमें उनके विचार जानने में कोई हानि नहीं।"

कात्यायिनी महारानी जी को वासुदेव के मंदिर में ले गई और वहाँ पद्मराज से, जो साधारण वेशभूषा में वहाँ उपस्थित था, महारानी की भेंट हो गई। दोनों एक पृथक् आगार में जाकर बातें करने लगे।

महारानी के बैठने पर पद्मराज ने आदरयुक्त मुद्रा में खड़े-खड़े ही कहा, "महारानी जी ! मैं स्थानेश्वर जा रहा हूँ। वहाँ महाराज से भेंट कर कन्नौज की रक्षा के विषय में विचार-विनिमय करना चाहता हूँ। यदि महारानी जी अपने पिता के नाम पत्र देना चाहें, तो अत्यंत कृपा होगी।"

"हमें यदि कोई पत्र भेजना होगा तो राज्य के दूत के हाथ भेज सकते हैं। आप क्यों पत्रदूत बनना चाहते हैं ?"

"इस कारण कि आपका पत्रवाहक बनकर मैं एक विश्वस्त व्यक्ति माना जाऊँगा। साथ ही यदि आप लिख दें कि मैं कन्नौज की रक्षा के विषय में उनसे विचार करना चाहता हूँ तो मुझे बहुत सुविधा होगी।"

"तो आपका आशय है कि मैं आपको कन्नौज राज्य की ओर से बात करने का अधिकार दे दूँ ?"

"हाँ ! आप यहाँ की महारानी हैं और आपका इस राज्य की रक्षा का उतना ही उत्तरदायित्व है, जितना इस राज्य में किसी अन्य का।"

"पद्मराज जी ! आप मुझे महाराज का स्थानापन्न बनने के लिए कह रहे हैं क्या ?"

"महारानी जी ! मैंने ऐसी कोई बात नहीं कही। फिर भी यह तो आप समझ ही सकती हैं कि यदि किसी बाहर की सेना ने कन्नौज पर अधिकार कर लिया तो यह उस सेना का अधिकार होगा कि कन्नौज का कौन अधिपति हो। यदि मालव सेना यहाँ आ गई तो निस्संदेह महाराज ग्रहवर्मन के स्थान पर देवगुप्त यहाँ का अधिपति बन जाएगा। मैं चाहता हूँ कि मालव सेना के यहाँ पर आने से पूर्व स्थानेश्वर की सेना यहाँ पर अधिकार कर ले। पश्चात् यह उसे अधिकार होगा कि वह किसको यहाँ का अधिपति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियुक्त करती है। यह स्वाभाविक ही है कि स्थानेश्वर की सेना यहाँ का अधिपति आपको बनाना चाहेगी।"

राज्यश्री की समझ में बात तो आ गई, परंतु वह कोई ऐसी बात नहीं करना चाहती थीं, जिससे वह अपने पति के विरुद्ध किसी षड्यंत्र में सम्मिलित हो जाएँ। इस कारण वह विचार करने लगीं। कुछ देर पश्चात् उन्होंने कहा, "पद्मराज जी ! मैं लिखकर कुछ नहीं दूँगी। केवल मौखिक आशीर्वाद कि आपका प्रयत्न सफल हो, दे सकती हूँ। केवल इतना कह देना चाहती हूँ कि यहाँ का राज्य यदि मुझे सौंपा गया तो पुनः यह मेरे पतिदेव के चरणों में जा पहुँचेगा।"

पद्मराज को इस भेंट से सफलता नहीं मिली। फिर भी वह अपनी योजना को चलाना चाहता था। वह उसी रात एक तीव्रगामी अश्व पर सवार होकर कन्नौज राज्य की सीमा से बाहर निकल गया। उसका विचार स्थानेश्वर जाने का था, परंतु वह स्थानेश्वर जाने से पूर्व मालवा जाकर वहाँ का पूर्ण समाचार लेना चाहता था।

तीसरे दिन वह मालव राज्य की सीमा में प्रवेश कर गया और उज्जयिनी की ओर बढ़ने लगा। दो दिन की यात्रा के पश्चात् उसे एक बहुत बड़ी सेना कन्नौज की ओर बढ़ती हुई दिखाई दी। विन्ध्याचल की एक रमणीक घाटी में उसे सहस्रों तंबू गड़े हुए दिखाई दिए। वह इन्हें देख खड़ा हो गया। वह जानना चाहता था कि सेना किस ओर प्रयाण कर रही है। इसके लिए वह एक निकटवर्ती ग्राम में चला गया। एक ग्रामीण को अपना अश्व दे और उससे ग्रामीण वस्त्र लेकर भेष बदल, वह सैनिक शिविर की ओर चल पड़ा। वहाँ वह रक्षकों द्वारा पकड़ लिया गया और सेनाध्यक्ष के समक्ष उपस्थित किया गया।

सेनाध्यक्ष इस प्रौढ़ावस्था के व्यक्ति को सम्मुख खड़ा देख पूछने लगा, "कहाँ के रहने वाले हो?"

"उज्जयिनी का महाराज!"

"इधर क्या कर रहे हो?"

"मेरे श्वशुर कन्नौज राज्य के बड़गाँव के रहने वाले हैं। वहाँ अपनी गर्भिणी स्त्री को छोड़ने गया था। उसे छोड़कर लौट रहा हूँ।"

"कौन जाति हो?"

"मैं बौद्ध उपासक हूँ श्रीमान् जी!"

"राज्य में युद्ध की चर्चा है क्या?"

"नहीं महाराज! वह तो बौद्ध राज्य है। लोग शांतिप्रिय हैं। राज्य किसी का हो उन्हें चिंता नहीं है।"

"महाराज ग्रहवर्मन को देखा है?"

"नहीं महाराज! मैं कन्नौज कभी नहीं गया।"

"प्रजा महाराज ग्रहवर्मन का मान करती है क्या?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हाँ महाराज ! बहुत । वह इस कारण कि वहाँ कर बहुत कम है और वह भी यदि कोई न दे तो उसे बाध्य नहीं किया जाता । कभी कोई कर न देता हुआ पकड़ भी लिया जाता है तो महाराज उसे क्षमा कर देते हैं । मेरे श्वशुर कई बार पकड़े जा चुके हैं और महाराज ने उन्हें क्षमा कर दिया था ।

"परंतु महाराज ! लोग स्वेच्छा से कर देते हैं । राज्य का एक साधारण कर्मचारी आता है और ग्राम में से पचानवे प्रतिशत कर एकत्रित कर ले जाता है ।"

"अब कहाँ जा रहे हो ?"

"महाराज ! उज्जयिनी जा रहा हूँ । वहाँ के एक सेठ धनसुख की सेवा में हूँ ।"

"बहुत दूर विवाह किया है तुमने ?"

"मेरे श्वशुर महाकाली के दर्शन करने आए थे । उनका परिवार भी साथ था । उनकी लड़की मुझे बहुत अच्छी लगी और उसे मैं भी अच्छा लगा । हमारा विवाह हो गया । हमारा विवाह हुए दस वर्ष व्यतीत हो गए हैं । सौभाग्य से मेरी पत्नी के दिन चढ़े तो उसको उसके माता-पिता के पास छोड़ने चला गया था । अब वह अति प्रसन्न है ।"

"देखो उपासक !" सेनाध्यक्ष ने डाँटकर कहा, "सीधे उज्जयिनी का मार्ग पकड़ो और पीछे लौटकर मत देखना ।"

पद्मराज यह समझ गया कि सेना मालव-नरेश की है और कन्नौज-विजय के लिए जा रही है ।

अपने अनुमान की पुष्टि के लिए वह उज्जयिनी के मार्ग पर कुछ दूर निकल गया और पश्चात् एक पहाड़ी के शिखर पर चढ़कर सेना की गतिविधि का अध्ययन करने लगा ।

१०

कन्नौज की अवस्था यथापूर्व थी । कुछ अशांति और चिंता जो पद्मराज के महामात्य-पद से पृथक् किए जाने पर उत्पन्न हुई थी, वह समय व्यतीत होने पर और महारानी राज्यश्री के नागरिकों से मेलजोल के कारण शांत हो गई थी । नगर में गतिविधि पूर्ववत् आरंभ हो गई थी । लोग चैत्यों में उपासना के लिए और मंदिरों में पूजा के लिए जाने आरंभ हो गए थे । राग-रंग, नृत्य आदि के आयोजन फिर से आरंभ हो गए थे ।

फिर भी कुछ बुद्धिशील व्यक्ति थे, जो महाप्रभु अवलोकितेश्वर के समय पर वापस न लौटने के कारण चिंतित थे ।

ऐसी परिस्थिति में अचानक एक दिन प्रातःकाल मालव सेना का कन्नौज की सीमा में घुस आने का समाचार आया और उसके दूसरें दिन सेना नगर को चारों ओर से घेरकर खड़ी हो गई ।

महाराज ग्रहवर्मन को जब सूचना मिली कि मालव सेना ने आक्रमण कर दिया है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो सबसे पहले उनका ध्यान महाप्रभु की ओर गया। पश्चात् वे महारानी राज्यश्री से विचार करने लगे कि क्या करें। उनको ऐसी परिस्थिति में अपनी पूर्व की योजना के अतिरिक्त कुछ न सूझा। उन्होंने निश्चय कर लिया कि राजपाट सब-कुछ देवगुप्त के हाथ सौंप वे भिक्षुक बन जाएँगे। उसी समय उन्होंने घोषणा करवा दी, "मालवाधिपति देवगुप्त एक भारी सेना लेकर कन्नौज आ रहे हैं। हमने यह निश्चय किया है कि महाराज देवगुप्त का अतिथि के रूप में कन्नौज में स्वागत किया जाए। जहाँ तक प्रजा का संबंध है, उसको किसी प्रकार भी उनकी आज्ञा की अवज्ञा नहीं करनी चाहिए। जहाँ तक राज्य का संबंध है, उसका निर्णय महाराज देवगुप्त से मिलकर किया जाएगा। यहाँ का जो भी राजा बनेगा, वह प्रजा का पूज्य और प्रजा का संरक्षक होगा। अतएव प्रजा को इस विषय में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।"

यद्यपि इस घोषणा से अधिकांश नागरिकों को संतुष्टि नहीं हुई, तो भी अपने को इस विषय में कुछ भी करने में असमर्थ समझ सब लोग शांत रहे। लोगों ने समझा कि महाराज ग्रहवर्मन भिक्षु बनकर किसी चैत्य में प्रवेश ले लेंगे और दोनों राज्य मिलकर एक हो जाएँगे।

अगले दिन मालव सेना ने नगर पर घेरा डाल दिया। महाराज ग्रहवर्मन ने आज्ञा दे दी कि नगर के द्वार खोल दिए जाएँ। सुरक्षा मंत्री सुषेण, जो बौद्ध-भिक्षु हो गया था, नगर के मुख्य द्वार पर पहुँच मालवाधिपति के सम्मुख उपस्थित हो गया। उसने कहा, "महाराज ग्रहवर्मन की आज्ञा से आपका स्वागत करने के लिए उपस्थित हुआ हूँ। हमें यद्यपि आपके आगमन की अग्रिम कोई सूचना नहीं मिली, तो भी महाराज आपका स्वागत करते हैं और आपको आमंत्रित करते हैं कि आप राजप्रासाद में पधारें और कन्नौज-अधिपति का आतिथ्य स्वीकार करें।"

इस अप्रत्याशित निमंत्रण को सुन महाराज देवगुप्त एक क्षण आश्चर्य में लीन खड़े रहे। पश्चात् यह विचार कर कि कहीं यह कोई षड्यंत्र न हो, अपने कर्तव्य का निश्चय करने लगे। उन्होंने विचार कर कहा, "महाराज को विदित होना चाहिए कि हम अकेले नहीं आए हैं। हमारे साथ हमारी पचास सहस्र सेना है। क्या यह निमंत्रण सबके लिए है अथवा अकेले हमारे लिए?"

"कन्नौज के महाराज की आज्ञा है कि आपको आपके साथियों सहित आमंत्रित किया जाए। अतएव सेना को नगर के बाहर डेरा डालने की आज्ञा दे दें और स्वयं राजप्रासाद में पधारें।"

देवगुप्त ने अपने सेनाध्यक्ष को बुलाकर आज्ञा दे दी, "कन्नौज के महाराज ग्रहवर्मन के निमंत्रण पर हम राजप्रासाद में जा रहे हैं। हमारे साथ हमारे मान के योग्य पाँच सौ सैनिक एवं सेनाध्यक्ष स्वयं साथ रहें। शेष को आज्ञा दे दी जाए कि राजमार्ग पर खड़े होकर हमारी सवारी की शोभा बढ़ाएँ और दो सहस्र सैनिक प्रासाद के बाहर खड़े होकर मालव राज्य की जयघोष करें।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेनाध्यक्ष इस आज्ञा का अर्थ समझ गया। उचित आज्ञा दे दी गई। इस प्रकार पूर्ण सेना नगर के अंदर प्रवेश कर नगर-द्वार से लेकर राजप्रासाद तक मार्ग के दोनों ओर खड़ी हो गई। महाराज देवगुप्त के नगर-प्रवेश से पूर्व ही दो सहस्र सैनिक राजप्रासाद के बाहर खड़े रहने के लिए भेज दिए गए।

जब यह प्रबंध हो गया तो अपने आगे-पीछे पाँच सौ सैनिक लेकर महाराज देवगुप्त सेनाध्यक्ष के साथ राजप्रासाद की ओर चल पड़े। सुषेण देवगुप्त के साथ रथ में बैठा हुआ था। उसने साथ-साथ जाते हुए यह अनुभव किया कि वह देवगुप्त को साथ नहीं ले जा रहा, प्रत्युत देवगुप्त उसको बंदी बनाकर अपने साथ ले जा रहा है।

राजमार्ग पर अथवा प्रासाद के बाहर कन्नौज का कोई सैनिक नहीं था। ग्रहवर्मन देवगुप्त को किसी प्रकार से भी शंकित करना नहीं चाहता था।

प्रासाद के द्वार पर ग्रहवर्मन स्वयं देवगुप्त का स्वागत करने के लिए उपस्थित हुआ। उसने हाथ फैलाकर आक्रमणकारी का अतिथि के रूप में स्वागत किया और उसे एक विशाल आगार में ले जाकर बैठाया। उस आगार में राज्यश्री मालव-नरेश का स्वागत करने के लिए उपस्थित थी। उसने अभ्यागत को आदर से उच्च आसन पर बैठाया और पश्चात् दासियों को जलपान का प्रबंध करने की आज्ञा दी।

महाराज देवगुप्त के उस आगार में प्रवेश करते ही पचास मालव सैनिक और सेनाध्यक्ष भी वहाँ आ, एक ओर दीवार के साथ पंक्तिबद्ध खड़े हो गए।

जलपान आरंभ हुआ और परस्पर बातचीत होने लगी। ग्रहवर्मन ने कहा, "बंधु! बिना सूचना के आने से आपका स्वागत भली-भाँति नहीं किया जा रहा।

"मैंने तो महामात्य अवलोकितेश्वर को आपकी सेवा में भेजा था और आपको सपरिवार यहाँ आमंत्रित किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि वे आपकी सेवा में उपस्थित नहीं हो सके और आप उनसे बिना मिले ही यहाँ के लिए चल पड़े हैं।"

"नहीं, यह बात नहीं मित्र!" देवगुप्त ने कहा, "वास्तव में अवलोकितेश्वर वहाँ पहुँच गए थे, परंतु हमने यही उचित समझा कि उनसे वार्तालाप करने से पूर्व ही हम यहाँ कन्नौज में आपसे भेंट कर लें।

"हमको विश्वस्त सूत्र से पता चला है कि कन्नौज राज्य का प्रबंध बहुत ढीला है। हम अपने पड़ोस में किसी ढीले राज्य को सहन नहीं कर सकते। इससे हमारे अपने राज्य की रक्षा संशित हो जाती है। अतः यहाँ पहुँच स्वयं स्थिति का अध्ययन कर, इसके प्रबंध में उचित व्यवस्था करने चला आया हूँ। अभी तक मार्ग में जो कुछ भी देखा है, उससे प्राप्त समाचारों की सम्पुष्टि ही हुई है। अतएव हमारा यहाँ आना सार्थक ही हुआ है।"

"किन बातों में श्रीमान् ने हमारा प्रबंध ढीला देखा है?"

"सीमा पर किसी का पहरा नहीं था। न कोई सैनिक चौकी ही है। सीमा से लेकर राजधानी तक मार्ग स्थान-स्थान पर टूटा हुआ है। हम इतनी बड़ी सेना लेकर इस राज्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में आए हैं। न तो कोई हमारा स्वागत करने वाला हमें मिला है और न क़ोई विरोध करने वाला। हमारी सेना के आगमन को देखने के लिए लोग घरों से बाहर निकल आते थे और बिना हर्ष तथा विषाद प्रकट किए अपने काम पर लग जाते थे। हमारे सैनिक जब कुछ क्रय करने उनके पास जाते, तो वे दाम लेकर वह वस्तु उनको दे देते थे। यहाँ राजधानी में भी, यहाँ की प्रजा हमारी सेना और हमें ऐसे देखती रही है, जैसे हम यहाँ हैं ही नहीं। इसी प्रकार की अनेक बातों को देख हमारा अनुमान सत्य सिद्ध हुआ है कि यह देश निर्जीव, प्राणरहित शव की भाँति है।"

"बंधु! ये सब बातें यहाँ गुण मानी जाती हैं, अवगुण नहीं। प्रजा, जिसे केवल मात्र प्रजा ही रहना है, उसको एक राजा और दूसरे में भेद करने की आवश्यकता नहीं। जहाँ तक सेना का संबंध है, मैंने इस राज्य में न्यूनतम कर दी है। इससे हमारा बहुत-सा धन बच जाता है। लोगों पर कर कम हैं और वे अपने जीवन से संतुष्ट हैं। सब संपन्न और समृद्ध हैं। ये तो राज्य की श्रेष्ठता के लक्षण हैं।"

"हम ऐसा नहीं समझते। जिस प्रकार आज मैं यहाँ आया हूँ, उसी प्रकार कल यहाँ हूण अथवा पार्थिया के सैनिक आ सकते हैं। यहाँ की प्रजा और सेना उनका विरोध तक नहीं कर सकेगी।"

"हम युद्ध द्वारा विरोध करना उचित नहीं मानते।"

"तो किस प्रकार विरोध करेंगे आप?"

"हम राज्य को एक मिथ्या भावना मानते हैं। यह मनुष्य-जन्म के मुख्य उद्देश्य, निर्वाण-प्राप्ति में किसी प्रकार सहायक नहीं हो सकता।"

"यही तो मैं देख रहा हूँ। इसी कारण मैं यहाँ आया हूँ। आप इसे व्यर्थ समझते हैं तो इसे उसको सौंप दीजिए, जो इसको सुख-सुविधा में सहायक समझते हैं।"

"मैं यही विचार कर रहा हूँ।"

"तो ठीक है। आप इस राज्य को छोड़ दीजिए। मैं राज्य को अपनी और प्रजा की सुख-सुविधा में साधन मानता हूँ और मुझको अपने जीवन का उद्देश्य पालन करने दीजिए।"

"क्या है आपके जीवन का उद्देश्य?"

"स्वयं सुख प्राप्त करना और अपनी प्रजा को सुख पहुँचाना।"

"सुख-प्राप्ति से मनुष्य उन्नति नहीं करता, प्रत्युत पतन की ओर जाता है।"

"ठीक है। यह आपका विचार है न। आप निर्वाण-प्राप्ति के लिए प्रयत्न कीजिए। मेरी शुभ कामना आपके साथ है।"

"तो?"

"तो यह कि इस समय से मालव राज्य और कन्नौज राज्य एक होते हैं और इन दोनों राज्यों का स्वामी देवगुप्त होगा।"

"मेरे लिए क्या आज्ञा है?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं आपको आज्ञा देने नहीं आया। आपको जो कुछ उचित प्रतीत हो कीजिए। मैं कन्नौज राज्य में जो घोषणा करवा रहा हूँ, वह सुन लीजिए।"

महाराज देवगुप्त ने अपने सेनाध्यक्ष को समीप बुलाकर घोषणा लिखने के लिए कहा। महाराज ने लिखाया, "मालव-नरेश महाराजाधिराज देवगुप्त यह घोषणा करते हैं कि महाराज ग्रहवर्मन की सहमति से वे कन्नौज राज्य को मालवा में सम्मिलित कर रहे हैं। आज से कन्नौज की प्रजा हमारी प्रजा है। हम वचन देते हैं कि कन्नौज की प्रजा की सुख-शांति और रक्षा के लिए यत्न करना आज से हमारा वैसा ही कर्तव्य होगा जैसा मालव-प्रजा की सुख-प्राप्ति और रक्षा के लिए है।

"हम अपनी सेना के साथ कन्नौज के अतिथि हैं और चाहते हैं कि कन्नौज की प्रजा हमारी सेना तथा हमारे साथियों की प्रत्येक प्रकार से सेवा-शुश्रूषा कर उन्हें प्रसन्न करे। इस सेवा-शुश्रूषा का उचित मूल्य प्रत्येक को मिलेगा। हम अपनी सेना के कोषाध्यक्ष को आज्ञा देते हैं कि प्रजा से सेवा के उपलक्ष्य में उन्हें उचित मूल्य दिया जाए।

"हम अपने सैनिकों को आज्ञा देते हैं कि मालव-प्रजा की भाँति कन्नौज की प्रजा को भी हमारी प्रजा समझें और उनके साथ मैत्री-भाव रखें।"

इस घोषणा को सेनाध्यक्ष ने सैनिकों को देकर कहा कि इसे कन्नौज की प्रजा को सुना दिया जाए और सैनिक इसके अनुकूल आचरण करें।

११

जलपान के पश्चात् देवगुप्त ने सेनाध्यक्ष को आज्ञा दी, "हम आज से इसी राजप्रासाद में रहेंगे। हमारे ठहरने और विश्राम का उचित प्रबंध कर दिया जाए। प्रासाद के सब सेवक और सेविकाओं को आज्ञा दी जाए कि वे उसी प्रकार कार्य करते रहें, जैसे अभी तक कर रहे थे। सबको उचित वेतन एवं पुरस्कार मिलेगा।"

इतना कह देवगुप्त उठ खड़ा हुआ और राज्यश्री को संबोधन कर कहने लगा, "देवी! हमारा मार्ग दिखाओ। हमारे विश्राम के लिए कौन-सा आगार है?"

राज्यश्री ने अपनी सेविका को आज्ञा दी, "चंदा! महाराज को इनके लिए निश्चित आगार में ले जाओ।"

"नहीं देवी! चंदा नहीं। यह हमारे यहाँ की प्रथा नहीं है। हमारे प्रासाद में रानियाँ ही राजा की सेवा करती हैं। सेविकाओं को इस कार्य के लिए नियुक्त नहीं किया जाता।"

"ठीक है महाराज! परंतु जिस क्षण से मेरे पतिदेव यहाँ के महाराज नहीं रहे, मैं महारानी नहीं रही। अतः रानी के अभाव में चंदा ही आपका पथ-प्रदर्शन करेगी।"

"तो हम आज्ञा देते हैं कि देवी राज्यश्री आज से हमारी रानी होंगी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हम भरत-खण्ड में रहने वालों में यह प्रथा नहीं है महाराज ! एक विवाहिता पत्नी अपने पति के अतिरिक्त किसी दूसरे की सेवा नहीं कर सकती।"

राज्यश्री का मुख क्रोध से तमतमा रहा था। देवगुप्त ने उसके रक्त-मुख को देखकर कहा, "हम यह जानते हैं। परंतु देवी ! तुम्हारे पति तो आज सायंकाल से पूर्व बौद्ध-भिक्षु होने जा रहे हैं। अतः तुम पत्नी नहीं रहोगी। हम आज्ञा देते हैं कि भीतर जाकर हमारे विश्राम का प्रबंध करो।"

राज्यश्री ने उत्तर नहीं दिया और अपने आगार की ओर चल दी। देवगुप्त ने उसे जाते देखा तो उसके पीछे-पीछे चल पड़ा। ग्रहवर्मन ने उसका मार्ग रोककर कहा "महाराज ! इस ओर नहीं। आप पथ भूल रहे हैं। उधर चलिए। दासी चंदा आपको आपके विश्रामगृह की ओर ले जाएगी।"

देवगुप्त ने एक क्षण के लिए ग्रहवर्मन का मुख देखा। पश्चात् अपनी खड्ग निकालकर कहा, "ग्रहवर्मन ! मार्ग छोड़ो। हमें अपनी इच्छा का विरोध पसंद नहीं है।"

ग्रहवर्मन ने मार्ग नहीं छोड़ा। उसने कहा, "बंधु ! मैं अपने मित्र को पथभ्रष्ट नहीं होने दूँगा। आपका मार्ग उस ओर है।"

एक ही वार से देवगुप्त ने ग्रहवर्मन का सिर धड़ से पृथक् कर दिया और फिर वह राज्यश्री के पीछे-पीछे चल पड़ा।

मुख्य भवन से एक सँकरा मार्ग अंतःपुर की ओर जाता था। राज्यश्री इसी मार्ग से गई थी। देवगुप्त भी उसी मार्ग पर चल पड़ा। सेनाध्यक्ष के संकेत से पाँच सैनिक भी उसके साथ हो लिए, परंतु देवगुप्त ने उन्हें साथ आने से मना कर दिया।

राज्यश्री के आगार में देवगुप्त को एक और बाधा खड़ी दिखाई दी। दस स्त्रियाँ नग्न खड्ग लिए मार्ग को रोके खड़ी थीं। देवगुप्त इन बालिकाओं को देख हँस पड़ा। हँसते हुए उसने कहा, "देवियो ! मैं यहाँ का महाराज देवगुप्त हूँ। मार्ग छोड़ दो।"

"महाराज ! यह आवास स्थानेश्वर-अधिपति महाराज प्रभाकरवर्धन की सुपुत्री राज्यश्री का है। देवी की, जो दो वीर भ्राताओं की भगिनी हैं, आज्ञा से हम रक्षा के लिए खड़ी हैं।"

"ओह ! तो यह बात है !" देवगुप्त ने सबसे आगे जो खड़ी थी उसको संबोधन कर कहा, "देवी ! तुम कौन हो ? तुम तो अच्छी सुंदर स्त्री हो। मैं समझता हूँ कि हमारे सेनाध्यक्ष तुमको पसंद करेंगे।"

यह कात्यायिनी थी। वह सबसे आगे खड़ी देवगुप्त का मार्ग रोक रही थी। देवगुप्त ने अपना रक्तरंजित खड्ग म्यान में डालते हुए कहा, "हम सुंदर स्त्रियों पर खड्ग-प्रहार नहीं कर सकते। यह हमारे धर्म के विपरीत है। अतएव हम आपसे अनुरोध करते हैं कि हमारा मार्ग छोड़ दें। हम सबको पुरस्कार देंगे।"

"नहीं महाराज !" कात्यायिनी ने कहा, "यह मार्ग आपका नहीं है। आप भूल कर रहे हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो तुम मार्ग नहीं दोगी ?"

"महाराज ! यह मार्ग आपके लिए नहीं है ।"

देवगुप्त कुछ क्षण तक विचार कर वापस लौट आया और अपने सैनिकों से बोला, "राज्यश्री तथा इन देवियों को बंदी बना लो ।"

पाँच सैनिक, जो उसके पीछे-पीछे आए थे, आगे बढ़ गए। कात्यायिनी तथा उसकी साथिनों ने उनका विरोध किया। युद्ध हुआ और एक-एक कर सब स्त्रियाँ मार डाली गईं। वे सैनिक उनको समाप्त करके ही राज्यश्री के आगार में प्रवेश पा सके। आगे बढ़कर जब सैनिक राज्यश्री को पकड़ने लगे, तो उसने कहा, "ठहरो ! मैं स्वयं तुम्हारे महाराज के पास चलती हूँ ।" इतना कह वह आगार से बाहर की ओर चल पड़ी। सैनिकों ने उसे चारों ओर से घेर लिया। इस समय तक देवगुप्त उस आगार में पहुँच गया था, जहाँ चंदा ने उसके लिए प्रबंध किया हुआ था।

देवगुप्त एक पलंग पर विश्राम कर रहा था। दो दासियाँ उसके पाँव दबा रही थीं। इसी समय सैनिक राज्यश्री को घेरे हुए वहाँ ले आए।

देवगुप्त उनको आया देख पलंग पर से उठ खड़ा हुआ। सैनिकों ने राज्यश्री को उसी आगार में छोड़ दिया और बाहर निकल गए। देवगुप्त ने कहा, "आओ देवी ! यहाँ बैठो !" इतना कह उसने अपने पलंग की ओर संकेत किया।

राज्यश्री पलंग पर बैठ गई। देवगुप्त पुनः लेट गया। उसने लेटे-लेटे राज्यश्री का बायाँ हाथ अपने दाहिने हाथ में ले लिया और उसे अधरों से लगा लिया।

इसी समय राज्यश्री ने अपने दाहिने हाथ से अपने उत्तरीय के नीचे से कटार निकाली और अपने पूरे बल से देवगुप्त के हृदयस्थल पर वार कर दिया; परंतु देवगुप्त सतर्क था। उसने अपने बाएँ हाथ से उसका दाहिना हाथ हृदयस्थल से एक इंच ऊपर ही रोक लिया और पश्चात् उसे इतनी जोर से मरोड़ा कि राज्यश्री के हाथ से कटार नीचे गिर पड़ी। राज्यश्री अचेत हो गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय परिच्छेद

१

गुप्त राज्य के ह्रास के समय हूण, जो मध्य एशिया से कामभोज, गांधार, कश्मीर और तिब्बत की ओर बढ़ रहे थे, भारत देश में घुस आए। सिंधु नदी पार कर हूण बढ़ते-बढ़ते पूर्ण पांचाल देश में छा गए। उस समय श्रीकंठ में, जिसकी राजधानी स्थानेश्वर थी, प्रभाकरवर्धन, एक शूरवीर राजा राज्य करता था। प्रभाकरवर्धन ने हूणों के भारत में आगे बढ़ने को न केवल रोका, प्रत्युत उनको धकेलकर वापस सिंधु पार कर दिया।

प्रभाकरवर्धन के दो पुत्र और एक लड़की थी। लड़की राज्यश्री सबसे छोटी थी। ज्येष्ठ पुत्र राज्यवर्धन स्थानेश्वर की शक्तिशाली सेना लेकर हूणों का पीछा करता हुआ सिंधु नदी के तट पर जा पहुँचा था। हूण सिंधु-पार लौट गए थे और वीर राज्यवर्धन उनको गांधार से निकाल कामभोज से भी दूर कर, सुमेरु पर्वत तक कर देना चाहता था।

राज्यवर्धन ने समुद्रगुप्त के पराक्रम की गाथाएँ सुनी थीं। उसने यह भी सुना था कि कैसे वह बीस वर्ष तक लड़ता हुआ, शकों को पछाड़ता हुआ उन्हें सुमेरु पर्वत के पश्चिम की ओर धकेल पाया था। यहाँ तक कि राज्यवर्धन के मन में वहीं वीरगति प्राप्त करने की लालसा जाग पड़ी थी।

प्रभाकरवर्धन की लड़की राज्यश्री का विवाह कन्नौज के युवक महाराज ग्रहवर्मन के साथ हुआ था। इस प्रकार प्रभाकरवर्धन अपने राज्य के पूर्व के पड़ोसी को अपना जामाता बना, निश्चिंत होकर ही पश्चिम से देश में घुस आए म्लेच्छों से युद्ध कर पाया था।

राज्यवर्धन को पांचाल को म्लेच्छों से रिक्त करने से ही संतोष नहीं हुआ। वह भली-भाँति जानता था कि जब तक इनको गांधार तथा कामभोज से भी धकेलकर बाहर नहीं किया जाएगा, देश में इनके पुनः आक्रमण करने का भय बना रहेगा। अतएव उसने सिंधु नदी के पूर्वी तट पर पड़ाव डाल, सेना का पुनर्गठन करना आरंभ कर दिया, जिससे वह नदी पार कर अपनी समर को इसके स्वाभाविक परिणामों तक पहुँचा सके।

इस समय स्थानेश्वर में राज्यवर्धन के पिता प्रभाकरवर्धन का एकाएक तीव्र ज्वर के कारण देहांत हो गया।

प्रभाकरवर्धन का कनिष्ठ पुत्र हर्षवर्धन उस समय पिता के पास था। प्रभाकरवर्धन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के निधन से एक दिन पूर्व ही कन्नौज का पदच्युत महामात्य पद्मराज सहायता माँगने प्रभाकरवर्धन के पास आया था, परंतु स्थानेश्वर-अधिपति के अति रुग्ण होने के कारण वह उनसे मिल न सका। अगले दिन महाराज प्रभाकरवर्धन का देहांत हो गया। पद्मराज यह जानते हुए भी कि कन्नौज में मालव सेना ऊधम मचा रही होगी, कुछ कर नहीं सका।

महाराज प्रभाकरवर्धन की अत्येष्टि-क्रिया के समय पद्मराज उपस्थित था। वह हर्षवर्धन के समक्ष उपस्थित हुआ। अपना परिचय दे उसने महाराज के निधन पर शोक प्रकट किया; परंतु हर्षवर्धन अपने पिता के निधन के कारण इतना दुखी था कि वह कन्नौज का समाचार पूछना ही भूल गया।

महाराज प्रभाकरवर्धन के क्रियाकर्म के समाप्त होने तक कन्नौज के विजित हो जाने का समाचार भी आ गया। कन्नौज से विष्णुकांत द्वारा भेजा हुआ दूत समाचार लेकर स्थानेश्वर आया और उस समाचार लाने वाले व्यक्ति को लेकर पद्मराज हर्षवर्धन की सेवा में उपस्थित हुआ।

राज्यवर्धन अपने पिता के देहांत का समाचार पाकर सेना को सिंधु तट पर ही छोड़ तीव्रगामी अश्व पर सवार हो स्थानेश्वर आ पहुँचा। दोनों भाई अभी पिता के देहांत से उत्पन्न परिस्थिति में अपने को अभ्यस्त ही कर रहे थे कि पद्मराज कन्नौज के दूत के साथ उपस्थित हो गया।

राज्यवर्धन के समक्ष पद्मराज ने महाराज की मृत्यु पर शोक प्रकट करने के पश्चात् निवेदन किया, "श्रीमान् ! मैं महाराज के निधन के केवल एक दिन पूर्व ही यहाँ पर पहुँचा था। महाराज के रुग्ण होने के समाचार को सुन मैं अपना संदेश उन तक नहीं पहुँचा सका। बाद में कनिष्ठ कुमार की सेवा में उपस्थित हुआ था, परंतु कुमार के मन को दुःखित देख अपने आने का प्रयोजन नहीं बता सका।

"वास्तव में उस समय मुझको कन्नौज की उस दुर्घटना का ज्ञान नहीं था, जिसका समाचार यह दूत वहाँ से लेकर अभी-अभी आया है।"

दूत ने कन्नौज में घटी पूर्ण घटना का वृत्तान्त सुनाया। उसे सुन दोनों भाइयों का मुख क्रोध से लाल हो उठा। राज्यवर्धन पिता के देहावसान का दुःख, बहन की दुर्गति को सुन भूल गया। उसने माथे पर त्यौरी चढ़ाकर पद्मराज से कहा, "और तुम बैठे क्या कर रहे हो ?"

"मुझको महाराज ग्रहवर्मन ने देश से निर्वासित कर दिया था। मैं वहाँ रहकर कुछ भी कर सकने के अयोग्य होने के कारण श्रीमान् स्वर्गीय महाराज की सेवा में उपस्थित होने के लिए आया था।"

"मैं आज ही अपनी सेना को, जो सिंधु नदी के तट पर पड़ी है, वापस बुलाने के लिए आज्ञा भेज रहा हूँ। उस सेना के वहाँ से लौटने और फिर कन्नौज तक पहुँचने में छः मास लग जाएँगे। तब तक राज्यश्री का क्या होगा, कहना कठिन है। मैं कुछ कार्य शीघ्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही करने के लिए व्याकुल हूँ।"

"मेरा विचार है," पद्मराज ने कहा, "उतावली में कुछ करने से पराजय होने का डर है। मालव राज्य आज भारी विस्तार पा चुका है और फिर इस राज्य का गौड़ राज्य से गठजोड़ है। ऐसी अवस्था में मालव राज्य से युद्ध करने के लिए भारी तैयारी की आवश्यकता है।"

"देखिए पद्मराज जी!" राज्यवर्धन ने कहा, "राज्यश्री को तो शीघ्र ही मुक्त कराना है। जब तक वह बंदी है, मैं सुख की नींद नहीं सो सकता। अतएव मैं आज ही उसको मुक्त कराने का यत्न करने के लिए प्रस्थान कर रहा हूँ। शेष बाद में देख लूँगा।"

पद्मराज इतनी जल्दी कार्यवाही के पक्ष में नहीं था। फिर भी राज्यश्री के जो समाचार आए थे, उससे राज्यवर्धन का शांत पड़े रहना वह कठिन समझता था। इस कारण वह राज्यवर्धन को मना नहीं कर सका।

कन्नौज के दूत ने बताया—"जब महारानी जी की सखी कात्यायिनी तथा अन्य सेविकाओं को मृत्यु के घाट उतारकर मालव सैनिक महारानी जी को देवगुप्त के आगार में ले गए तो महारानी जी ने कटार से देवगुप्त की हत्या करनी चाही; परंतु देवगुप्त बच गए। बाद में समाचार मिला है कि महारानी राज्यश्री को कारागार में डाल दिया गया है। उनको भूम्यान्तर्गत आगारों में रखा गया है और रोटी के दो टुकड़े डाल दिए जाते हैं।"

इस प्रकार के दुर्व्यवहार से ही राज्यवर्धन पागल हो, अपने साथ केवल पाँच सौ सैनिक लेकर कन्नौज की ओर चल पड़ा।

२

राज्यवर्धन ने पद्मराज को साथ ले जाने की इच्छा प्रकट नहीं की। पद्मराज तो पहले ही दिन कन्नौज लौट जाना चाहता था, परंतु यह विचार कर कि राज्यवर्धन उसकी सेवाओं से लाभ उठाएगा, वह स्थानेश्वर में टिका रहा। अगले दिन पद्मराज हर्षवर्धन की सेवा में उपस्थित हुआ तो उसको पता चला कि उसी दिन राज्यवर्धन ने प्रस्थान कर दिया है और उसके साथ केवल पाँच सौ घुड़सवार ही हैं। इस समाचार से पद्मराज को दुःख हुआ। वह समझता था कि राजकुमार राज्यवर्धन उसको अपने साथ परामर्श के लिए ले जाएगा। साथ ही केवल पाँच सौ सैनिकों से वह कन्नौज विजय कर सकेगा, संदेहात्मक बात थी।

फिर भी वह हृदय से चाहता था कि कन्नौज मालवा के आधिपत्य से स्वतंत्र हो जाए। उसने अपने मन का संदेह हर्षवर्धन से वर्णन कर दिया। उसने कहा, "राजकुमार! आपके ज्येष्ठ भ्राता को इस प्रकार, बिना पूर्ण स्थिति से परिचय प्राप्त किए और उस पर विचार किए बिना जाना उचित नहीं था।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैंने उनसे कहा था। परंतु उनको बहन को छुड़ाने के लिए वहाँ जाना अत्यावश्यक जान पड़ा और वे बिना किसी भी कठिनाई का विचार किए चले गए।"

"कार्य में सफलता अति कठिन प्रतीत होती है। मालव-महाराज के साथ पचास सहस्र पैदल सेना है। कितने ही हाथी और सहस्रों अश्व हैं। इतनी बड़ी सेना का विरोध पाँच सौ सैनिक किस प्रकार कर सकेंगे?"

"तो फिर क्या किया जाए?"

"मेरी सम्मति है कि उनकी सहायतार्थ एक बहुत बड़ी सेना यहाँ से शीघ्रातिशीघ्र जानी चाहिए।"

"उसके लिए सिंधु-तट पर पड़ी सेना को वापस बुला लिया गया है। पाँच दिन दूत के वहाँ पहुँचने और फिर पच्चीस दिन सेना के वहाँ से लौटने में लग जाएँगे। यहाँ एक मास का समय उस सेना को विश्राम के लिए दिया जाएगा और फिर यहाँ से कन्नौज तक जाने में पंद्रह दिन और लगेंगे। इस प्रकार कम-से-कम दो-ढाई मास लगेंगे। और फिर जाते ही युद्ध तो हो नहीं सकता।"

पद्मराज ने कहा, "एक बात और भी है। मालव-नरेश ने गौड़ महाराज शशांक से संधि कर रखी है। उसका भी विचार करना होगा।"

"आप क्या सुझाव देते हैं?"

"मेरा सुझाव है, गौड़ राज्य के पूर्व की ओर कामरूप है। वहाँ के अधिपति एक अच्छे और योग्य शासक हैं। हमारी उनसे मैत्री और परस्पर सहायता की संधि हो जानी चाहिए। यदि यह हो सका तो हम उस क्षेत्र में गौड़ राज्य के भय से मुक्त हो जाएँगे।"

हर्षवर्धन यद्यपि आयु में राज्यवर्धन से छोटा था, परंतु विचारशील उससे अधिक था। उसको पद्मराज का सुझाव पसंद आया। उसने पद्मराज से कहा, "सेना के आते ही सेनापति भंडी के अधीन उसे बड़े भाई की सहायता के लिए भेज दिया जाएगा। तब तक संधि की वार्ता के लिए मैं अपना दूत कामरूप भेज रहा हूँ। आप अब क्या करना चाहेंगे?"

"मैं तो आज ही कन्नौज लौट जाना चाहता हूँ। वहाँ मेरा परिवार है। उनके विषय में मैं चिंतित हूँ। वहाँ रहते हुए यदि राजकुमार जी की कुछ भी सहायता कर सका तो अवश्य करूँगा।"

हर्षवर्धन पद्मराज के सुझाव पर दिन-भर विचार करता रहा। अगले दिन उसने पंडित चतुरानन को बुलाकर पूर्ण परिस्थिति से परिचित कराया और उसको कामरूप के महाराज भास्करवर्मन से मिलकर वार्तालाप करने के लिए तथा परस्पर सहायता की संधि करने के लिए भेज दिया।

पंडित चतुरानन अपने साथ कुछ अश्वारोहियों को लेकर स्थानेश्वर से चल पड़ा और पंद्रह दिन में कामरूप जा पहुँचा। वहाँ पहुँच उसे यह जानकर विस्मय हुआ कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भास्करवर्मन को मालवा का कन्नौज पर विजय प्राप्त कर लेना विदित है।

महाराज भास्करवर्मन बहुत ही चतुर और योग्य शासक था। पंडित चतुरानन के वहाँ पहुँचते ही उसने उनसे भेंट की। दूत के सम्मुख आने पर महाराज ने कहा, "आप लोग बहुत देर से आए हैं। इस समय कन्नौज में मालव राज्य स्थापित हो चुका है। गौड़ और मालव राज्यों की सेनाएँ एकत्रित हो रही हैं और दोनों मिलकर भरत-खंड में चक्रवर्ती राज्य स्थापित करने का स्वप्न देख रही हैं।"

"ठीक है महाराज! परंतु महाराज प्रभाकरवर्धन स्वयं और उनके ज्येष्ठ सुपुत्र राजकुमार राज्यवर्धन हूणों को देश से निकालने में संलग्न थे। यह कार्य अधूरा पड़ा हुआ था और पूर्ण देश की प्रजा उनसे भयभीत रहती थी। इस कार्य को पूर्णता तक पहुँचाने का भार हमारे महाराज ने अपने सिर पर लिया और बीस वर्ष तक सतत प्रयत्न कर उनको चंद्रभागा नदी से धकेलते हुए सिंधु-तट के पार कर छोड़ा है। हमारे महाराज कुमार उनसे गांधार देश को भी खाली कराने की योजना बना सिंधु पार करने वाले थे कि जहाँ एक ओर महाराज का निधन हो गया वहाँ दूसरी ओर हमारी पीठ पर मालवा तथा गौड़ राज्य ने छुरा घोंप दिया है। हम तो देश के प्रहरी बन देश की संस्कृति और धर्म की रक्षा में संलग्न थे और मालव-नरेश ने हमारी राजकुमारी का अपमान कर उसे बंदीगृह में डाल दिया है।

"ऐसी अवस्था में महाराज-कुमार ने श्रीमान् का धर्म और संस्कृति में उत्साह देख, मुझे आपकी सेवा में भेजा है। हमें पूर्ण आशा है कि श्रीमान् देश में पुनः धर्म की संस्थापना के लिए हमें सहयोग देंगे।"

भास्करवर्मन ने कहा, "पंडित चतुरानन! यही तो मैं कह रहा हूँ। इन दोनों के गठजोड़ को निर्बल करने का उपाय यही है, जो तुम यहाँ करने आए हो। हम महाराज स्थानेश्वर के हूणों को पछाड़ने के प्रयत्नों को बहुत उत्साह और प्रसन्नता से सुनते रहे हैं। हम समझते हैं कि ऐसे राज्य की, जो देश, धर्म और जाति के लिए इतना कुछ कर रहा है, सहायता करना देश के सब राज्यों का कर्तव्य है। कुछ भी हो, हम महाराज-कुमार से मैत्री करने तथा उनसे परस्पर सहायता की संधि करने के लिए उत्सुक हैं।"

भास्करवर्मन ने अपने दूत हंसवेग को स्थानेश्वर भेज दिया और वहाँ संधि की चर्चा होने लगी। वास्तव में कामरूप की पश्चिमी राज्यों से रक्षा मगध के बलशाली राज्य के कारण रहती थी। पिछली आधी शताब्दी से मगध राज्य हूणों से युद्ध करते-करते दुर्बल पड़ गया था। इस कारण अब वह पश्चिमी राज्यों के मार्ग में बाधा नहीं रहा था। कामरूप का अधिष्ठाता सतर्कता से अपने देश की रक्षा के लिए भारत-भर में चल रहे छोटे-छोटे राज्यों के संघर्ष को दृष्टि में रखे हुए था।

जहाँ तक हूणों के आक्रमण का संबंध था, स्थानेश्वर राज्य ने उनको पिछले बीस वर्षों से रोक रखा था। महाराज भास्करवर्मन को जब मालवा और गौड़ राज्यों में गठजोड़ की सूचना मिली तो वह चिंता अनुभव करने लगा था। वह चाहता था कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थानेश्वर के वीर राज्य से संधि कर ले और इन दोनों राज्यों के गठजोड़ के विरोध में एक गठजोड़ तैयार कर ले। परंतु स्थानेश्वर राज्य अपनी पश्चिमोत्तरी सीमा की रक्षा में इतना लीन था कि उसको देश में मालवा-गौड़ संधि का ज्ञान ही नहीं था।

हंसवेग के प्रयत्न से स्थानेश्वर और कामरूप में संधि हो गई। इस प्रकार अपनी स्थिति को सबल कर हर्षवर्धन ने अपना ध्यान कन्नौज की ओर किया। इतने काल में सिंधु-तट से स्थानेश्वर की सेना वापस पहुँच गई थी। हर्षवर्धन ने उसे सेनापति भंडी के अधीन कन्नौज की ओर भेज दिया।

राज्यवर्धन दुःखित-हृदय, परंतु क्रोध से भरा हुआ स्थानेश्वर से चल तो पड़ा, परंतु दो-तीन दिन की यात्रा के पश्चात् उसको अनुभव होने लगा कि उसने इतने कम सैनिक साथ लाकर भूल की है। फिर भी वह वापस लौटकर जाना अपनी हेठी समझता था। अतएव वह गंभीरतापूर्वक विचार करने लगा कि किस प्रकार कृतकार्य हो सकता है।

स्थानेश्वर राज्य की सीमा कन्नौज राज्य की सीमा से मिलती थी। इस कारण राज्यवर्धन सीमा पार करने से पूर्व अंतिम पड़ाव पर दो दिन के लिए ठहर गया और अपनी योजना बनाने लगा।

पूर्ण घटना पर विचार करने पर उसकी समझ में आया कि उसके सामने प्रथम कार्य राज्यश्री को बंदीगृह से छुड़ाना है। राज्य को मुक्त करना अथवा मालव-नरेश को दण्ड देना बाद की बात है। उसमें तो समय लगेगा।

अतएव उसने स्थानेश्वर एक दूत भेज दिया। उस दूत के साथ हर्षवर्धन को कहला भेजा कि सेनापति भंडी के अधीन पचास सहस्र सेना के दो भाग कर, एक भाग को कन्नौज पर और दूसरे को कन्नौज और मालवा की सीमा पर मार्ग रोकने के लिए भेज दे।

पश्चात् उसने अपने सब सैनिकों को नागरिक वेश में कन्नौज में प्रवेश करने की आज्ञा दे दी। उनको यह भी कह दिया कि वे कन्नौज नगर के मध्यवर्ती चौक में प्रति सायंकाल आम्रकूट सेनानायक से अपने कार्य के लिए आदेश ले जाया करें।

इस कारण चार-पाँच दिन के भीतर सब सैनिक कन्नौज में प्रवेश कर गए। पश्चात् वह स्वयं, आम्रकूट, नैकृत और पिंडस सेनानायकों के साथ कन्नौज में प्रवेश कर गया।

३

पद्मराज भी एक देहाती वेशभूषा में कन्नौज जा पहुँचा। यह राज्यवर्धन के राज्य में प्रवेश करने के कई दिन बाद की बात है। उसका सबसे प्रथम कार्य अपने परिवार की सूचना प्राप्त करना था। जब वह अपने निवासगृह के बाहर पहुँचा तो यह देख उसे अत्यंत दुःख हुआ कि उसके गृह में मालवा के सैनिक भरे पड़े हैं। गृह के चारों ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विस्तृत मैदान था और उसमें भी सैनिकों के खेमे लगे थे।

परिवार के विषय में पता करने के लिए वह वासुदेव के मंदिर में विष्णुकांत से मिलने गया। मंदिर में ताला लगा था और बाहर कुछ मालव सैनिक बैठे हुए थे। कात्यायिनी के विषय में तो वह सुन चुका था कि वह कुछ अन्य दासियों के साथ राज्यश्री के आगार में, उसकी रक्षा करते हुए मारी गई थी। इस कारण अन्य कोई स्रोत न होने से वह नहीं जान सका कि उसके परिवार का क्या हुआ है।

इस परिस्थिति के विषय में जानने के साथ-साथ उसके सम्मुख अपने ठहरने की भी समस्या थी। वह कई पंथागारों में गया, परंतु कहीं स्थान नहीं मिला। सबमें मालव सैनिक डेरा डाले हुए थे।

नगर में स्थान न मिलने के कारण वह अति चिंतित था। एक बात उसने यह भी अनुभव की थी कि राज्यवर्धन तथा उसके साथ आए सैनिकों का कहीं चिह्नमात्र भी नहीं था और न ही उनकी कहीं चर्चा थी।

वह मध्याह्न के समय नगर में पहुँचा था और संध्या हो चली थी। अभी तक उसे न तो ठहरने को स्थान मिला था और न ही उसके परिवार के किसी व्यक्ति का पता चला था।

नगर में उसके कई परिचित थे, परंतु वह किसी को भी प्रकट नहीं होने देना चाहता था कि वह नगर में है। अपने को प्रकट करने से पूर्व वह यह जानना चाहता था कि उसके परिवार का क्या हुआ है और उसके प्रति मालव-नरेश की क्या भावना है।

सायंकाल उसको भूख लगी तो एक दुकान पर कुछ खाने जा पहुँचा। दुकान पर जब वह मिष्ठान्न खा रहा था तो उसने देखा कि एक ओर दो व्यक्ति परस्पर कानाफूसी कर रहे हैं। जहाँ कानाफूसी हो, वहाँ कुछ छिपाने को है, ऐसा अनुमान कर वह सतर्क हो, उन दोनों के हाव-भाव ध्यानपूर्वक देखने लगा।

एकाएक वे दोनों उठे और उस दुकान से बाहर निकल गए।

पद्मराज ने भी मिष्ठान्न का मूल्य चुकाया और बाहर निकल उनका पीछा करने लगा। कुछ दूर जाकर दोनों पृथक्-पृथक् हो गए। पद्मराज एक के पीछे चल पड़ा। वह व्यक्ति राजप्रासाद की ओर गया और प्रासाद के बाहर खड़े सैनिकों में से एक के साथ कुछ कानाफूसी करने लगा।

पद्मराज कुछ अंतर पर खड़ा देखता रहा। जब वह व्यक्ति वहाँ से भी चला तो पद्मराज पुनः उसके पीछे हो लिया। वह व्यक्ति नगर के एक सघन भाग की ओर चल पड़ा। पद्मराज इस व्यक्ति के आचरण से एक बात तो समझ गया कि वह राज-सत्ता का अंग नहीं हो सकता। राज-सत्ता के पक्षपाती को लुकाव-छिपाव की आवश्यकता नहीं हो सकती। इस अनुमान से वह उसको राज-विरोधी पक्ष का व्यक्ति समझने लगा था। इस विचार से वह अपनी दिन-भर की थकावट तथा अपनी अनिश्चित अवस्था को भूल गया। उसको उस व्यक्ति के विषय में अधिक जानने की इच्छा हो आई। साधारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरिक के वेश में वह व्यक्ति एक सँकरी वीथिका में घुस गया। पद्मराज लगभग बीस गज के अंतर पर था। वह भी उस वीथिका में प्रवेश कर चलने लगा।

उस समय तक अँधेरा हो गया था और वीथिका के दोनों ओर ऊँचे-ऊँचे भवन होने से वहाँ बिलकुल अँधेरा था और इस अँधेरे में वह व्यक्ति कहीं विलीन हो गया। पद्मराज ने अपनी चाल तीव्र की परंतु कहीं पता नहीं चला। आगे जाकर वीथिका बंद हो गई थी। वह व्यक्ति किसी भवन में प्रवेश कर गया था।

विवश वह वीथिका से बाहर आ गया। उसे इस बात का दुःख था कि वह उस व्यक्ति के विषय में कुछ जान नहीं सका। वीथिका को बाहर से पहचानने के लिए उसने उसके बाहर के भवनों को ध्यानपूर्वक देखा और उन भवनों को हृदयंगम कर एक अन्य मार्ग पर चल पड़ा। अब वह पुनः राजमार्ग पर आ गया था। वह मन में सोच रहा था कि इस वीथिका में अगले दिन पुनः आएगा और जानकारी प्राप्त करने का यत्न करेगा। इस समय उसको पुनः अपने ठहरने का स्थान ढूँढ़ने का ध्यान हो आया। अब वह अपने परिचितों के द्वार खटखटाने की सोच रहा था।

अभी वह थोड़ी दूर ही गया था कि उसे अनुभव हुआ कि कोई उसका पीछा कर रहा है। इससे वह अपने संदेह की जाँच करने के लिए मार्ग में एक तांबूल की दुकान पर खड़ा हो गया। एक टका उसने तांबूली के आगे फेंककर कहा, "एक तांबूल लगा दो।"

तांबूली ने उसका स्वर सुना तो ध्यानपूर्वक उसकी ओर देखने लगा। पश्चात् तुरंत आँख नीची कर पान लगाने लगा। इसी समय वह व्यक्ति जो पद्मराज का पीछा कर रहा था, वहाँ आ पहुँचा। उसने भी एक टका तांबूली के आगे फेंककर कहा, "एक तांबूल लगा दो।"

पद्मराज को अपने संदेह की पुष्टि मिल गई। वह विचार करने लगा कि यह व्यक्ति अवश्य राज-कर्मचारी होगा। अब उसे कुछ-कुछ भय लगने लगा।

तांबूली ने पान लगाकर पहले उस व्यक्ति को दिया। पानवाले के इस कार्य पर पद्मराज को संदेह हुआ और उसने कहा, "भाई ! मैं तो पहले आया था।"

तांबूली ने कहा, "हट ! जानता नहीं किनके विषय में कह रहा है। ये तो आजकल कन्नौज के देवता हैं।"

पद्मराज समझ गया कि उसका पीछा करने वाला कोई विशेष व्यक्ति है। तांबूली ने एक बात और कही, "देखो, तुम्हारे लिए यह पान ठीक नहीं। यह तो मघई पान है। यहाँ के रईसों और बड़े लोगों के लिए है। तुम देहाती हो। इसके खाने में मजा नहीं आएगा। तुम्हें देसी पान देता हूँ।"

इतना कह तांबूली उठकर दुकान के भीतर चला गया। वह व्यक्ति, जिसको पान मिल चुका था, एक क्षण तक पद्मराज के मुख को देखता रहा और पश्चात् आगे बढ़ गया। तांबूली ने पान लाने में देरी कर दी। अब इस देरी में भी पद्मराज को कुछ रहस्य जान पड़ा। वह चुपचाप वहाँ खड़ा रहा और चोर-आँख से उस व्यक्ति को जाते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखने लगा। वह व्यक्ति पचास पग आगे गया। फिर एक ओर खड़ा हो पानवाले की दुकान की ओर मुख कर खड़ा हो गया। अब पद्मराज को बिलकुल संदेह नहीं रहा था कि उसका पीछा आरंभ हो गया है।

पानवाला बाहर आया तो उसने धीमे स्वर में कहा, "महामात्य ! आप यहाँ क्या कर रहे हैं ?"

"तो तुम मुझको पहचानते हो ?"

"मैंने आपको आपके स्वर से पहचाना था। परंतु वह व्यक्ति आपका पीछा कर रहा है और शायद गुप्तचर है। आपकी जान का भय है।"

पानवाला बातें कर रहा था और पद्मराज के लिए पान की ढेरी में से साफ पत्ता ढूँढ़ रहा था।

"मैं कहीं रात व्यतीत करना चाहता हूँ।" पद्मराज ने कहा।

"जब तक यह भयंकर व्यक्ति आपके पीछे है, किसी मकान में न जाइएगा। कल तक उस मकान के लोग पकड़ लिए जाएँगे और उस मकान पर सैनिक अधिकार कर लेंगे।"

तांबूली ने दो पान ढूँढ़ लिए थे और उन पर चूना-कत्था लगाना आरंभ कर दिया था।

पद्मराज ने पूछा, "पुजारी विष्णुकांत के विषय में जानते हो ?"

"नहीं महाराज ! आपके परिवार के विषय में भी किसी को कुछ पता नहीं। देखिए, आप पान लेकर लौट जाइए और किसी अँधेरी वीथिका में चले जाइए। वहाँ पर इससे छुटकारे का प्रबंध कीजिए। पश्चात् मेरे पास आइएगा और मैं आपका कुछ प्रबंध कर दूँगा। हो सके तो इसे समाप्त कर दीजिएगा। पर आपका वार खाली नहीं जाना चाहिए। इसके जीते-जी तो आपका और संभव है मेरा भी, जीवित रहना कठिन हो जाएगा।"

पद्मराज आश्चर्यचकित रह गया। तांबूली ने दो पान उसको दिए और उन्हें मुख में रख वह वापस लौट पड़ा।

पद्मराज ने देखा कि वह व्यक्ति पुनः उसके पीछे-पीछे आ रहा है। इस कारण उसने तांबूली की राय के अनुसार उस व्यक्ति को मार डालने का निश्चय कर लिया। चलते-चलते वह पुनः उसी वीथिका के बाहर जा पहुँचा, जहाँ वह पहले आया था। एक क्षण ठहरकर उसने पीछे देखा और उस व्यक्ति को पीछे आते देख वह वीथिका में प्रवेश कर गया। अब उसने अपने उत्तरीय के नीचे हाथ डालकर अपनी कटार निकाल ली और अँधेरे में एक ओर खड़ा हो उस व्यक्ति की प्रतीक्षा करने लगा।

इस समय उसे पीछा करने वाले के पदचाप सुनाई दिए। जब वे शब्द उसके सम्मुख से आने लगे तो पद्मराज ने वीथिका के बीच उसके सम्मुख अपनी टाँग अड़ा दी। पीछा करने वाला उसकी टाँग से अटककर लुढ़क गया। पद्मराज ने आगे बढ़कर एकदम उसकी गर्दन की दाहिनी ओर वार किया। वह व्यक्ति मुख से घू···घू की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवाज निकालकर भूमि पर लोटपोट हो गया।

पद्मराज ने कटार उस शव के कपड़े के साथ ही पोंछ ली और उसे पुनः अपने उत्तरीय के नीचे छिपाकर, वीथिका से बाहर निकल आया। एक क्षण तक यह देख कि कोई उसका पीछा तो नहीं कर रहा, वह तांबूली की दुकान की ओर बढ़ गया।

४

मिष्ठान्नगृह पर कानाफूसी करने वाले व्यक्ति को, जो वीथिका में लोप हो गया था, अपने पीछा किए जाने का संदेह उस समय हो गया था, जब वह राजप्रासाद के बाहर एक व्यक्ति से कानाफूसी कर रहा था। जब उसे इस बात का विश्वास हो गया तो अपना पीछा छुड़ाने के विचार से वह वीथिका में प्रवेश कर गया और एक ओर छिपकर खड़ा हो गया। जब पद्मराज आगे निकल गया तो वह भागकर वीथिका से बाहर निकल, पुनः राजप्रासाद की ओर चल पड़ा।

राजप्रासाद के पिछवाड़े की ओर जाकर वह एक छोटी-सी खिड़की के बाहर जा खड़ा हुआ। खिड़की का द्वार खटखटाने पर एक व्यक्ति ने खिड़की खोली और झुककर देखा कि कौन है। उसे देख वह विस्मय करने लगा। इस पर पहले व्यक्ति ने कहा, "भीतर आने का संकेत दे दो।"

भीतर वाले व्यक्ति ने एक पीतल का बना चक्र, जिस पर मालव राज्य की मुहर लगी थी, उसको दे दिया। वह उस चक्र को लेकर पुनः राजप्रासाद के मुख्य द्वार की ओर चला गया और उस चक्र को दिखाकर भीतर चला गया। द्वार के भीतर जाकर वह प्रासाद के दक्षिणी पार्श्व में चला गया। उस ओर सेवकों के लिए कई गृह बने थे। उनमें से एक का द्वार उसने खटखटाया। उसी व्यक्ति ने, जिसने पीछे खिड़की से उसे चक्र दिया था, द्वार खोला और उसे भीतर कर द्वार बंद कर लिया। पश्चात् उसने पूछा, "क्या बात है? लौट क्यों आए हो?"

"राज्य का एक गुप्तचर मेरे पीछे लग गया था। मैं उसे चकमा देकर वापस लौट आया हूँ।"

"कहाँ से लगा था?"

"राजप्रासाद के द्वार पर मैं महेश्वर को रात की सभा की सूचना देकर गया तो मुझको संदेह हुआ। कहाँ से वह मेरे पीछे लगा था, कहना कठिन है।"

"मैं समझता हूँ कि तुम डर गए हो। अब तुम यहीं बैठो और मैं जाता हूँ। आज की बैठक निर्णयात्मक होने वाली है। हमने उसमें अंतिम निर्णय करना है। इस कारण डरकर बैठ जाने से काम नहीं चलेगा।"

"मैं जाने को तैयार था, परंतु भय तो इस बात का था कि कहीं पीछा करने वाला हमारी सभा तक पहुँच जाता तो सब रहस्य खुल जाता और कदाचित् हम कुछ भी न कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाते।"

"ठीक है। पर अब तुम ठहरो। शेष काम मैं कर आता हूँ। किन-किनको बताना शेष है?"

उस आने वाले व्यक्ति ने अपनी जेब में से एक सूची निकालकर दे दी और कहा, "मध्यरात्रि के समय पण्डित भगीरथ के घर।"

"यह तो मैं जानता हूँ।"

इतना कह वह पुरुष संकेत-चक्र लेकर प्रासाद से बाहर निकल गया। पहले व्यक्ति ने अंदर से द्वार बंद कर लिए।

दूसरे व्यक्ति को गए अभी आधी ही घड़ी हुई थी कि द्वार पर पुनः थपथपाहट हुई। अंदर वाले व्यक्ति ने द्वार खोला।

बाहर से आए व्यक्ति ने अंदर वाले को देखा तो विस्मय में पूछा, "नीलांग! तुम यहाँ क्या कर रहे हो?"

"भीतर आ जाओ।" दोनों के भीतर आने पर नीलांग ने द्वार बंद कर लिया और उसे बैठाते हुए कहा, "भाई जंबुक! आज की गोष्ठी की सूचना दे रहा था कि देहाती वेश में एक गुप्तचर मेरा पीछा करने लग गया। मैं नहीं चाहता था कि वह गोष्ठी का स्थान जान पाए, अथवा ऐसी कोई बात जान सके। इस कारण एक वीथिका में पहुँच, अँधेरे में छिपकर मैं उसे वंचिका दे यहाँ वापस आ गया हूँ। यहाँ आकर साधु को सूचना देने के लिए भेज दिया है।"

"डमरू वीथिका में नाभर की हत्या हो गई है। कदाचित् यह वही देहाती वेश वाला होगा।"

"कैसे पता चला?"

"मैं सीमा से मिलकर आ रहा था कि मेरा पाँव किसी वस्तु से अटका। मैंने ध्यान से देखा तो एक शव था। मैं लौट गया और सीमा से दीपक लेकर देखने लगा कि कौन है। नाभर को पहचान, उसे वहीं छोड़ मैं चला आया हूँ।"

"पर मेरा पीछा करने वाला नाभर नहीं था। नाभर को मैं भली-भाँति जानता हूँ।"

"तो उसकी हत्या किसने की है?"

"कदाचित् उसी देहाती वेश वाले व्यक्ति ने की होगी जो मेरे पीछे वहाँ गया था।"

"और नाभर वहाँ कैसे पहुँच गया?"

"कदाचित् नाभर उसका पीछा करता हुआ वहाँ जा पहुँचा हो। वह व्यक्ति मेरे धोखे में नाभर को मार बैठा हो।"

"तो इसका अर्थ यह हुआ कि तुम व्यर्थ की हत्या से बच गए हो।"

"मुझको तो यही समझ में आ रहा है।"

"पर विचारणीय बात तो यह है कि नाभर उसके पीछे क्यों लगा?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कुछ भी हो। वह अत्यंत भयंकर व्यक्ति था। हमको उसकी हत्या से लाभ भी होगा। वह दुष्ट शशांक का गुप्तचर था।"

"शशांक को कन्नौज में अपने गुप्तचर रखने की क्या आवश्यकता हुई है? वह देवगुप्त का मित्र है, उसका अतिथि है और दिन-रात उसके साथ रंगरेलियाँ मनाता है।"

"भाई! इन लोगों की बातें ये ही जानें। कदाचित् देवगुप्त की शशांक पर कुदृष्टि हो। वास्तव में वह अपना भाग माँगने ही तो आया है। शशांक इस बात को जानता होगा और अपनी रक्षा के लिए अपने गुप्तचर साथ लाया हो।"

"हो सकता है। नाभर देवगुप्त की सेना से मेलजोल भी बहुत रखे हुए था।"

"कुछ भी हो। हमें यह बात अपने नायक को बता देनी चाहिए, जिससे इस हत्या से लाभ उठाने के लिए हम अपनी योजना बना डालें।"

"यह तो आज रात की सभा में स्पष्ट हो जाएगा।"

"अब तो सब-कुछ शीघ्र हो जाना चाहिए।"

"साधु कह रहा था कि आज की सभा निर्णयात्मक होगी।"

"यह भी ठीक है। इस प्रकार चोरी-चोरी बहुत दिन तक रहना कठिन है।"

"अच्छा नीलांग! आज भोजन नहीं किया। मैं साधु से कुछ खाने के लिए माँगने आया था। उस बेचारे ने कभी निराश नहीं लौटाया।"

नीलांग हँस पड़ा। उसने कहा, "भूख तो मुझे भी लगी थी, परंतु सुमन ने चौक वाले उपहारगृह से कुछ खिला दिया था। देखता हूँ यदि यहाँ कुछ खाने को रखा हो।"

नीलांग वहाँ से निकल रसोईघर में चला गया और ढूँढ़-ढाँढ़कर कुछ बासी रोटी, आम का अचार, कदली फल की छः फली और अरहर की दाल का कटोरा ले आया। जंबुक यह देख बहुत प्रसन्न हुआ। उसने रोटी हाथ में ले खानी आरंभ कर दी। खाते हुए उसने कहा, "भगवान् इस साधु का भला करे। कितना अच्छा है यह! इसके यहाँ अतिथि-सत्कार का सदैव प्रबंध रहता है।"

"परंतु इस प्रबंध की श्लाघा तो इसके पाचक को मिलनी चाहिए। साधु ने तो खाना बनाया नहीं है।"

"फिर भी वह सदा अपनी आवश्यकता से अधिक बनवाता है, जो हम लोगों के काम आ जाता है।"

"तुम भी लाल बुझक्कड़ हो। सूखी रोटी और अरहर की दाल बहुत बढ़िया प्रबंध है क्या?"

"नीलांग! भूखे के लिए यही बहुत है। आज मेरी जेब में एक टका भी नहीं था। प्रासाद से बाहर जा नहीं सकता था। मेरा प्रवेश-संकेत तो सुमन के पास है न। बताओ, ऐसी अवस्था में यदि यह रोटी और दाल भी न मिलती तो क्या होता?"

इसी प्रकार बातें करते-करते जंबुक भोजन कर रहा था। नीलांग उसे भूखे बाघ की भाँति खाते देख हँस रहा था। जब जंबुक खा चुका तो नीलांग ने उसे जल दिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और फिर निश्चिंत हो दोनों बातें करने लगे। इसी समय किसी ने पुनः द्वार खटखटाया।

जम्बुक ने कहा, "लो, साधु आ गया।"

"शायद कोई और है।"

"नहीं, तुम नहीं जानते। यह साधु ही है। उसके द्वार खटखटाने का विशेष ढंग है जो मैं पहचानता हूँ।"

नीलांग ने द्वार खोला। साधु और उसके साथ एक स्त्री थी। उसे देख जम्बुक बोल उठा, "ओह सीमा! तुम भी आ गई हो?"

"हाँ, वीथिका में हत्या हो जाने से मुझको भय लग रहा था। इस कारण घर से बाहर रहने के लिए यहीं चली आई हूँ।"

"कुछ पता चला कि हत्या कैसे हुई है?"

"हमारे पड़ोस में मालव सैनिक ठहरे हुए हैं। वे मद्यपान करके कहीं जा रहे थे कि पाँव के टकराने से उन्होंने शव को देखा। पश्चात् वे हल्ला करने लगे। इससे लोग बाहर निकल आए। लोग शव को उठाकर नगरपाल के पास ले गए हैं। मुहल्लेवाले तो यह कह रहे थे कि सैनिकों ने ही मार डाला होगा।"

"ऐसा प्रतीत होता है कि इस हत्या पर भारी हल्ला होने वाला है। यदि यह सन्देह पक्का हो गया कि उसकी हत्या सैनिकों ने की है तो कदाचित् शशांक और देवगुप्त की भी ठन जाए। शशांक बहुत कम सैनिक लेकर आया है। उसको अपने जीवन का भय हो जाएगा।"

"बड़ा आनन्द आए, यदि दोनों परस्पर भिड़ जाएँ।" जम्बुक ने कहा।

नीलांग ने कहा, "कौन कह सकता है कि क्या होगा। हमें तो अपने विषय में सतर्क रहना चाहिए। सीमा ने यहाँ आकर अच्छा ही किया है।"

जम्बुक ने साधु को सम्बोधन कर कहा, "भाई साधु! सीमा के लिए कुछ खाने-पीने का प्रबन्ध कर ही दोगे।"

"तुम्हें सीमा की बहुत चिन्ता है जम्बुक!"

"हाँ, इस कारण कि तुम्हारे घर में पका खाना मैं डकार चुका हूँ।"

"अभिप्राय यह कि रोटी-दाल तुम खा गए हो।"

"हाँ, कदली फल भी।"

"तब तो और बनाना पड़ेगा।"

"अच्छा, अब हमारे जाने का समय हो चुका है। अब तुम जानो और तुम्हारी सीमा।"

५

पद्मराज तांबूली की दुकान पर पहुँचा तो तांबूली ने कहा, "संकेत त्रिशंकु है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नगरपाल के गृह को आप जानते हैं। उसके पड़ोस में पंडित भगीरथ का मकान है। वह आपको बहुत मानता है और आपकी पूजा करता है। आप उसके घर चले जाइए। वह तो आपको पहचानता है, परंतु उसकी अनुपस्थिति में यह संकेत आपका प्रबंध करवाने में सहायक होगा।"

पद्मराज ने संकेत लेकर कहा, "अच्छा, अब मैं तुम्हें कहाँ मिलूँ?"

"महाराज! आप यहाँ न आइएगा! मैं स्वयं आपसे मिल लूँगा। जैसे मैंने आपको पहचान लिया है, हो सकता है कि कोई अन्य भी पहचान ले।"

"अच्छी बात है।" इतना कह पद्मराज नगरपाल के आवास के समीप भगीरथ के गृह की ओर चल पड़ा। मकान का द्वार खुला था। इस कारण पद्मराज अंदर जाने लगा। एक क्षण तक उसने देखा कि कोई द्वार पर है अथवा नहीं। पश्चात् वह अंदर प्रवेश कर गया। उसके अंदर प्रवेश करते ही पीछे द्वार एकदम बंद हो गया। द्वार बंद होते ही उस स्थान पर अँधेरा छा गया।

पद्मराज को ऐसा अनुभव हुआ कि कोई उसके समीप खड़ा है और उसके कान में पूछ रहा है, "कौन हो तुम?"

इस समय उसे तांबूली के संकेत का ध्यान हो आया। उसने कहा, "त्रिशंकु।"

"ओह!" यह स्वर नाम पूछने वाले का था। इसी समय प्रकाश हो गया। घर का द्वार अभी भी बंद था। सामने खड़े व्यक्ति ने पूछा, "किससे मिलना चाहते हो?"

पद्मराज सामने खड़े व्यक्ति को देख रहा था। वह उसे पहचानता नहीं था। उसने कहा, "भगीरथ पण्डित से।"

"क्या काम है?"

"गुप्त है। उन्हीं से कहने के लिए है।"

"तो ठहरिए। यहाँ से आगे आप नहीं जा सकते। आगे जीवन का भय है।" इतना कह वह व्यक्ति भीतर चला गया। शीघ्र ही भगीरथ पण्डित आया और आगंतुक को ध्यानपूर्वक देखने लगा। पद्मराज समझा कि पण्डित उसे पहचान गया है। उसने अपनी दाहिनी आँख से संकेत कर दिया। फिर भी भगीरथ ने पूछा, "संकेत?"

पद्मराज ने कहा, "त्रिशंकु।"

"ठीक है। भीतर आ सकते हो।" यह कह वह अंदर की ओर चल पड़ा। पद्मराज उसके पीछे-पीछे हो लिया। अंदर के कमरे में जाकर भगीरथ ने द्वार बंद कर लिया। पश्चात् पद्मराज की ओर घूमकर बोला, "महामात्यजी! आप यहाँ कैसे घूम रहे हैं?"

"मैं अपने परिवार का पता करने आया था। मेरे निवासगृह पर मालव सैनिकों ने अधिकार कर लिया है। मैं किसी परिचित द्वारा उनका पता करना चाहता था। एक व्यक्ति ने यह सकेत देकर आपके पास भेजा है।"

"महाराज! आपके जाने के तीसरे दिन मालव सेना नगर-द्वार पर आ पहुँची। मालव-नरेश का स्वागत किया गया और उसे आदरसहित राजप्रासाद में ले जाया गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहाँ दोनों नरेशों में महारानी जी के कारण झगड़ा हो गया। मालव-नरेश ने महाराज की हत्या कर दी। पश्चात् महारानी जी ने भी मालव-नरेश की हत्या करनी चाही; परंतु वे सफल नहीं हुईं। यह कहा जाता है कि मालव-नरेश ने उनके साथ भारी दुर्व्यवहार किया है, परंतु इस विषय में कुछ निश्चित ज्ञान नहीं।

"पश्चात् मालव-नरेश ने यहाँ की प्रजा में घोषणा करवा दी कि यदि वे अपनी रक्षा चाहते हैं तो उनके सैनिकों के मनोरंजन के लिए दस सहस्र युवतियाँ उन्हें भेंट देनी होंगी। बौद्धों ने यत्न किया कि वैष्णवों के घरों की स्त्रियाँ मालव सैनिकों को मिल जाएँ। परंतु देवगुप्त का आदेश था कि वह बौद्ध-अबौद्ध में भेद नहीं मानता। जहाँ से भी उपलब्ध हों, युवतियाँ एकत्रित कर ली जाएँ।

"पश्चात् क्या हुआ कोई नहीं जानता। परंतु यह सत्य है कि राज्य-भर के बौद्ध-विहारों में से सहस्रों भिक्षुणियाँ एकत्रित कर मालव सैनिकों में वितरित कर दी गई हैं।

"अब शशांक भी यहाँ आ गया है। हमें विश्वस्त सूत्र से पता चला है कि वह राज्य को स्वयं हथियाना चाहता है। उसने मालव-नरेश को चुनौती दी है कि यदि वह उससे किसी प्रकार का समझौता नहीं कर लेता तो वह अपनी सेना स्थानेश्वर की सेना के साथ मिला देगा और इस प्रकार मालवा की ईंट-से-ईंट बजा देगा।

"सुना है, मालव-नरेश ने मालवा से और अधिक सेना बुलवाई है और उसके आते ही वह शशांक का काँटा निकाल देना चाहता है।"

"मेरे परिवार का कुछ पता है?"

"मालव सेना के नगर-द्वार पर आ जाने से पूर्व ही आपका और विष्णुकांत का परिवार यहाँ से चला गया था। कोई नहीं जानता किधर गया। हमारी सूचना तो यही है कि विष्णुकांत जी कहीं छिपे हुए हैं। वे क्या कर रहे हैं, हमें कुछ पता नहीं।"

"और पण्डित! तुम क्या कर रहे हो? यह संकेत और लुकाव-छिपाव के क्या अर्थ हैं?"

"मैं नगर में विप्लव खड़ा करने का प्रयत्न कर रहा हूँ। हमने राज्य के शस्त्रागार से एक सहस्र खड्ग निकलवाकर नगर के युवकों में वितरित करवा दिए हैं। इसका अर्थ यह है कि इतने सशस्त्र युवक हमारे पास हैं। जिस दिन देवगुप्त और शशांक में झगड़ा आरंभ होगा, हम राजप्रासाद पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में कर लेंगे। देवगुप्त को हम समाप्त कर देना चाहते हैं। हमारा विचार है कि प्रजा को इस प्रकार लड़ने-मरने के लिए तैयार देख शशांक भी लौट जाएगा।"

"परंतु उन पचास सहस्र मालव सैनिकों का क्या होगा? उन पर कैसे सफलता प्राप्त की जा सकेगी?"

"बात यह है कि भिक्षुणियों के साथ घृणित व्यवहार करने के कारण राज्य की पूर्ण प्रजा मालव सेना के विरुद्ध हो रही है। देहातों से लोग नगर में आ रहे हैं और हमारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार है कि एक बार विप्लव आरंभ कर दिया जाए, पश्चात् मालव सैनिकों के लिए नगर में रहना कठिन हो जाएगा। देवगुप्त के मरने से उनका उत्साह समाप्त तो हो ही जाएगा। पश्चात् या तो वे भाग जाएँगे अथवा मार डाले जाएँगे।"

"तो यह कब तक करने का विचार है?"

"हम उस समय की प्रतीक्षा कर रहे हैं, जब शशांक और देवगुप्त में झगड़ा आरंभ हो। वह समय जब आएगा, हम एकदम प्रहार कर देंगे।

"अब आप आ गए हैं। यदि आप हमारा नेतृत्व करें तो मैं समझता हूँ कि सफलता निश्चित ही है।"

इस योजना से पद्मराज का मन पुनः उत्साहित हो गया। वह उसी गृह में ठहर गया और वहाँ एकत्रित होने वाले षड्यंत्रकारियों से मिलने लगा।

जिस दिन पद्मराज भगीरथ के घर ठहरा, उसी दिन एक भारी झगड़ा होते-होते बच गया।

पद्मराज भोजन कर अभी आराम करने ही लगा था कि भगीरथ उसके पास आया और कहने लगा, "नगर की एक वीथिका में हत्या हो गई है। शशांक का एक साथी मारा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि मालव सैनिकों ने यह हत्या की है। परिणाम यह हुआ है कि नगर के चौक में मालव सैनिकों और शशांक के साथियों में झगड़ा आरंभ हो गया है। दोनों के सैनिक भारी संख्या में मारे गए हैं।"

पद्मराज को एक बात सूझी। उसने पूछा, "आप लोगों में कोई शशांक से मिल सकता है?"

"हाँ, मैं जा सकता हूँ। वैसे मंगलेश्वर भी मिल सकता है।"

"मंगलेश्वर कहाँ है?"

"वह राजप्रासाद में सेवा-कार्य करता है। मेरे कहने पर ही उसने यह कार्य स्वीकार किया है। वह आजकल शशांक की सेवा में है।"

"तो ठीक है, उसको बुलाओ।"

"वह प्रातःकाल ही आ सकेगा।"

"कुछ हानि नहीं। मैं उसके द्वारा एक बात शशांक को कहलवाना चाहता हूँ।"

अगले दिन पद्मराज सोकर उठा भी नहीं था कि मंगलेश्वर आ पहुँचा। पद्मराज को जगाया गया और मंगलेश्वर की भेंट करवा दी गई।

पद्मराज के महामात्य-काल में मंगलेश्वर गुप्तचर विभाग में कार्य करता था। उसका पद्मराज से भली-भाँति परिचय था। अब पद्मराज को देख वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने कहा, "पण्डित भगीरथ इस योजना को चलाने के लिए बहुत प्रयत्न कर रहे हैं। फिर भी अब आप इस योजना को चलाएँगे तो कार्य सुगमता से चल सकेगा।"

"देखो मंगलेश्वर! मैं यह समझता हूँ कि इस राज्य में शक्ति का अभाव है। परंतु जहाँ तक बुद्धि, नीति और चातुर्य का संबंध है, हमको ये प्राप्त हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मेरी योजना यह है कि दोनों विदेशी नरेशों को, और हो सके तो उनकी सेनाओं को परस्पर लड़ा दिया जाए। इसका परिणाम यह होगा कि इनकी सैनिक शक्ति दुर्बल पड़ जाएगी। पश्चात् दोनों से एक-एक कर हम निपट लेंगे।

"इस हेतु यदि तुम मेरी शशांक से भेंट करा सको तो ठीक है।"

"यह कार्य कठिन नहीं। परंतु आपको प्रासाद के भीतर जाने के लिए कोई ऐसा रूप बनाना पड़ेगा, जिससे आप पहचाने न जाएँ। प्रासाद के सेवक आपको भली-भाँति पहचानते हैं।"

"यह हो जाएगा। तुम गौड़ाधिपति से कहना कि एक रत्न बेचने वाला उनसे मिलना चाहता है।"

"बहुत खूब ! मुझको राजनीति विषय में उनसे कुछ नहीं कहना होगा।"

"नहीं, वह मैं स्वयं कह लूँगा।"

मंगलेश्वर मध्याह्न-पूर्व ही आया और बोला—"भोजनोपरांत शशांक आपसे मिलना पसंद करेगा। शर्त यह है कि आप देवगुप्त से मिलने से पहले उससे मिलें। बढ़िया रत्न वह स्वयं क्रय करना चाहेगा।"

पद्मराज ने नगर के कई रत्न बेचने वालों से एक-से-एक बढ़िया रत्न एकत्रित कर लिए और गांधार देश के नागरिक का भेष बनाकर, दाढ़ी-मूँछ लगा, सलवार और ढीला-ढाला कुर्ता पहन मंगलेश्वर के साथ चल पड़ा।

६

देवगुप्त को जब विश्वास हो गया कि कन्नौज में उसका कोई विरोधी नहीं रहा तो उसने विजयोत्सव मनाने की आज्ञा कर दी। इस अवसर के लिए उसने कन्नौज के नागरिकों से सैनिकों के मनोरंजन के लिए युवतियाँ माँगीं। विष्णुकांत कुछ ऐसी बात की ही आशा करता था। वह उज्जयिनी निवासियों के आचार-विचार से भली-भाँति परिचित था। संस्कृति और कला के नाम पर नृत्य-संगीत और अन्य ललित-कलाओं का प्रचार वहाँ बहुत प्रचलित था। जब यवन मध्य भारत और गंगा-यमुना के मध्यवर्ती प्रदेश से निकाल दिए गए तो मालव और कन्नौज राज्यों में चैन की बाँसुरी बजने लगी थी।

कन्नौज में तो बौद्धों के प्रभाव से वैराग्य और साधुता का प्रचार होने लगा और मालवा में वासना बढ़ गई—और दोनों बातें सीमा से पार चली गईं। वैराग्य तो इतना अधिक हुआ कि महाराज ग्रहवर्मन को राज्य की तथा अपनी रक्षा का ध्यान ही नहीं रहा और साधुता इतनी बढ़ गई कि जनसाधारण में साधारण राजनीति तक समझने की योग्यता नहीं रही।

इसके विपरीत उज्जयिनी में संसार के प्रति प्रवृत्ति बढ़ने लगी। परिणाम यह हुआ कि सांसारिक सुख-भोग और अधिक होने लगा। इसके साथ ही सांसारिक भोगों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृद्धि के लिए देश का तथा धन-संपदा का विस्तार आवश्यक प्रतीत होने लगा। इससे व्यापार में, सैनिक शक्ति में, कूटनीति में उन्नति होने लगी। इसका परिणाम ही था कि सर्वथा शांतिमय कन्नौज राज्य पर मालव-आक्रमण हुआ।

मालवों की इतनी सुगम विजय का कारण तो कन्नौज-प्रजा का वैराग्य और साधुता में सीमोल्लंघन ही था। पद्मराज बौद्ध-प्रभाव से बाहर था और उसके मित्र, जो प्रायः वैष्णव थे, उससे सहमत रहते थे। यही कारण था कि वे बाहरी संसार को देख सतर्क थे।

जब मालव-नरेश ने ग्रहवर्मन की हत्या कर दी और राज्यश्री पर अधिकार प्राप्त करने का यत्न किया तो विष्णुकांत और अन्य वैष्णव समझ गए कि उनके तथा उनकी स्त्रियों के साथ क्या होने वाला है। परिणामस्वरूप वे बिना अधिक सोच-विचार किए, अपने-अपने परिवारों को लेकर कन्नौज राज्य छोड़ गए। उनमें से जो यह समझते थे कि पुरुषों को अपनी मातृभूमि को स्वतंत्र करने के लिए यत्न करना चाहिए, लौट आए और पंडित भगीरथ उनमें से एक था।

विष्णुकांत पद्मराज के परिवार को लेकर हरिद्वार जा पहुँचा। उसके चित्त को वहाँ भी शांति नहीं मिली और भगीरथ पंडित के विषय में जाने बिना, कन्नौज में पहुँचकर प्रजा को संगठित कर विद्रोह की तैयारी करने लगा।

इस काल में विजयोत्सव की योजना बन गई और प्रजा को इसमें सहयोग देने की आज्ञा दी गई। महाराज देवगुप्त ने एक दिन नगर के धनी सेट्ठियों को बुलाया और उनको अपने सैनिकों के मनोरंजन के लिए स्त्रियाँ देने का आदेश दे दिया।

भयभीत बौद्ध-चैत्यों के प्रबंधकों ने बौद्ध-भिक्षुणियों को इस कार्य के लिए पूर्ण राज्यभर में से एकत्रित कर राज्य के हवाले कर दिया। परंतु राज्य की पूर्ण प्रजा, विशेष रूप से बौद्ध लोग, इससे क्रोध तथा विवशता के मारे दाँत पीसते रह गए।

इस प्रकार विजयोत्सव की तैयारी होने लगी। इस समय गौड़-नरेश शशांक देवगुप्त की विजय का समाचार सुन कन्नौज आ पहुँचा। उसने आने से एक दिन पूर्व यह समाचार देवगुप्त को पहुँचा दिया था कि वह अपने मित्र देवगुप्त की विजय पर उसको बधाई देने आ रहा है।

देवगुप्त इसे पसंद नहीं करता था, फिर भी वह शशांक के आने को रोक नहीं सका। परिणामस्वरूप शशांक का स्वागत किया गया। शशांक की सेना को तो नगर के बाहर ठहराया गया और शशांक को राजप्रासाद के एक कक्ष में निवास दिया गया। शशांक की इच्छा थी कि विजयोत्सव तक वह कन्नौज में ही रहेगा।

विजयोत्सव मनाया गया और इसमें कई प्रकार से रंगरेलियाँ मनाई गईं। उच्छृंखलता असीम हो गई और मालव तथा गौड़-नरेश तथा उनके साथियों ने जी भरकर इसमें भाग लिया।

विजयोत्सव के पश्चात् भी शशांक कन्नौज से बाहर नहीं गया। इससे देवगुप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की चिंता बढ़ गई। शशांक ने अपनी सेना के कई गुप्तचर नगर-भर में फैला दिए, जो प्रजा के विचारों की टोह लेने लगे और शशांक को सूचित करने लगे। इस कार्य के लिए शशांक ने कन्नौज के कई नागरिकों तक को सेवा में रख लिया। इससे उसका आशय कन्नौज की प्रजा से संबंध बनाना था।

नाभर शशांक के गुप्तचर विभाग का प्रमुख अधिकारी था। उसकी हत्या के समाचार से शशांक ने समझा कि देवगुप्त ने यह हत्या करवाई है और देवगुप्त उसके गुप्तचरों के विषय में जान गया है।

गौड़ सैनिकों ने नाभर की हत्या का प्रतिकार मालव सैनिकों से लिया। परस्पर झगड़ा बढ़ जाता, परंतु शशांक की आज्ञा आ गई कि शांति रखी जाए। वह अपनी सीमित शक्ति से देवगुप्त के साथ युद्ध करना नहीं चाहता था।

अगले दिन वह देवगुप्त से मिलने गया तो देवगुप्त ने कहा, "मित्र! अपने सैनिकों को वश में रखो। हमें यह भय हो रहा है कि हमारी सेनाएँ परस्पर भिड़कर विजय को पराजय में न बदल दें।"

"ठीक है।" शशांक ने कहा, "मुझे जब पता चला कि परस्पर झगड़ा हो गया है, तो मैंने सैनिकों को नगर छोड़ शिविर में जाने की आज्ञा दे दी थी। यही कारण था कि झगड़ा समाप्त हो गया। परंतु मित्र! नाभर की हत्या से मुझे भारी दुःख हुआ है। वह मेरा अति विश्वस्त, योग्य और चतुर कर्मचारी था।"

"परंतु वह उस संकीर्ण वीथिका में गया क्यों?"

"यह मैं कैसे बता सकता हूँ? यदि वे सैनिक, जो उसके शव को उठाकर राज्यपाल के पास लेकर गए थे, उसको जीवित पकड़ लाते तो समस्या सुलझ जाती।"

"मैं समझता हूँ कि नित्य सूर्यास्त से पूर्व गौड़ सैनिकों को शिविर में लौट जाना चाहिए।"

"बात यह है कि जब नगर के द्वार रात-भर खुले रहते हैं और कोई भी व्यक्ति नगर में प्रविष्ट हो सकता है, तो फिर यह प्रतिबंध मेरे सैनिकों के लिए क्यों? खैर, इस विषय में फिर बात कर लेंगे।"

"श्रीमान् गौड़-नरेश कब तक लौट जाने का विचार रखते हैं?"

"जब तक मेरे साथ वह संधि, जो कन्नौज-विजय से पूर्व हुई थी, पालन नहीं की जाती।"

"क्या संधि थी वह?"

"तो श्रीमान् देवगुप्त नहीं जानते?"

"मेरे पास लिखित संधि यहाँ नहीं है। वह उज्जयिनी में है।"

"संधि की प्रतिलिपि मेरी भी पुंड्र में है; परंतु मैं यह स्मरण करा देना चाहता हूँ कि उस संधि में यह शर्त थी कि कन्नौज-विजय के पश्चात् कन्नौज राज्य के दो भाग कर दिए जाएँगे। एक भाग मालवा के अधिकार में रहेगा और दूसरा गौड़ के अधीन।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मुझको स्मरण नहीं कि ऐसी कोई बात हुई हो।"

"तो वह संधिपत्र मँगवा लिया जाए। मैं आज ही अपना विश्वस्त व्यक्ति भेज देता हूँ।"

"मैं समझता हूँ," देवगुप्त ने कहा, "मुझको भी अपनी प्रतिलिपि मँगवा लेनी चाहिए।"

"तो ठीक है! आने पर उस विषय पर बात कर लेंगे।"

इस प्रकार शशांक ने कई दिनों का कन्नौज में ठहरने का प्रबंध कर लिया।

इसी दिन जब वह मध्याह्न को भोजन के लिए अपने आगार में पहुँचा तो मंगलेश्वर उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। शशांक के आने पर उसने झुककर नमस्कार किया और कहा, "श्रीमान् जी के कुछ क्षण लेना चाहता हूँ।"

"क्या चाहते हो?"

"दिवंगत महाराज ग्रहवर्मन का जौहरी, जो देश-विदेश घूमकर रत्न बेचा करता है, महाराज से भेंट का प्रार्थी है।"

"कुछ नवीन रत्न लाया है?"

"अवश्य लाया होगा। वह लंका से आ रहा है और लंका देश रत्नों का भण्डार है।"

"अच्छी बात है, हम मिलेंगे। मध्याह्न भोजनोपरान्त उसे हमारे पास ले आना। उससे कह देना कि देवगुप्त से मिलने से पूर्व हमसे मिले। हम नहीं चाहते कि बढ़िया रत्न देवगुप्त क्रय कर ले।"

"श्रीमान् की आज्ञा बता दूँगा।"

७

मध्याह्न भोजनोपरान्त शशांक विश्राम के लिए अपने आगार में जाने लगा तो मंगलेश्वर ने सूचना दी कि जौहरी उपस्थित है। शशांक ने उसे अपने आगार में लाने को कह दिया। जब पद्मराज शशांक के सामने उपस्थित हुआ तो एक क्षण शशांक उसे देखता रहा। पश्चात् उसने कहा, "मंगलेश्वर! तुम जाओ, इसे हमारे पास छोड़ दो।" मंगलेश्वर के जाने के पश्चात् शशांक ने उसे अपने शयनागार में आने को कहा।

दोनों शयनागार में पहुँचे। शशांक एक चौकी पर बैठ गया तो रत्नविक्रेता उसके सम्मुख भूमि पर बैठ गया। पद्मराज ने अपने रत्नों की सन्दूकची खोलने से पूर्व कहा, "कन्नौज में दो वर्ष हुए आया था। महाराज ग्रहवर्मन जी को मैंने एक हीरा दस सहस्र स्वर्ण में दिया था। महाराज की इच्छा थी कि उसको अपने मुकुट में लगाएँ। परन्तु महारानी राज्यश्री चाहती थीं कि यदि उसके साथ की जोड़ी मिल जाय तो उसे अपने कर्णफूलों में लगवा लें। मैं वैसे ही एक पत्थर की खोज में था। पिछले वर्ष मुझे वैसा ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक पत्थर सिंहल द्वीप की महारानी के पास मिल गया। मैं उनसे वह पत्थर उसके बदले में तीन हीरे देकर ले आया हूँ; परन्तु यहाँ पहुँचकर पता चला कि राज्य बदल चुका है। इससे बहुत निराश हुआ हूँ।

"फिर भी यह आशा कर कि कदाचित् गौड़ाधिपति उस हीरे को क्रय करने के इच्छुक हों, श्रीमान् की सेवा में आ उपस्थित हुआ हूँ।"

पद्मराज ने सन्दूकची खोली। उसमें से एक डिबिया खोलकर एक चमचमाते हुए हीरे को निकाला और एक नीलवर्ण रेशमी रूमाल के ऊपर रख शशांक के सामने कर दिया।

कितने ही समय तक शशांक उसे देखता रहा। पश्चात् बोला, "मैं समझता हूँ कि राज्यश्री ठीक कहती थी कि यह कर्णफूल में शोभा पाएगा। जिस सुन्दरी के कानों में वे कर्णफूल होंगे, उसका सौन्दर्य शत गुणा बढ़ जाएगा।"

"महाराज का कथन सर्वथा सत्य है। परन्तु इसके जोड़े का दूसरा हीरा महारानी राज्यश्री के पास होना चाहिए।"

"इसका अर्थ यह हुआ कि वह अब देवगुप्त के अधिकार में है।"

"भगवान् जाने। कुछ नहीं कहा जा सकता।"

"जौहरी! एक काम करो। यह हीरा हमारे पास छोड़ जाओ। यदि इसके जोड़े का मिल गया तो हम इसे क्रय कर लेंगे, अन्यथा तुमको लौटा देंगे।"

"पर महाराज! वह कैसे मिलेगा? कहाँ है वह?"

"हम महाराज देवगुप्त से इसकी चर्चा करेंगे।"

"आप उनको यह हीरा दिखाएँगे?"

"बिना दिखाए काम नहीं चलेगा।"

"महाराज क्षमा करें। मैं यह यहाँ कन्नौज में नहीं बेचूँगा।"

"क्यों?"

"मैं यह अनमोल वस्तु एक आततायी के हाथ नहीं बेचना चाहता।"

"तुम देवगुप्त को आततायी मानते हो?"

"महाराज! मेरे शब्दकोश में एक ऐसे व्यक्ति के लिए और कोई शब्द है ही नहीं। पाँच सहस्र के लगभग भिक्षुणियाँ सैनिकों में वितरण कर दी गईं। इस समय उनमें से आधी के लगभग मर चुकी हैं। यह तो महाराज! घोर पाप-कर्म हुआ है।"

इतना कहकर पद्मराज ने रत्न वापस लेने के लिए हाथ बढ़ा दिए। शशांक के मन में एक विचार उठा। उसने कहा, "एक बात हो सकती है। हम यह रत्न लेने के लिए देवगुप्त को यहाँ से विदा दे सकते हैं।"

"ऐसे तुच्छ पत्थर के लिए मैं नहीं चाहता कि भरत-खण्ड के दो राज्यों में संघर्ष चल पड़े, जो पुत्र-पौत्रों तक चलता रहे।"

"तुम विचित्र व्यक्ति हो! एक ओर तो उसको आततायी कहते हो और साथ ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस आततायी को दण्ड देने से मना भी करते हो। क्या कन्नौज में आने मात्र से ही बुद्धि क्षीण हो जाती है?"

"ऐसी बात नहीं महाराज! मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि रत्न के लिए नहीं, प्रत्युत धर्म और न्याय के लिए राज्यों में उथल-पुथल उचित है। मालव राज्य यहाँ पर अधर्मयुक्त सिद्ध हो रहा है। इस अधर्म के विरोध और धर्म के संरक्षण के लिए जो कुछ भी किया जाए, वह क्षम्य होगा।"

"क्षम्य का क्या अर्थ है?"

"मेरा श्रीमान् देवगुप्त जी से अथवा आपसे निजी रूप में कोई द्वेष नहीं। यदि मैं एक की सत्ता मिटाने की इच्छा करता हूँ, तो धर्म के संस्थापन के लिए ही। धर्म के संस्थापन के लिए यदि सहस्रों प्राणियों का रक्त भी बहाना पड़े तो भी कोई हानि नहीं। अन्यथा एक भी प्राणी की हत्या करते हुए अथवा उसकी इच्छा करते हुए मेरा हृदय काँपता है।"

"तुम कहाँ के रहने वाले हो?"

"पुरुषपुर गांधार का। परन्तु अब वहाँ नहीं जाता। कारण यह कि वहाँ हूणों का राज्य स्थापित हो गया है। उनका राज्य भी न्याय और धर्मसंगत नहीं है।

"महाराज प्रभाकरवर्धन ने पांचाल देश से तो उन दुष्टों को भगा दिया है, परन्तु सिन्धु नदी के पार तो अभी भी उनका राज्य है।"

"पर सुना है कि प्रभाकरवर्धन की मृत्यु हो चुकी है।"

"सत्य महाराज?"

"हाँ।"

"यह तो अति शोकजनक समाचार है। फिर भी मैं आशा करता हूँ कि श्रीकण्ठ का राजकुमार राज्यवर्धन तो हूणों से सिन्धु पार जाकर भी युद्ध करेगा।"

"ठीक है। परन्तु पिता के देहान्त से पुत्र को समर-भूमि से लौटना पड़ेगा।"

"तो महाराज! भारत के सब सम्राट् मिलकर यह पुण्य कार्य क्यों नहीं करते?

"इस समय विन्ध्याचल से उत्तर में चार बड़े-बड़े राज्य हैं। स्थानेश्वर, गौड़, मालव और कामरूप। इन चारों में सन्धि नहीं हो सकती क्या?"

"नहीं।"

"क्यों?"

"इसलिए कि इनमें कौन बड़ा है, इसका निश्चय नहीं हो सकता।"

"चारों ही बड़े रहें। मेरा अभिप्राय है कि बराबर-बराबर रहें।"

शशांक हँस पड़ा। उसने कहा, "यह नहीं हो सकेगा। जौहरी! तुम्हें मानव-प्रकृति का ज्ञान नहीं है, तभी ऐसा कहते हो। मैं तो अपने को सबसे बड़ा मानता हूँ।"

"पर बड़ा बनने के लिए जहाँ शक्ति, चातुर्य और भाग्य की आवश्यकता है, वहाँ न्यायपरायणता की भी आवश्यकता है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ये सब गुण मैं अपने में पाता हूँ।"

"तब तो ठीक है महाराज! आप जब उत्तर पथ के चक्रवर्ती राजा बनेंगे, तो मैं आपके चक्रवर्ती मुकुट को ऐसे-ऐसे रत्नों से जड़ दूँगा कि संसार के राजा-महाराजा श्रीमान् की ओर आँख नहीं कर सकेंगे।"

"सत्य?"

"हाँ महाराज! मुकुट आप बनाइए और रत्न मैं जड़ दूँगा।"

"मैं मुकुट बनाऊँ? मैं कोई स्वर्णकार हूँ?"

"मुकुट स्वर्णकार की कुठाली में नहीं ढलते महाराज! मुकुट वीरों के खड्ग से ढाले जाते हैं। स्वर्णकार बेचारा तो जैसा ढला हुआ पाता है, उस पर वैसा रंग लगा देता है।"

शशांक हँस पड़ा। उसने कहा, "मैं समझता हूँ कि हम अपने विषय से भटक गए हैं। बताओ, इस रत्न के लिए क्या लोगे? हम समझते हैं कि यदि हमारे पास यह होगा तो इसका जोड़ प्राप्त करने के लिए हम युद्ध तक कर सकेंगे।"

"देखिए महाराज! यदि आप इसके जोड़े का हीरक रखने वाले को पराजित कर उसको प्राप्त कर सकेंगे, तो मैं यह हीरक श्रीमान् जी की सेवा में बिना मूल्य भेंट में दे दूँगा।"

"तो इसका अर्थ यह हुआ कि पहले हम इसका जोड़ प्राप्त करें, तब ही तुम हमको यह दोगे?"

"बिना मूल्य के। यदि श्रीमान् चाहें तो वह परिस्थिति उत्पन्न करने में मैं सहायता भी कर सकता हूँ।"

"तुम क्या सहायता दे सकते हो?"

"महाराज! मैं जौहरी तो हूँ ही। साथ ही देश-भर में घूमने से कुछ अनुभव भी रखता हूँ। मेरा अधिक समय दक्षिण पथ में व्यतीत हुआ है और जितने जोड़-तोड़ लगाने वाले उस पथ पर बसे हैं, अन्य कहीं नहीं हैं।"

"ओह! यह बात है। तो बताओ, यदि तुम मेरे स्थान पर होते तो क्या करते?"

"मैं श्रीमान् के स्थान पर कैसे हो सकता हूँ? मैं एक दुर्बल जौहरी हूँ। फिर भी आप इस प्रकार पूछिए कि मेरी तुच्छ बुद्धि में इस विषमता का सुझाव क्या है?"

"पर क्या यहाँ विषमता है?"

"यह तो मुझको पिछले पाँच दिन में, जब से मैं यहाँ हूँ, स्पष्ट रूप में दिखाई देने लगी है। कल रात ही नगर में मालव तथा गौड़ सैनिकों में युद्ध छिड़ गया था। एक म्यान में दो खड्ग नहीं समा सकते। इसी प्रकार एक राजप्रासाद में दो राजा नहीं रह सकते।"

"पर यहाँ तो हम लगभग पन्द्रह दिनों से रह रहे हैं।"

"आप बधाई के पात्र हैं महाराज! फिर भी मेरी तुच्छ बुद्धि की बात सुन लें। या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो यह म्यान टूट जाएगी, अन्यथा दोनों खड्ग परस्पर भिड़ जाएँगे।"

शशांक हँस पड़ा और बात को पुनः रत्नों की ओर लाकर बोला, "रत्न को तुम मेरे पास छोड़ जाओ।"

"कब तक इस बात का पता करूँ?"

"कल इसी समय मंगलेश्वर तुमको बुला लाएगा।"

"अच्छी बात है। एक बात आप सुन लें। यह रत्न देवगुप्त के पास नहीं बिकेगा। यदि आप प्रतिद्वन्द्वी को पराजित कर इसकी जोड़ी ले सकेंगे तो यह बिना मूल्य श्रीमान् जी की सेवा में मेरी ओर से भेंट होगा। यदि आप इसको ऐसे ही लेना चाहेंगे तो इसका मूल्य पन्द्रह सहस्र स्वर्ण-मुद्रा होगा।"

"अच्छी बात है, कल मिलना।"

जब पद्मराज वहाँ से लौटा तो भगीरथ, जो अपने निवासस्थान पर उत्सुकता से उसकी प्रतीक्षा कर रहा था, उसे वापस आया देख पूछने लगा, "क्या हुआ महामात्य जी?"

"शशांक महामूर्ख है।"

"क्यों?"

"वह इतनी राजनीति की बातें सुनकर भी मुझको एक साधारण जौहरी ही समझता रहा।"

"तो फिर?"

"कल पुनः भेंट होगी।"

८

कन्नौज की एक वीथिका में एक स्त्री, हाथ में एक डोली, जो गीले कपड़े में लिपटी हुई थी, लिए हुए जा रही थी। वहाँ से निकल वह राजमार्ग पर चलने लगी। प्रातःकाल सोलहों शृंगार किए हुए वह युवती पाँव में चाँदी की झाँझरों से छनक-छनक करती जाती थी। राजमार्ग पर अभी वह कुछ ही पग गई थी कि पीछे से किसी ने पुकारा, "ओ पत्रलता! ओ पत्रलता!!"

पत्रलता ने घूमकर देखा। एक पुरुष मुस्कराते हुए उसके पीछे-पीछे आ रहा था। पत्रलता ने प्रश्नभरी दृष्टि से उसके मुख पर देखा तो उसने पूछा, "कहाँ जा रही हो, कन्नौज के सौन्दर्य का भार लिए?"

"ओह! मंगलेश्वर जी हैं। पुरोहित जी! किधर प्रस्थान हो रहा है इतनी सवेरे? क्या पूजा-पाठ से जी ऊब गया है?"

"पूजा-पाठ की महिमा नहीं रही प्रिये!"

"ओहो! अब तो पंडित जी रसिक हो गए हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो तुम नहीं जानतीं कि रसिक बिना पंडित नहीं बना जा सकता। भेद तो रस के प्रकार में पड़ गया है। कभी भगवान् के मोरमुकुट, पीत-वसन, कर्ण-कुण्डल में रस दिखाई देता था, अब रस भर गया है पत्रलता के मदभरे नयनों में।"

"तब तो मंगलेश्वर जी महाराज ! पत्रलता के चरणों की परिक्रमा होनी चाहिए।"

"हाँ, ठीक कहती हो। इसी कारण तो पूछ रहा हूँ कि मोहिनी किधर चली है यह श्रृंगार किए हुए ?"

इस समय सामने से एक अन्य पुरुष जल-भरा लोटा लिए जंगल की ओर जाता हुआ पत्रलता को देख उसके सन्मुख खड़ा हो गया और पूछने लगा, "किधर से आ रही है हमारी पत्रलता ?"

"तुम्हारी पत्नी के प्रांगण से। उसके सहवासी को पान का बीड़ा देकर।"

"हत, दुष्टा कहीं की। उसकी शैया तो मैं अभी छोड़कर आ रहा हूँ।"

मंगलेश्वर और पत्रलता हँसते हुए राजप्रासाद की ओर चल पड़े। कुछ काल तक चुपचाप चलने के पश्चात् पत्रलता ने पूछा, "पुजारी महोदय ! किधर जा रहे हैं ?"

"जिधर हमारी पत्रलता जा रही है।"

"मैं जा रही हूँ श्रीमती इन्द्रजालिक की सेवा में।"

"ओह, मैं जा रहा हूँ इन्द्रजालिक के चाहने वाले की सेवा में।"

"सत्य ` कब से ?"

'आज पाँच दिन हो गए हैं। गौड़-प्रभु किसी विश्वस्त प्रतिहार की आवश्यकता में थे। उनको मैं पसन्द आया और मुझको सेवा में ले लिया।"

"क्या गुण देखा है आपमें गौड़-प्रभु ने ?"

"उनके जीवन पर तीन बार घातक प्रहार किया जा चुका है और तीनों बार ही इस क्षुद्र पुजारी ने उनको बाल-बाल बचाया है।"

"तो प्रतिहारी नहीं, आपको अंगरक्षक कहना चाहिए।"

"महाराज का अंगरक्षक होना तो भारी सम्मान की बात है। वह पद भला पराजित कन्नौज के किसी निवासी को कैसे मिल सकता है ?"

"यही बात तो मेरी भी है। यह इन्द्रजालिक पाटलिपुत्र की रहने वाली है, इस कारण महाराज की प्रेमिका है और मैं कन्नौज की रहने वाली तांबूलिन-मात्र हूँ।"

"पर वह बहुत सुन्दर नृत्य करती है।"

"आप यह कैसे कह सकते हैं कि मैं सुन्दर नृत्य नहीं कर सकती ?"

"तो तुम महाराज को नृत्य दिखाने जा रही हो ?"

"मैं नित्य ही तैयार होकर जाती हूँ। यह आशा करती हूँ कि कभी तो महाराज की दृष्टि मुझ पर पड़ेगी।"

"महाराज कहाँ मिलते हैं तुमको ?"

"वे इन्द्रजालिक के आगारों में प्रातः का अल्पाहार करते हैं। पश्चात् तांबूल लेते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं और वह तांबूल लगाकर देने का कार्य मुझको मिला है।"

मंगलेश्वर ने एक दृष्टि पत्रलता की ओर फेंककर कहा, "वास्तव में तुम सुन्दर तो हो। क्या महाराज शशांक तुम्हारी ओर कभी देखते नहीं?"

"कभी तो देखेंगे। मैं भी पीछा छोड़ने वाली नहीं हूँ।"

"कहीं इन्द्रजालिक तुम्हारी शत्रु न बन जाए और रात के समय तुम्हें मरवाकर तुम्हारा शव चौक में न फिंकवा दे। आजकल मालव सैनिक भिक्षुणियों के साथ यही कर रहे हैं।"

"यही तो देखना है कि कौन चतुर है। इन्द्रजालिक अथवा पत्रलता। वह हरजाई राज्य-सभा की बातें क्या जान सकती है?"

"पत्रलता! ये हरजाइयाँ बहुत भयानक होती हैं। तनिक सावधानी से रहना। यदि कुछ मेरी सहायता की आवश्यकता पड़े तो बताना।"

"बता तो सकती हूँ, परन्तु पंडित जी को कभी गौड़-प्रभु के पास देखा नहीं।"

"बात यह है कि मेरा कार्य मध्याह्न-पश्चात् से मध्य-रात्रि तक रहता है। इन्द्रजालिक इतनी चतुर है कि रात के समय तुम-जैसी सुन्दर स्त्री को महाराज के समीप फटकने नहीं देती। रात के समय जितनी सेविकाएँ वहाँ आती हैं, वे सबकी सब छाँटकर वहाँ कुरूप एकत्रित की गई हैं। स्वर्ण-भूषण को हरे रंग के वस्त्र पर रखने से जो लाभ होता है, वही कुरूप सेविकाओं की पृष्ठभूमि पर एक सुन्दर स्त्री के होने से प्राप्त होता है।"

इस समय वे राजप्रासाद के द्वार पर जा पहुँचे थे। यहाँ पद्मराज जौहरी के वेश में उपस्थित था। शशांक ने मंगलेश्वर को जौहरी के साथ प्रातः अल्पाहार के समय ही इन्द्रजालिक के आगार में बुलाया था। इस गांधार-निवासी जौहरी ने जब पत्रलता को देखा तो झुककर नमस्कार करने लगा। पत्रलता ने पूछा, "कौन हैं आप?"

"मैं गांधार-निवासी जौहरी हूँ। महाराज को कुछ रत्न दिखाने के लिए लाया हूँ।"

"आपको पहले कहीं देखा है?"

"हाँ। जब तांबूलिन पान की दुकान करती थी, यह जौहरी कई बार पान खाने के लिए उसकी दुकान पर आया था।" जौहरी ने मुस्कराते हुए कहा।

तीनों भीतर चले गए। जब तीनों शशांक के कक्ष की ओर जाने लगे तो पत्रलता ने पूछा, "तो ये जौहरी महाशय इसी समय महाराज से मिलने जा रहे हैं?"

"हाँ, इनको इन्द्रजालिक के आगारों में ही बुलाया गया है।"

"तो इन्द्रजालिक के लिए रत्न क्रय किए जा रहे हैं?"

जौहरी बोला, "हाँ, यदि कुछ नकद बिक्री हो गई तो एक-आध वस्तु पत्रलता के लिए भी प्राप्त हो सकेगी।"

"तुम दोगे?" पत्रलता ने जौहरी की ओर घूमकर देखते हुए कहा।

"कुछ हानि है क्या?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कुछ लाभ नहीं होगा।"

"कुछ लाभ की आशा में नहीं दूँगा। मैं तो ठाकुर जी की पूजा में पुष्पपत्र चढ़ाने की बात कर रहा हूँ। प्रायः पत्थर के ठाकुर तो प्रसन्न नहीं होते और न ही कोई बुद्धिमान उनकी प्रसन्नता की आशा रखता है।"

"तो अपने पत्र-पुष्प क्यों व्यर्थ गँवाने की सोच रहे हो?"

"अपने मन की तुष्टि के लिए। देखो पत्रलता देवी! तुम्हारी दुकान पर पान का दाम कोई एक रजत दे तो किसलिए देगा?"

"एक रजत? अब कोई नहीं देता। एक देने वाला था, भगवान् जाने कहाँ चला गया है!"

"तो यह इन्द्रजालिक क्या देती है?"

"साधारण लोग एक टका देते हैं और यह चार टका देती है।"

"बस? इतने के लिए सुन्दरी पत्रलता अपना सौन्दर्य बिखेरती रहती है?"

"पर सौन्दर्य टके और रजत पाने के लिए नहीं है।"

"तो किसलिए है? यदि यह रजत, स्वर्ण और रत्नादि पर न्योछावर होता है तो वे देने वाले तो यहाँ हैं।"

"पर जौहरी महाशय!" मंगलेश्वर ने कहा, "कन्नौज की एक संकीर्ण वीथिका में उगी इस काँटेदार झाड़ी से उलझ गए तो पूर्ण शरीर छलनी हुए बिना नहीं रहेगा।"

"वीर और चतुर माली तो काँटेदार झाड़ियों में से ही पुष्प एकत्रित करते हैं। बताओ पत्रलता! क्या चाहिए तुमको?"

"जो कुछ जौहरी देगा, वह पाने की अभिलाषा यहाँ नहीं है।"

इस समय वे प्रासाद के उस कक्ष में जा पहुँचे थे, जिसमें शशांक रह रहा था। मंगलेश्वर तथा पत्रलता को सब जानते थे और जौहरी इनके साथ होने से प्रवेश पा गया।

महाराज शशांक इन्द्रजालिक के आगारों में थे। जब तक वे वहाँ रहते थे, केवल दासियाँ ही भीतर जा सकती थीं। मंगलेश्वर ने द्वार पर खड़ी दासी को कहा, "महाराज ने जौहरी को इन्द्रजालिक के आगार में बुलाया है। उनको सूचना दे दो कि वह आया है।"

दासी भीतर सूचना देने चली गई। मंगलेश्वर ने कहा, "कदाचित् मैं भीतर नहीं जा सकूँगा। जौहरी महाशय! इस काँटेदार पत्रलता से सावधान रहिएगा।"

"हाँ! ये काँटे पुजारी जी के लिए कोमल फूल दिखाई देते हैं और वे इनको उखाड़ने के लिए लालायित हो रहे हैं।" पत्रलता ने कह दिया।

दासी बाहर आ गई तो विनोद की बातें समाप्त हो गईं। दासी ने जौहरी को भीतर चलने के लिए कहा।

मंगलेश्वर के विषय में कोई आदेश नहीं था। इस कारण वह बाहर ही रह गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्रलता तो तांबूलिन थी और वह प्रतिदिन प्रातःकाल इन्द्रजालिक के लिए पान लाया करती थी। इस कारण उसके लिए कोई रुकावट नहीं थी। वह भी अन्दर जा पहुँची।

फिर भी दोनों एक साथ भीतर नहीं पहुँचे।

९

जौहरी को भीतर एक अत्यन्त ही सुसज्जित आगार में ले जाया गया। आगार में इन्द्रजालिक अभी भी पलंग पर प्रायः अर्धनग्नावस्था में लेटी हुई थी। उसने अपने ऊपर एक चादर ओढ़ी हुई थी। उसका सुन्दर मुख ही, खुले कृष्ण केशों के बीच में से, प्रश्रय पर रखा दिखाई दे रहा था।

महाराज शशांक पलंग के समीप ही एक चौकी पर बैठे थे। जौहरी के अन्दर प्रवेश करने पर शशांक ने कहा, "जौहरी ! उस हीरक का जोड़ीदार तो मिला नहीं। कल रात हमने महाराज देवगुप्त से वह माँगा था। वे हमें साथ लेकर रत्नागार में गए। वहाँ हमने भली प्रकार ढूँढ़ा, परन्तु वह नहीं मिला।"

"तो श्रीमान् ने यह मेरे वाला हीरा महाराज देवगुप्त को दिखाया था ?"

"हाँ।"

"यह तो महाराज ! ठीक नहीं हुआ। आज प्रातःकाल ही महाराज देवगुप्त का एक सैनिक मुझको ढूँढ़ता हुआ पंथागार में, जहाँ मैं ठहरा हूँ, पहुँच गया था। वह सैनिक मुझे पहचानता नहीं था। अतः मुझसे ही पूछने लगा, गांधार का जौहरी कहाँ है ?

"मैंने कहा, भीतर आगार में है।

"उसने पूछा, मैं कौन हूँ ? तो मैंने कह दिया कि मैं उसका सेवक हूँ।

"वह द्वार खटखटाने लगा। मैं अवसर निकाल इस ओर भाग आया हूँ। मुझको महाराज की सेवा में उपस्थित होना था। मेरा अनुमान है कि वह महाराज देवगुप्त का भेजा हुआ सैनिक था और मुझे महाराज के सम्मुख उपस्थित करना चाहता था।"

"पर वह हीरक वहाँ नहीं था।"

"तो वह पहले ही निकाल लिया गया होगा।"

"उसके विषय में बाद में बात करेंगे। अभी तो तुम इन देवी को कुछ रत्न दिखाओ। कदाचित् इनको कुछ पसन्द आ जाए।"

जौहरी भूमि पर बैठ गया। अपनी सन्दूकची, जो वह बगल में दबाए हुए था, उसने सामने रखकर खोल दी और एक-एक कर रत्न, हीरक, पन्ना आदि निकालकर दिखाने लगा।

"बहुत माल है जौहरी तुम्हारे पास ?" इन्द्रजालिक ने पूछा।

"हाँ, देवी जी ! यह तो अभी-अभी सिंहल द्वीप से लेकर आया हूँ। इससे भी अधिक मूल्यवान वस्तुएँ मेरे निवासस्थान कौशाम्बी में रखी हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शशांक ने हँसते हुए कहा, "जौहरी ! यदि हम यह सब माल तुमसे छीन लें और तुमको धक्के मार-मारकर यहाँ से निकाल दें तो फिर क्या करोगे ?"

"मैं महाराज को ऐसा नहीं समझता। जिनको समझता हूँ, उनके पास जाता ही नहीं। मेरी बुद्धि और मानव परखने की योग्यता ने मुझे आज तक धोखा नहीं दिया।

"इसके साथ एक और बात भी है। आप सब-कुछ छीनकर जाएँगे कहाँ ? आपके दो सहस्र सैनिक देवगुप्त के पचास सहस्र सैनिकों के बन्दी हैं।"

"तो इसीलिए यह तुम हमारे पास बेचने आए हो, जिससे मूल्य हमें चुकाना पड़े और इनका स्वामी देवगुप्त बन जाए ?"

"यह बात नहीं महाराज ! आप···।"

इस समय शशांक की दृष्टि पत्रलता पर पड़ी। वह लगे हुए पान लेकर भीतर आई थी और महाराज शशांक के पीछे खड़ी जौहरी की बात सुन रही थी। इन्द्रजालिक हाथों में पकड़े दो माणिक्यों को देख रही थी। उसका ध्यान पत्रलता की ओर नहीं था।

शशांक ने पत्रलता की ओर देखकर कहा, "लो, तांबूलिन आ गई। देवी को पान दो न तांबूलिन, जिससे इनकी नींद खुले और ये उठें।"

"हाँ, लाओ।"

"देखो जौहरी ! यह तांबूलिन कितनी सजधजकर पान देने आती है। मैं इससे पूछता हूँ क्यों, तो यह कहती है कि एक स्त्री के मन की बात एक पुरुष नहीं जान सकता। तुम इससे पूछो कि यह किसके लिए शृंगार करती है।"

"महाराज ! मैं इस तांबूलिन को चिरकाल से जानता हूँ। पिछली बार जब मैं कन्नौज आया था, तो इसकी दुकान पर पान लेने के लिए गया था। यह तब भी शृंगार किया करती थी। मैं केवल इसके शृंगार किए होने के कारण इसके पान का मूल्य एक रजत दिया करता था।"

"बहुत रसिक हो जौहरी !"

"यह तो श्रीमान्-जैसे रसिकों की कृपा का फल है।"

पत्रलता ने इन्द्रजालिक को पान दिया तो उसने मुख में डाल लिया। इस समय इन्द्रजालिक ने बड़े-बड़े माणिक्य उठाकर महाराज शशांक को दे दिए और कहा, "इनको मैं अपने कर्णफूलों में लगवाना चाहती हूँ।"

"पर यह जौहरी कहता है कि यह सब-कुछ देवगुप्त के हाथ लग जाएगा।"

"क्यों जौहरी ! यह तुम कैसे कहते हो ?"

"जैसे दो और दो चार होते हैं, वैसे ही देवी जी ! एक नरेश और दूसरा नरेश एकत्रित हों तो क्या होता है, यह मैं जानता हूँ। इसी कारण तो यह निवेदन किया है। तीन में से पाँच ऋण नहीं किए जा सकते, परन्तु यदि तीन में दस मिला दिए जाएँ और फिर उसमें से पाँच ऋण किए जाएँ तो यह हो सकता है। यह गणित की बात मैं जानता हूँ महाराज ! इसी से निवेदन कर रहा था कि तीन में दस मिलाने से यह रत्न श्रीमती जी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पास ही रह जाएगा।"

"जौहरी ! तुम तो राजनीति की बातें करते हो।"

"महाराज ! मैं व्यापारी हूँ। व्यापार की ही बात कह रहा हूँ।"

"अच्छा, यह बताओ, यह तीन में दस मिलाने के लिए कौन-सा द्वार खटखटाया जाए ?"

"महाराज ! एक बहुत बड़ा द्वार है। उसको खटखटाने से मुँहमाँगी मुराद मिलती है। वह द्वार है प्रजा का। प्रजा का हितचिन्तन कीजिए। यही द्वार खटखटाना है। इसी के द्वारा तीन में दस मिलाकर आप पाँच ऋण कर सकते हैं।"

शशांक की समझ में बात आ रही थी। पिछले दिन मध्याह्न के समय जौहरी ने जो कुछ कहा था, अब उसके सम्मुख स्पष्ट हो गया। वह समझ गया कि उसकी दुर्बल स्थिति को प्रबल करने का सुझाव उपस्थित हुआ है। फिर भी कुछ और कहने के पूर्व वह प्रजा के विषय में जौहरी के विचार जानना चाहता था। वह यह जानना चाहता था कि क्या सत्य ही कन्नौज की प्रजा देवगुप्त से इतनी रुष्ट है कि उसका साथ देने को तैयार हो जाएगी ? वह अभी कुछ और पूछना ही चाहता था कि इन्द्रजालिक ने कहा, "तो महाराज ! ये रत्न जौहरी से ले लिए जाएँ और तीन और दस तेरह कर दिए जाएँ।"

"हाँ, तो इनके दाम क्या हैं ?"

"महाराज ! आठ सहस्र स्वर्ण।"

"पर इनमें क्या वैचित्र्य है, जो इतना मूल्य माँगते हो ?"

"इनका वैचित्र्य देवी जी जान गई हैं और यदि तांबूलिन के शब्द दोहरा दूँ तो यह कहूँगा कि यह बात पुरुष नहीं समझ सकते।"

शशांक ने ताली बजाई तो एक दासी भीतर आ गई। शशांक ने उसको आज्ञा दी, "मंगलेश्वर को बुला लाओ।"

दासी गई, मंगलेश्वर भीतर आ गया। शशांक ने उसको एक कागज पर आठ सहस्र स्वर्ण मुद्राएँ जौहरी को देने की आज्ञा लिखकर दे दी।

जौहरी ने कहा, "महाराज ! उस हीरक के विषय में क्या आज्ञा है ?"

"वह तो तुम हमें बिना मूल्य भेंट करना चाहते थे न ?"

"हाँ महाराज ! परन्तु एक शर्त के साथ कि उसका जोड़ आप प्राप्त कर लें।"

"वह हम करेंगे। तुम तीन में दस मिलाने को कहते हो। साथ ही यह कह रहे हो कि दस के लिए द्वार खटखटाना चाहिए। वह द्वार किस ओर है, यह भी बता दो न।"

"महाराज, मैं बीसियों बार कन्नौज में आ चुका हूँ। मैं जानता हूँ कि कौन महाराज की अभिलाषा पूरी कर सकता है, परन्तु यह रहस्य यहाँ पर नहीं बताया जा सकता। कारण यह है कि मैं उस व्यक्ति का नाम नहीं जानता। हाँ, उसका निवासस्थान जानता हूँ।"

"तो निवासस्थान बता दो। यह मंगलेश्वर इस नगर की प्रत्येक वीथिका से परिचित है। वास्तव में इसी कारण तो इसे मैंने अपनी सेवा में रखा है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मंगलेश्वर को आज्ञा दीजिए। मैं साथ ले जाऊँगा और इसे उस व्यक्ति के द्वार पर ले जाकर खड़ा कर दूँगा।"

मंगलेश्वर और पद्मराज के चले जाने के पश्चात् शशांक भी उठ खड़ा हुआ और पत्रलता से बोला, "पत्रलता ! एक बात तो मैं समझ गया हूँ कि पुरुष स्त्री के हाथ से पान खाना क्यों पसन्द करता है और सजधजकर आई स्त्री के हाथ से और भी अधिक। इसी कारण जब तुम यहाँ आती हो तो यह आगार दुगुना प्रकाशमान हो जाता है और पान लेने की इच्छा जागृत हो जाती है।"

"महाराज ! दासी तो सदैव सेवा के लिए उपस्थित है। कहिए तो एक और बढ़िया तीव्र पान लगाकर सेवा में उपस्थित करूँ ?"

"हाँ, आज ऐसी ही इच्छा है।"

पत्रलता वहीं भूमि पर बैठ गई और अपनी डोली खोल बंग देश का पान निकाल, उस पर कत्था-चूना लगाने लगी। पान लगाकर उसने डोली में से एक अन्य वस्तु निकालकर उसमें डाल दी। इन्द्रजालिक ने यह देखा तो पूछा, "यह क्या है पत्रलता ?"

"यह एक विशेष प्रकार की सुगन्ध है। यह कश्मीर से आती है।"

"तो तुम यह मेरे पान में नहीं डाला करतीं ?"

"यह पुरुषों के लेने की वस्तु है।"

"ओह ! क्या होता है पुरुषों को इसको लेने से, जो यह स्त्रियों के लिए उपयुक्त नहीं ?"

"यह तो मैं नहीं जानती। मेरे गुरु ने ऐसा ही बताया है और ऐसा ही मैं करती हूँ। इतना तो मैं जानती हूँ कि मेरे हाथ का पान, जिसमें यह वस्तु पड़ी हो, खाने वाले सैकड़ों कोस का मार्ग तय करके भी मुझसे पान लेने आते हैं।"

"तो यह वस्तु तुमने कभी जौहरी को खिलाई प्रतीत नहीं होती, अन्यथा वह तुम्हारे इस गुण का बखान करता ?"

"नहीं महाराज !" इतना कह उसने पान लपेटकर शशांक के हाथ में दे दिया।

शशांक ने पान मुख में डालते हुए कहा, "पत्रलता ! तुम तो इस नगर की रहने वाली हो, इस जौहरी के विषय में क्या जानती हो ?"

"मैं तो केवल यह जानती हूँ कि प्रजा भिक्षुणियों और गृहस्थ स्त्रियों को सैनिकों के मनोरंजन के लिए देने से अति क्रुद्ध है। परन्तु इस क्रुद्ध प्रजा से कुछ हो सकेगा, यह कह नहीं सकती।"

"तो तुम्हारा विचार है कि जौहरी बोलता अधिक है और कुछ अधिक कर नहीं सकेगा ?"

"यह तो मैं नहीं कह सकती। मैं तो यह जानती हूँ कि यदि प्रजा के मन में यह बात बैठ जाए कि श्रीमान् प्रजा के हित और मान की रक्षा करेंगे तो वह जो कुछ भी हो सका, आपके लिए करेगी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो प्रजा को यह कैसे पता चलेगा कि मैं उसका हितचिंतन कर रहा हूँ ?"

"कोई प्रजा के हित की बात कीजिए तो वह स्वयं जान जाएगी।"

"मैं क्या कर सकता हूँ ?"

"इस समय महारानी राज्यश्री बंदी हैं। प्रजा यह जानती है। प्रजा महारानी को बहुत चाहती है। आप महारानी जी को स्वतन्त्र करा दीजिए। मैं समझती हूँ कि इतने मात्र से प्रजा का ध्यान आप भली-भाँति अपनी ओर आकर्षित कर सकेंगे।"

"तुम्हारा राज्यश्री से क्या सम्बन्ध है ?"

"वे बहुत भली स्त्री हैं। मुझसे पान लिया करती थीं। नगर के सहस्रों दीन-दुखियों की सहायता किया करती थीं।"

"ओह !" शशांक ने कुछ सोचकर पुनः कहा, "अच्छी बात है। मैं विचार करूँगा।"

जाते-जाते शशांक ने पुनः पत्रलता से कहा, "भोजन के पश्चात् पान देने आओगी तो इसका मूल्य उसके साथ ही दे दूँगा।"

"इसका मूल्य मैं दे दूँगी महाराज !" इन्द्रजालिक ने कहा। पश्चात् उसने पत्रलता से पूछा, "इस विशेष पान का क्या लेती हो ?"

"चार टका देवी !"

"पर जौहरी तो प्रत्येक पान का एक रजत देता था न ?" शशांक ने कहा।

"वह मूर्ख है। इन शर्बती आँखों को देख व्यर्थ में अपना धन व्यय करता है।" इन्द्रजालिक ने कहा।

"नहीं देवी ! वह तो मेरे शृंगार को देखकर एक रजत देता था।"

"तो तुम समझती हो कि तुम्हारे शृंगार का मूल्य एक रजत ही है ?"

"इसका दाम मैं नहीं लगा सकती। इतना मैं जानती हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति सजधजकर रहना चाहता है और उस सजधज का मूल्य उसे मिलता है। कभी रजत के रूप में, कभी प्रशंसा-भरे शब्दों में और कभी उच्च पदवी प्राप्त होने से।"

"पत्रलता ! तुम पान लेकर आना। हम देखेंगे कि हम क्या दे सकते हैं।"

१०

पत्रलता मध्याह्न के समय पान लेकर शशांक की सेवा में उपस्थित हुई तो शशांक ने पूछा, "क्या तुम इन्द्रजालिक से चार टका पान का मूल्य लेकर सन्तुष्ट हो ?"

"महाराज ! चार टका पान का मूल्य नहीं। यह तो उनके मन की उदारता का प्रमाण है। पान तो एक टका में पचास मिलते हैं। मसाला भी एक पान में चौथाई टके से अधिक नहीं लगता। ग्राहक पान का दाम नहीं देते। जो कुछ भी वे देते हैं, वह उनके मन की भावना होती है।"

"तो तुम समझती हो कि इन्द्रजालिक के मन का मूल्य चार टका है ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"महाराज ! जनसाधारण तो पान का मूल्य एक टका ही देता है।"

"तो वह जौहरी तुमको एक रजत क्यों देता है ?"

"महारानी राज्यश्री जब पान लेती थीं तो एक स्वर्ण देती थीं।"

"क्यों ? क्या वे मूर्ख नहीं थीं, जो इतना कुछ एक पान के लिए देती थीं ?"

"मूर्खता का मापदण्ड मेरे पास नहीं है महाराज ! यह तो श्रीमान् उनसे पूछिए कि वे क्यों देते हैं ?"

"तो तुम यह कह सकती हो कि इन्द्रजालिक जनसाधारण से चार गुना मूर्ख है और जौहरी इन्द्रजालिक से सोलह गुना तथा राज्यश्री जौहरी से बीस गुना अधिक मूर्ख है।"

"इसके विपरीत भी हो सकता है महाराज ! अर्थात् महारानी राज्यश्री जौहरी से बीस गुणा अधिक बुद्धिमान् हों।"

शशांक हँस पड़ा। बोला, "यहाँ, कन्नौज में लोग वाचाल बहुत हैं।"

"महाराज ! इस वाचाल की एक बात सुन लीजिए, परन्तु उसको वाचाल की बात मानकर फेंक मत दीजिएगा।"

"हाँ, कहो।"

"यह वाचाल किसी प्रकार से जान गई है कि गौड़ाधिपति को इन्द्रजालिक के शयनागार में मार डालने का षड्यन्त्र रचा जा चुका है। कदाचित् आज रात ही इस योजना पर कार्य किया जाएगा।"

शशांक आश्चर्यचकित रह गया। उसने पूछा, "कैसे जानती हो तुम ?"

"यह न पूछिए महाराज ! यदि महाराज की परलोक-यात्रा करने की इच्छा न हो तो रात को इन्द्रजालिक के शयनागार में किसी अन्य युवक को भेजकर परीक्षा कर सकते हैं।"

"यह कौन करेगा ?"

"इसके विषय में अभी बताना न उचित है और न ही सम्भव।"

"क्या यह इन्द्रजालिक की जानकारी में हो रहा है ?"

"यह मुझको पता नहीं चला। फिर भी इस वाचाल की सम्मति है कि आप अपनी योजना में इन्द्रजालिक को सम्मिलित न करें। प्रातः जो कुछ जौहरी ने कहा था, वह किसी अन्य स्थान पर विचार का विषय बन गया है। वह सूचना वहाँ कैसे गई, मैं नहीं जानती। फिर भी उसको अपने ज्ञान का भास न होने दें तो ठीक रहेगा। साथ ही अपने जीवन की रक्षा का प्रबन्ध करें।"

पत्रलता पान खिलाकर, पान का मूल्य दो स्वर्ण लेकर विदा हो गई। शशांक आश्चर्य में पड़ा हुआ उसे जाते देखता रहा।

पत्रलता राजप्रासाद से निकली तो सीधी मंगलेश्वर के घर जा पहुँची। मंगलेश्वर घर पर नहीं था। उसकी पत्नी तांबूलिन से परिचित थी। इस कारण उसने पूछा, "क्या काम है पुजारी जी से तुम्हारा ?"

"राज-कार्य से आई हूँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो तुम भी राजा की सेवा में चली गई हो ? न जाने यहाँ के रहने वालों को क्या हो गया है कि इन दुष्टों की सेवा में लज्जा तक अनुभव नहीं करते।"

"पण्डितायिन ! जब कन्नौज में धनी-मानी लोग नहीं रहेंगे तो हमारा निर्वाह कैसे होगा ?"

"तो तुम समझती हो कि पण्डित जी भूखे मरने लगे थे, जो गौड़-नरेश की सेवा में चले गए हैं ?"

"उनको धन की आवश्यकता नहीं होगी। कदाचित् वे मान की आशा में गए हों।"

"ब्राह्मण का मान तो धर्मशास्त्र पढ़ने-पढ़ाने में है, न कि झूठे और अत्याचारी राजाओं की चाकरी और चाटुकारी करने में।"

"नहीं पण्डितायिन ! तुम समझ नहीं सकतीं। अच्छा, यदि पण्डित जी आएँ तो कहना कि शीघ्रातिशीघ्र मुझसे मिलें। मैं अपने गृह पर मिलूँगी।"

"तो क्या तुम्हारे घर जाने से उनका मान बढ़ेगा ?"

"यह तो राजाज्ञा है।"

इतना कह पत्रलता वहाँ से निकल आई और अपने गृह की ओर चल पड़ी। उसके विस्मय का ठिकाना नहीं रहा, जब उसने जौहरी और मंगलेश्वर दोनों को अपने घर में उसकी प्रतीक्षा करते पाया। उसके मुख से एकाएक निकल पड़ा, "आप ? बताइए, किस कार्य से पधारे हैं ?"

मंगलेश्वर हँस पड़ा और कहने लगा, "पत्रलता ! प्रातःकाल तो तुम कह रही थीं कि नर्तकी इन्द्रजालिक बहुत सुन्दर नहीं है और तुम उससे अधिक सुन्दर हो। परन्तु उसको देखकर तो तुम्हारे कथन में सत्यता प्रतीत नहीं हुई।"

"ओह ! तो मंगलेश्वर जी महाराज वहाँ हम दोनों में तुलना करते रहे थे। मेरा विचार है, उसको देखकर तो पण्डित जी का मन अपनी पण्डितायिन से भटक गया होगा।"

"बड़ी दुष्टा हो तुम ! उस सती-साध्वी पर कटाक्ष करने लगी हो।"

"मैं अभी-अभी उनसे मिलकर आ रही हूँ। वे बेचारी चिन्तित प्रतीत होती थीं, विशेष रूप से जब मैंने कहा कि आपको मेरे घर भेज दें। वे कहने लगीं कि उनकी मान-हानि हो जाएगी। परन्तु श्रीमान् तो पहले ही पहुँच गए हैं।"

"तुम मेरे घर पर गई थीं ? क्या काम था ?"

"पहले यह बताइए कि इन जौहरी महाशय ने आपको प्रजा का द्वार किधर बताया है ?"

"इन्होंने बता दिया है। मैं वहीं से आया हूँ। वहाँ के जनों की कुछ शर्तें हैं। गौड़ाधिपति वे शर्तें मानेंगे अथवा नहीं, कहना कठिन है।"

"क्या मैं उन शर्तों को जान सकती हूँ ?"

"हाँ, परन्तु उससे पूर्व तुम्हें बताना होगा कि तुम राजप्रासाद में किसके लिए कार्य कर रही हो ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कैसा कार्य ? मैं तो पान बेचने जाती हूँ और बेचकर चली आती हूँ।"

"ठीक है पत्रलता ! टके-टके में पान बेचने एक नर्तकी और उसके रसिक के घर जाती हो। तुम हमें मूर्ख समझती हो पत्रलता ! देखो, मैं कहता हूँ कि यदि तुम कन्नौज के किसी हितेच्छु के पक्ष में कार्य कर रही हो तो हमको बता दो। हम भी उसी दृष्टि से कार्य में संलग्न हो जाएँ।"

इस बात से पत्रलता गम्भीर हो गई। मन में कुछ विचार कर बोली, "आप ठीक कहते हैं, पुजारी महाराज ! परन्तु आप यह नहीं समझ सके क्या कि मैं किसी पक्ष में केवल कार्यकर्ता ही तो हो सकती हूँ ? प्रश्न यह है कि वे लोग, जिनके आदेश पर मैं कार्य कर रही हूँ, क्या चाहते हैं ?"

"तो उनसे पूछ लो। अच्छा, इनको पहचानती हो ?"

"नहीं। ये कहते हैं कि मेरे पान के लिए एक रजत दिया करते थे और वह भी इस कारण कि मैं शृंगार करके पान बेचा करती थी। मुझको तो किसी ऐसे व्यक्ति का स्मरण नहीं आ रहा। हाँ, एक व्यक्ति था, जो एक रजत दिया करता था, परन्तु वह इसलिए नहीं कि मैं सुन्दर थी और शृंगार किए बैठी रहती थी, प्रत्युत इस कारण कि मैं उनकी और उनकी पत्नी की दासी थी। वे मुझको अपनी लड़की के समान मानते थे।"

जौहरी ने पूछा, "वह व्यक्ति कौन था ?"

"पर तुम वह नहीं हो सकते। यह रूप-रेखा उनकी नहीं है।"

"देखो पत्रलता ! मैं वह नहीं हूँ, जो तुमको एक पान के लिए एक रजत दिया करता था; परन्तु मैं उनका एक कर्मचारी हूँ। इस कारण उनके स्वभाव की बात जानता हूँ। तुम अपने नेता से विचार कर, पूछकर बताना कि क्या वे उनके एक विश्वस्त कर्मचारी से विचार-विनिमय करना पसन्द करेंगे ?"

पत्रलता ने विचार कर कहा, "क्या आप सायंकाल, यहाँ नहीं किसी अन्य स्थान पर, मिल सकेंगे ?"

मंगलेश्वर ने कहा, "पण्डित भगीरथ के गृह पर। वहाँ ठीक होगा ?"

"हाँ, पण्डित जी के विषय में धोखा देने का सन्देह नहीं हो सकता। परन्तु वह गृह नगरपाल के पड़ोस में है। कदाचित् वहाँ जाना और मिलना उचित न प्रतीत हो।"

मंगलेश्वर ने सुझाव रख दिया, "तब तो मेरे गृह में ही ठीक रहेगा। परन्तु मेरी गृहिणी के उलाहने सुनने पड़ेंगे।"

"वे तो सती-साध्वी हैं न। उनके उलाहने आशीर्वाद बन जाएँगे।"

"तो ठीक है।" जौहरी ने बात समाप्त करते हुए कहा, "हम सायंकाल से दो घड़ी पूर्व वहाँ एकत्रित होंगे। यदि तुम्हारे नेता आएँ तो ठीक, अन्यथा तुम तो अवश्य मिलोगी। हाँ, देखना, दो पान भी लेती आना। प्रति पान एक रजत मिलेगा।"

"तो सेवक भी स्वामी के समान उदार हैं ?"

"हाँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११

पण्डित मंगलेश्वर के गृह में जब दोनों पक्ष के लोग मिले तो दोनों विस्मय में एक-दूसरे का मुख देखते रहे। पत्रलता पण्डित विष्णुकान्त और उसके साथियों के लिए कार्य कर रही थी।

पण्डित विष्णुकान्त ने यह अनुभव किया था कि अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित सैनिकों का विरोध साधारण नागरिक नहीं कर सकेंगे और षड्यन्त्र द्वारा ही राज्य पलटा जा सकता है। जब शशांक कन्नौज पहुँचा था, तो उसका विचार हुआ था कि मालवों को शशांक की सहायता से कन्नौज से निकाला जा सकता है। पश्चात् गौड़-नरेश से मुक्ति पाना उतना कठिन नहीं होगा। इस अर्थ एक योजना बना ली गई। योजना का एक अंग था, शशांक को मालव-नरेश के विरुद्ध भड़काना। इसमें पत्रलता और कुछ अन्य कर्मचारी लगे हुए थे। पत्रलता मालव-नरेश महाराज देवगुप्त को गौड़ाधिपति के विरुद्ध भड़काने में सहायक हो रही थी। षड्यन्त्र का दूसरा अंग था, जनता को तैयार करना, जिससे वह सैनिकों के अत्याचार का विरोध कर सके और फिर दोनों पक्षों में से एक को, जिसको नेता लोग कहें, अवसर आने पर सहायता दे सके।

जब विष्णुकान्त ने जौहरी के रूप में पद्मराज को पहचाना तो वह और उसके साथी अत्यन्त प्रसन्न हुए। उस समय विष्णुकान्त ने बताया कि पत्रलता की यह सूचना है कि मालव सैनिक बलपूर्वक इन्द्रजालिक के शयनागार में प्रवेश कर शशांक की हत्या कर देंगे। इन्द्रजालिक इस षड्यन्त्र के विषय में जानती है। उसे बहुत-सा धन देने का लोभ देकर चुप रखा गया है। वह चुप रहेगी। वास्तव में इन्द्रजालिक को गुप्त रूप से देवगुप्त के गुप्तचर विभाग ने शशांक के पास भेजा हुआ है।

पद्मराज ने स्थिति को समझकर कहा, "तो आज ही विप्लव क्यों न कर दिया जाए! कितने नागरिक होंगे, जो शस्त्रधारी हैं और इस जीवन-मरण के कार्य को करने के लिए तैयार हैं?"

"तीन सहस्र के लगभग एकत्रित किए जा सकते हैं।"

"तो ठीक है। अभी एक घड़ी में मैं अपनी वास्तविक वेशभूषा में शशांक से मिलने जाने वाला हूँ। नगर के छः द्वार हैं। प्रत्येक द्वार पर पाँच-पाँच सौ नागरिक अपने-अपने शस्त्रों को लेकर एकत्रित हो जाएँ। मध्य रात्रि के कुछ पश्चात् राजप्रासाद की छत पर से अग्नि का एक वायुगोला उड़ाया जाएगा। उसको देखते ही द्वारों पर नियुक्त मालव सैनिकों पर आक्रमण कर दिया जाए। उन पर अधिकार कर द्वार पर अधिकार कर लिया जाए। उस समय तक हम राजप्रासाद पर अधिकार कर लेंगे और देवगुप्त को समाप्त कर चुके होंगे। पश्चात् शशांक को कन्नौज की राजगद्दी दे देंगे।

"यह तब तक चलेगा, जब तक स्थानेश्वर की सेना, जो सिन्धु नदी के तट पर से चल पड़ी है, यहाँ नहीं पहुँचती। तब कुमार राज्यवर्धन यहाँ के राजा होंगे। यदि महारानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्यश्री तब तक जीवित रहीं, तो उनको यहाँ की महारानी बना दिया जाएगा।"

विष्णुकान्त ने इस योजना में एक छिद्र की ओर संकेत किया, "नगर के बाहर पचास सहस्र मालव सेना पड़ी है। वह नगर को घेर लेगी और नागरिकों को भूखा मार डालेगी।"

"उसका प्रबन्ध कर दिया जाएगा। शशांक की सेना भी नगर के बाहर खड़ी है। यद्यपि उसकी संख्या मालव सेना की तुलना में कम है, फिर भी उसको आदेश होगा कि एकाएक अँधेरी रात में मालव सेना पर आक्रमण कर दे। निस्सन्देह मालव सैनिक भाग खड़े होंगे। एक बार सेना भागी तो उसको देश के बाहर कर देना सुगम रहेगा। विशेष रूप में तब, जब महाराज देवगुप्त मारे जा चुके होंगे।"

योजना स्वीकार कर ली गई और विष्णुकान्त अपने भाग का कार्य करने के लिए चल पड़ा। मंगलेश्वर और पद्मराज अपने वास्तविक वेश में राजप्रासाद की ओर चल दिए।

शशांक पत्रलता की चेतावनी सुन बहुत ही चिन्तित था। उसकी योजना यह थी कि ठीक मध्यरात्रि के समय अर्थात् आयोजित हत्या के समय से कुछ ही पूर्व, वह इन्द्रजालिक को लेकर अपने आगार में आ जाएगा। इन्द्रजालिक की शय्या पर एक सेवक को सुला दिया जाएगा। प्रातःकाल यदि उसकी हत्या हुई मिली तो पत्रलता के कथन की परीक्षा हो जाएगी। साथ ही वह प्रातःकाल देवगुप्त से झगड़कर कन्नौज का आधा राज्य अपने अधीन करने को विवश करेगा। रात को अपना शयनागार सुरक्षित करने के लिए उसने अपने पचास अतिरिक्त सैनिक अपने कक्ष में बुला लिए।

सायंकाल जब पद्मराज और मंगलेश्वर वहाँ पहुँचे तो उन्होंने शशांक की योजना को अव्यवहार्य बताया। यदि पद्मराज अपने वास्तविक रूप में वहाँ न होता तो शशांक अपनी योजना के छिद्रों पर विश्वास करना तो दूर, विचार भी न करता। परन्तु जब मंगलेश्वर ने पद्मराज का, कन्नौज के भूतपूर्व महामात्य के रूप में परिचय कराया तो शशांक उसे अपनी सहायता के लिए तत्पर देख अति प्रसन्न हुआ।

पद्मराज ने कहा, "हम यहाँ पर बौद्ध-राज्य नहीं चाहते। सामाजिक स्तर पर बौद्ध-मीमांसा का प्रयोग हानिकारक सिद्ध हो चुका है। अतएव हम आपको कन्नौज की बागडोर सँभालने का निमन्त्रण देते हैं।"

इसके पश्चात् पद्मराज ने अपनी योजना उसके सम्मुख रख दी। योजना शशांक ने स्वीकार कर ली। पद्मराज ने कहा कि गौड़-नरेश के जो अतिरिक्त सैनिक राजप्रासाद के भीतर हैं, उनको साधारण नागरिकों के वेश में ही रखा जाए, जिससे देवगुप्त को किसी प्रकार का संदेह न हो। योजना का एक अंग यह भी था कि ज्यों ही शशांक के सेवक की इन्द्रजालिक के शयनागार में हत्या हो, दो सौ नागरिक, जो तब तक राजप्रासाद में प्रवेश कर चुके होंगे, देवगुप्त के शयनागार को घेरकर उस पर आक्रमण कर दें और उसे समाप्त कर दें। उसके पश्चात् ऊपर भवन से एक अग्नि का वायुगोला उड़ा दिया जाए, जिससे राजप्रासाद के बाहर सशस्त्र नागरिक अपनी शेष कार्यवाही पूरी कर दें। शशांक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने अपने सेनानायक को बुलाकर उसे मालव सेना पर उचित समय आक्रमण करने के लिए आज्ञा दे दी।

मध्यरात्रि से पूर्व इन्द्रजालिक अपने शयनागार में बैठी थी, उस समय शशांक वहाँ आ उपस्थित हुआ। उसने कहा, "देवी ! आज एक अन्य नर्तकी हमारे आगार में अपना नृत्य दिखा रही है। हमने उसे चुनौती दी है और दस सहस्र स्वर्ण का पुरस्कार घोषित कर दिया है।"

"परन्तु महाराज ! मैं तो आपकी संगति की इच्छुक हूँ।"

"वह भी होगा, परन्तु नृत्य के पश्चात्। इन्द्र ! चलो। नहीं तो मेरा भारी अपमान हो जाएगा।"

इन्द्रजालिक विवश हो गई। वह देख रही थी कि देवगुप्त की सारी योजना विफल होने जा रही है। फिर भी उसने अन्तिम प्रयत्न किया, "महाराज ! आधी रात तो निकल चुकी है। नृत्य कल हो जाएगा। अब अधिक वियोग सहन नहीं होता।"

"देर नहीं लगेगी इन्द्र ! अभी तो मध्यरात्रि में एक घड़ी शेष है। चलो, आओ !" इतना कह शशांक ने लालसा-भरी दृष्टि से इन्द्रजालिक की ओर देखा।

विवश इन्द्रजालिक उठकर उसके साथ चल दी। एक बार तो शशांक को ऐसा प्रतीत हुआ कि कहीं पत्रलता की सूचना मिथ्या न हो, परन्तु अब बात सीमा से दूर निकल गई थी। साथ ही वह प्रातः ही कन्नौज का अधिपति बनने का स्वप्न देख चुका था।

दोनों शशांक के शयनागार में पहुँचे। शशांक ने कहा, "इन्द्र ! नृत्य साथ के आगार में होगा। वहाँ दूसरी नर्तकी बैठी है। लो, तुम भी तैयार हो जाओ। मैं अभी प्रतिहार को तुम्हें लिवाने के लिए भेजूँगा।"

इतना कह शशांक आगार से बाहर निकल गया। उसके बाहर निकलते ही द्वार खट से बन्द हो गया और बाहर से ताला लगने का शब्द हुआ। इन्द्रजालिक समझ गई कि वह बन्दी बना ली गई है। वह भागकर द्वार की ओर लपकी, परन्तु पर्दे के पीछे से एक सैनिक नग्न खड्ग लिए हुए निकल आया। उसने केवल यह कहा, "देवी ! मुझे यह आज्ञा है कि यदि आप किंचित्मात्र भी हल्ला करें तो आपका सिर धड़ से पृथक् कर दिया जाए। मेरा आपसे आग्रह है कि एक नारी की हत्या का पाप मुझ पर न लगने दीजिए।"

इन्द्रजालिक समझ गई कि सब योजना विफल हो गई है और अब हल्ला करने पर शायद वह भी इस षड्यन्त्र में सम्मिलित मान ली जाए। इस कारण वह अपनी रक्षा करने की योजना बनाने लगी। उसने सैनिक से कहा, "वीर पुरुष ! महाराज ने मुझे नृत्य के लिए आज्ञा दी है।"

"मैं जानता हूँ देवी ! कुछ ही काल में महाराज आएँगे और आपको अपने साथ ले जाएँगे। आपको बन्दी बनाने की आज्ञा इसीलिए है कि कहीं आप भाग न जाएँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरी नर्तकी उस अवस्था में विजित घोषित हो जाएगी और महाराज दस सहस्र स्वर्ण हार जाएँगे।"

महाराज शशांक इन्द्रजालिक को छोड़ बाहर आया तो पद्मराज ने पहली कड़ी की सफलता पर प्रसन्नता प्रकट की। पश्चात् दस सैनिकों को प्रतिहारों के रूप में इन्द्रजालिक के शयनागार के पास ही, उसकी देखभाल करने के लिए भेज दिया गया। उन्हें समझा दिया गया कि यदि मालव सैनिक उस आगार में जाना चाहें तो उन्हें जाने दिया जाए और कुछ क्षण पश्चात् यदि वे चुपचाप वहाँ से निकल भागें तो उन्हें रोका न जाए। यदि बाहर निकलकर वे सेविकाओं से कुछ पूछगीछ करना चाहें तो उन पर आक्रमण कर उन सबको वहीं समाप्त कर दिया जाए। ऐसी अवस्था में संकेत पाते ही और भी सैनिक वहाँ भेज दिए जाएँगे।

मध्यरात्रि का घंटा बजा और उसके कुछ ही काल पश्चात् एक सैनिक शशांक के पास उसके आगार में आया और कहने लगा, "मध्यरात्रि का घंटा बजते ही चार सैनिक इन्द्रजालिक के आगार में प्रवेश कर गए। कुछ ही क्षणों में वे वापस बाहर निकलकर देवगुप्त के आगार की ओर चले गए हैं। उनमें से एक का खड्ग नग्न और रक्तरंजित था। दासियाँ भयभीत होकर इधर आ रही थीं। उन्होंने कहा कि गौड़ाधिपति की हत्या कर दी गई है। उनको चुप रहने का आदेश दे दिया गया है।"

पद्मराज ने समस्त सैनिकों को, जो राजप्रासाद में छिपे हुए थे, आज्ञा भेज दी कि देवगुप्त का कक्ष घेर लें।

१२

नाभर की हत्या वाली रात्रि को नीलांग और जम्बुक, दोनों राजप्रासाद से निकलकर नगर के ही एक अन्य घने भाग में जा पहुँचे। वहाँ एक वीथिका के अन्दर उन्होंने प्रवेश किया। वीथिका में एक अत्यन्त ही विशाल गृह था। उस गृह के द्वार पर पहुँच नीलांग ने द्वार को धीरे से धकेला। द्वार खुल गया, परन्तु भीतर अँधेरे में से एक व्यक्ति ने तीव्र स्वर में पूछा, "संकेत?"

"चन्द्र।" जम्बुक ने उत्तर दिया।

दोनों को भीतर जाने दिया गया। उस गृह के भीतर एक विशाल प्रांगण में चालीस-पचास व्यक्ति बैठे थे। नीलांग और जम्बुक भी उनमें जा बैठे। अभी अन्य लोग आ रहे थे।

ठीक मध्यरात्रि के समय द्वार पर खड़े व्यक्ति ने कहा, "महाराज! सब आ गए हैं।"

वह व्यक्ति, जिसको महाराज कहकर संबोधन किया गया था, यह सुनकर खड़ा हो गया। यह व्यक्ति राज्यवर्धन था। उसने उपस्थित लोगों को कहना आरम्भ किया,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"वीरो ! अब वह समय आ गया है, जिसकी हमें प्रतीक्षा थी। हमारी तैयारी पूर्ण हो चुकी है।

"हम संख्या में केवल पाँच सौ हैं, परन्तु अपने कार्य के लिए हम पर्याप्त हैं। हमारे पास राजप्रासाद में प्रवेश करने के पचास संकेत एकत्रित हैं। इनके द्वारा हम एक सौ सैनिक राजप्रासाद में प्रवेश कर सकेंगे।

"परसों मध्यरात्रि से पूर्व, हममें से एक सौ सैनिक प्रासाद में प्रवेश कर जाएँगे। ये लोग मध्यरात्रि का घंटा बजते ही भीतर से प्रासाद के द्वार पर आक्रमण बोल देंगे। द्वार पर लगभग तीस-पैंतीस सैनिक रहते हैं। उनको समाप्त कर प्रासाद का द्वार खोल दिया जाएगा। हममें से शेष चार सौ, जो इस समय प्रासाद के द्वार के बाहर एकत्रित हो जाएँगे, अन्दर प्रवेश कर लेंगे और पश्चात् देवगुप्त के कक्ष को जाकर घेर लेंगे। वहाँ पहुँच देवगुप्त को समाप्त करने में हमें कोई कठिनाई नहीं होगी।

"हमें विश्वस्त सूत्र से पता चला है कि उसी दिन मध्यरात्रि के समय देवगुप्त ने शशांक की हत्या करने का आयोजन किया है। हम आशा करते हैं कि शशांक की हत्या उस समय तक हो चुकी होगी। देवगुप्त को हम समाप्त करेंगे। दोनों काँटों को निकालकर हमारा कार्य नगर के छः द्वारों पर अधिकार करना होगा। द्वारों को बंद कर हम नागरिकों की सेना तैयार करने का यत्न करेंगे।

"यह हमारी योजना है। अब आप लोग सेनाध्यक्ष बजरंग से अपना-अपना कार्य समझ लें।"

साधु राजप्रासाद में सफाई इत्यादि का कार्य करता था। उसको सेवा-कार्य में होने से राजप्रासाद के भीतर ही एक, दो आगारों वाला गृह मिला हुआ था। सेवकों के लिए निवासगृह प्रासाद की प्राचीर के साथ बने थे। इन गृहों में जाने के लिए मार्ग तो प्रासाद के मुख्य द्वार से ही था, परन्तु खुली हवा के आने के लिए प्रत्येक गृह में एक खिड़की प्राचीर के बाहर की ओर खुलती थी। यह खिड़की भूमि से कुछ ऊँचाई पर थी और इन खिड़कियों में लोहे की छड़ें लगी हुई थीं।

जब देवगुप्त ने राजप्रासाद पर अधिकार किया था तो प्रासाद के अधिकतर सेवक भाग गए थे। इस कारण सेवा-कार्य अथवा सफाई इत्यादि के लिए नए सेवक नियुक्त किए गए थे। इन नए सेवकों में नीलांग, जम्बुक तथा उनके कुछ और साथी भी थे, जो साधु के प्रयत्न से कार्य पा सके थे। नीलांग, जम्बुक इत्यादि को भी रहने के लिए सेवकगृह मिले हुए थे।

निश्चित दिन प्रातःकाल से ही एक-एक दो-दो कर स्थानेश्वर के सैनिक साधारण वेशभूषा में, परन्तु अपने-अपने वस्त्रों के भीतर अस्त्र-शस्त्र छिपाए हुए, प्रासाद में प्रवेश कर रहे थे। ये सेवकों के गृहों में जाकर छिप रहे थे। रात्रि तक लगभग एक सौ सैनिक भीतर प्रवेश पा चुके थे।

मध्यरात्रि का घंटा बजा और ये सब अपने-अपने छिपे स्थानों से निकलकर,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकत्रित होकर प्रासाद के द्वार पर लपके। उन्होंने खड्ग नग्न किए हुए थे और द्वार पर आक्रमण कर चालीस पहरेदारों को समाप्त करने में इनको अधिक समय नहीं लगा। पश्चात् मुख्य द्वार खोल दिया गया। द्वार के बाहर राज्यवर्धन अपने चार सौ सैनिकों के साथ तैयार खड़ा था। सबने भीतर प्रवेश किया और प्रासाद का द्वार भीतर से बन्द कर लिया। तदनन्तर राज्यवर्धन और उसके सैनिकों ने देवगुप्त के आगारों को घेर लिया। मार्ग में जो कोई भी आया, उसे समाप्त करने में इन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई।

देवगुप्त अपने आगार में बैठा शशांक की हत्या का समाचार सुन रहा था। वे चार सैनिक, जो इन्द्रजालिक के आगार में शशांक की हत्या करने गए थे, उसे समाचार दे रहे थे। जिसने हत्या की थी, उसने बताया, "महाराज! हमारे नग्न खड्गों को देख दासियाँ भयभीत हो दीवारों के साथ चिपक गईं। मैंने एक ही वार से शशांक का सिर धड़ से पृथक् कर दिया। वह इन्द्रजालिक की शैया पर लेटा हुआ था।"

"और इन्द्रजालिक?" देवगुप्त ने पूछा।

"महाराज! वह वहाँ नहीं थी।"

"शशांक का सिर लाए हो?"

"नहीं महाराज! इसकी आज्ञा नहीं थी।"

"तुम मूर्ख हो। क्या प्रमाण है कि तुमने अपना कार्य पूर्ण कर लिया है?"

"महाराज की आज्ञा हो तो उसका सिर अभी प्रस्तुत किया जा सकता है।"

"हाँ! जाओ और उसका सिर लेकर आओ।"

सैनिक शशांक का सिर लाने के लिए वापस जाने को घूमे ही थे कि राज्यवर्धन अपने कुछ सैनिकों के साथ उस आगार में घुस आया। देवगुप्त इस प्रकार कुछ व्यक्तियों को नग्न खड्ग लिए अन्दर प्रवेश करते देख एक क्षण तो आश्चर्यचकित रह गया। पश्चात् परिस्थिति की विकटता को देख एकदम खड़ा हो गया। साथ ही दीवार पर लटक रहे अपने खड्ग को निकालकर उसने पूछा, "कौन हो तुम?"

"मैं राज्यवर्धन हूँ; महारानी राज्यश्री का भाई। उसके साथ दुर्व्यवहार का प्रतिकार लेने आया हूँ।"

"तुम वीर मालूम होते हो। वीरों की प्रथा के अनुसार एक के साथ एक का युद्ध हो जाए।"

राज्यवर्धन के हाथ में खड्ग था ही। उसने अपने साथियों से कहा, "एक ओर हट जाओ।"

राज्यवर्धन आगे निकल आया। देवगुप्त भी आगे आ, पैंतरा बाँध खड़ा हो गया। खटाखट दोनों के खड्ग भिड़ने लगे।

इसी समय शशांक, पद्मराज और कुछ अन्य सशस्त्र नागरिक वहाँ आ पहुँचे। देवगुप्त ने शशांक को देखा और समझ गया कि वह जीवित बच गया है। परन्तु यह सोच कि उससे बाद में निपटा जाएगा, उसने अपना ध्यान राज्यवर्धन के वारों की ओर ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखा। शशांक देवगुप्त को एक भव्य स्वरूप वाले योद्धा से युद्ध करते देख आश्चर्यवत् खड़ा रहा। वह समझ नहीं सका था कि यह कौन हो सकता है। पद्मराज तो राज्यवर्धन को पहचान गया। उसने परिस्थिति का अध्ययन कर कुछ ही क्षणों में अपने कार्य का निश्चय कर लिया। वह नहीं चाहता था कि देवगुप्त और राज्यवर्धन के बीच, जबकि दोनों में हार-जीत के लिए युद्ध चल रहा है, शशांक कूद पड़े और देवगुप्त का साथ देने लगे। उसने इस कारण शशांक से कह दिया, "महाराज! ये भी हमारे पक्ष के लोग हैं। आप निश्चिन्त हो युद्ध देखिए। विश्वास कीजिए कि देवगुप्त मारा जाएगा। आप इस हत्या के पाप से मुक्त रहेंगे।"

युद्ध करते-करते एक समय देवगुप्त के हाथ से खड्ग गिर पड़ा। देवगुप्त चुपचाप खड़ा हो गया। परन्तु राज्यवर्धन ने कहा, "ऐसे नहीं। हम निश्शस्त्र व्यक्ति की हत्या नहीं कर सकते। जाओ, अपना खड्ग उठा लो।"

इस शौर्य तथा न्यायप्रियता को देख शशांक ने कहा, "धन्य हो योद्धा! हम बहुत प्रसन्न हैं।"

देवगुप्त ने खड्ग उठा लिया और पुनः दोनों योद्धाओं में युद्ध चालू हो गया। परन्तु देवगुप्त अधिक देर तक ठहर नहीं सका। वास्तव में वह शशांक को राज्यवर्धन का पक्ष लेते देख घबरा गया था। एक-दो पैंतरे बदलने पर उसका हाथ छिटक गया और राज्यवर्धन का खड्ग उसके पेट में घुस गया।

देवगुप्त के मारे जाने पर स्थानेश्वर के सैनिकों ने जयघोष कर दिया, "महाराज राज्यवर्धन की जय हो!"

इस जयघोष को सुन शशांक समझ गया कि वह तो एक जाल में फँस गया है। एक बात उसकी समझ में नहीं आई कि यदि पद्मराज उसका विरोधी था और राज्यवर्धन के वहाँ होने की सूचना रखता था, तो उसने उसे इन्द्रजालिक के शयनागार में ज़ाने क्यों नहीं दिया और इस प्रकार उसके जीवन की रक्षा क्यों की?

जब तक जयघोषों से महाराज राज्यवर्धन को बधाई दी जाती रही, शशांक अपने बचाव के उपायों पर विचार करता रहा। जब राज्यवर्धन अपने नागरिकों को नगर-द्वारों की ओर जाने की आज्ञा देने लगा तो पद्मराज ने आगे बढ़कर कहा, "महाराज राज्यवर्धन की जय हो!"

"ओह!" राज्यवर्धन ने पद्मराज को पहचानकर कहा, "आप यहाँ कैसे?"

"महाराज! यह बाद में बताऊँगा। पहले इनसे भेंट कीजिए। ये गौड़ाधिपति महाराज शशांक हैं।"

"मैं पहले नगर-द्वारों पर अधिकार करने के लिए सैनिक भेजना चाहता हूँ।"

"यह कार्य हो गया है महाराज! इस समय नगर-भर में कन्नौज के नागरिकों का अधिकार हो चुका होगा। केवल यही नहीं, प्रत्युत नगर के बाहर भी युद्ध छिड़ चुका है और हमें आशा करनी चाहिए कि कुछ ही देर में मालव सेना भागना आरम्भ कर देगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस विषय में आप निश्चिन्त रहें। इस समय यह आवश्यक है कि महाराज शशांक से परस्पर सन्धि हो जाए।"

"ठीक है, हमें पद्मराज जी की चतुराई का प्रमाण मिल गया है, अर्थात् महामात्य ने कन्नौज-विजय हमारी सहायता के बिना सम्पन्न कर दी है।"

"महाराज! यह सब-कुछ आपके ही प्रताप से हुआ है। मेरा विचार है कि यदि महाराज पसन्द करें तो पृथक् आगार में बैठकर सन्धि और उसकी शर्तें तय कर ली जाएँ।"

राज्यवर्धन ने कहा, "मैं नहीं जानता कि कहाँ बैठना चाहिए। महामात्य इसका प्रबन्ध करें।"

पद्मराज दोनों को एक आगार में ले गया। राज्यवर्धन के साथ सेनापति बजरंग नग्न खड्ग लिए उनकी रक्षार्थ खड़ा था।

१३

परस्पर-सन्धि के अनुसार कन्नौज में यह घोषणा कर दी गई कि दो दिन के भीतर जो मालव सैनिक कन्नौज की सीमा के भीतर पाए जाएँगे, उनको प्राणदण्ड दिया जाएगा; महारानी राज्यश्री, जो देवगुप्त द्वारा बन्दी बनाकर कहीं छिपाकर रख दी गई हैं, उनका पता बताने वाले को दस सहस्र स्वर्ण का पुरस्कार दिया जाएगा; जब तक महारानी राज्यश्री, जो कन्नौज की वास्तविक अधिकारिणी हैं, नहीं मिल जातीं, तब तक राज्य का प्रबन्ध स्थानेश्वर के महाराज-कुमार राज्यवर्धन करेंगे। गौड़ाधिपति कन्नौज के अतिथि हैं। उनकी और उनके साथ आए उनके सैनिकों की रक्षा और सम्मान का उत्तरदायित्व कन्नौज राज्य पर है।

जैसे-जैसे कन्नौज की प्रजा को यह विदित होता गया कि कन्नौज को स्वतन्त्र कराने में किस-किसका हाथ है, उनका मान राज्य-भर में बढ़ता गया। पत्रलता के कार्य की भूरि-भूरि प्रशंसा होने लगी। इस पर भी पत्रलता नगर के चौक में पान की दुकान करती थी। अब तो बिना माँग किए उसके यहाँ पान का मूल्य चार टका हो गया था। लोग प्रसन्नतापूर्वक उसे अधिक मूल्य देते थे।

प्रजा में यह भी विख्यात होने लगा था कि पत्रलता दिवंगत महाराज देवगुप्त की प्रेमिका बनी थी और इस कारण उसने मालव-नरेश के चारों ओर ऐसा षड्यन्त्र रचा कि उसकी मृत्यु सम्भव हुई और मालव सेना को भागना पड़ा। घर-घर और गली-गली में ऐसी जनश्रुतियाँ बाल-वृद्ध के मुख पर थीं। इसका परिणाम यह हुआ कि उसकी दुकान पर मध्याह्न-पूर्व से मध्यरात्रि तक पान खाने वालों की भीड़ लगी रहती थी।

इन सब बातों का ज्ञान पद्मराज को भी हो रहा था। यद्यपि वह जानता था कि इसमें बहुत-कुछ अतिशयोक्ति है, फिर भी उसने पत्रलता की महिमा कम करने में कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयोजन नहीं समझा।

एक दिन राज्यवर्धन ने पद्मराज से पूछा, "पत्रलता के विषय में यह जो जनश्रुति है, उसमें कितना तथ्य है?"

"महाराज! जनश्रुति तो पूर्णतया कभी सत्य नहीं होती। परों की डारें तो बना ही करती हैं। फिर भी इस लड़की ने जिस साहस और बुद्धिमत्ता से विष्णुकान्त जी के कार्य का एक सूत्र देवगुप्त और दूसरा सूत्र शशांक के कक्ष में पहुँचाया, वह सराहनीय है।

"जब विष्णुकान्त अपने और मेरे परिवार को हरिद्वार छोड़कर कन्नौज लौटे तो उन्हें कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिला था, जो पचास सहस्र सैनिकों से घिरे देवगुप्त के विरोध में खड़ा हो सके। एक दिन विष्णुकान्त निराश और उदास चौक में खड़े थे कि पत्रलता अपनी दुकान से उठ, पुजारी जी के पास आकर कहने लगी, 'भगवन्! पान नहीं खाइएगा?'

'क्या होगा पान खाने से?' पुजारीजी ने कहा।

'मस्तिष्क में स्फूर्ति का संचार होगा और जटिल-से-जटिल समस्या का सुझाव सूझ पड़ेगा।'

'बहुत पान खाए हैं लड़की! कन्नौज का सत्यानाश ही पान खाने वालों ने किया है। सब मार्ग थूक-थूककर लाल कर दिए हैं।'

'भगवन्! एक दिन इस तुच्छ लड़की के हाथ का बना पान खाइए और फिर बताइएगा कि घाटे में रहे हैं अथवा लाभ में?'

"इस समय विष्णुकान्त पत्रलता से बातें करते-करते उसकी दुकान पर पहुँच गए थे। पत्रलता दुकान पर बैठ पान बनाते हुएं बोली, 'जो इस पान को खाएगा, वह कन्नौज का उद्धार कर पाएगा।'

'तेरे पान में कन्नौज का उद्धार रखा है?'

'हाँ पण्डित जी! तनिक धीरे-धीरे बोलिए। सड़कों के कंकड़ भी यहाँ गुप्तचर का कार्य करते हैं।'

"विष्णुकान्त को पत्रलता की बातों में कुछ रहस्य प्रतीत हुआ तो उन्होंने कहा, 'घरों में भी पान देने जाती हो, तांबूलिन?'

'हाँ, परन्तु उनके घरों में, जिनकी धर्म-पत्नियाँ मुझसे अधिक सुन्दर हैं।'

'क्यों?'

'तब वे मेरे ऊपर कुदृष्टि नहीं रखते।'

'अच्छा, सेठ प्रफुल्ल जी की पत्नी तुमसे तो सुन्दर है ही, उनके घर दो बीड़ा पान मध्याह्न के समय पहुँचा दिया करो।'

"पत्रलता ने हँसकर पूछा, 'वह भैंस सुन्दर है?'

'मेरी दृष्टि में वह मेनका से कम नहीं है।'

'और आपकी दृष्टि में मैं कैसी जँची हूँ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तुम ? अच्छी हो, पर प्रफुल्ल जी की श्रीमती के समान नहीं।'

'तब तो ठीक है। मैं पान लेकर आऊँगी। साथ ही आशा करती हूँ कि आप अपनी दृष्टि, परम सुन्दरी प्रफुल्ल जी की पत्नी की ओर ही रखेंगे।'

"इस प्रकार दोनों में सम्पर्क उत्पन्न हुआ और जब विष्णुकान्त जी ने कहा कि उनको ऐसा व्यक्ति चाहिए, जो राजप्रासाद में पहुँच वहाँ की सूचना लाया करे तो पत्रलता तैयार हो गई। उसने न केवल देवगुप्त के अन्तःपुर तक जाने का प्रयत्न किया, प्रत्युत शशांक के रहस्यों को भी जानने लगी। पश्चात् उसने देवगुप्त के मन में शशांक के लिए द्वेष उत्पन्न करने में सफलता प्राप्त की। पत्रलता उस सब षड्यन्त्र की, जिससे वे दोनों नरेश एक-दूसरे के रक्त के प्यासे हो गए थे, धुरी बन गई। पश्चात् इन दोनों का पतन तो सबको विदित ही है।"

"ऐसी चतुर लड़की के लिए चौक में पनवाड़ी की दुकान शोभा नहीं देती। उसको तो किसी धनी-मानी के गृह की शोभा बनना चाहिए।"

"मैं उससे कई बार यह प्रस्ताव कर चुका हूँ, परन्तु वह मानती नहीं।"

"क्यों ?"

"इसमें उसका एक रहस्य है। उसका एक कवि-युवक से प्रेम हो गया है। किसी साधारण-सी बात पर वह इससे रूठकर कहीं चला गया है और यह कहती है कि जीवन-भर उसकी प्रतीक्षा करेगी। वह कवि इसको इसी दुकान पर मिला था। यह आशा करती है कि वह पुनः इसको ढूँढ़ता हुआ इसी दुकान पर आएगा।"

"हमारी इच्छा है कि उसको राजप्रासाद में पान दे जाने के लिए एक स्वर्ण नित्य दिया जाए।"

"वह स्वर्ण की भूखी नहीं है, महाराज! वह कन्नौज की नागरिक है और उसके हृदय में कन्नौज की स्वतन्त्रता तथा मान-प्रतिष्ठा सर्वोपरि है। इसी भावना से उसने अपने जीवन को संकट में डाला था।"

"हम उससे कन्नौज की मान-प्रतिष्ठा का कार्य ही लेना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि राज्यश्री को ढूँढ़ने में वह हमारी सहायता करे।"

"मुझको सन्देह हो रहा है कि वह मार डाली गई हैं।"

"मुझको इसके विपरीत यह विश्वास है कि वह अवश्य जीवित है। देखो, मैंने राजप्रासाद की दासियों से यहाँ तक पता किया है कि एक दिन शशांक के पास एक जौहरी आया और कहने लगा कि उसने एक हीरक महाराज ग्रहवर्मन को बेचा था; महारानी राज्यश्री ने उस हीरे को इस शर्त पर अपने पास रख लिया था कि उसका एक जोड़ीदार हीरक और मिल जाए तो वह उन्हें अपने कर्णफूल में लगवाएगी। वह जौहरी वैसा ही एक हीरक सिंहल द्वीप से ढूँढ़कर लाया था। वह शशांक को वह हीरा बिना मूल्य देने के लिए कहता था, यदि महाराज शशांक उसके साथ का जोड़ीदार हीरक, जो राज्यश्री ने अपने पास रख लिया था, ढूँढ़ सके। शशांक ने उस हीरक के विषय में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छानबीन की और राज्यश्री से बन्दीगृह में भी मिला। इसके पश्चात् एक रात राज्यश्री को बन्दीगृह से निकालकर ले गया। कोई दासी यह भी कहती है कि राज्यश्री स्वयं षड्यन्त्र करके भाग गई थी। मुझे पहली बात कि उसके भागने में शशांक का हाथ है, अधिक सम्भव प्रतीत होती है। यदि मेरा अनुमान ठीक है तो निस्संदेह राज्यश्री शशांक के पास बन्दी है। परन्तु शशांक इस बात को स्वीकार नहीं करता।"

पद्मराज ने मुस्कराते हुए कहा, "महाराज! मुझको यह सब विदित है। आपके अनुमान की परीक्षा करनी ही चाहिए, परन्तु पत्रलता इस कार्य के लिए उपयुक्त नहीं। कारण, शशांक उसे भली-भाँति जानता है। अब वह उसका विश्वास नहीं करेगा।"

"परन्तु यह ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य है। मैं यहाँ राज्यश्री के लिए ही ठहरा हूँ। मुझको भरत-खण्ड की सीमा पर जाना है और हूणों को, जो अब पुनः प्रबल होने लगे हैं, दबाना है। इस विपत्ति को अन्य कोई टाल नहीं सकता। मैं उनकी दुर्बलता और सबलता को भली-भाँति जानता हूँ।"

"तब तो महाराज! महारानी राज्यश्री की खोज और भी तीव्र कर देनी चाहिए। मैं अपने गुप्तचर विभाग को शशांक के आगे-पीछे लगा दूँगा।"

"हाँ महामात्य! राज्यश्री के आने पर यह राज्य उसे सौंपकर मैं लौट जाना चाहता हूँ।"

उसी दिन पद्मराज ने शशांक के चारों ओर गुप्तचरों का जाल बिछा दिया। प्रतिदिन वहाँ से उसके पास समाचार आने लगे। उसको इस खोज के तीन बिन्दु दिखाई दिए—एक शशांक, दूसरा इन्द्रजालिक और तीसरा बौद्ध महाप्रभु बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर।

जब से बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर कन्नौज पहुँचे थे, वे अपने चैत्य में छिपकर बैठे हुए थे। उनको यह जानकर कि सहस्रों भिक्षुणियों के साथ मालव सैनिकों ने दुराचार किया है और उनसे ऊबकर उनकी हत्या कर डाली है, वे प्रायश्चित्त के रूप में भगवान् तथागत के चिन्तन में लीन रहते थे। समाचारों से यह विदित हुआ था कि लोग कम-से-कम राज्यश्री के विषय में जानते अवश्य हैं कि वह कहाँ हैं।

१४

राज्यश्री की खोज अभी चल रही थी कि शशांक की ओर से राज्यवर्धन को एक लिखित सन्देश मिला। उस सन्देश को पढ़कर राज्यवर्धन चकित रह गया। सन्देश के साथ शशांक की भगिनी का चित्र भी था। शशांक ने यह पत्र पद्मराज को उसकी सम्मति लेने के लिए दिखाया। पत्र इस प्रकार था—

"प्रिय बन्धु! कई दिन से मैं इस बात पर विचार कर रहा हूँ कि स्थानेश्वर के राज-परिवार से किस प्रकार गौड़-परिवार का सम्बन्ध सुदृढ़ किया जाये। एक मास से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊपर हो चुका है, जब मेरा श्रीमान् से परिचय हुआ था और उस समय से आपके शौर्य, सरलता और धर्मपरायणता का प्रमाण उत्तरोत्तर प्राप्त हो रहा है। इससे मैं एक प्रस्ताव आपके सम्मुख रख रहा हूँ।

"इस पत्र के साथ मेरी भगिनी मंगला का चित्र है। वह इस समय षोडषी है। यदि श्रीमान् स्वीकार करें तो हमको उसका कन्यादान श्रीमान् के हाथों में करते हुए अत्यन्त हर्ष होगा।

"इससे जहाँ, मेरा विचार है कि मेरी बहन का भाग्य खिल उठेगा, वहाँ हम भी, बहन को सुयोग्य हाथों में देकर, अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाएँगे। साथ ही कन्नौज और स्थानेश्वर से हमारी सांस्कृतिक सन्धि भी हो जाएगी। ये तीनों राज्य मिलकर आपको चक्रवर्ती राजा घोषित करने में सफल होंगे। भरत-खण्ड में चिरकाल से कोई चक्रवर्ती राजा नहीं हुआ। यही कारण है कि यहाँ अशान्ति है और धर्म का पालन नहीं हो रहा।

"अतएव निवेदन है कि श्रीमान् हमारी यह तुच्छ भेंट स्वीकार कर हमारे परिवार को अनुगृहीत करें। इससे हमारा कल्याण होगा और भारत का उद्धार होगा एवं धर्म की पुनः स्थापना होगी।"

महामात्य पत्र पढ़कर चकित रह गया। पद्मराज का विचार था कि यह हो सके तो बहुत अच्छा है, परन्तु गौड़ के राजपरिवार के लोग अत्यन्त अभिमानी थे और वे पश्चिमोत्तरी देश के किसी नरेश को अपनी लड़की दे देंगे, सम्भव प्रतीत नहीं होता था।

राज्यवर्धन का कहना था, "महामात्य! देश में परिस्थितियाँ बदल रही हैं और आज देश को सुदृढ़ करना परमावश्यक है। पश्चिमोत्तरी सीमा के पार बड़े-बड़े राज्य बन और बिगड़ रहे हैं। भारत को उनसे सतर्क रहना चाहिए। भारत की रक्षा के हेतु यह परमावश्यक है कि यहाँ पर एक सुदृढ़ चक्रवर्ती राज्य बन जाए। भारत के कोटि-कोटि जन यदि एक सूत्र में बाँध दिए जाएँ तो संसार की कोई शक्ति इन पर अपना अधिकार नहीं बना सकेगी।"

पद्मराज ने गम्भीरतापूर्वक कुमार राज्यवर्धन के मनोद्गार सुने और उनकी सराहना करते हुए कहा, "श्रीमान् का कहना सर्वथा सत्य है। यह मैं मानता हूँ कि देश को कैलाश से कन्याकुमारी तक और सुमेरु पर्वत से बंग सागर तक एक राजनीतिक और सांस्कृतिक सूत्र में बँध जाना चाहिए। यह मेरी ही सम्मति थी कि श्रीकण्ठ को कामरूप के साथ सन्धि कर लेनी चाहिए और पण्डित चतुरानन ने इस दिशा में जो कार्य किया है, वह सराहनीय ही रहा है।

"अतः यदि यह सम्बन्ध गौड़ राज्य से बन जाए तो बहुत उत्तम है।"

"परन्तु यह सब ठीक होते हुए भी मेरा यह कहना है कि लड़की को बिना देखे हुए मैं स्वीकृति नहीं दे सकता।"

"तो महाराज-कुमार आज्ञा दें, जिससे इस लड़की को कन्नौज में लाने के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराज शशांक को लिख दिया जाए और पश्चात् आपकी अनुमति से विवाह-सम्बन्ध हो जाए।"

इस प्रकार उक्त पत्र का उत्तर लिख दिया गया कि महाराज-कुमार गौड़-नरेश की भगिनी को देखकर ही विवाह की स्वीकृति दे सकते हैं।

इसके उत्तर में एक अति विनम्र पत्र आया। उसमें शशांक ने लिखा, "राजपरिवार की मान-प्रतिष्ठा के लिए यह उचित प्रतीत नहीं होता कि राजकुमारी वर के घर में जाए। हमारे समाज की प्रथा के अनुसार यह उचित ही है कि वर स्वयं वधू के गृह पर आए। आप विश्वास रखें कि राजकुमारी हंस के समान गौर-वर्ण और साक्षात् भगवती के समान सुन्दर है।"

राज्यवर्धन ने यह पत्र पढ़ा तो उसे यह उचित ही प्रतीत हुआ। वह गौड़ जाने के लिए तैयार हो गया।

पद्मराज यह उचित नहीं समझता था। उसे गौड़-नरेश पर अभी भी विश्वास नहीं होता था। उसने राज्यवर्धन को मना भी किया, परन्तु राज्यवर्धन का कहना था, "महामात्य! हमारा अपनी पत्नी से सम्बन्ध हमारी निज की बात है। इसमें मानव-भावनाओं का उतना ही हाथ है, जितना कि किसी भी मनुष्य के कार्यों में हो सकता है।"

"महाराज!" पद्मराज का कहना था, "मुझको तो शशांक के व्यवहार पर सन्देह है। पहले ग्रहवर्मन के साथ और पश्चात् देवगुप्त के साथ उसका व्यवहार किंचित् भी श्लाघनीय नहीं रहा। साथ ही अभी तक महारानी राज्यश्री का पता नहीं चला। जिन-जिन व्यक्तियों पर हमें सन्देह है, उनमें गौड़-नरेश शशांक भी हैं।"

"महामात्य को हमारे जीवन का भय है न? महामात्य! हम समर पर जाते समय अथवा युद्धभूमि से योद्धाओं की प्रथम पंक्ति में लड़ते समय, भय अनुभव नहीं करते तो इस पिलपिले भीरु के सम्मुख क्या भय? हाँ, यह कर्तव्य महामात्य का है कि हमारे जीवन की रक्षा का प्रबन्ध करें।"

पद्मराज इस सुझाव से घबराया। फिर भी उसने कई योंद्धा और कितने ही सबल नागरिकों का राज्यवर्धन की बारात में सम्मिलित करने का प्रबन्ध कर दिया। राज्यवर्धन का सेनाध्यक्ष बजरंग, अंगरक्षक बनकर साथ रहा।

पुंड्र, गौड़-प्रदेश की राजधानी के बाहर आकर गौड़राज की ओर से राज्यवर्धन का भव्य स्वागत किया गया। ढोल, दुन्दुभि, नगाड़े इत्यादि के तुमुल नाद में राज्यवर्धन की सवारी निकाली गई। नगर-भर में राजकुमारी के विवाह के उपलक्ष्य में सजावट की गई थी। सवारी के समय नागरिकों ने पुष्प-वर्षा की। स्थान-स्थान पर शहनाई-वादन का प्रबन्ध था। वास्तव में इस विवाह के उपलक्ष में पूर्ण नगर-भर में हर्षोल्लास का ऐसा प्रदर्शन किया गया कि पद्मराज को सन्देह प्रकट कर शोक होने लगा। इस स्वागत से प्रफुल्ल-मन हो जब राज्यवर्धन अश्व पर सवार, साथ में चलते पद्मराज को देखता, तो पद्मराज लज्जित हो आँखें नीची कर लेता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्यवर्धन की सवारी राजप्रासाद के द्वार पर पहुँची तो राजकुमारी पुष्पमाला लेकर महाराज के स्वागत के लिए द्वार पर आई। राज्यवर्धन ने उसको देखा और उसको उसके चित्र से कई गुना अधिक सुन्दर पाकर अति प्रसन्न हुआ।

इस समय महाराज को अश्व से उतारकर पालकी में बिठाकर प्रासाद के अन्दर ले जाया गया और उनको उनके लिए निर्धारित विश्रामस्थान पर पहुँचा दिया गया। उनके अंगरक्षकों और साथ में आए नागरिकों के विश्राम के लिए भी उचित प्रबन्ध कर दिया गया।

रात को नगर-भर में दीपमालिका की गई। राजप्रासाद तो सहस्रों दीपकों और अग्नि-शिखाओं के प्रकाश में जगमगा उठा।

भोजनोपरान्त राजकुमारी की माँ तथा उसकी अन्य सखियाँ राज्यवर्धन के पास आईं और हँसी-ठट्ठे के बीच उसे अन्तःपुर में ले गईं। राज्यवर्धन का अंगरक्षक बजरंग उसके साथ जाना चाहता था, परन्तु राज्यवर्धन ने उसे अन्तःपुर में ले जाना उचित नहीं समझा और कह दिया कि वह महामात्य की देखभाल करे। पद्मराज लज्जा से रक्तवर्ण हो रहा था।

महामात्य यद्यपि बाहर से किसी प्रकार के भी षड्यन्त्र का भास नहीं पा रहा था, तदपि वह सर्वथा निश्शंक नहीं था। प्रत्यक्ष में तो वह कुछ भी कह नहीं सका। राजकुमारी की माँ तथा उसकी सखियों के हाव-भाव देखकर भय मानने में कोई कारण नहीं था।

शशांक पद्मराज के पास बैठा विवाह के प्रबन्ध में विचार करता रहा। सब-कुछ निश्चित हो जाने के पश्चात् शशांक ने उठते हुए कहा, "अब विलम्ब हो रहा है। मैं समझता हूँ कि आपको तथा महाराज-कुमार को भी अब विश्राम करना चाहिए, जिससे विवाह-संस्कार के समय आप लोग उठकर तैयार हो जाएँ।"

यह कह शशांक अन्तःपुर में चला गया। पद्मराज तथा बजरंग चिरकाल तक महाराज-कुमार के बाहर आने की प्रतीक्षा करते रहे। मध्यरात्रि हो चुकी थी। पद्मराज ने एक प्रतिहार को बुलाकर कहा, "प्रतिहार! किसी को अन्तःपुर में भेजकर यह सूचना भेज दो कि महाराज-कुमार की हम प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

प्रतिहार भय से काँपने लगा। पद्मराज ने तीव्र स्वर में कहा, "जाओ, किसी दासी को भेज दो।"

प्रतिहार ने उँगली उठाकर खिड़की के बाहर की ओर संकेत कर दिया। पद्मराज इसका अर्थ समझ नहीं सका। इस कारण वह खिड़की के पास जाकर बाहर की ओर झाँककर देखने लगा। उसको प्रासाद के आँगन में असंख्य दीपकों के प्रकाश में भारी संख्या में सैनिक खड़े दिखाई दिए। कन्नौज के सभी नागरिक उन सैनिकों द्वारा घिरे हुए थे और 'महाराज-कुमार, महाराज-कुमार' की पुकार कर रहे थे।

इसका अर्थ समझने के लिए उसने प्रतिहार से पूछने के लिए घूमकर उसकी ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखा, परन्तु वह वहाँ से भाग चुका था। पद्मराज को इसमें धोखाधड़ी प्रतीत हुई। वह पुनः खिड़की में आकर देखने लगा। उसको नागरिकों पर तीस के लगभग नग्न खड्ग लिए सैनिक कूदते दिखाई दिए।

नागरिकों ने बहुत चीत्कार मचाया, परन्तु कुछ ही क्षणों में सब समाप्त कर दिए गए। अब पद्मराज का ध्यान अपनी रक्षा की ओर गया। उसने अपने आगार के बाहर देखा। उसे लगभग पचास सैनिक अपने आगार की ओर आते दिखाई दिए। वह समझ गया कि उसका भी जीवन संकट में है। वह लपककर साथ के आगार में गया, वहाँ भयभीत बजरंग खड़ा था। पद्मराज ने कहा, "बजरंग! भागो, सैनिक हत्या करने के लिए आ रहे हैं।"

दोनों ने अपने-अपने खड्ग निकाल लिए और भाग खड़े हुए। जिस ओर राजकुमारी की सखियाँ महाराज-कुमार को लेकर गई थीं, उस ओर अन्तःपुर को जाने के लिए एक द्वार था। द्वार से एक संकीर्ण मार्ग दूर तक गया था। ये दोनों भागते हुए उस मार्ग पर चलते गए। मार्ग के अन्त में एक अन्य द्वार था। पद्मराज ने जोर से धक्का दिया तो वह खुल गया। यह द्वार एक आगार में खुलता था। आगार में दोनों ने देखा कि राज्यवर्धन का शव पड़ा है, जिसके हृदयस्थल पर कटार घुसी हुई थी। दोनों एक क्षण के लिए खड़े हो गए। इसी समय उन्हें पिछले संकीर्ण मार्ग पर सैनिकों के आने का कोलाहल सुनाई दिया। पद्मराज ने कहा, "भागो, हमारा पीछा किया जा रहा है।"

दोनों आगार के दूसरे द्वार को लाँघकर आगे को भागे। सामने ही सीढ़ियाँ थीं। दोनों सीढ़ियों के नीचे उतर एक प्रांगण में जा पहुँचे। यह वह प्रांगण नहीं था, जहाँ नागरिकों की हत्या की गई थी। वहाँ कुछ दासियाँ भयभीत खड़ी थीं। दोनों ने दासियों की ओर ध्यान नहीं दिया और सामने ही जो द्वार आया, उसमें प्रवेश कर गए। वास्तव में यही अन्तःपुर था। वहाँ कई दासियाँ खड़ी थीं। दोनों को नग्न खड्ग लिए उस ओर आते देख वे भयभीत हो चिल्लाने लगीं और मार्ग छोड़ एक ओर हट गईं।

पद्मराज को विचार करने तक का समय नहीं था। वह आगे-ही-आगे बढ़ता जा रहा था, जिससे पीछे आने वाले सैनिक उन्हें न पकड़ सकें। अन्तःपुर के सामने एक और प्रांगण था। वे उसमें जा पहुँचे। अब उन्हें राजप्रासाद की प्राचीर दिखाई दी। वे समझ गए कि राजप्रासाद के पिछवाड़े में वे आ पहुँचे हैं। उस प्राचीर में बाहर को जाने का एक छोटा-सा द्वार था। वहाँ एक सैनिक पहरा दे रहा था। उसने इनको आते देख अपना खड्ग निकाल लिया और मार्ग रोककर खड़ा हो गया। बजरंग को उसे समाप्त करने में एक-दो क्षण ही लगे। पश्चात् वे द्वार से बाहर को निकल गए। द्वार के बाहर आकर उन्होंने देखा कि वे राजप्रासाद के बाहर एक उजड़े मुहल्ले में आ पहुँचे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीय परिच्छेद

१

श्रीकंठ की सेना को सिन्धु नदी से वापस आकर पुनः युद्ध की तैयारी करने में दो मास लग गए। इस समय तक कन्नौज से समाचार आ चुका था कि देवगुप्त की हत्या कर महाराज-कुमार राज्यवर्धन ने कन्नौज पर अधिकार कर लिया है। फिर भी यह आवश्यक समझा गया कि मालवा पर आक्रमण कर उसे विजय कर लिया जाए। अतः सेना को सेनापति भंडी के अधीन कन्नौज की ओर भेज दिया गया। आक्रमण के विषय में कोई निश्चित योजना न होने से सेनापति भंडी को सेना-सहित कन्नौज पहुँचने में एक मास और लग गया। जब कन्नौज राज्य के बाहर श्रीकंठ क़ी सेना पहुँची तो कन्नौज में यह समाचार पहुँच चुका था कि राज्यवर्धन की हत्या हो चुकी है। सम्पूर्ण राज्य और कन्नौज नगर शोकग्रस्त पड़ा था।

पद्मराज तथा बजरंग दोनों गौड़ से बचकर वापस आने में सफल हो गए थे। पद्मराज ने आते ही कन्नौज की रक्षा की तैयारी आरम्भ कर दी थी। सेना का पुनर्गठन और नई भर्ती तो राज्यवर्धन के समय में ही हो चुकी थी। उसे सन्देह था कि गौड़-नरेश कन्नौज पर आक्रमण करेगा। वह यह भी सोचता था कि राज्यवर्धन की हत्या का प्रतिकार लेने के लिए कन्नौज तथा श्रीकंठ को गौड़ पर आक्रमण करना पड़ेगा। इस कारण वह सैनिक तैयारी पूर्ण करने में लग गया।

जब उसे सूचना मिली कि भंडी पचास सहस्र सेना के साथ कन्नौज के बाहर आ पहुँचा है, तो वह स्वयं सेनापति भंडी से मिलने गया। उसने पूर्ण वृत्तान्त बताकर कहा, "मैंने यह समाचार स्थानेश्वर भेज दिया है और हम कन्नौज वालों का यह मत है कि महाराज-कुमार के कनिष्ठ भ्राता श्री हर्षवर्धन शीघ्रातिशीघ्र राज्य-कार्य सँभाल लें। पश्चात् मालवा तथा गौड़ पर आक्रमण कर अधिकार कर लिया जाए। राजकुमार हर्षवर्धन कन्नौज तथा नीलकंठ, दोनों राज्यों की सेना की सहायता से भारत में एक महान् राज्य की नींव डालें।"

"पर महामात्य! आपने महाराज-कुमार की रक्षा का प्रबन्ध क्यों नहीं किया?" भंडी का कहना था।

"प्रबन्ध के लिए जो-जो भी योजनाएँ बनाई गई थीं, उन्हें महाराज-कुमार ने अपने भावी श्वशुर और पत्नी का अपमान समझकर चलने नहीं दिया। अतः उन पर कार्य नहीं हो सका।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"महाराज की हत्या अन्तःपुर में हुई थी। अतः हम नहीं जानते कि कौन-सी वंचना का प्रयोग किया गया था।"

भंडी को पद्मराज के स्पष्टीकरण से सन्तोष नहीं हुआ। इस कारण उसने कह दिया, "मेरे मन में महामात्य पद्मराज के लिए भारी मान है, परन्तु यह राजनीति है। कुमार हर्षवर्धन के आने तक मेरा महामात्य से निवेदन है कि वे अपने को अपने निवासस्थान पर बंदी समझें।"

महामात्य देख रहा था कि भंडी की सेना का विरोध अभी कन्नौज की नवजात सेना के सामर्थ्य से बाहर की बात है। अतएव उसने केवल यह कहा, "सेनापति से मेरा निवेदन है कि राज्य का कार्यभार सँभाल लें। मैं आज से अपने घर से बाहर नहीं निकलूँगा।"

इस प्रकार कन्नौज पर स्थानेश्वर की सेना का अधिकार हो गया। महामात्य का अपने घर पर बंदी किए जाने का समाचार कन्नौज नगर में फैल गया। इससे नागरिकों के क्रोध का पारावार नहीं रहा। वे जानते थे कि पद्मराज देशभक्त नागरिक है और उसके ही विपुल प्रयत्न से कन्नौज का उद्धार हुआ था। अब स्थानेश्वर की सेना को आकर कन्नौज पर अधिकार करते तथा महामात्य को बंदी बनाते देख वे क्रोध से उबलने लगे।

पद्मराज ने सेनापति भंडी से कह दिया था कि वह घर से बाहर नहीं निकलेगा। अतः नागरिकों को उससे मिलने में भी बाधा खड़ी नहीं की गई। इस समाचार के फैलते ही कि महामात्य अपने घर में बंदी है, भीड़-की-भीड़ महामात्य के प्रासाद के बाहर एकत्रित होने लगी। बाहर एकत्रित होकर वे पद्मराज का जयघोष करने लगे। जयघोष सुन पद्मराज कुछ समझ नहीं सका और खिड़की से झाँककर देखने लगा। उसने हाथ खड़ा कर लोगों को चुप कराया और पूछा, "क्या चाहते हो?"

"हम स्थानेश्वर-सेना का यहाँ रहना पसन्द नहीं करते।"

"क्यों? क्या कष्ट है?"

"हम सैनिकों का राज्य नहीं चाहते।"

"ठीक है। शीघ्र ही एक बुद्धिशील राजा का राज्य हो जाएगा। आप अपने-अपने घरों को लौट जाइए। स्थानेश्वर की हमसे शत्रुता नहीं है और न ही उनके हृदय में हमारे लिए द्वेष-भावना है।"

"हम अपने महामात्य की मुक्ति चाहते हैं।"

"मैं मुक्त हूँ। स्वेच्छा से यहाँ पड़ा हूँ। मैं कन्नौज से राजकुमार हर्षवर्धन के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। उनके आने पर ही यहाँ से जाऊँगा। अब आप लौट जाइए।"

लोग यद्यपि इससे सन्तुष्ट नहीं थे, परन्तु पद्मराज के कहने पर वहाँ से चले गए। एक व्यक्ति नहीं टला। यह पत्रलता थी। वह पान की डोली हाथ में लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महामात्य को पान देने के लिए अभी तक खड़ी थी। जब सब लोग चले गए तो वह प्रासाद के द्वार पर आई। द्वार पर स्थानेश्वर के दो सैनिक पहरा दे रहे थे। उसने उनसे पूछा, "मैं महामात्य को पान देने के लिए भीतर जाना चाहती हूँ। क्या मैं जा सकती हूँ?"

सैनिकों को उसे रोकने में कोई प्रयोजन नहीं था। पत्रलता भीतर चली गई और महामात्य के आगार में जा पहुँची। महामात्य एकान्त में बैठा अपने-आप से ही शतरंज खेल रहा था। दोनों ओर की मोहरें वह स्वयं ही चला रहा था और अपनी ही पूर्व चाल को उत्तर चाल से मात करने का यत्न कर रहा था।

"महामात्य जी ! क्या हो रहा है ?"

पद्मराज ने बाहर भीड़ में पत्रलता को खड़े देखा था और यह समझा था कि वह ही भीड़ को एकत्रित कर उसके प्रासाद पर लाई है। अब पत्रलता को अकेले आते देख, उसे अपने अनुमान पर विश्वास हो गया। उसने कहा, "तो तुम आ गई हो ?"

"हाँ श्रीमान् !"

"तुम्हारे चेले-चाँटे चले गए हैं ?"

"मेरे चेले-चाँटे ? श्रीमान् ! वे आपके भक्त थे। ठाकुर को मन्दिर में निश्छल बैठे देख ठाकुर जी को जगाने आए थे; परन्तु बेचारे नहीं जानते कि ठाकुर तो पत्थर के हैं। ढोल-नगाड़े बजाने पर भी जाग नहीं सकते।"

"जाग तो पड़ा था। साक्षात् दर्शन देकर उनको आदेश भी दे दिया था, परन्तु अर्ध-विश्वासी भक्त भगवान् का आदेश तो माने नहीं और भगवान् पर दोषारोपण करने लगे हैं। ऐसे भक्तों के साथ भगवान् क्या कर सकता है !"

"मैं यह समझ कि श्रीमान् एकान्त में उदास न हो जाएँ, श्रीमान् का दिल बहलाने आई हूँ।"

"दिल बहलाना भी कोई काम है ? यह तो बहुत ही सहज बात है। देख तो रही हो कि दिल कैसे बहलाया जा रहा है। ये हरे मोहरे मेरा दाहिना हाथ हैं और ये पीले मोहरे मेरा बायाँ हाथ। मेरा दाहिना हाथ दो बाजी जीत चुका है। इस बार यह हारता प्रतीत होता है। देखो, पीले रंग के मोहरों ने हरे रंग के राजा को फाँस लिया है।"

पत्रलता बोली, "यदि श्रीमान् स्वीकार करें तो हारने वाले मोहरों का पक्ष लेकर एक-दो हाथ मैं खेलूँ ?"

"तुम खेलोगी ? पर यह तो हारा हुआ पक्ष है। नई बाजी लगाई जा सकती है।"

"नहीं श्रीमान् ! हम इसी पर खेलेंगे।"

इतना कह पत्रलता ने एक मोहरा चला दिया। इस मोहरे के बीच में आ जाने से हरे राजा की रक्षा हो गई और पीले राजा को भय उत्पन्न हो गया। पद्मराज एक क्षण तो आश्चर्यचकित रह गया। पश्चात् उसने अपने राजा को पीछे हटा लिया।

पत्रलता ने दो-चार चालों में ही पीले मोहरे के राजा को पूर्ण रूप में फाँस लिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद्मराज ने हार मान ली और विस्मय प्रकट कर कहा, "पत्रलता! तुम तो बहुत ही अच्छा खेलती हो।"

"हाँ श्रीमान्! परन्तु शतरंज वीरों का खेल नहीं। यह तो नीति-कुशल, चतुर और वंचकों का खेल है। इस कारण इसमें आप-जैसे सरलचित्त व्यक्ति का एक स्त्री द्वारा पराजित होना किसी प्रकार भी विस्मय की बात नहीं है।"

"तो तुम्हारा विचार है कि स्त्रियाँ वंचक होती हैं?"

"हाँ महाराज! वे स्वभाव से ही चतुर होती हैं और वंचना करने में सिद्धहस्त होती हैं।"

"बहुत बुरी होती हैं वे।"

"हाँ। यह बात आपको आज पता लगी है? मैं तो समझती थी कि गौड़ में स्त्रियों का षड्यन्त्र देखकर महामात्य को अनुभव हो चुका होगा।"

"तो तुम्हारा विचार है कि गौड़ में राज्यवर्धन की हत्या के षड्यन्त्र में स्त्रियाँ और विशेष रूप में शशांक की भगिनी सम्मिलित थीं?"

"इसमें सन्देह करने को तो स्थान ही नहीं है। आपको कदाचित् यह विदित नहीं कि महाराज-कुमार के हृदयस्थल पर वार किया गया था। यह तो मंगला ने आलिंगन करते समय ही किया होगा।"

"मंगला बहुत ही दुष्टा निकली।"

"हाँ। वह एक सुन्दर रखेल से शशांक के पिता की कन्या है। यह रखेल गौड़ राज्य में नर्तकी का कार्य करती थी।"

"तब तो समझने की बात है। परन्तु तुम तो एक रखेल अथवा नर्तकी की कन्या नहीं हो। अतएव तुम न तो दुष्टा हो सकती हो और न ही विश्वासघातिनी।"

"कैसे कहते हैं आप? मैंने देवगुप्त और तदनन्तर शशांक को धोखा दिया था।"

"तो तुम भी बहुत दुष्टा हो?"

"हाँ महाराज! अब जीवन में एक दुष्टता और करना चाहती हूँ। मैं चाहती हूँ कि भण्डी का कार्य भी पूर्ण कर दूँ, हर्षवर्धन के यहाँ पहुँचने से पूर्व ही, जिससे कन्नौज के महाराज पण्डित पद्मराज बन सकें।"

"क्या लाभ होगा इससे?"

"एक भले मनुष्य के हाथ में राज्य तो सदैव भलाई की बात ही होगी।"

"देखो पत्रलता! मैं तुम्हारा आशय समझ गया हूँ। परन्तु मैं तुम्हें बताना चाहता हूँ कि मैं ब्राह्मण हूँ, मेरा काम निष्काम भाव से प्रजा की सेवा करना है। यदि मैं राज्य की लालसा करने लगा तो मेरे मस्तिष्क में भी राजमद चढ़ जाएगा और मैं भी वैसी ही दुष्टता करने पर उतारू हो जाऊँगा, जो शुंग-परिवार के पुष्यमित्र ने की थी। शुंग लोग ब्राह्मण थे। उन्होंने राज्य को हस्तगत कर भारी भूल की थी। इससे न उनका भला हुआ और न ही देश का कल्याण हो सका।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"पर महाराज ! बौद्ध धर्म के प्रचार से तो वर्णों में भेद-भाव रहा ही नहीं। जब विवाह आदि में, व्यापार में, आचरण में और पढ़ाने-लिखाने में सब लोग स्वतन्त्र हैं, तो फिर राज्य करने में क्या आपत्ति हो सकती है ?"

"पर बौद्धों के कारण ही तो सब-कुछ मलियामेट हो रहा है। न केवल गंभीर विचार और प्रयत्न से प्रचलित की गई वर्ण-व्यवस्था का लोप हुआ है, प्रत्युत भगवान तथागत ने ब्राह्मणों के लिए मान और भक्ति तक मिटाने में कसर नहीं रखी। शूद्र, अनपढ़, मूर्ख, गँवार भी भिक्षु बनकर संघ में वही मान पाने लगते हैं, जितना कि पढ़े-लिखे विद्वान् ब्राह्मण अथवा शूरवीर क्षत्रिय। परिणामस्वरूप पूर्ण समाज का घोर पतन हो गया है।"

"परन्तु इसमें आपको क्या आपत्ति है कि कोई स्त्री अथवा शूद्र निर्वाण प्राप्त करे ?"

"मैंने यह नहीं कहा। मेरा आशय तो यह है कि जो योग्यता से अब्राह्मण है, वह भी योग्य ब्राह्मण के समान इस कारण माना जाता है क्योंकि वह दीक्षा प्राप्त किया हुआ भिक्षु है। यह अन्याय है।"

"मोक्ष-प्राप्ति तो एक पृथक् बात है। उसके लिए प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने कर्म में लगा हुआ यत्नशील हो सकता है, परन्तु हानि तब होती है जब कोई अयोग्य व्यक्ति योग्य के स्थान पर नियुक्त होता है और फिर वैसा मान पाने लगता है।

"देखो, मैंने कहा है कि मैं ब्राह्मण हूँ। मैं मन्त्रणा दे सकता हूँ, परन्तु राज्य नहीं कर सकता। राज्याधिकारी होने के लिए यह आवश्यक है कि वह शूरवीर हो, शक्तिशाली हो, मोह-ममता के बन्धनों से ऊपर हो और फिर ब्राह्मणों के कहे के अनुसार कार्य करने वाला और धर्मपरायण हो।

"बौद्ध सम्प्रदाय के समानता के सिद्धांत ने यह बात नहीं रहने दी। देखो पत्रलता ! महाराज अशोक क्षत्रिय थे। बलशाली और निर्भीक व्यक्ति थे, परन्तु उन्होंने कभी किसी विद्वान् की सम्मति से अपना आचरण नहीं बनाया। किसी कारण से उनके सम्मतिदाता बौद्ध-भिक्षु हो गए, जो प्रायः नीच वंशजोत्पन्न और अशिक्षित थे। उनकी सम्मति से उन्होंने एक पक्षपातपूर्ण राज्य चलाया। राज्य का पूर्ण कोष बौद्ध-सम्प्रदाय के चैत्यों में लगा दिया और अन्य सम्प्रदाय धनाभाव के कारण मिटते गए। परिणाम यह हुआ कि राज्य दुर्बल पड़ गया। यद्यपि बौद्ध-विचारधारा ने राज्य को दुर्बल करने के साथ-साथ यहाँ की प्रजा को भी निस्तेज किया, परन्तु विदेशों में रहने वालों को वे तेजहीन नहीं कर सके। इस कारण देश पर जब बाहरी आक्रमण हुए, तो न तो राज्य ही उनका विरोध कर सका और न ही जनता में विरोध की शक्ति रही।

"तुमने कन्नौज की अवस्था तो देखी ही है। राज्य पुंस्त्वहीन था। प्रजा भेड़-बकरी-समान हो गई थी और एक विदेशी राजा चुपचाप आकर इस पर अधिकार कर बैठा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"महाराज ग्रहवर्मन ने एक ब्राह्मण की बात नहीं मानी। बोधिसत्त्व को अपना दूत बनाकर कार्य चलाना चाहा। बोधिसत्त्व भगवान् अवलोकितेश्वर राजनीति से सर्वथा अनभिज्ञ, मनोविज्ञान से शून्य, ग्रहवर्मन के सम्मतिदाता हुए तो परिणाम हुआ उनकी हत्या और राज्य का पतन।

"पश्चात् पुनः कुछ लोग एक ब्राह्मण की सम्मति पर कार्य करने लगे तो परिणामस्वरूप स्वतंत्रता मिली। परन्तु एक क्षत्रिय राजा ने जब पुनः भावावेश में एक ब्राह्मण की सम्मति नहीं मानी तो परिणाम तुम देख रही हो।"

२

पत्रलता की समझ में यह तो आ गया था कि ब्राह्मण को राज्य नहीं लेना चाहिए परन्तु वह यह नहीं समझ सकी कि वह मूर्ख राजा, जो एक ब्राह्मण का कहा नहीं मानता और बिना प्रमाण के उसे दोषी ठहरा देता है, कैसे सहायता पाने का अधिकारी हो सकता है ?

वह चुपचाप मन में विचार करती हुई पान लगाने लगी। पद्मराज ने समझा कि वह युक्ति में परास्त हो गई है। इस कारण उसने बात बदलनी चाही। उसने कहा, "पत्रलता ! तुम्हारा प्रियजन मिला अथवा नहीं ?"

"नहीं भगवन् ! एक बार समाचार मिला था कि वह गौड़ राज्य में चला गया है। मैं उसको ढूँढ़ने वहाँ गई थी। उन्हीं दिनों महाराज-कुमार की हत्या हुई। मुझे हत्या का समाचार एक घड़ी-भर में मिल गया था। पश्चात् यह भी समाचार मिला कि आप वहाँ से बचकर भागने में सफल हो गए हैं। जब मेरे प्रेमी का समाचार मुझे नहीं मिल सका, तो मैं वापस चली आई। यहाँ आकर पता चला कि श्रीमान् जो कन्नौज की सुरक्षा के लिए सेना को एकत्रित कर रहे थे, बंदी बना लिए गए हैं।

"आज प्रातःकाल महामात्य के भक्त वासुदेव के मन्दिर में एकत्रित होकर इधर आ रहे थे। मैं भी उनके साथ चल पड़ी। जब वे लोग सर्वथा असन्तुष्ट लौट गए, तो मेरा मन आपसे मिलने को कर आया। मैं आपकी नीति को ठीक नहीं समझती थी। यहाँ श्रीमान् शतरंज खेल रहे थे। श्रीमान् जी तो समझ ही गए होंगे कि आप युक्ति में मुझसे हार गए हैं।" इतना कह पत्रलता ने शतरंज के मोहरों की ओर संकेत कर दिया।

"तो तुम समझती हो कि शतरंज की बाजी जीत जाने से तुमने मुझे युक्ति में भी परास्त कर दिया है ?"

"केवल शतरंज में ही नहीं, प्रत्युत राजनीति में भी युक्ति द्वारा आप परास्त हो चुके हैं।"

"सत्य ? पत्रलता ! मैं तो इसके विपरीत समझा था। मैंने कहा था कि समाज में एक वर्ग सदैव ऐसा रहना चाहिए, जो निष्काम भाव से निष्पक्ष होकर, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार के विकारों से मुक्त होकर मंत्रणा देने का कार्य करे। मैं उसी वर्ग में रहना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहता हूँ।"

"यह युक्ति नहीं है महाराज! यह तो एक सिद्धांत की बात है और मैंने इस सिद्धांत को अस्वीकार नहीं किया। मैं तो यह कह रही हूँ कि जब मंत्रणा लेने वाला व्यक्ति अधिकारी न हो, तो फिर मंत्रणा देने वाला क्या करे?"

"मंत्रणा दे और तटस्थ होकर परिणाम देखता रहे। किसी विद्वान् का कहना न मानने से जो परिणाम हो सकते हैं, वे होंगे और फिर उसको उस विद्वान् की मंत्रणा मानने के लिए विवश कर देंगे।"

"तो क्या संसार में मूर्ख राजा ही मंत्रणा पाने के अधिकारी रह गए हैं? क्या मंत्रणा देने वाले के लिए मंत्रणा के पात्र को ढूँढ़ना आवश्यक नहीं?"

"ओह! अब मैं समझा कि पत्रलता का मस्तिष्क किस ओर कार्य कर रहा है। हमारी तांबूलिन यह चाहती है कि वह स्थानेश्वर के परिवार वालों को पान खिला-खिलाकर ऊब गई है तथा कोई अन्य राजपरिवार यहाँ पर खड़ा करना चाहिए, जिससे उसके पान की महिमा और विस्तृत हो सके।"

"श्रीमान् समझे तो सही। राजपरिवार लाए जा सकते हैं, परन्तु क्या भरत-खंड में कोई ऐसा परिवार मिल सकेगा?"

"राजा बनाए नहीं जा सकते पत्रलता! वे अपने पूर्वजन्म के कर्मों के फल से उत्पन्न होते हैं। ब्राह्मणों का कार्य तो केवल मात्र यह है कि जो भी राजा हो, उसको सन्मार्ग दिखाते रहें। इस समय मैं स्थानेश्वर के राजपरिवार से अधिक उपयुक्त परिवार भारत का सम्राट् बनने योग्य नहीं समझता।

"देखो पत्रलता! राज्यवर्धन के विषय में तो मैं पहले भी कुछ अच्छी सम्मति नहीं रखता था। स्थानेश्वर में जब मैंने उसको अपना परिचय दिया और कन्नौज की परिस्थिति बताई, तो वह बिना मुझसे राय किए, अपने साथ केवल पाँच सौ सैनिक लेकर कन्नौज-विजय के लिए चल पड़ा था। यदि तुम्हारे तथा विष्णुकान्त इत्यादि के प्रयत्न से यहाँ की स्थिति अनुकूल नहीं होती, तो जानती हो क्या होता? राज्यवर्धन सम्भव है देवगुप्त को मार न सकता, क्योंकि गौड़-नरेश उसकी सहायता के लिए पहुँच जाता। और यदि देवगुप्त मर भी जाता तो शशांक की सेना राज्यवर्धन तथा उसके सैनिकों को कुचल डालती। कन्नौज राज्य इस समय शशांक के हाथ में होता।

"राज्यवर्धन को मैंने कहा था कि वह मंगला को कन्नौज बुलाकर यहाँ उससे विवाह करे, परन्तु वह अपनी ही मति के अनुसार कार्य करता रहा। परिणाम तुमने देख लिया है।

"परन्तु हर्षवर्धन को मैंने राज्यवर्धन से भिन्न पाया है। मैं उसको एक अवसर देना चाहता हूँ। यदि उसने विद्वानों की सम्मति से कार्य करना स्वीकार किया, तो वह निस्संदेह भारत में एक सबल और स्थायी राज्य स्थापित करने में सफल होगा।"

"इस विषय में श्रीमान् जी से मतभेद रखते हुए भी मैं एक तांबूलिन-मात्र कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक कह नहीं सकती। मुझ-जैसी अनुभवहीन लड़की की सम्मति का मूल्य आपके सम्मुख कुछ भी नहीं हो सकता। फिर भी इतनी बात मैं समझती हूँ कि राज्यश्री जब यहाँ की महारानी बनी थीं, तो वैष्णव थीं। परन्तु यहाँ के वातावरण के सम्मोहन में वह न केवल बौद्ध हुई, प्रत्युत राज्य-सत्ता को भी शिथिल करने में सहायक हो गईं। इसके साथ ही एक अन्य बात आपको विदित नहीं। जब महाराज ग्रहवर्मन की हत्या हो चुकी थी तो मैंने राज्यश्री से कहा था कि उनके लिए विष खाकर मर जाने के अतिरिक्त अब कोई उपाय नहीं। वह कहने लगीं कि वह अपने पति के हत्यारे को मार डालना चाहती हैं। मैंने उन्हें विष दिया था और कहा था कि पहले यह विष खा लें। इसका प्रभाव एक घड़ी के पश्चात् आरम्भ होगा। तब तक वह देवगुप्त से निबटने के लिए जाएँ। मेरा विचार था कि वह विष खा चुकी होंगी, परन्तु बाद में जब वह बंदीगृह में थीं तो मुझे पता चला कि अपने हाथों मरने का वह साहस नहीं कर सकीं।

"जैसी बहिन है, वैसा ही भाई होगा, ऐसा मेरा अनुमान है।"

"पत्रलता का अनुमान है, परन्तु मेरा अनुभव है। हर्षवर्धन कुछ दिनों में यहाँ आ जाएगा। उसके आने पर मैं अपना मार्ग निश्चित करूँगा।"

पत्रलता अपने प्रयास में विफल होकर चली गई। फिर भी वह नित्य पान लेकर महामात्य के पास आती रही और नगर एवं राज्य के समाचार बताती रही।

पद्मराज को दृढ़ विश्वास था कि हर्षवर्धन उसकी सम्मति से कार्य करेगा और वह उसको भारत का सम्राट् बनाने में पूर्ण शक्ति से सहायता करेगा।

हर्षवर्धन को जब ज्येष्ठ भ्राता की हत्या का समाचार मिला, तो वह कन्नौज आ पहुँचा। भंडी ने उसे बताया कि उसे संदेह है कि राजकुमार की हत्या में पद्मराज का हाथ है। वह बहुत ही चतुर व्यक्ति है; उसने पहले देवगुप्त को मरवाया, पश्चात् महाराज-कुमार को अपने मार्ग से दूर किया और अब श्रीमान् को कन्नौज में बुलाकर किसी षड्यंत्र में फँसाना चाहता है।

हर्षवर्धन के साथ पंडित चतुरानन भी था। चतुरानन जानता था कि कामरूप से संधि करने की प्रेरणा देने वाला पद्मराज ही था। इस संधि से ही कन्नौज और श्रीकंठ दोनों की स्थिति अति प्रबल हुई थी। यदि वह स्वयं कन्नौज का राज्य सँभालना चाहता, तो स्थानेश्वर और कामरूप में सन्धि कराने के स्थान पर स्वयं किसी प्रकार से कामरूप के साथ संधि करता। साथ ही पद्मराज का, स्थानेश्वर में हुए हर्षवर्धन के साथ वार्तालाप का उसके मन पर अच्छा प्रभाव था। इस कारण वह भंडी के सन्देह को सुन, तुरन्त विश्वास नहीं कर सका। महाराज हर्षवर्धन ने जब उसकी सम्मति माँगी, तो वह गंभीर विचार में पड़ गया। पश्चात् उसने सेनापति भंडी से प्रश्न करने आरंभ कर दिए। उसने पूछा, "सेनापति ने पद्मराज को क्या आज्ञा दी थी?"

"मैंने कहा था कि महामात्य अपने को अपने निवासस्थान पर बंदी समझें।"

"उसने क्या कहा था?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"वह बंदी बनने के लिए तैयार हो गया था। उसने मुझसे कहा था कि मैं राज्य-कार्यभार अपने ऊपर ले लूँ। वह मैंने ले लिया।"

"क्या महामात्य पर किसी प्रकार का पहरा बिठाया गया है?"

"हाँ, परन्तु उसे व्यर्थ मान उठा लिया गया। उसने भागने की चेष्टा नहीं की।"

"क्या महामात्य प्रजा से मिल सकते हैं?"

"हाँ, इसमें कोई रुकावट नहीं है।"

"महामात्य के परिवार के सदस्य कहाँ हैं?"

"वे वहीं हैं। उन पर कोई प्रतिबंध नहीं है।"

"सेनापति ने हत्या के विषय में जाँच करवाई है?"

"वह तो गौड़-विजय के पश्चात् ही हो सकेगी।"

"आपने यहाँ के किसी कर्मचारी से पता करने का प्रयत्न किया था कि महाराज-कुमार को महामात्य ने गौड़ जाने से मना किया था अथवा नहीं?"

"यह तो राजकुमार स्वयं जाँच करवाएँगे।"

"महाराज!" चतुरानन ने हर्षवर्धन से कहा, "मैं समझता हूँ कि महामात्य निर्दोष हैं। उन्हें मुक्त कर देना चाहिए।"

हर्षवर्धन चतुरानन के इस परिणाम पर पहुँचने से प्रसन्न था। वह स्वयं भी यह मानता था कि पद्मराज निर्दोष था। उसने समझा कि बंदी बनाने से पद्मराज का अपमान हो गया है और अब स्वयं उसके निवासस्थान पर जाकर उसे मुक्त करना चाहिए। वह अपने साथ अपने अंगरक्षकों को लेकर पद्मराज के आवास पर जा पहुँचा। वहाँ जाकर हर्षवर्धन ने पद्मराज से क्षमा माँगी, तो पद्मराज इतनी सज्जनता देख प्रसन्नता के आँसू बहाने लगा। पश्चात् उसने कहा, "महाराज! आपको शीघ्र ही कार्यभार सँभाल लेना चाहिए। मैं तो समझता हूँ कि अभी तक हमने सारा समय व्यर्थ ही गँवाया है। इस समय तक हमें गौड़ राज्य पर पूर्ण रूप से अधिकार कर लेना चाहिए था। वंचक को वंचना का फल मिलना ही चाहिए।

"इसके अतिरिक्त आपको कामरूप के महाराज से निवेदन करना चाहिए कि वे पूर्व की ओर से गौड़ पर आक्रमण कर दें। यह समर एक मास में संपूर्ण हो जाना चाहिए। पश्चात् हमें अपना ध्यान मालवा की ओर लगाना होगा।"

पद्मराज की मुक्ति के समाचार से कन्नौज-भर की जनता में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। हर्षवर्धन ने उसे अपने साथ एक सजे हुए हाथी पर बैठाकर नगर-भर में घुमाया। नागरिकों ने दोनों की जयघोष की और उन पर पुष्प-वर्षा की।

३

पत्रलता पद्मराज के मुक्त हो जाने से और स्थानेश्वर तथा कन्नौज दोनों राज्यों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महामात्य नियुक्त किए जाने से अपने अनुमान के असत्य होने पर लज्जित हुई और पद्मराज से इस विषय में क्षमा माँगने के लिए उसके निवासस्थान पर पहुँच गई।

महामात्य को उसकी योजना की सफलता पर बधाई देते हुए उसने कहा, "मैं समझती हूँ कि मुझको अपने विचारों की शुद्धि के लिए श्रीमान् की और अधिक सेवा करनी चाहिए। मैं इतने श्रेष्ठ व्यक्ति पर संदेह करने के लिए लज्जित हूँ।"

"पत्रलता!" पद्मराज ने उसका बनाकर दिया पान मुख में डालते हुए पूछा "तुम्हारी आयु कितनी है?"

"अभी बाईस वर्ष से कुछ कम है।"

"और जानती हो, मेरी आयु कितनी है?"

"श्रीमान् पचास के लगभग होंगे।"

"हाँ, मैं बावन वर्ष की आयु का हूँ। तुम्हारी ज्ञान-आयु अभी दो वर्ष की है। मेरी ज्ञान-आयु बत्तीस वर्ष की है अर्थात् ज्ञान-उपलब्धि की आयु में मैं तुमसे सोलह गुना अधिक आयु वाला हूँ। इस कारण मेरे अनुमान और ज्ञान में और तुम्हारे ज्ञान में अंतर होना स्वाभाविक ही है।

"फिर भी मैं तुम्हारी बात को भूला नहीं हूँ। तुमने कहा था कि राज्यश्री वैष्णव होती हुई कन्नौज में बौद्ध-प्रभाव के अधीन भीरु और उत्साहहीन हो गई थी। यही बात मुझको हर्षवर्धन के विषय में सतर्क कर रही है।

"मैं तुमको एक बात बताता हूँ। जो अवगुण तुमने राज्यश्री में पाया था, वही अवगुण, उससे कुछ कम मात्रा में, मैंने हर्षवर्धन में भी देखा है। मैंने कल यह प्रस्ताव रख दिया था कि वे राज्यारोहण कर लें। किन्तु उन्होंने इस बात से इंकार करते हुए कहा कि जब तक वे अपनी भगिनी के विषय में पूर्ण जाँच नहीं कर लेते, तब तक वे कन्नौज के सिंहासन पर पाँव नहीं रखेंगे।

"मैंने कहा था कि राज्य करना पुरुषों का काम है, स्त्रियाँ राज्य करने के योग्य नहीं होतीं। तब वे बोले कि कन्नौज का राज्य राज्यश्री का है और वे अपनी बहन के अधिकार पर छापा नहीं डाल सकते।

"मुझको कुछ ऐसा भास हुआ है कि यह परिवार सारा-का-सारा सीमा से अधिक भावुक है। बड़ा भाई अपने बहनोई की हत्या को सुन मनोद्गार में डूबा हुआ बिना योजना के, एक चतुर और बलशाली राज्य से टक्कर लेने चल पड़ा था और यह कुमार भावावेश में राज्य-जैसी वस्तु को मलियामेट करने की बात पर विचार कर रहा है।"

पत्रलता अपने अनुमान की पुष्टि पाकर चकित रह गई। उसने विस्मय में पूछा, "पर श्रीमान् क्या करने वाले हैं?"

"मैं ब्राह्मण का कार्य करूँगा। मैं अपनी विचार की हुई सम्मति से हर्षवर्धन को पथ-प्रदर्शित करने का यत्न करूँगा।"

"पर यह तो कुछ नहीं हुआ श्रीमान्! देश और प्रजा के सम्मुख अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तरदायित्व को निभाने का यह उपाय ठीक नहीं है।"

"तो तुम क्या कहती हो, मुझको क्या करना चाहिए?"

"वह राजपरिवार राज्य करने के योग्य नहीं है। इनकी शिक्षा-दीक्षा में कहीं कुछ त्रुटि है, जिस कारण ये उच्छृंखलता करने का विचार करते रहते हैं।"

"मेरा विचार है कि पत्रलता को हर्षवर्धन से सम्पर्क उत्पन्न करने का यत्न करना चाहिए और उसको सुमति देने का यत्न करते रहना चाहिए।"

"यदि श्रीमान् आज्ञा देंगे तो मैं यत्न करूँगी। फिर भी मेरी यह सम्मति है कि इससे कुछ लाभ नहीं होगा। मैं तो पुनः यही निवेदन करूँगी कि श्रीमान् अपनी स्थिति सुदृढ़ कर राज्य हस्तगत करें। इसमें ही देश के कल्याण की आशा है।"

पद्मराज हँस पड़ा। उसने कहा, "देखो पत्रलता! तुमको पश्चिम के एक देश नजरथ के एक महापुरुष यीशु मसीह के शिष्यों द्वारा लिखित एक ग्रंथ में वर्णित एक कहानी सुनाता हूँ। उसमें लिखा है :

"पृथ्वी पर अँधेरा था। न सूर्य था, न तारे थे। भगवान् की आत्मा इस अन्धकारमयी दुनिया पर डाँवाडोल घूमती थी। भगवान् के मन में विचार आया तो उसने सूर्य बनाया; फिर उसने चाँद बनाया; पश्चात् पहाड़, नदियाँ-नाले, पेड़ इत्यादि सृष्टि की सब वस्तुएँ बनाईं। इसमें छः दिन लग गए। इससे भगवान् थक गया और उसने सातवें दिन विश्राम किया।

"जब दुनिया बन गई तो भगवान् का मन अति प्रसन्न हुआ। इतनी बड़ी दुनिया में वह अपने को अकेला अनुभव करने लगा। इस कारण उसने मिट्टी ली और अपनी नकल का एक बहुत सुंदर पुतला बना दिया। जब पुतला बन गया तो उसने उसमें फूँक मारी और वह पुतला सप्राण हो गया। इसका नाम उसने आदम रखा।

"इससे भगवान् बहुत प्रसन्न हुआ। वह कभी-कभी आकर इस पुतले के साथ खेलकर मन बहलाया करता था। एक दिन आदम ने भगवान् से कहा, 'प्रभु! जब आप यहाँ नहीं होते तो मैं उदास रहता हूँ। मैं क्या करूँ और किससे बात करूँ अथवा किससे खेलूँ?'

"परमात्मा को अपने अकेलेपन का स्मरण हो आया और उसने आदम की कठिनाई को अनुभव किया। उसने आदम की एक पसली निकाल उसमें से एक औरत बना दी। इसका नाम हव्वा रखा। अब आदम और हव्वा इकट्ठे रहने लगे। परमात्मा जब पृथ्वी पर आता तो वे उसका मन बहलाते। जब परमात्मा चला जाता तो वे परस्पर खेलते-कूदते, बातें करते और संसार की अनेकानेक वस्तुओं से आनन्द उठाते। दोनों नग्न रहते थे, परन्तु उनको इसका ज्ञान नहीं था। वे स्त्री-पुरुष थे; परन्तु उनको इसका भी ज्ञान नहीं था। वे अदन नाम के स्थान पर रहते थे। यह स्थान इतना सुंदर, सुखप्रद और सुविधाजनक था कि उसको स्वर्ग कहा जाता था।

"परमात्मा ने आदम और हव्वा को मना कर रखा था कि वे ज्ञानरूपी पेड़ के फल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को न खाएँ, उस फल को खाने से उनका स्वर्ग से पतन हो जाएगा। ये दोनों परमात्मा को परम हितेच्छु मानते थे। इस कारण वे अन्य सब प्रकार के फल खाते थे, परन्तु ज्ञानरूपी फल को नहीं खाते थे।

"परमात्मा का उन पर प्रभाव शैतान को अखरने लगा। एक दिन उसने एक साँप का रूप बनाया और हव्वा को सिखाने लगा कि वह ज्ञानरूपी फल खाए। जब हव्वा ने कहा कि परमात्मा ने मना किया हुआ है तो उसने हँसकर कहा कि वह तो ढोंगी है और स्वार्थी है। अपने को तुमसे ऊँचा रखने के लिए वह तुम्हें मना करता है। वह नहीं चाहता कि तुम उस ज्ञान को प्राप्त कर लो जो उसको है और जो ज्ञान इस फल को खाने से उत्पन्न होता है।

"हव्वा लोभ में फँस गई और उसने फल तोड़कर स्वयं खाया और आदम को भी खिलाया। फल के खाने से उन दोनों को प्रथम ज्ञान यह हुआ कि वे नग्न हैं, उनको तन ढाँपना चाहिए।

"इसके पश्चात् जब परमात्मा आया तो हव्वा जो नग्न थी और जिसको नग्न होने का ज्ञान हो चुका था, एक पेड़ के पीछे जा छिपी। परमात्मा ने उसको छिपते देख कहा, 'हव्वा ! इधर आओ।'

'प्रभु ! मैं नग्न हूँ। मैं पर-पुरुष के सामने इस प्रकार कैसे आ सकती हूँ ?'

"परमात्मा समझ गया कि उसने फल खाया है। इससे उसको क्रोध चढ़ आया। उसने आदम से पूछा कि उसने भी वह फल खाया है क्या ? आदम ने बताया कि हव्वा ने उसे कहा, तो उसने भी खा लिया।

"परमात्मा ने उन दोनों को श्राप दिया तो दोनों स्वर्ग से गिरकर इस लोक में आ गए और पश्चात् वे पति-पत्नी के रूप में रहने लगे। उनके संतान हुई और उस संतान से यह वर्तमान मानव-सृष्टि उत्पन्न हो गई।"

जब पद्मराज यह कहानी सुना चुका तो बोला, "तब से यह कहावत प्रचलित हो गई है कि स्त्री पुरुष को फुसलाती है और स्वर्ग से नरक में ले जाती है।"

यह सुन पत्रलता हँस पड़ी और कहने लगी, "तो श्रीमान् मुझको फुसलाने वाली समझते हैं ?"

"मैं कुछ नहीं समझता। मैं राज्य पाना नहीं चाहता। तुम मुझको राज्य पाने और सम्राट् बनने के लिए कहती हो। यह फुसलाना है अथवा कुछ और, तुम स्वयं ही देख लो।"

"मैं समझती हूँ कि ज्ञान का फल खाने के लिए हव्वा का आग्रह ठीक ही था। परमात्मा का उनको पुरुष-स्त्री होने के ज्ञान से वंचित रखना अन्याय था। हव्वा ने अपने अधिकारों को प्राप्त करना उचित समझा और फिर इसका परिणाम भी ठीक हुआ। आज यह चराचर सृष्टि उस ज्ञान का परिणाम ही तो है।"

"तो मैं यह समझूँ कि पत्रलता ज्ञान की उपलब्धि मेरे लिए उचित समझती है। मुझको वह प्राप्त करना चाहिए और स्वर्ग से पतित होकर जो संसार मुझको मिलेगा, वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठीक ही होगा ?"

"हाँ श्रीमान् ! उससे ही मानव-समाज का कल्याण होगा।"

"पर जब हव्वा की प्रेरणा से आदम ने फल खाकर ज्ञान प्राप्त कर लिया तो दोनों इस संसार में आ गए और फिर पति-पत्नी के रूप में रहने लगे। क्या आधुनिक हव्वा भी ऐसा रहना चाहेगी ?"

"चाहती, यदि संभव होता।"

"असंभव क्यों है ?" पद्मराज ने हँसते हुए पूछा।

पत्रलता का मुख लज्जा से लाल हो गया। उसकी आँखें झुक गईं। उसने धीरे से कहा, "इसमें कारण कन्नौज के एक बड़े व्यक्ति के परिवार का रहस्य है।"

"क्या मतलब ?"

"छोड़िए इस बात को। क्या हम अपने आशय से दूर नहीं भटक गए? यदि श्रीमान् को नई पत्नी की आवश्यकता पड़ेगी तो लड़की ढूँढ़ दी जाएगी। यह तांबूलिन किसी राज्य की महारानी बनने के योग्य नहीं है।"

"तो ठीक है। यह श्रीमान् भी महाराज बनने के योग्य नहीं। परन्तु पत्रलता ! तुमनें अपने जीवन में झाँकने का निमंत्रण देकर और उसकी खिड़की बंद कर मेरे मन में भारी हलचल मचा दी है। तुम कौन हो और कहाँ की रहने वाली हो ? यह सब क्या रहस्य है ? और फिर तुम्हारा और मेरा इससे क्या संबंध है ?"

"रहस्य बताने के लिए नहीं होते श्रीमान् ! बुद्धिमानों के लिए ये जानने के विषय हो सकते हैं। पर मेरा यह विचार है कि इन पर मस्तिष्क खराब करना समय का अपव्यय करना है।"

"हमारे वार्तालाप का विषय था कि क्या स्थानेश्वर के वर्धन-परिवार को भारत के सम्राट्-पद पर आसीन करने का यत्न किया जाए ? मेरी तुच्छ सम्मति इसके विरुद्ध थी।

"श्रीमान् भी मेरी सम्मति का समर्थन कर रहे प्रतीत होते हैं।"

"हाँ; परंतु पत्रलता ! भारत में जितने भी राजपरिवार हैं, उनमें यह परिवार सबसे श्रेष्ठ प्रतीत होता है।"

"क्या हम यह बातचीत करते हुए एक चक्र में नहीं घूम रहे ? मेरा प्रश्न तो यही है कि क्या जनसाधारण में से कोई नवीन राजपरिवार उत्पन्न नहीं हो सकता ?"

"मैं अपने को इस योग्य नहीं समझता। यह हो सकता है कि कहीं किसी टूटे खँडहर की ईंटों के नीचे कोई व्यक्ति पड़ा हो, जो भारत का सम्राट् बन सकता हो। अभी तक तो मिला नहीं। हमको तो जो उपलब्ध है, उससे ही कार्य चलाना है।"

४

हर्षवर्धन ने अपने कन्नौज में पहुँचने से अगले दिन ही पद्मराज को अपना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महामात्य घोषित कर दिया और उसके साथ दो-चार अन्य सहायक अमात्य भी नियुक्त कर दिए। पद्मराज के महामात्य नियुक्त होने से प्रजा में संतोष की तरंग चलने लगी और प्रत्येक के मुख से हर्षवर्धन की जय-जयकार होने लगी। इतना करके हर्षवर्धन ने कामरूप के महाराज प्रभाकरवर्मन को एक पत्र लिखा। उसमें शशांक के धोखा और झूठ का वर्णन कर दिया। साथ ही उसने यह भी लिखा कि इस प्रकार के धूर्त राजा को भारत की पुण्य-भूमि से दूर कर देना देश के कल्याण में है। अन्त में हर्षवर्धन ने लिखा, "मैं अभी बालक-मात्र हूँ। पिता के स्वर्गवास और बड़े भाई की हत्या से अत्यंत विक्षुब्ध-मन हूँ। अतः आप-जैसे देश तथा समाज के हितेच्छुओं से आशा करता हूँ कि मेरे ऊपर अपनी कृपा का हाथ सदैव रखें। साथ ही मैं अपनी बहन राज्यश्री को छुड़ाना चाहता हूँ। उसे शशांक ने ही कहीं बन्दी बनाकर रखा है।

"मैं श्रीमान् जी से प्रार्थना करता हूँ कि वे शशांक को लिखें कि वह मेरी बहन को मुक्त कर दे और मेरे भाई की हत्या का प्रायश्चित्त करे अन्यथा हम राज्य की ईंट-से-ईंट बजा देंगे।"

इस पत्र को चतुरानन के हाथ भेज हर्ष ने एक पत्र शशांक को विशेष दूत के हाथ भेज दिया। इसमें उसने लिखा :

"गौड़-नरेश की सूचना के लिए।

"मेरे ज्येष्ठ भ्राता राज्यवर्धन की तुम्हारे राजप्रासाद में हत्या की गई है। मेरी भगिनी राज्यश्री तुम्हारे किसी बंदीगृह में बंदी पड़ी है। अतः मैं हर्षवर्धन, स्थानेश्वर-नरेश तथा कन्नौज का रक्षक, यह चाहता हूँ कि राज्यश्री को तुरंत छोड़कर कन्नौज भेज दो और महाराज-कुमार राज्यवर्धन की हत्या के प्रायश्चित्त में कन्नौज की अधीनता स्वीकार कर लो। इस अधीनता के प्रतिरूप प्रथम वर्ष के कर के रूप में दो लक्ष स्वर्ण तुरंत कन्नौज भेज दो।

"यदि ये दोनों माँगें एक मास के भीतर पूर्ण नहीं हुईं, तो मैं कन्नौज सेना के साथ गौड़ राज्य पर आक्रमण कर दोनों बातें स्वीकार कराऊँगा।"

जब दूत हर्षवर्धन का यह पत्र लेकर गौड़-नरेश की सभा में उपस्थित हुआ, तो शशांक ने पत्र को फाड़कर टुकड़े-टुकड़े करते हुए दूत को मौखिक संदेश दिया—"हे दूत ! तुम जाकर अपने राजकुमार से कह देना कि राज्यश्री हमारे बंदीगृह में नहीं है। इस कारण उसको हम नहीं भेज सकते।

"महाराज-कुमार राज्यवर्धन की हत्या हमने नहीं की। वे तो गौड़ की एक नर्तकी के गृह में मारे गए हैं। अतएव उनकी हत्या का उत्तरदायित्व हमारे ऊपर नहीं है। इस कारण हम आपकी इन अनर्गल बातों को पूर्ण नहीं कर सकते।"

दूत के वापस आने पर हर्षवर्धन ने सेनापति भंडी को गौड़ पर आक्रमण करने की आज्ञा दे दी। भंडी ने अपनी सेना के तीन भाग कर तीन ओर से गौड़ पर आक्रमण कर दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शशांक के पास कामरूप के राजा प्रभाकरवर्मन का पत्र भी पहुँचा था। इसमें उसने लिखा था कि राज्यश्री को बंदी बनाकर रखना भारतीय सभ्यता के सर्वथा प्रतिकूल है। यदि उसे तुरंत न छोड़ा गया तो कामरूप की सेना गौड़ राज्य पर आक्रमण कर देगी।

इसके उत्तर में शशांक ने प्रभाकरवर्मन को राज्यश्री का पता लिख भेजा। उसने लिखा, "मालव राज्य में विंध्याचल पर्वत पर विंध्याटवी में दिवाकर नाम के भिक्षु के आश्रम में राज्यश्री रहती है। वह आश्रम मेरे राज्य में नहीं और न ही मेरे अधीन है।"

शशांक का इस सूचना को भेजने का आशय यह था कि कामरूप कन्नौज के आक्रमण के साथ-साथ आक्रमण न कर दे। इस कारण उसने प्रभाकरवर्मन को संतोष दिलाने के लिए राज्यश्री का पता लिख भेजा। इस प्रकार कामरूप से अपने को सुरक्षित कर उसने अपनी पूर्ण सेना भंडी सेनापति की सेना से टक्कर लेने के लिए खड़ी कर दी।

प्रभाकरवर्मन ने राज्यश्री का पता हर्षवर्धन को लिख भेजा। हर्षवर्धन स्वयं गौड़ पर आक्रमण करने के लिए जाने वाला था, परंतु इस सूचना को पाकर उसने भंडी को ही युद्ध के लिए भेज दिया और स्वयं पद्मराज के साथ विंध्याटवी की ओर चल पड़ा।

कन्नौज राज्य तथा मालव राज्य दोनों की सीमाएँ विंध्याचल पर मिलती थीं। विंध्याचल पर शर्वर जाति के लोग बसे हुए थे और ये लोग दोनों राज्यों से मैत्री रखते थे। पद्मराज ने शर्वर जाति के नेता भूकंप से राज्यश्री को ढूँढ़ने में सहायता माँगी। भूकंप ने बताया कि विंध्याटवी में एक बौद्ध-चैत्य है। उसमें बौद्ध-परिवार के दिवाकर मित्र गुरु-पद पर आसीन हैं। यह आश्रम मालव राज्य में है। अतः हर्षवर्धन पद्मराज और अपने सेवकों के साथ सीमा पार कर उस आश्रम में जा पहुँचा।

आश्रम में प्रायः भील, शर्वर, गौड़ आदि जातियों के लोग ही भिक्षुक बनकर रहते थे। जब ये लोग वहाँ पहुँचे, तो पद्मराज ने अपने एक सेवक को महाराज हर्षवर्धन का परिचय देकर दिवाकर मित्र को सूचना भेजी।

दिवाकर मित्र सूचना पाकर भागा हुआ हर्षवर्धन का स्वागत करने आया। सबको आश्रम के अंदर ले जाकर उसने उनकी बहुत सेवा तथा आवभगत की। हर्षवर्धन ने अपने आने का प्रयोजन बता दिया।

यह सुनकर दिवाकर मित्र ने कहा, "महाराज ! इस रूपरेखा तथा नाम वाली स्त्री हमारे आश्रम में नहीं है। इस आश्रम में भगवान् तथागत का संदेश इन वनवासी शर्वर-गौड़-भील इत्यादि तक पहुँचाने का आयोजन है। यहाँ उत्तर भारत की आर्य जाति की कोई स्त्री नहीं है।"

"तो शशांक ने हमें धोखा दिया है ?"

"महाराज ! इस विषय में मैं क्या कह सकता हूँ !"

पद्मराज ने हर्षवर्धन से कहा, "महाराज ! हमें शीघ्र ही यहाँ से लौट चलना चाहिए और अपनी खोज किसी अन्य स्थान पर करनी चाहिए।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हर्षवर्धन राज्यश्री को यहाँ न पाकर वास्तव में बहुत ही निराश हुआ था। उसे विश्वास था कि शशांक की यह सूचना, जबकि कामरूप उसकी पीठ पर आक्रमण करने के लिए तैयार है, गलत नहीं हो सकती। अब दिवाकर मित्र को शान्त और गंभीर भाव में राज्यश्री के विषय में अनभिज्ञता जताते सुन, उसे विश्वास हो गया कि शशांक ने यहाँ भी धोखा दिया है।

निराश वह वहाँ से चलने के लिए दिवाकर मित्र से आज्ञा लेने लगा ही था कि उसी समय कुछ शर्वर स्त्रियाँ भागती हुई वहाँ आईं और कहने लगीं, "भगवन्! एक गौरवर्णीय स्त्री अपने को जलती चिता में भस्म करने जा रही है।"

"क्यों?" दिवाकर मित्र ने प्रश्न किया।

"महाराज!" शर्वर स्त्री ने कहा, "वह बेचारी बहुत ही दुखी प्रतीत होती है। वह विधवा है, उसका राज्य छीना गया है। उसके भाई की हत्या हो चुकी है और शत्रु राजा ने उसके साथ बहुत ही दुर्व्यवहार किया है। अतएव वह इस मलिन शरीर को त्याग देना चाहती है।"

"बहुत ही शोचनीय अवस्था है।"

हर्षवर्धन इस स्त्री का वर्णन सुन रहा था। उसको तुरंत विश्वास हो गया कि यह स्त्री राज्यश्री ही होगी। अतः उसने दिवाकर मित्र से कहा, "भगवन्! ऐसा प्रतीत होता है कि जिसकी खोज में मैं यहाँ आया हूँ, यह वही स्त्री है। आप चलकर उसे बचाइए।"

दिवाकर मित्र यह सुनकर उठ खड़ा हुआ और उन शर्वर स्त्रियों के साथ उस ओर चल पड़ा, जिस ओर से वे भागती हुई आई थीं। हर्षवर्धन और पद्मराज तथा अन्य राज-कर्मचारी भी साथ-साथ चल दिए।

नदी के तट पर सूखी लकड़ियों का एक बहुत बड़ा ढेर लगा हुआ था। उन लकड़ियों पर एक स्त्री श्वेत परिधान में, माथे और बाँहों पर चंदन का लेप किए, खुले केशों के साथ बैठी भगवान् को स्मरण कर रही थी। उसके समीप ही घी, चंदन आदि आग लगाने का सामान रखा था।

हर्षवर्धन उसे देखते ही पहचान गया कि यही उसकी बहन राज्यश्री है। उसे पहचानते ही वह उतावला हो—"राज्यश्री! राज्यश्री!!" चिल्लाता हुआ चिता पर चढ़ गया।

हर्षवर्धन ने उसे पकड़कर गले लगा लिया और विह्वल हो रोने लगा। राज्यश्री, जो दृढ़ निश्चय कर चिता पर बैठी थी, अपने भाई को इस प्रकार विह्वल हो रोते देख द्रवित हो उठी। उसकी आँखों से आँसुओं की अविरल धारा बहने लगी।

हर्षवर्धन उसे उठाकर नदी-तट पर ले आया और रोते हुए कहने लगा, "बहन, चलो।"

"कहाँ?" राज्यश्री ने अपना मुख ढाँपते हुए पूछा।

इसका उत्तर दिवाकर मित्र ने दिया, "बेटी! यहाँ समीप ही आश्रम है। वहाँ चलो,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हारे मन की मैल धुल जाएगी। भगवान् बुद्ध की कृपा से मन शुद्ध होकर शांति प्राप्त करोगी। तुम अत्यंत भाग्यशालिनी हो, जो हम समय पर आ पहुँचे हैं, अन्यथा तुम मिथ्या मार्ग पर जा रही थीं। भगवान् तथागत की अपार कृपा है कि हम तुम्हें मिथ्या मार्ग से रोक सके हैं।"

राज्यश्री चुप रही। हर्षवर्धन ने भी आश्रम में ही जाना उचित समझा। अतः सब पुनः आश्रम में जा पहुँचे।

५

"देवी! इस शरीर को क्यों नष्ट करने जा रही थीं?" दिवाकर मित्र का कहना था।

"भगवन्! यह शरीर कलुषित हो गया है। इसको बचाकर रखने में अब कुछ प्रयोजन नहीं रहा।"

"शरीर कलुषित कैसे हो सकता है! देवी, यह तो जल से धोकर साफ किया जा सकता है। कलुषित होता है मन। मन को भी शुद्ध करने का उपाय है। जप और प्रायश्चित्त करो। भगवान् तथागत की अपार कृपा है। ग्रहवर्मन मेरा मित्र था और उसका भगवान् तथागत के सिद्धांतों पर अगाध विश्वास और श्रद्धा थी। अतएव तुम्हें भी भगवान् तथागत पर विश्वास और श्रद्धा रख निर्वाण-प्राप्ति के लिए अग्रसर होना चाहिए। भगवान् तथागत तुम्हारी सहायता करेंगे।

"संसार का कोई प्राणी ऐसा नहीं, जो भगवान् की कृपा पा जाने से निर्वाण-पथ पर अग्रसर न हुआ हो। इस कारण बेटी! तुम्हारा कल्याण होगा। 'बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि, सघं शरणं गच्छामि' मंत्र का जाप करो, तुम्हारा कल्याण होगा।

"देखो, आत्महत्या करने से तुम मन को, जो सब प्रकार के पापों का स्थान है, मार नहीं सकतीं। यह अपने इस जन्म के कर्मों को अगले जन्म में साथ ले जाएगा। इसको शुद्ध कर सकती हो और इससे मुक्ति पाने का उपाय निर्वाण-प्राप्ति ही है।"

राज्यश्री को आश्रम में भिक्षुणी बनकर रहना अपनी समस्या का सुझाव समझ में आने लगा था, परंतु हर्षवर्धन तो बहन को कन्नौज के सिंहासन पर बिठाने का विचार रखता था। इस कारण उसने बहन का निर्णय सुनकर कह दिया, "राज्यश्री! मैं तुम्हें ले जाने के लिए आया हूँ।"

"कहाँ?"

"कन्नौज के राज्य-सिंहासन पर बिठाने के लिए।"

"नहीं हर्ष! मैं राज्य नहीं करूँगी। मैं अब इस संसार में रहने में कुछ भी सार नहीं समझती। हर्ष! मुझको भूल जाओ। समझ लो कि मैं जलकर भस्म हो चुकी हूँ। राज्यश्री, कन्नौज की महारानी, अब इस संसार में नहीं है। तुम जाओ और कन्नौज का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्य करो।"

हर्षवर्धन ने बहुत प्रयत्न किया, परंतु राज्यश्री नहीं मानी। अगले दिन वह सिर मुँडा, पीत वसन धारण कर भिक्षुणी बन गई।

पद्मराज इससे संतुष्ट नहीं था। सबसे पूर्व वह राज्यश्री का इतने दिन का इतिहास जानना चाहता था। वह जानना चाहता था कि वह कहाँ रहती थी और किसने उसके साथ दुर्व्यवहार किया था; परंतु पद्मराज को राज्यश्री से भेंट करने का अवसर ही नहीं मिला। उसी रात पद्मराज ने हर्षवर्धन से कहा, "महाराज! इन मनोद्गारों में वास्तविक बात को हम नहीं जान सके।"

"वास्तविक बात क्या है महामात्य! जो आप जानना चाहते हैं?"

"मैं यह जानना चाहता हूँ कि महारानी इतने दिन कहाँ रहीं? वे शशांक के अधिकार में थीं अथवा मालव राज्य के।"

"क्या होगा यह जानकर?"

"हम जान लेंगे कि शशांक की धूर्तता कितनी दूर तक गई है। महाराज! मुझको संदेह हो रहा है कि शशांक ने ही उसको बंदी बनाकर रखा हुआ था। जब उसने देखा कि कामरूप की सेना भी उस पर आक्रमण कर रही है, तो उसने राज्यश्री को इस वन में लाकर छोड़ दिया है।"

"परंतु इसके जानने से क्या होगा? गौड़ पर हमने आक्रमण तो कर ही दिया है।"

"होगा यह कि कामरूप के महाराज को भी हम गौड़ पर आक्रमण करने के लिए उत्साहित कर सकेंगे। इससे हमारा कार्य सुगम हो जाएगा।"

"मैं समझता हूँ कि इस समय गौड़ सेना पराजित हो रही होगी।"

"इससे तो यह सिद्ध हो जाएगा कि वास्तव में महारानी राज्यश्री बंदी नहीं थीं। वे वैराग्यवश कन्नौज से चली आई थीं।"

"महामात्य! हमें इन बातों से किसी प्रकार का सरोकार नहीं। राज्यश्री जीवित है, मुझको यह देखकर अतीव प्रसन्नता हो रही है। मैं अब उससे व्यर्थ की बातें पूछकर उसे अधिक दुःखी नहीं करना चाहता। अब तो वह संन्यासिनी हो रही है। यह और भी हर्ष की बात है।"

पद्मराज को इससे संतोष नहीं हुआ। अगले दिन वह प्रयत्न करता रहा कि राज्यश्री से मिल सके। परंतु उसके सिर मुँडाने से पूर्व यह संभव नहीं हो सका। पद्मराज उसके भिक्षुणी बनने के पश्चात् ही उससे पूछ सका, "भंते! क्या मैं जान सकता हूँ कि आप इतने काल तक कहाँ रही हैं?"

"क्या लाभ होगा यह जानकर?"

"सत्य इतिहास जानने से जो लाभ होता है, वही होगा।"

"मूर्ख संसार की बातों को मैं भूल चुकी हूँ। मैं उनको स्मरण कर पुनः अपने मन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में मैल नहीं लाना चाहती। मेरा यहाँ न कोई शत्रु है, न मित्र। मैं इस विषय पर अब बात करना नहीं चाहती।"

पद्मराज ने उसे कुछ-न-कुछ कहने के लिए विवश करने के लिए कहा, "मैं समझता हूँ कि आप इस आश्रम में चिरकाल से रह रही थीं और दिवाकर मित्र जी ने आपको छिपाकर रखा हुआ था। कल जो कुछ आप करने वाली थीं, वह केवल मात्र एक नाटक था। आप दिवाकर मित्र जी का अनावश्यक राजनीति में हस्तक्षेप छिपाने के लिए कुछ कहना नहीं चाहतीं।"

राज्यश्री ने विस्मय में पद्मराज के मुख पर देखकर केवल यह कहा, "मन की भ्रांति दूर करने के लिए केवल एक उपाय है, भगवान् की शरण में जाना। महामात्य ! अब आप हर्ष को लेकर यहाँ से चले जाइए।"

"क्या आपके साथ बलात्कार किया गया था ?"

राज्यश्री बिना उत्तर दिए वहाँ से एक ओर चल दी।

पद्मराज किसी परिणाम पर नहीं पहुँच सका। वह दिवाकर मित्र की सेवा में जा पहुँचा। उसने सामने बैठ वार्तालाप प्रारंभ करने के लिए उनसे कहा, "भगवन् ! हम आज यहाँ से जा रहे हैं। हमारी सेना राज्यश्री को बंदी बनाने वाली सेना के साथ युद्ध में संलग्न है। यदि हम अपनी सेना का नेतृत्व करने नहीं पहुँचते तो सेना और प्रजा हमारे शौर्य पर संदेह करने लग जाएगी।"

दिवाकर मित्र ने केवल यह कहा, "शांतं पापं ! शांतं पापं ! !"

"हाँ भगवन् ! हम पाप को शान्त करने के लिए ही जाना चाहते हैं।"

"पर महामात्य ! एक पाप को शांत करने के लिए दूसरा पाप कैसे सहायक हो सकता है ?"

"भगवन्, जैसे एक खड्ग को काटने के लिए दूसरे खड्ग की आवश्यकता रहती है। जैसे सूई से काँटा निकाला जाता है, अथवा जैसे हथौड़े से पत्थर तोड़ा जाता है।"

"पर पाप क्या पत्थर है अथवा खड्ग है ? यह तो मन की एक अवस्था का नाम है। इस अवस्था का सुधार ही पाप को शांत करने का उपाय है।"

"हाँ भगवन् ! मन का सुधार मन की प्रेरणा से होता है। युद्ध तो केवल साधन है। यह मन के पास एक अस्त्र है। जब युक्तियाँ असफल हो जाती हैं, तो युद्ध सफल होते हैं।"

"यह मिथ्या युक्ति है। संसार के आरंभ से युद्ध को शांति लाने के लिए प्रयोग में लाया जाता रहा है। इससे शांति स्थापित नहीं हो सकी।"

"परंतु भगवन् ! युक्ति और प्रेरणा का प्रयोग भी युद्ध से कम नहीं हुआ। जब-जब भी संसार के श्रेष्ठ जनों ने युद्ध किया है, उससे पूर्व उन्होंने सदैव युक्ति और प्रेरणा का प्रयोग किया है। युद्ध तो उन उपायों के असफल होने पर ही प्रयोग में लाया जाता रहा है। भारत-युद्ध के समय भगवान् कृष्ण ने युद्ध होने से रोकने के लिए विपुल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयत्न किया था। पाँडवों के लिए आधे राज्य के स्थान पर पाँच गाँव लेने के लिए तैयार हो गए थे, परंतु दुष्ट प्रकृति के मनुष्य भला युक्तियों से अथवा प्रेरणा से कभी माने हैं? वे तो भले जनों के झुकने को उनकी दुर्बलता मान लेते हैं। ऐसी अवस्था में युद्ध अनिवार्य हो जाता है।"

"युद्ध अनिवार्य हो अथवा अनावश्यक, युद्ध युद्ध ही है। इसमें मानवों की हत्या होती ही है। नर-रक्तप्रवाह तो युद्ध के साथ संबंधित बात है। यह तो किसी अवस्था में भी क्षम्य नहीं हो सकता। संसार में शांति स्थापित करने का एक ही उपाय है और वह है युक्ति, धैर्य, सहनशीलता और क्षमा।"

"इसमें हमारा बौद्ध-मत से मतभेद है प्रभु! हम यह मानते हैं कि युद्ध से पहले समझौते अथवा वार्तालाप से शांति का सुझाव ढूँढ़ा जाए, परंतु हम प्रत्येक अवस्था में युद्ध को वर्जित नहीं मानते। ऐसी अवस्था में, जब अन्य सब उपाय विफल हो जाते हैं, तो युद्ध ही एक उपाय शेष रह जाता है, जो प्रयोग में लाया जाता है।"

इस समय पद्मराज ने बात को बदलने के लिए कहा, "परंतु भगवन्! यह राज्यश्री का आपके आश्रम के समीप एकाएक प्रकट हो जाना वास्तव में विस्मयकारक है। हमारा विचार था कि वह शशांक के बंदीगृह में बंदी थीं; परंतु जब उसने यह कहला भेजा कि वह आपके आश्रम में रहती हैं, तो हम यहाँ आए। वह आपके यहाँ नहीं थीं। जब हम निराश हो यहाँ से जाने लगे, तो महारानी जी के सती होने के लिए तैयार होने का समाचार मिल गया। हम वहाँ गए तो चिता तब तक प्रज्वलित नहीं हुई थी और महाराज हर्षवर्धन ने यत्न किया तो महारानी जी तुरंत चिता पर जलने का विचार छोड़ बैठीं और आपके संकेत-मात्र से भिक्षुणी बनने को तैयार हो गईं। क्या यह सब आश्चर्यजनक नहीं है?"

"सब भगवान् तथागत की कृपा का फल है। भगवान् ने सब संसार के उद्धार का उपाय बताया है। हम कौन हैं किसी पर न्याय करने वाले? हम स्वयं कौन हैं, जो दूसरों के छिद्रान्वेषण करने में लग जाएँ।"

"भगवन्!" पद्मराज ने कहा, "यहाँ आप तथा किसी अन्य व्यक्ति का प्रश्न नहीं। मैं तो समाज की बात कहता हूँ। समाज की रक्षा राज्य का कार्य है। समाज से मेरा अभिप्राय समाज में प्रचलित आचार-विचार से है। इस आचार-विचार के विरोधी तत्त्वों को समाज-हित में कर देने का यत्न राज्य-कार्य है। यह जानना कि किस व्यक्ति का व्यवहार कहाँ समाज-हित का विरोध करता है, छिद्रान्वेषण नहीं कहाता। यह राज्य का कर्तव्य है। अतः मेरा आपसे निवेदन है कि आप मेरे उक्त प्रश्नों पर प्रकाश डालने का कष्ट करें।"

"हम राज्य नहीं हैं। यह हमारा कर्तव्य नहीं है कि हम दूसरे के दोष और गुण वर्णन करते रहें।"

"पर भगवन्! मैं तो राज्य का एक अधिकारी हूँ। मेरा तो कर्तव्य है कि दोष को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ढूँढ़कर, उसको निकालकर बाहर करूँ। अतः मैं आपसे जो प्रश्न करूँ, वह आप बताने की कृपा करें।"

"मैं तुम्हारी प्रजा नहीं हूँ। अतः तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर देना अपना कर्तव्य नहीं मानता। न ही मैं तुम्हारा अधिकार मानता हूँ कि मुझसे कुछ पूछो।"

पद्मराज निरुत्तर हो गया। फिर भी ज्यों-ज्यों दिवाकर मित्र उसके संशयों का निराकरण करने से इंकार करता गया, उसका अनुमान दृढ़ होता गया कि राज्यश्री का एकाएक आश्रम के पास प्रकट हो जाना आश्रम के षड्यंत्र का परिणाम है। उसने अपने प्रयास के लिए एक अंतिम प्रयत्न किया। उसने कहा, "भगवन्! यह तो ठीक है कि मैं मालव राज्य में कुछ भी अधिकार नहीं रखता और आप अपने को मालव-प्रजा मानते हैं। फिर भी जहाँ तक सामाजिक प्रचलन का संबंध है, क्या भारत के सब राज्यों में एकता नहीं है? आप मेरे सम्मुख उत्तरदायी न हों, परंतु आप मालव राज्य के सामने तो उत्तरदायी हैं। आप क्या मालवा के देवगुप्त और गौड़-नरेश की दुष्टता पर पर्दा नहीं डाल रहे और उनको समाज की दृष्टि में उच्च और श्रेष्ठ, जो वे नहीं हैं, प्रकट होने में सहायक नहीं हो रहे?"

"तुम मालव-समाज का अंग भी नहीं हो। तुम यह सब-कुछ मुझसे पूछ भी कैसे सकते हो?"

"भगवन्! समाज तो मालव और गौड़ आदि भागों में बँटा हुआ नहीं है। भरत-खंड में एक समाज है और उस समाज का मैं भी एक अंग हूँ। हमारे समाज में पर-स्त्री-अपहरण भारी अपराध माना जाता है। आपने क्या इसमें सहायता नहीं दी?"

"देखो महामात्य! मैं यह इस कारण कह रहा हूँ कि जब तक मनुष्य जीवित रहता है, तब तक उससे हमारा राग, द्वेष, ईर्ष्या, घृणा आदि कुछ अर्थ रखते हैं; परंतु मरने के पश्चात् तो उसको बदनाम करना कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं होता।"

"कठिनाई यह है कि आप सदैव व्यक्ति को ही दृष्टि में रखते हैं। समाज का अस्तित्व आपकी दृष्टि में है ही नहीं। इसी कारण आपकी विचारधारा और हमारी विचारधारा भिन्न-भिन्न दिशाओं में जाती है। किसी मृत व्यक्ति के कार्यों का ज्ञान इस कारण नहीं होता कि उससे जो प्रशंसा अथवा घृणा उसके प्रति उत्पन्न होगी, वह उस मृत व्यक्ति को लाभ अथवा हानि पहुँचा सकती है। इसमें लाभ यह होता है कि समाज के सामूहिक आचार-विचार पर, उस गुण-दोषान्वेषण का प्रभाव पड़ता है। मानव अपनी की गई भूलों को जानकर उससे बचता है और पहले किए गए उचित कर्मों के ज्ञानों में, आगे उन्नत अवस्था तक पहुँचने का यत्न करता है।

"रावण ने सीता का हरण किया था और उसका राज्य, उसका वंश और संस्कृति सब नाश को प्राप्त हुईं। इस अपहरण की बात और उसके परिणामों की बात को स्मरण रखने से क्या हम पुनः वैसी भूल करने से बचते नहीं?"

इसी समय हर्षवर्धन आश्रम छोड़ने से पूर्व दिवाकर मित्र परिव्राट से विदाई लेने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ पहुँचा। पद्मराज और दिवाकर मित्र में बात आगे नहीं चल सकी। हर्ष के भीतर प्रवेश करते ही दिवाकर मित्र उठ खड़ा हुआ और हर्षवर्धन को विदा देते हुए उपदेश देने लगा, "कुमार! संसार में बहुत दुःख, क्लेश और पाप है। जितना कोई इसमें लिप्त रहेगा, उतना ही वह पतन की ओर जाएगा। किए हुए पापों को स्मरण रखने से मनुष्य उन्हीं पाप-कर्मों की ओर खिंचता है। पाप करने में आनंद आता है और किए हुए पाप-कर्मों को स्मरण करने से उस आनन्द का भी स्मरण होता है। अतः पाप से बचने का केवल मात्र एक ही उपाय है कि आगे की ओर देखो। पीछे घूम-घूमकर देखने से मनुष्य न केवल अपनी उन्नति में बाधक बनता है, प्रत्युत पुनः अंधकार के गर्त में गिरने की संभावना है।

"कुमार! पीछे की बिसार दो और आगे की सुध लो।"

इतना कह दिवाकर मित्र ने हर्षवर्धन को आशीर्वाद दिया। उसने कहा, "भगवान् तथागत तुम्हारी दृष्टि को निर्मल करें। तुम भगवान् के महान् कार्य को आगे ले जाने वाले सिद्ध हो। सत्य का प्रकाश तुम्हारे मन में हो और तुम संसार में अमित कीर्ति-लाभ करो।"

इस आशीर्वाद के पश्चात् हर्षवर्धन अपने साथियों के साथ आश्रम से निकल, मालव राज्य की सीमा पार करने को चल पड़ा। वह शीघ्रातिशीघ्र अपने राज्य की सीमा में प्रवेश कर जाना चाहता था।

६

वापस लौटते समय हर्षवर्धन ने कहा, "महामात्य! मैं आज राज्यश्री से वार्तालाप करता रहा हूँ। मैंने उससे पूछा था कि वह इतने काल तक कहाँ थी। किसी की बंदी थी अथवा स्वतंत्र?"

पद्मराज के कान खड़े हो गए। हर्षवर्धन ने आगे कहा, "राज्यश्री कहने लगी कि इसके जानने से कुछ लाभ नहीं होगा। उसने बताने से इंकार कर दिया है।"

पद्मराज को इस उत्तर से निराशा हुई। उसने कहा, "महाराज! मैंने भी इस विषय पर परिव्राट से बातचीत की थी। उन्होंने भी मेरे प्रश्नों का उत्तर देने से इंकार कर दिया। यद्यपि व्यक्तिगत रूप से मेरा अथवा आपका इस घटना से कोई संबंध नहीं रहा, परंतु भारत-समाज का तो ऐसी घटनाओं से घनिष्ठ सम्बन्ध है। समाज के भविष्य के लिए घटनाओं का सत्य-सत्य वर्णन और घटनाओं से उत्पन्न परिणामों का ज्ञान समाज की उन्नति में महान् साधन होते हैं। यही उद्देश्य इतिहास-पुराण इत्यादि लिखने का होता है। ये बौद्ध भदंत सत्य को छिपाकर समाज को इस उन्नति से वंचित करने का यत्न कर रहे हैं।"

"छोड़ो महामात्य! अब हमें विचार यह करना है कि इस नई परिस्थिति में हमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या करना चाहिए। हम अभी तक यह आशा लगाए हुए थे कि राज्यश्री को कन्नौज की राजगद्दी पर बिठाएँगे। वह अब नहीं हो सकेगा। अब क्या किया जाए?"

"महाराज! मेरा तो स्पष्ट मत है कि स्थानेश्वर और कन्नौज राज्यों को एक कर देना चाहिए और श्रीमान् को इस सम्मिलित राज्य की बागडोर अपने हाथ में ले लेनी चाहिए। गौड़ राज्य पर विजय प्राप्त कर पृथ्वी को शशांक के भार से मुक्त कर देना चाहिए। मालवा में इस समय अराजकता विद्यमान है। देवगुप्त का शिशु पुत्र राजा घोषित किया जा चुका है। वास्तव में देवगुप्त की पत्नी महारानी बन राज-कार्य चला रही है। वह राज्य करने के अयोग्य है और उसके प्रेमी मालवा पर राज्य करते है। वहाँ भी बौद्धों का प्रभाव बढ़ता जाता है, जो देश के हित में नहीं है। अतएव गौड़-विजय के पश्चात् मालवा पर आक्रमण कर अधिकार कर लेना चाहिए। इस प्रकार सिंधु नदी से लेकर पाटलिपुत्र तक और हिमाचल के दक्षिण पार्श्व से लेकर नर्मदा तक एक सुदृढ़ साम्राज्य बनाकर हूणों को गांधार से बाहर करने का यत्न करना चाहिए। इतना कुछ तो मैं अपनी आँखों के सामने स्पष्ट देख रहा हूँ। फिर जीवन शेष रहा तो भारतीय धर्म और संस्कृति को विदेशों तक ले जाने के लिए विचार किया जाएगा।"

हर्षवर्धन यद्यपि इस सुंदर चित्र से मन में उल्लास और संतोष अनुभव कर रहा था, परंतु परिव्राट दिवाकर के उपदेशों के प्रभाव के कारण कहने लगा, "इतना कुछ करने के लिए हमें कितनी सेना की आवश्यकता पड़ेगी?"

"इतने बड़े साम्राज्य को सुरक्षित रखने के लिए एक लक्ष सेना चाहिए और फिर सिंधु नदी के पार जाकर अपनी विजयपताका फहराने के लिए दो लक्ष सेना और चाहिए।"

"महामात्य! क्या आप समझते हैं कि इन सब युद्धों में, जो साम्राज्य को बनाने के लिए करने पड़ेंगे, कितने योद्धाओं के रक्त से भूमि सींचनी पड़ेगी?"

"कम-से-कम एक लक्ष सैनिकों की बलि देनी पड़ेगी।"

"क्या मुझको अपने साम्राज्य के विस्तार के लिए यह पाप करना होगा? मानव-जीवन की इस महान् हानि को, अपनी महिमा बढ़ाने के लिए, करना ठीक रहेगा?"

पद्मराज समझ गया कि हर्ष के मस्तिष्क पर रंग कहाँ का चढ़ा है। इस रंग को उतारने के लिए उसने अपनी युक्ति दृढ़ता से उपस्थित की। उसने कहा, "महाराज! यह किसने कहा है कि ये युद्ध स्थानेश्वर के महाराज हर्षवर्धन का साम्राज्य बढ़ाने के लिए किए जाएँ? जिस देश में युद्ध व्यक्तिगत लाभ के लिए किए जाते हैं, वह देश निश्चित रूप से रसातल को जाता है। यह भारत की रीति नहीं है। कम-से-कम हम आपको ऐसे प्रयास में सहायता नहीं दे सकते। मेरा निवेदन तो केवल यह है कि भारत की रक्षा के लिए, भारतीयता के फलने-फूलने के लिए और यहाँ पर चिरंतन सुख-शांति के लिए एक विशाल तथा सुदृढ़ शासन की आवश्यकता है। इस समय देश की परिस्थिति ऐसी बन रही है कि कन्नौज, स्थानेश्वर, गौड़ तथा मालवा तो एक सूत्र में बँधे बिना नहीं रह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकते। इसके पश्चात् मेरा आशय है कि दक्षिण पथ और पूर्व पथ के राज्यों से संधि और मैत्री कर अपनी शक्ति को और भी बढ़ाया जाए। भारत में इस प्रकार एक विशाल शक्ति की विद्यमानता में, किसी विदेशी राजा अथवा सुलतान का साहस नहीं हो सकेगा कि इस ओर आँख उठाकर देख सके।"

"यदि मैं आपकी इस योजना में सम्मिलित न हो सकूँ तो?"

"यह अति खेद का विषय होगा, महाराज! मेरा मार्ग स्पष्ट है कि मैं कन्नौज छोड़ किसी अन्य राज्य में चला जाऊँगा अथवा हरिद्वार में जाकर अपना शेष जीवन भगवद्-भजन में लगा दूँगा।"

"कन्नौज को हमारे विरुद्ध तो नहीं कर दोगे?"

"यह बात असंभव नहीं है। मुझको अपने धर्म और आचार-व्यवहार से प्रेम है। मैं अपनी प्रिय वस्तु की रक्षा के लिए क्या कुछ नहीं करूँगा, अभी कह नहीं सकता। मैं आपकी सेवा में इसलिए नहीं हूँ कि आप हर्षवर्धन हैं प्रत्युत इस कारण हूँ कि मैं आपमें अपने देश का कल्याण देखता हूँ। यदि आप देश और समाज के कल्याण का मार्ग छोड़कर, किसी ऐसे मार्ग का अवलंबन करेंगे, जो स्वार्थ पर केन्द्रित होगा तो मैं आपसे तटस्थ हो जाऊँगा। और यदि आपके स्वार्थ का मार्ग देश और समाज का विरोधी हो जाएगा तो निश्चय जानिए, महाराज कि पद्मराज आपका विरोध भी करेगा।"

हर्षवर्धन का मुख स्पष्ट कथन को सुन लाल हो गया। इस पर भी उसने कुछ न कहना ही उचित समझा। वह अभी तक यह समझ रहा था कि राजा राज्य करने के लिए परमात्मा की ओर से बनाए जाते हैं। आज उसको इस बात का भास हुआ कि एक सच्चा ब्राह्मण भी भगवान् की ही देन है और वह न तो निर्माण किया जा सकता है और न ही सेवक बनाकर रखा जा सकता है। हर्षवर्धन को दिवाकर मित्र ने बताया था कि युद्ध करने से एक राज्य बड़ा हो जाता है और दूसरा छोटा। इतनी छोटी-सी बात के लिए रक्तपात अत्यंत ही घृणित कार्य है। परंतु पद्मराज ने एक दूसरा दृष्टिकोण उपस्थित किया था। वह दृष्टिकोण था, समाज-हित का। उसने कहा था कि एक राजा भी समाज के एक विशेष कार्य को सम्पन्न करने के लिए ही होता है। समाज-हित के लिए युद्ध तो वैसे ही है, जैसे शरीर में रक्तचाप बढ़ जाने पर रक्तस्राव द्वारा मनुष्य को बचाया जा सकता है।

इससे हर्षवर्धन को अपनी स्थिति का ज्ञान हो गया। परंतु राज्यश्री का कन्नौज राज्य से लोप हो जाना एक रहस्य बना रहने के कारण, कामरूप को शशांक के विरुद्ध नहीं किया जा सका। उस समय मगध राज्य अति दुर्बल हो चुका था। मल्ल राज्य सर्वथा लोप हो चुका था और कलिंग राज्य सर्वथा बौद्ध था।

पद्मराज ने राज्यश्री के मिल जाने की सूचना प्रभाकरवर्मन को भेज दी और साथ ही अपना अनुमान लिख दिया कि राज्यश्री को शशांक ने बंदीगृह से हमें मिलने से कुछ काल पूर्व ही छोड़ा था। प्रभाकरवर्मन ने इस अनुमान को व्यर्थ समझा। अतएव शशांक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के विरुद्ध कन्नौज की सहायता के लिए युद्ध-क्षेत्र में नहीं उतरा।

सेनापति भंडी ने पहले तो युद्ध में शशांक को भारी हार दी, परंतु न तो शशांक मारा गया और न ही उसकी मुख्य सेना, जो गौड़ राजधानी की रक्षा के लिए नियुक्त की गई थी, पराजित की जा सकी। तीन बार उस मुख्य सेना से टक्कर हुई और तीनों बार स्थानेश्वर की सेना को पीछे हटना पड़ा। एक बात अवश्य हुई कि गौड़ राजधानी पुंड्र घेरे में ले ली गई। शशांक पुंड्र से भागकर हिमालय की तराई में चला गया और वहाँ वनों में अपनी सेना का पुनर्गठन करता रहा।

पुंड्र कई मास तक घेरे में रही। फिर भी न तो वहाँ की सेना ने साहस छोड़ा और न ही नागरिकों ने धैर्य छोड़ा। अभी घेरा पड़ा हुआ ही था कि शशांक की पुनर्गठित सेना बाहर से स्थानेश्वर की सेना पर छुटपुट आक्रमण करने लगी।

यह अवस्था चल रही थी कि दूसरी ओर से मालव सेना ने देवगुप्त की स्त्री के अधीन संगठित होकर कन्नौज पर आक्रमण कर दिया।

यह तो पद्मराज की नीति रही थी कि कन्नौज की अपनी सेना निर्माण की जाए। इस समय तक कन्नौज में तीस सहस्त्र सैनिक थे। उनको युद्ध-क्षेत्र में उतार दिया गया।

हर्षवर्धन में बौद्ध-प्रभाव न्यूनाधिक मात्रा में आ गया था। अवलोकितेश्वर महाप्रभु पुनः राजप्रासाद में आने लगे थे। वे सदैव दुःखमय संसार से ऊपर उठने के उपदेश दिया करते थे। सबसे बड़ा प्रयत्न महाप्रभु का यह रहा करता था कि हर्षवर्धन पद्मराज से पृथक् रहा करे।

ऐसे ही किसी एक अवसर पर हर्षवर्धन ने अवलोकितेश्वर से कहा, "भगवन्! मैं समझता हूँ कि कन्नौज पर एक भारी मुसीबत आ रही है। लगभग एक वर्ष हो चला है कि सेनापति भंडी गौड़ से निबटने में सफल नहीं हुआ। अब मालव सेना से जूझना पड़ेगा। मेरे ज्ञानवान होने में क्या लाभ, यदि दूसरे हम पर आक्रमण करने से रुकते नहीं?"

"हर्ष! क्या युद्ध के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है?"

"उपाय तो है महाराज! मैं कन्नौज छोड़कर स्थानेश्वर चला जाऊँ तो कन्नौज राज्य के दो टुकड़े हो जाएँगे। एक भाग मालव राज्य में सम्मिलित होगा और दूसरा गौड़ में। इस प्रकार युद्ध होने से रुक जाएगा।"

"जहाँ तक प्रजा का संबंध है, इसमें कोई अंतर नहीं पड़ता। मालव और कन्नौजियों में कोई अंतर नहीं है। प्रश्न तो केवल राजा का रह जाता है। क्या राजा मालव राज्य में रहने वाला होगा अथवा स्थानेश्वर में रहने वाला? केवल इस छोटी-सी बात के लिए रक्तपात क्यों?"

महाराज हर्षवर्धन इस सम्मोहिनी मीमांसा के प्रभाव में बहता जाता था और वह विचार कर रहा था कि युद्ध बंद करने का आदेश दे दे।

कन्नौज की सेना तो राज्य की सीमा पर शिविर डाल चुकी थी। पद्मराज इस सेना के साथ था। हर्षवर्धन अनिश्चित मन अपने कुछ सेवकों के साथ शिविर में जा पहुँचा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके पहुँचने से सैनिकों में नवीन उत्साह की तरंग दौड़ गई। सैनिक हर्षवर्धन की जय-जयकार करने लगे।

सैनिकों के जयकारों से तथा युद्ध की पूर्ण तैयारी देख हर्षवर्धन को भी उत्साह आ गया और महाप्रभु अवलोकितेश्वर बोधिसत्त्व का प्रभाव समाप्त हो गया। वह सेना का प्रबंध और युद्ध की विधि रुचिपूर्वक देखने लगा।

७

"महाराज ! युद्ध एक कला है। इसमें केवल अस्त्र-शस्त्रों का तथा शारीरिक बल का प्रयोग ही हो, ऐसी बात नहीं है। इन सबसे अधिक इसमें बुद्धि का प्रयोग होता है। बुद्धि और युद्ध-साधनों का समन्वय ही युद्ध में विजय का आधार हैं। भारत-युद्ध में ग्यारह अक्षौहिणी सेना की पराजय और सात अक्षौहिणी सेना की विजय कभी न हो सकती, यदि भगवान् कृष्ण की बुद्धि विजय-पक्ष के साथ न होती।"

यह वक्तव्य पद्मराज को देना पड़ा था, जब उसने हर्षवर्धन को यह बताया कि उसने कुछ गुप्तचर गड़रियों तथा चरवाहों आदि के रूप में मालव सेना को पथ से विचलित करने के लिए भेज दिए हैं। हर्षवर्धन ने इस पर विस्मय प्रकट किया। पद्मराज ने आगे कहा, "केवल यही नहीं महाराज! मैं कल स्वयं शत्रु सेना में था। मैंने वहाँ जाकर इन गुप्तचरों के लिए क्षेत्र बना दिया है।"

"महामात्य स्वयं गए थे ?"

"हाँ महाराज !"

"किस रूप में ?"

"एक नर्तकी के साथ मृदंग बजाने वाले के रूप में।"

"महामात्य यदि पकड़े जाते तो ?"

"महाराज ! यह भय उठाना कभी-कभी आवश्यक हो जाता है। मैं अपनी आँखों से शत्रु सेना का आचार-व्यवहार और उनकी शक्ति का अनुमान लगाना चाहता था।

"तीन दिन से हमारे गुप्तचरों का कोई संदेश नहीं आया था। मैंने 'पटु-पत्रिका' को साथ लिया और स्वयं दक्षिण-निवासी मृदंग बजाने वाले का रूप धारण कर चल पड़ा। अश्वों से हम बीस कोस का चक्कर काटकर सेना के पीछे जा पहुँचे। अश्वों को पेड़ों के झुरमुट में बाँधकर हम शिविर में जा पहुँचे। मैंने अपनी मृदंग खड़का दी और पटु-पत्रिका ने पायल की झनकार की और हाथ में एकतारा लेकर स्वर भर दिया। श्रीमान् उसके कोमल और लोचभरे स्वरों से परिचित ही हैं। बस, फिर क्या था ! देखते ही देखते वहाँ अखाड़ा लग गया। गाना हुआ, नृत्य हुआ, हँसी-ठट्ठा हुआ और फिर हमको भोजन दिया गया।

"भोजन करते समय हमने अपना परिचय इस प्रकार दिया कि हम दक्षिण मदुरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के रहने वाले हैं। गाने-बजाने से निर्वाह करते हैं और देशाटन करते फिरते हैं। जहाँ कहीं भी कोई संगीतज्ञ मिल जाए, उससे गाना सीखते हैं। कई दिन सेना के वहाँ पड़े रहने से उत्साहित हो कुछ उपार्जन के लोभ में चले आए हैं।

"इस प्रकार बातचीत होती रही। हम अपने लाभ की बात ध्यानपूर्वक सुनते रहे। पटु-पत्रिका के गाने के विषय में प्रशंसा देवगुप्त की पत्नी मुक्तिका के कान में भी पहुँची। उसने हमें बुलवा लिया और हमसे बहुत प्रश्न किए। जब मैंने बताया कि मैं इस सीमावर्ती प्रदेश में कई वर्षों तक घूमता रहा हूँ, तो हमसे कन्नौज जाने का सुगम मार्ग पूछा गया। यहाँ का मानचित्र खींचकर मैंने स्थानों का निर्देश भी कर दिया। साथ ही यह बताया कि सेना उधर से आए तो कन्नौज के पीछे सुगमता से पहुँच सकेगी।

"इसके पश्चात् हमें विदा कर परस्पर उनकी गोष्ठी होती रही। मुझको वहाँ के सैनिकों से पता चला कि कन्नौज सेना द्वारा, मार्ग के किनारे के पहाड़ों की चोटियों पर अधिकार की बात उन्हें पता चल गई है। वे समझते हैं कि यदि सीधे रास्ते से उन्होंने आक्रमण किया तो उनकी आधी सेना मार्ग में ही समाप्त कर दी जाएगी।

"इससे मेरा अनुमान है कि वे मेरी सम्मति पर कार्य करने का विचार कर रहे हैं। हम अभी शिविर में घूम ही रहे थे और अधिक सूचना प्राप्त करने का यत्न कर रहे थे कि महारानी मुक्तिका का एक सेवक हमको मिला और हमसे बात कर उस मार्ग के विषय में अधिक जानकारी प्राप्त करने का यत्न करने लगा। मैंने अपने बताए मार्ग की इतनी स्पष्ट व्याख्या कर दी कि उसको हमारी बातों पर विश्वास हो गया।

"मैंने, अब यह अनुमान लगा कि कदाचित् वे मेरे वक्तव्य के विषय में अधिक जानकारी करना चाहेंगे, अपने अन्य गुप्तचर शत्रु सेना के शिविर की ओर भेज दिए हैं। मैंने कुछ गुप्तचर अपनी उस सीमा की ओर भी भेज दिए हैं। मुझे पता चला है कि मालव सेना के दो घुड़सवार उस ओर से मार्ग का निश्चय करने आए हैं। हमारे गुप्तचर उनको मार्ग दिखा रहे हैं।"

"महामात्य! यह तो वंचना हो जाएगी।"

"नहीं महाराज! यह उचित ही होगा। परंतु मेरी योजना की श्रेष्ठता का तो बाद में पता चलेगा। इस सबमें मेरा उद्देश्य यह है कि हम कम-से-कम हानि उठाकर शत्रु को पराजित कर सकें। उद्देश्य-पूर्ति एक श्रेष्ठ कार्य है।"

हर्षवर्धन युद्ध का यह प्रकार देख अति विक्षुब्ध मन हो गया। वह समझता था कि यह धर्म-युद्ध नहीं है। फिर भी वह अनुभव करता था कि इस समय महामात्य का, जो सेनाध्यक्ष भी है, विरोध करना संभव नहीं है।

मध्याह्न को सीमा-पार से सूचना आई कि मालव-अश्वारोही सीमा पार कर आए हैं। तीसरे प्रहर सूचना मिली कि वे सेना के पीछे जा पहुँचे हैं और पश्चात् रात को सूचना मिली कि वे कन्नौज सेना पर पीछे से आक्रमण करने का स्थान निश्चित कर लौट गए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगले दिन प्रातःकाल सूचना मिली कि मालव-शिविर में हलचल है। उसी दिन मध्याह्न को यह सूचना मिली कि लगभग आधी सेना नवीन मार्ग पर चल पड़ी है।

सेना तो उस वेग से नहीं चल सकती थी, जिससे परीक्षण के लिए अश्वारोही गए थे। सेना को निर्धारित स्थान पर सीमा पार करने में दो दिन लग गए और उसकी गतिविधि का पता लगता रहा। उस सेना के सीमा पार करने से पूर्व ही कन्नौज सेना की एक शक्तिशाली टुकड़ी को सीमा पर एक पहाड़ी मार्ग पर बैठा दिया गया। जब मालव सेना वहाँ से निकली तो उस सेना की टुकड़ी ने पीछे से मार्ग रोक लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि मालव सेना का, अपनी सेना के मुख्य भाग से संबंध टूट गया। जब मालव सेना का यह भाग कन्नौज राज्य में कुछ और आगे बढ़ गया तो कन्नौज सेना के एक भाग के घेरे में आ गया और कुछ ही घड़ियों में सहस्रों को मृत्यु के घाट उतार दिया गया, अथवा उन्हें बंदी बना लिया गया। एक भी व्यक्ति वहाँ से बचकर अपनी मुख्य सेना में यह समाचार ले जाने वाला नहीं छोड़ा गया।

दूसरी ओर पद्मराज ने एक दूत द्वारा महारानी मुक्तिका को यह संदेश भेजा कि कन्नौज राज्य मालवा के साथ संधि करने के लिए तैयार है; महारानी मुक्तिका इस अर्थ महाराज हर्ष से सीमा पर आकर भेंट करें; महारानी यदि चाहें तो अपने साथ अंगरक्षक ला सकती हैं, परंतु यह भेंट अगले दिन प्रातःकाल तक हो जानी चाहिए, अन्यथा कन्नौज की सेना आगे चलकर मालवा की सेना पर आक्रमण कर देगी।

दूत यह सूचना लेकर वापस आया कि महारानी अगले दिन वार्तालाप के लिए पहुँच रही हैं।

परंतु महारानी मुक्तिका का अनुमान था कि उसी रात्रि तक सीमा पार कर चुकी सेना के पीछे से आक्रमण की सूचना आ जाएगी। इस कारण उसने अपनी सेना को तैयार होकर सीमा पर पहुँचने की आज्ञा दे दी।

अगले दिन प्रातःकाल यह सेना सीमा के समीप पहुँच गई। अभी तक सेना के दूसरे भाग से कोई सूचना नहीं आई थी। इससे महारानी चिंतित हो उठीं।

सामने सीमा पर पहाड़ियों पर कन्नौज की सेना युद्ध के लिए खड़ी दिखाई दे रही थी। इसके साथ ही इस ओर की एक पहाड़ी पर चढ़कर देखा गया तो पता चला कि दूर से एक और विशाल सेना कन्नौज की सेना की सहायता के लिए आ रही है।

महारानी इससे बहुत घबराईं। उन्होंने अपने सेनानायकों की गोष्ठी बुलाई और परिस्थिति पर विचार किया गया।

कुछ लोगों का विचार था कि आक्रमण कर दिया जाए। कहीं यह न हो कि दूसरी सेना, जो कन्नौज की सेना की सहायता के लिए आ रही है, आकर मालव सेना पर ही आक्रमण कर दे। परंतु अधिकांश सेनानायकों का यह कहना था कि संधि की वार्ता आरंभ कर दी जाए, जिससे उनको और समय मिल सकेगा। सेना के दूसरे भाग, जो पीछे से आक्रमण करने के लिए गया हुआ है, की सूचना तब तक आ जाएगी और इससे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कन्नौज की सेना में भगदड़ मच जाएगी। पश्चात् आक्रमण का समय होगा। यह सम्मति मान ली गई और एक दूत को श्वेत पताका देकर भेजा गया, जिससे महाराज हर्षवर्धन से वार्तालाप के लिए समय और स्थान निश्चित किया जाए।

महाराज हर्षवर्धन ने यह सूचना दी कि वे और महारानी मुक्तिका दस-दस सैनिकों के साथ एक खुले स्थान पर पहुँच जाएँ और वार्तालाप करें। मुक्तिका ने सूचना भेज दी कि वह स्वयं नहीं आ सकती। कोई अन्य राज्य का अधिकारी आ सकता है। पद्मराज ने महाराज हर्षवर्धन से कहा, "महाराज! संधि की तो कुछ भी आशा नहीं है। यह तो समय-लाभ करने के लिए वार्तालाप हो रहा है।"

"परंतु महामात्य!" हर्षवर्धन ने कहा, "हम चाहते हैं कि प्रयत्न किया जाए और वास्तव में संधि हो जाए, जिससे व्यर्थ का रक्तपात होता-होता रुक जाए।"

"परंतु महाराज! हमने तो आक्रमण किया नहीं। अभी तक हमारी सेना ने सीमोल्लंघन भी नहीं किया। मालव सेना ने सीमा पार कर हमारी सेना के पीठ पीछे पहुँचने का यत्न किया है। उनका यह प्रयत्न सफल हुआ है अथवा नहीं, विचारणीय बात नहीं। विचारणीय बात तो यह है कि मालव सेना दूसरी बार हमारी सीमा में प्रवेश कर चुकी है। उसका आशय हमें हानि पहुँचाने का ही है।"

"तो महामात्य क्या चाहते हैं?"

"मेरी योजनानुसार कल मध्याह्न तक हमारी सेना मालव सेना के पीछे पहुँचकर आक्रमण कर दे। उस समय हम इस ओर से आक्रमण करेंगे। यदि उससे पूर्व कोई संधि हो जाती है अथवा मालव सेना अपनी योजना विफल हो जाने की सूचना पाकर वापस लौट जाती है, तो यह युद्ध नहीं होगा।"

"तो महामात्य यत्न करें। महारानी मुक्तिका को सूचना भेज दी जाए कि दोनों राज्यों के महामात्य मिल लें और वार्तालाप कर लें।"

पद्मराज ने इस पर सहमति प्रकट कर दूत के हाथ संदेश भेजा। साथ ही एक पत्र भी लिख दिया। उसने लिखा :

"मालव सेना की पराजय निश्चित है।

"मालव सेना तथा महाराज देवगुप्त ने पिछले वर्ष भी अकारण आक्रमण किया था।

"इस बार भी मालव सेना का आक्रमण अकारण है।

"फिर भी महाराज हर्षवर्धन की इच्छा है कि रक्तपात न हो। इस अर्थ में उनका निवेदन है कि स्वर्गवासी महाराज देवगुप्त की भगिनी मृणालिनी से महाराज हर्षवर्धन का विवाह कर दिया जाए, जिससे दोनों परिवारों और राज्यों के संबंध मधुर और सुदृढ़ बन सकें; परंतु विवाह होने से पूर्व सेना लौटा ली जाए।

"विवाह कन्नौज में होगा। कन्नौज में राजकुमारी को लाने के लिए पाँच सौ मालव सैनिक साथ आ सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अन्य बातों के निर्णय के लिए और लिखा-पढ़ी के लिए दोनों राज्यों के महामात्य एक घड़ी के भीतर दोनों सेनाओं के मध्य में, खुले स्थान पर मिल सकते हैं।"

इसके उत्तर में महारानी मुक्तिका ने लिखा कि राजकुमारी मृणालिनी के विवाह का निश्चय पहले ही उज्जयिनी के एक प्रसिद्ध सेठ के साथ हो चुका है। इस कारण उसका प्रश्न ही नहीं उठता। हाँ, दोनों महामात्य मिल लें, महारानी मुक्तिका अब अधिक विलंब नहीं सह सकतीं। यदि सायंकाल तक कुछ निर्णय न हुआ तो वे किसी भी समय आक्रमण की आज्ञा दे देंगी।

समय निश्चित कर लिया गया और दोनों राज्यों के महामात्य दस-दस सैनिकों के संरक्षण में निश्चित स्थान पर जा पहुँचे। पद्मराज चाहता तो था कि उसे कल मध्याह्न तक का समय मिल जाए, जिससे तब तक कन्नौज की सेना मालव सेना के ठीक पीछे से आक्रमण कर देगी; परंतु वह जानता था कि ऐसा होना कठिन है। ज्यों ही उसकी सेना सीमा-पार मालव सेना के पीछे जाने का यत्न करेगी, महारानी मुक्तिका को इसका पता चल जाएगा और संभव है युद्ध उसी समय आरंभ हो जाए। फिर भी वह मालव-महामात्य से मिलने जा पहुँचा। दोनों महामात्य मिले और अभी वार्तालाप एक घड़ी-भर कठिनाई से चला था कि एक मालव सैनिक हाथ में सफेद पताका लिए अपने महामात्य को एक पत्र देने आया। पद्मराज ने देखा कि मालव-महामात्य का मुख पीला पड़ गया है। वह समझ गया कि कन्नौज की सेना के सीमा-प्रवेश का समाचार उसे मिल गया है। मालव-महामात्य ने कहा, "मुझे महारानी का पत्र मिला है कि परिस्थिति परिवर्तित हो गई है और इस नई परिस्थिति में मुझे महारानी से राय करनी है। इस कारण हम अभी बात स्थगित करते हैं।"

पद्मराज ने कहा, "श्रीमान् ! इस नई परिस्थिति का ज्ञान मैं आपको करा सकता हूँ। देखिए, मालव सेना ने सीमोल्लंघन यहाँ से बीस कोस पश्चिम की ओर जाकर किया था। मालव सेना का वह भाग हमारे राज्य में दस कोस तक प्रवेश कर गया और वहाँ वह पूर्णतया नाश को प्राप्त हुआ है। जहाँ तक मेरी सूचना है, उस सेना में तीस सहस्र सैनिक थे और उनमें से एक भी बचकर वापस नहीं पहुँचा।

"अब हमारी सेना उसी मार्ग से, जिससे मालव सेना ने प्रवेश किया था, मालव राज्य में जा पहुँची है। यह सेना बहुत शीघ्र ही महारानी का उज्जयिनी को लौटने का मार्ग रोक लेगी।

"यह है नई परिस्थिति। इस कारण मैं इस रक्तपात तथा महारानी मुक्तिका का वैसा अपमान, जैसा स्वर्गवासी महाराज देवगुप्त ने महारानी राज्यश्री का किया था, न होने देने के लिए यह प्रस्ताव आपके सम्मुख रखता हूँ कि महारानी सायंकाल से पूर्व अपनी सेना को वापस लौटने का आदेश दे दें। हम महारानी मुक्तिका का मालव राज्य पर अधिकार स्थिर रहने देंगे। साथ ही महाराज का विवाह राजकुमारी मृणालिनी से ही होगा। इसके अतिरिक्त परस्पर-मैत्री की संधि पर आज सायं से पूर्व हस्ताक्षर हो जाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिए।

"अब आप इस संदेश के साथ जा सकते हैं। यदि आज सायंकाल तक आपने इन बातों के लिए स्वीकृति न भेजी तो कल जो कुछ होगा, उसका उत्तरदायित्व हम पर नहीं होगा।"

८

सायंकाल के पूर्व ही संधि हो गई। मृणालिनी और महाराज हर्षवर्धन के विवाह के विषय में महारानी मुक्तिका ने यह संदेश दिया कि उनका दूत कन्नौज में आकर सब-कुछ निर्णय तब करेगा, जब कन्नौज की सेना मालवा से निकल जाएगी। साथ ही महारानी यह आशा करती हैं कि मालवा पर आक्रमण नहीं किया जाएगा।

पद्मराज इससे अत्यंत संतुष्ट था। हर्षवर्धन को भी इससे बहुत प्रसन्नता हुई। उन्होंने मालव-सीमा पार कर चुकी सेना के भाग को विशेष दूत के हाथ यह सूचना भेज दी कि वापस लौटती हुई मालव सेना पर आक्रमण न किया जाए।

हर्षवर्धन ने इस अवसर पर महारानी मुक्तिका को एक पत्र लिखा। इसमें उसने लिखा :

"हम महारानी के वापस लौट जाने के निर्णय को सुन अत्यंत प्रसन्न हुए हैं। यह इस कारण नहीं कि इससे एक राज्य की विजय अथवा दूसरे राज्य की पराजय प्रतीत होती है, प्रत्युत इस कारण कि इससे सहस्रों सैनिकों की हत्या होने से बच गई है; उनकी माँ-बहनों तथा पत्नियों के प्रलाप से दोनों देशों की रक्षा हुई है।

"यह आशा की जाती है कि महारानी जी की सेना बिना किसी प्रकार से अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग किए वापस चली जाएगी। हमने अपनी सेना को यह आज्ञा भेज दी है कि शान्तिपूर्वक लौटती हुई मालव सेना पर हथियार प्रयोग न किए जाएँ।

"वर्तमान परिस्थिति में कन्नौज की सेना मालव सेना का सर्वनाश कर सकती थी, परंतु महारानी जी को यह सुविधा देने से हमारा आशय केवल यह सिद्ध करना है कि हमारे मन में मालवा के साथ मित्रता की संधि करने का विचार है। हम मालवों के मित्र बने रहने में, विजय प्राप्त करने से अपना गौरव अधिक समझते हैं।"

इस प्रकार मालव सेना अपने तीस सहस्र के लगभग सैनिकों की आहुति देकर शांतिपूर्वक वापस लौट गई। बौद्ध संप्रदाय के लोगों ने इसे अपनी शांतिप्रिय नीति का परिणाम समझा और पद्मराज ने इसको शक्ति और युक्ति के उचित समन्वय का परिणाम माना।

महारानी मुक्तिका इस प्रकार विवशतापूर्वक वापस लौटने के लिए बाध्य होने से अत्यंत दुःख एवं लज्जा अनुभव करने लगी थीं। जब तक तो उनकी सेना कन्नौज की सेना के मध्य में से निकलती रही, वह सेना के साथ रहीं, तदनंतर वह अपनी सेना को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने भाई, सेनानायक महाबली के अधीन कर, स्वयं अपने अंगरक्षकों के साथ तीव्रगामी अश्व पर सवार हो उज्जयिनी जा पहुँचीं।

वहाँ पहुँच सबसे प्रथम उन्होंने मंत्रिमंडल की बैठक बुलाई और संपूर्ण परिस्थिति का वर्णन कर दिया। पश्चात् उन्होंने अपने मंत्रियों से उस परिस्थिति पर सम्मति माँगी।

मालवा का अर्थमंत्री धनराज था। प्रायः उसकी सम्मति की अवहेलना इस कारण की जाती थी कि वह वृद्ध हो चुका था। उसका अर्थमंत्री बना रहना, उसके एक श्रेष्ठ अर्थ-संचालक होने के कारण था। उसने अवसर देखकर कहा, "महारानी जी! आपको ध्यान होगा कि मैंने युद्ध से मना किया था। यह ठीक है कि कन्नौज की दृष्टि गौड़-विजय के पश्चात् मालवा पर पड़ती, परंतु इस समस्या का सुझाव युद्ध नहीं था, प्रत्युत परस्पर की संधि थी। संधि सेना द्वारा नहीं, राजदूत द्वारा की जाती है।

"इस समय कन्नौज एवं स्थानेश्वर राजपरिवार दुःखमयी समस्याओं में उलझा हुआ है। हमें चाहिए था कि हम उनसे सहानुभूति रखते; परंतु हमने आक्रमण कर दिया। फिर भी यह तो उनकी उदारता है कि उन्होंने हमें संधि के लिए आह्वान किया है और हमारी सेना की कम-से-कम हानि कर हमसे संधि कर ली है।

"कन्नौज की दुर्बलता वहाँ पर बौद्ध-प्रभाव के कारण थी। इसी कारण महाराज देवगुप्त सर्वथा विजयी होकर वहाँ पहुँचे थे। परंतु अब तो कन्नौज और स्थानेश्वर दोनों राज्यों पर बौद्ध-प्रभाव कम हो गया प्रतीत होता है। स्थानेश्वर की सेना गौड़ राज्य से युद्ध कर रही है और कन्नौज के सैनिकों तथा नागरिकों में भी नवचेतना उत्पन्न हो गई है। वहाँ का महामात्य पद्मराज भी अत्यंत नीतिकुशल और योग्य है। मैं समझता हूँ कि इस अवसर का लाभ उठाकर हमें उनसे स्थायी मैत्री की संधि कर लेनी चाहिए। जिस प्रकार, इस युद्ध के समय, उन्होंने हमको कम-से-कम संभव हानि पहुँचाई है, उसी प्रकार संधि के पश्चात्, हमें विश्वास रखना चाहिए कि वे हम पर आक्रमण नहीं करेंगे। यदि हमने इस अवसर का लाभ नहीं उठाया, तो संभव है कि कन्नौज और स्थानेश्वर में वातावरण हमारे प्रतिकूल बना रहे और समय पर पुनः युद्ध की भेरी बज उठे और प्रजा की शांति भंग हो।"

महारानी का प्रश्न था, "परंतु यदि गौड़-विजय के पश्चात् कन्नौज की सेना ने स्थानेश्वर की सेना के साथ मिलकर हमारे ऊपर आक्रमण किया, तो फिर हम कुछ नहीं कर सकेंगे। इसी कारण तो यह अवसर देख हमने युद्ध किया था। जो व्यवहार पिछले वर्षों में हमारा उनके साथ रहा है, उसके कारण यह असंभव है कि हर्षवर्धन हमसे सदैव मैत्री बनाए रखे। वह अवश्य प्रतिकार लेगा। यदि वह बौद्ध होता अथवा उसका महामात्य बौद्ध होता, तो यह संभव था कि वह शांति की नीति बनाए रखता। परंतु महामात्य पद्मराज ब्राह्मण है और आक्रमण तथा विजय में विश्वास रखता है। इस प्रकार हम कैसे शांत रह सकते हैं?"

"महारानी जी का यह भ्रम है कि ब्राह्मण सदैव युद्ध और विजय में विश्वास रखते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। युद्ध तो केवल आवश्यकता पड़ने पर ही किया जाता है, अन्यथा प्रत्येक ब्राह्मण यह चाहेगा कि समस्या का सुझाव शांतिपूर्वक ही किया जाए। हाँ, बौद्धों के समान वे यह नहीं मानते कि कठिनाई उपस्थित होने पर भी अहिंसा और शांति की नीति पर स्थिर रहना चाहिए। मैं समझता हूँ कि महामात्य पद्मराज एक बहुत ही योग्य व्यक्ति है और वह शक्ति और शांति का समन्वय एवं संतुलन करना भली-भाँति जानता है।"

"तो अमात्य धनराज हमें क्या सम्मति देते हैं?"

"मेरी सम्मति स्पष्ट है। महाराज हर्षवर्धन को उनकी उदार नीति पर बधाई दी जाए और उनसे स्थायी संधि की चर्चा चलाई जाए। साथ ही राजकुमारी मृणालिनी का विवाह उनसे रचा दिया जाए।"

"इस विवाह से क्या प्रयोजन है?"

"यही कि भविष्य में दोनों राज्यों का संबंध मधुर और दृढ़ रहे। यह दोनों ही राज्यों के हित में होगा। हम उत्तर की ओर से निश्चिंत हो जाएँगे, पश्चात् सौराष्ट्र से संबंध बनाने का यत्न कर सकेंगे।"

"हम राज्य-विस्तार नहीं चाहते।"

"महारानी जी का यह विचार श्रेष्ठ है। परंतु मेरा आशय मैत्री से है, राज्य-विस्तार तथा आक्रमणादि से नहीं। मैत्री-संबंध से राज्य में सुख-सुविधा बढ़ती है। राज्य धन-धान्य से सम्पन्न हो जाता है। परंतु यह एक तथ्य है, जिसका हमें ध्यान रखना होगा कि दुर्बल से मैत्री कोई नहीं करता। उच्च स्वर से घोषित सर्वश्रेष्ठ सिद्धांत भी बिना शक्ति का आधार पाए मान्य नहीं होते। हमें अपनी शक्ति सदैव बढ़ाते रहना चाहिए।"

"उस शक्ति के बढ़ाने की क्या आवश्यकता है, जब उसका कोई उपयोग ही नहीं? जब सेना बढ़ाई जाएगी, नए-नए शस्त्र निर्माण किए जाएँगे, तो उनका प्रयोग भी तो होना चाहिए।"

"यही मानव की एक भूल है। वह हाथ में शक्ति आते ही भूल जाता है कि शक्ति का प्रयोग दुष्टों के नाश के लिए है, साधुओं के नाश के लिए नहीं। खड्गों का निर्माण किया जाता है, इस कारण उसका उपयोग करना ही चाहिए, चाहे अपने अहित में ही क्यों न हो, यह तो उचित नहीं। और फिर यह तो और भी भारी मूर्खता होगी, यदि खड्गों का निर्माण ही बंद कर दिया जाए, क्योंकि उससे मूर्ख लोग अपना ही अहित कर बैठते हैं।"

९

मालव सेना की बिना युद्ध के पराजय होने से पद्मराज की महिमा कन्नौज तथा स्थानेश्वर, दोनों राज्यों में बढ़ गई। महाराज हर्षवर्धन भी उसे बहुत मानने लगे। प्रत्येक कार्य में उसकी सम्मति अनिवार्य होने लगी। पद्मराज ने एक दिन यह सम्मति दी कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कन्नौज तथा स्थानेश्वर दोनों राज्यों को मिला दिया जाए और महाराज हर्षवर्धन का राज्याभिषेक कर दिया जाए। इसमें दो बाधाएँ थीं। एक तो गौड़ों से अभी तक युद्ध चल रहा था और दूसरे बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर इसका विरोध करने लगे थे।

एक दिन हर्षवर्धन ने पद्मराज को बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर की उपस्थिति में ही बुलवा लिया और राज्याभिषेक की चर्चा चला दी। हर्षवर्धन ने कहा, "महामात्य! हम चाहते हैं कि हमारे पूर्ण राज्य में शांति बनी रहे। इसके लिए हमें क्या करना चाहिए?"

"महाराज की इच्छा सराहनीय है। परंतु महाराज! प्रत्येक इच्छापूर्ति के लिए उपाय करना पड़ता है और वह भी उचित ढंग से। अतः इस शांति के लिए उचित उपाय प्रयोग में लाने चाहिए।"

"यही तो विचार का विषय है कि उचित उपाय कौन-से हैं?"

"महाराज! सेनापति भंडी को गौड़ पर आक्रमण किए दो वर्ष के लगभग हो चुके हैं। यह ठीक है कि पुंड्र हमारी सेना के अधिकार में हो चुका है, परंतु यह विजय का लक्षण नहीं है। हमारी विजय तो तब पूर्ण होगी, जब शशांक बंदी बना लिया जाएगा, गौड़ को हम अपने साथ मिला लेंगे और गौड़ राज्य के नागरिक हमारे अनुकूल बन जाएँगे। तभी यह विजय पूर्ण होगी। सेनापति इनमें से एक भी बात पूर्ण नहीं कर सके।"

"भगवान् अवलोकितेश्वर का एक उपाय है। हम चाहते हैं कि उस पर भी विचार किया जाए और संभव हो तो उसे प्रयोग में लाया जाए।"

"हाँ महाप्रभु! आज्ञा करिए! यह सेवक सदैव महापुरुषों के प्रवचन सुनने को तत्पर रहता है।"

अवलोकितेश्वर जी ने कहा, "हमारे पास सूचना आई है कि शशांक कन्नौज से मैत्री चाहता है।"

"सूचना कौन लाया है महाराज!"

"हिमाचल में स्थित पावकी विहार के महाप्रभु यह सूचना लाए हैं। वे कल ही यहाँ पहुँचे हैं और शशांक से संधि का प्रस्ताव लेकर आए हैं।"

"तो महाराज! उन महाप्रभु जी से भेंट करनी चाहिए, जिससे वास्तविक परिस्थिति का ज्ञान हो सके।"

"महामात्य जो कुछ उनसे पूछना चाहते हैं, मुझसे पूछ सकते हैं।"

"यद्यपि दूसरे राज्य के विषय में ज्ञान-प्राप्ति की यह विधि उचित नहीं, फिर भी मैं यह पूछना चाहूँगा कि क्या महाराज शशांक पावकी विहार की भिक्षुणियों की संगत से ऊब गए हैं?"

अवलोकितेश्वर का मुख क्रोध से लाल हो गया। पद्मराज ने कहा, "भगवन्! किसी तथ्य का उल्लेख, जब वह तथ्य सप्रमाण हो, तो क्रोध का विषय नहीं होना चाहिए। प्रत्युत यह तो मनन और समझने का विषय है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जो कुछ महामात्य कह रहे हैं, क्या उनके पास उसका प्रमाण है ?"

"यद्यपि इन प्रमाणों को निर्भ्रांत कहना कठिन है। कारण यह है कि इनकी जाँच करना हमारी शक्ति के बाहर की बात है।. वह विहार गौड़ राज्य के उस भाग में स्थित है, जहाँ अभी हमारा अधिकार नहीं। फिर भी जब भिन्न-भिन्न स्रोतों से एक ही समाचार का पता चले तो उसको सत्य मानना ही पड़ता है। यदि महाप्रभु चाहें तो वे प्रमाण अभी एक घड़ी के भीतर उपस्थित किए जा सकते हैं।"

"हम इस प्रकार की बातों में विश्वास नहीं करते। फिर भी जो विषय हम आज विचार कर रहे हैं, वह महाराज शशांक अथवा किसी भिक्षुणी के पथच्युत हो जाने से संबंध नहीं रखता।"

"यह संबंध तो बाद में मैं वर्णन करूँगा। इस समय बोधिसत्त्व महाराज क्या यह बताएँगे कि इस संधि का प्रस्ताव पावकी चैत्य के महाप्रभु ने किया है अथवा शशांक ने स्वयं ?"

"इससे महामात्य क्या सिद्ध करना चाहते हैं ?"

"बिना दोनों ओर से संधि के लिए इच्छा होने के मैत्री संभव नहीं हो सकती। मैं यह जानना चाहता था कि महाराज शशांक को चैत्य से, जहाँ आजकल वे डेरा डाले हुए हैं, निकालने के लिए महाप्रभु ने यह संधि-चर्चा चलाई है अथवा महाराज स्वयं उस विहार से निकलने के लिए संधि करना चाहते हैं ?

"देखिए भगवन्! मैत्री करने से पूर्व यह जानने की आवश्यकता रहती है कि विपक्ष जो आज तक प्रत्येक प्रकार से हमारा विरोध करता रहा है, अब क्यों मैत्री के लिए उत्सुक है ?"

"मैं तो यह समझता हूँ कि वह शान्ति और सन्धि के लिए इच्छुक अवश्य है। प्रयोजन भले ही कुछ हो, पर उद्देश्य तो ठीक है। इस कारण सन्धि की चर्चा अवश्य होनी चाहिए।"

"महाराज! आपकी विद्वत्ता के विषय में मुझे कभी भी संदेह नहीं रहा, यद्यपि अन्य बौद्ध विद्वानों के विषय में मेरे विचार कुछ अन्य हैं। परंतु आज आपने एक ऐसी बात कह दी है, जो विद्वानों को शोभा नहीं देती। क्या मैं जान सकता हूँ कि प्रयोजन और उद्देश्य में कुछ अंतर होता है ? प्रयोजन ही क्या वास्तविक उद्देश्य नहीं होते ?

"देखिए महाराज! शांति कभी भी उद्देश्य नहीं हो सकती। उद्देश्य है उन्नति। राज्य में शांति का उद्देश्य है प्रजा की उन्नति। जो शांति प्रजा की उन्नति में सहायक नहीं हो सकती, वह शांति वांछनीय नहीं है। यदि महाराज शशांक से संधि कन्नौज की प्रजा की उन्नति में साधन हो, तब तो संधि होनी चाहिए और यदि संधि शांति के स्थान पर भविष्य में भय, चिंता, द्विविधा इत्यादि बातें उत्पन्न करे, तो ऐसी शांति का मैं समर्थक नहीं हूँ।

"यह जानने के लिए कि पावकी विहार के महाप्रभु द्वारा आयोजित संधि शांति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्पन्न कर सकेगी, यह आवश्यक है कि संधि-चर्चा की पृष्ठभूमि जानी जाए। उसके लिए महाप्रभु से भेंट करनी आवश्यक है।"

हर्षवर्धन पद्मराज की बुद्धि की तीव्रता और राजनीतिक ज्ञान पर मुग्ध था। फिर भी वह यह चाहता था कि राज्याभिषेक पर विचार किया जाए। इस कारण उसने पद्मराज से कहा, "तो क्या हमारा राज्याभिषेक अनंतकाल तक स्थगित रहेगा ?"

"महाराज ! भंडी सेनापति को आज्ञा हो जाए कि मेरी योजनानुसार युद्ध की गतिविधि चलाए। मैं आशा करता हूँ कि तीन मास के भीतर शशांक से एक दृढ़ आधार पर संधि हो सकेगी। तब श्रीमान् जी के राज्याभिषेक के प्रश्न पर विचार करना संभव हो सकेगा।"

हर्षवर्धन जानता था कि भंडी पद्मराज के अधीन होकर, उसकी योजनानुसार कार्य नहीं करेगा। भंडी पद्मराज का विरोधी था। उसे यह भी भय था कि भंडी के मना करने पर स्थानेश्वर की सेना भी पद्मराज के अधीन नहीं चलेगी। इस कारण उसने कहा, "महामात्य ! भंडी आपके अधीन कार्य नहीं कर सकता। वह आपकी नीति का विरोधी है और आपसे निजी शत्रुता भी रखता है।"

"परंतु महाराज ! मैंने तो आज तक जानबूझकर उसके विरोध में कोई कार्य नहीं किया।"

"उसने आपको बंदी बनाया था और पंडित चतुरानन ने उसकी इच्छा के विपरीत आपको छुड़ा दिया था। तब से वह आपको अपना मित्र नहीं मानता।"

"तो यह उसका भ्रम है महाराज ! उसने मुझे बंदी बनाया तो मैं बंदी हो गया। पश्चात् महाराज ने मुझे मुक्त कर दिया। इसमें मुझसे शत्रुता रखने का कोई कारण नहीं होना चाहिए। मैंने अपनी योजना इस कारण रखी थी कि मैं गौड़ राज्य को अपने अनुकूल कर सकूँ। यह सेना के मेरे अधीन होने से ही हो सकता है।"

"कुछ भी हो। हम भंडी को नाराज करना नहीं चाहते। वह हमारे ज्येष्ठ भ्राता का सखा है। महामात्य ! आप कोई अन्य उपाय बताइए।"

"हाँ, एक अन्य उपाय है। भंडी को अमात्य बना दिया जाए और सेना का नायक कोई अन्य सेनानायक कर दिया जाए, जो मेरे अधीन रह सके।"

इस सुझाव को कार्य में लाने योग्य समझ हर्षवर्धन ने युद्ध-क्षेत्र में दूत भेजकर भंडी को बुलवा लिया। महाराज ने उसे लिख दिया कि राजधानी में राज्य-कार्यभार अधिक हो गया है। इसमें सेनापति भंडी की आवश्यकता आ पड़ी है। वह अपने अधीनस्थ सेनानायक नरसिंह को अस्थायी रूप में कार्यभार सौंपकर शीघ्र चला आए।

भंडी राजधानी आया, परंतु जब उसके समक्ष अमात्य बनने का प्रस्ताव रखा गया तो उसने अमात्य-पद अस्वीकार कर दिया। हर्षवर्धन इससे चकित रह गया। उसने कारण पूछा तो भंडी ने कह दिया, "महामात्य पद्मराज के रहते हुए मैं मंत्री-पद के लिए अपने को योग्य नहीं समझता।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो फिर ?"

"मुझको आज्ञा दी जाए कि मैं वापस जाकर अपना सेनापति का पद सँभाल लूँ।"

"पर सेनापति भंडीराज ! मैं तो आपकी उन्नति कर रहा हूँ। आपको सेनापति के पद से उठाकर अमात्य बना रहा हूँ।"

"यदि महाराज मुझसे रुष्ट हों तो मुझको छुट्टी दे दी जाए, जिससे मैं स्थानेश्वर जाकर अपने घर पर काम-काज कर सकूँ।"

"भंडीराज ! सेनापति के पद में क्या मोह है ? देखिए, मालव सेना ने कन्नौज पर आक्रमण किया और पद्मराज ने सेनाओं की गतिविधि का ऐसे संचालन किया कि एक सप्ताह में ही बिना युद्ध के मालव सेना भारी हानि सहकर वापस लौट गई। आपने गौड़ पर दो वर्ष से आक्रमण कर रखा है। लक्ष-लक्ष स्वर्ण व्यय हो चुका है, परंतु अभी तक युद्ध में सफलता का चिह्न दिखाई नहीं पड़ता।"

"दोनों में अंतर है महाराज !"

"हम मानते हैं, परंतु किसी दूसरे को यत्न करने का अवसर क्यों नहीं देते ?"

"महाराज ! मैं अभी सेनापति-पद का त्याग कर देता हूँ, परंतु मैं पद्मराज के अधीन अमात्य-पद स्वीकार नहीं कर सकता।"

हर्षवर्धन इस समस्या से घबरा गया। उसने केवल इतना ही कहा, "आप मेरे पिता के विश्वस्त सेनापति रह चुके हैं। मेरे भाई के साथ हूणों को परास्त करने में आपने भारी भाग लिया है। इस कारण मैं आपको रुष्ट नहीं करना चाहता। फिर भी हम चाहते हैं कि गौड़-समर शीघ्र समाप्त हो जाए। इसके लिए कोई निश्चित आयोजन होना चाहिए। मैं चाहता हूँ कि आप हमें अवसर दें कि इसका कोई मार्ग निकल सके।"

"महाराज मुझको गौड़ लौट जाने की स्वीकृति कब देंगे ?"

"अभी आप तीन-चार दिन ठहरिए। हमें विचार करने के लिए कुछ समय चाहिए।"

विवश भंडीराज़ कन्नौज में रुक गया। हर्षवर्धन ने पद्मराज को बुलवा लिया और उसकी सम्मति माँगी। पद्मराज ने कहा, "महाराज ! सेनापति को कन्नौज में दो सप्ताह के लिए रोके रखिए। यहाँ इनके मन-बहलाव का प्रबंध कर दिया जाए। मैं आशा करता हूँ कि तब तक युद्ध-समाप्ति का कोई-न-कोई उपाय निकल आएगा।"

हर्षवर्धन इस आश्वासन से प्रसन्न था। उसने पद्मराज की योजना के अनुसार भंडी के लिए कन्नौज में मन-बहलाव का कार्यक्रम जुटा दिया।

वैसे तो पद्मराज ने उस दिन से ही अपनी योजना चालू कर दी थी, जिस दिन भंडी को वापस आने के लिए कहा गया था। अब वह स्वयं पुंड्र जा पहुँचा। दो दिन के भीतर ही सारी सेना में उत्साह की तरंग दौड़ गई।

पुंड्र का, सेनापति भंडी के अधिकार में आ जाने से, शशांक को पुंड्र छोड़ वनों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भटकना पड़ रहा था। उसने पावकी चैत्य को सुरक्षा का सबसे अच्छा स्थान समझा और बौद्ध-उपासक बनकर, अपनी सुरक्षा के लिए बौद्ध विहार पावकी में जा पहुँचा। पावकी में उसे इंद्रजालिक, जो स्वयं भिक्षुणी हो चुकी थी, मिल गई। इंद्रजालिक देवगुप्त की हत्या के पश्चात् शशांक को यह संतोष कराकर कि षड्यंत्र में उसका कोई हाथ नहीं था, पुंड्र जा पहुँची थी।

वहाँ से वह राजनीतिक घटनाओं के कारण विक्षुब्ध मन हो भिक्षुणी बन गई और पावकी चैत्य में जा पहुँची।

जब शशांक वहाँ पहुँचा तो पुनः दोनों में संबंध होने लगे। बौद्ध विहार में पहुँचने पर भी शशांक अपने बचे-खुचे सैनिकों को एकत्रित कर स्थानेश्वर की सेना पर छिप-छिपकर आक्रमण करता रहा।

सेनापति भंडी केवल-मात्र वीर योद्धा था। यदि उसके साथ शशांक खुलकर युद्ध करता तो वह शशांक को बुरी तरह पराजित करता। परंतु शशांक के छुटपुट आक्रमणों के वह स्वयं परेशान हो उठा था। इन छोटे-मोटे आक्रमणों में गौड़ प्रजा भी शशांक की सहायता करती थी। इस कारण भंडी के विपुल प्रयत्न करने पर भी शशांक को वह बंदी नहीं बना सका।

पद्मराज ने संपूर्ण गौड़ राज्य का मानचित्र बना रखा था। उसने सबसे प्रथम कार्य यह किया कि भिन्न-भिन्न स्थानों पर अपने गुप्तचर छोड़ दिए, जो उसे शशांक तथा उसकी पुनर्गठित सेना की सूचना देने लगे।

जब भंडी कन्नौज में आ गया तो पद्मराज ने सेनानायक नरसिंह को, जो अब सेनापति के स्थान पर कार्य कर रहा था, आज्ञा भेज दी कि वह राजधानी में एक वृहद् उत्सव का आयोजन करे। उसमें मनोरंजनार्थ मल्लयुद्ध तथा अन्य ऐसे ही खेल-तमाशे रखे। इस उत्सव की घोषणा वह सारे राज्य में करा दे और सबको निमंत्रण दे कि आकर प्रतियोगिता में भाग लें। विजित होने वालों के लिए विशेष पुरस्कार की भी घोषणा कर दी जाए।

नरसिंह ने उचित घोषणा करा दी। इससे लोगों में इन प्रतियोगिताओं को देखने का उत्साह व्याप्त हो गया। ग्राम-ग्राम से लोग इस उत्सव में भाग लेने और उत्सव देखने के लिए राजधानी में आने लगे। यहाँ तक कि शशांक के अधीन प्रदेश से भी लोग अथवा सैनिक उत्सव देखने की इच्छा करने लगे। नरसिंह ने घोषणा करवा दी कि कोई भी इसमें भाग लेने आ सकता है, यदि वह अपने साथ अस्त्र-शस्त्र न लाए।

शशांक ने अपना शिविर पावकी चैत्य के बाहर, परंतु उसके समीप ही बना रखा था। जिस दिन राजधानी में उत्सव मनाया जा रहा था, शशांक ने इंद्रजालिक को अपने शिविर में बुलवा लिया था। अगले दिन प्रातःकाल चैत्य और शिविर को बहुत बड़ी सेना के घेरे में देख वह आश्चर्यचकित रह गया। उसकी सूचना के अनुसार सारी स्थानेश्वर की सेना राजधानी में एकत्रित हो उत्सव मना रही थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०

वास्तव में स्थानेश्वर की सेना गौड़ राजधानी पुंड्र में ही थी। जिस दिन वह उत्सव का प्रबंध कर रही थी, कन्नौज की सेना पावकी की ओर तीव्र गति से बढ़ रही थी। पद्मराज ने कन्नौज की सेना को मालवा की विजय के पश्चात् गौड़ राज्य में भेज दिया था। उसकी योजना इस प्रकार रहती थी, कि सेना की यात्रा के पूर्व उस मार्ग पर, जिस पर सेना को जाना होता था, अपने कई सैनिक पहले ही भेज दिया करता था, जिससे सेना की गतिविधि की सूचना उस प्रदेश से निकलकर बाहर न जा सके। इसी कारण जब कन्नौज की सेना ने गौड़ प्रदेश में प्रवेश किया तो किसी को पता तक न चला और ठीक उत्सव के दिन, कन्नौज की सेना ने पावकी चैत्य और शशांक के शिविर को घेर लिया।

पावकी में शशांक के बीस सहस्र सैनिक पड़े थे; परंतु राजधानी में उत्सव होने के कारण उनमें से अधिकांश नागरिक वेश में पुंड्र जा पहुँचे थे। किसी को स्वप्न में भी यह आशा नहीं थी कि कन्नौज सेना पावकी को घेरे में ले लेगी।

प्रातःकाल शिविर के प्रहरी ने शशांक को सूचना दी कि चारों ओर से शत्रु सेना घेरा डालकर आगे बढ़ रही है।

शशांक ने आश्चर्यचकित हो पूछा, "किसकी सेना है ?"

"महाराज ! यह स्थानेश्वर की सेना नहीं क्योंकि इनका गणवेश उनसे नहीं मिलता। साथ ही स्थानेश्वर की सेना तो उत्सव में संलग्न है। मेरा अनुमान है कि यह कन्नौज की सेना है।"

"तो सेना को युद्ध की तैयारी की आज्ञा दे दो। मैं भी तैयार होकर आता हूँ।"

"महाराज ! हमारी अधिकांश सेना तो पुंड्र में उत्सव देखने के लिए गई हुई है।"

"फिर भी जो कुछ भी सैनिक बचे हुए हैं, उन्हें शीघ्र एकत्रित होने का आदेश दे दो।"

इंद्रजालिक अत्यंत भयभीत थी। जब प्रहरी चला गया तो उसने शशांक से कहा, "महाराज ! इस युद्ध का परिणाम शुभ प्रतीत नहीं होता। मेरी सम्मति मानिए, चैत्य में चले चलिए। वह धर्म-स्थान है। वहाँ पर कन्नौज की सेना प्रवेश नहीं करेगी।"

"तब तो निश्चित रूप से हमारी पराजय है।"

"महाराज ! पराजय तो अब भी निश्चित है। परंतु यदि वहाँ जाकर आपका जीवन बच गया तो आप पुनः सेना एकत्रित कर अपने राज्य को पाने का यत्न कर सकते हैं। यदि आप युद्ध में मारे गए तो निस्संदेह गौड़ राज्य पूर्ण रूप से पराजित हो जाएगा।"

शशांक इस सम्मति पर विचार करने लगा। फिर भी उसने अपने कक्ष से बाहर निकलकर स्थिति का अध्ययन करना उचित समझा। उसने घेरा डालने वाली सेना को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखा। शत्रु सेना इतनी अधिक थी कि उसका विरोध बिलकुल असंभव था। शत्रु सेना में हाथी, अश्वारोही और रथ भी थे। शशांक के अपने सैनिक प्रायः सब उत्सव में पहुँचे हुए थे। अतएव शशांक इंद्रजालिक की सम्मति पर कार्य करने के लिए तैयार हो गया।

उसने सेनानायकों को, जो वहाँ शिविर में थे, बुलाया और कहा, "मैं समझता हूँ कि व्यर्थ के युद्ध से कोई लाभ नहीं। आप सब लोग यहाँ से बचकर निकलने का प्रयत्न करिए। आप लोग जाकर शत्रु सेना के सम्मुख हथियार डाल दें। मेरे विषय में घोषित कर दें कि मैं शिविर में नहीं हूँ।

"कुछ समय पश्चात् मैं शीघ्र ही आप लोगों का पुनः आह्वान करूँगा। तब आप सब लोग पुनः एकत्रित हो जाइएगा। तदनंतर हम पुनः अपने राज्य की मुक्ति का उपाय करेंगे।"

इस योजना के अनुसार गौड़ सेना ने श्वेत पताका के नीचे कन्नौज की अधीनता स्वीकार करने की घोषणा कर दी। शशांक इंद्रजालिक के साथ चैत्य में जा पहुँचा।

पावकी चैत्य का महाप्रभु अभी तक कन्नौज में ही था। वह शशांक की ओर से संधि का प्रस्ताव लेकर गया हुआ था। शशांक ने उसको यह वचन दिया था कि यदि स्थानेश्वर की सेना गौड़ राज्य से निकल जाए तो वह कन्नौज और स्थानेश्वर से स्थायी मित्रता कर लेगा। महाप्रभु अभी तक कन्नौज से वापस नहीं आया था कि यह घटना घट गई।

चैत्य के अधिकारियों का साहस नहीं हुआ कि शशांक को चैत्य में प्रवेश देने से इंकार कर सकें।

कन्नौज की सेना के साथ पद्मराज स्वयं उपस्थित था। उसे आशा थी कि घोर युद्ध होगा। उसको विजय की पूरी आशा थी। परंतु युद्ध के पश्चात्; इस कारण उसके विस्मय का ठिकाना नहीं रहा, जब घिरी हुई गौड़ सेना का दूत श्वेत पताका के साथ उसके पास लाया गया। पद्मराज ने पूछा, "क्या चाहते हो ?"

दूत ने कहा, "महाराज शशांक वेश बदलकर उत्सव में मल्लयुद्ध देखने गए हुए हैं। हमारे सेनापति का यह निर्णय है कि यदि हमें अपने अधीन रखने का वचन दे दिया जाए तो हम बिना युद्ध किए हथियार डालने को तैयार हैं।"

पद्मराज को शशांक के न पकड़े जाने पर अत्यंत दुःख था। परंतु उसने भयभीत सेना की हत्या कराने में कुछ प्रयोजन न समझ, उनकी बात मान ली। उसने आज्ञा दे दी, "गौड़ सेना का आत्मसमर्पण हमें स्वीकार है। शर्त यह है कि सब सैनिक एक-एक कर अपने-अपने शस्त्रों को सौंपकर हमारी सेना के घेरे से बाहर निकल जाएँ। यहाँ से वे सीधे पुंड्र जा पहुँचें और अपना नाम-धाम लिखाकर कन्नौज की सेना में भर्ती हो जाएँ। हम इन सबको पुनः रख लेंगे।"

यह कार्य मध्याह्न से पूर्व हो गया। गौड़ सैनिक इतनी शीघ्रता से छूटने की आशा नहीं रखते थे। अतः उन्होंने इससे तुरंत लाभ उठाने का निश्चय कर लिया। कन्नौज की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेना ने उन्हें केवल शरीर पर धारण किए वस्त्रों में ही बाहर जाने दिया। उनका शेष सब-कुछ वहीं रखवा लिया गया। पद्मराज की आज्ञा थी कि मध्याह्न से पूर्व सबको वहाँ से निकाल दिया जाए और शशांक के विषय में विशेष सतर्क रहा जाए।

जब गौड़ सेना आत्मसमर्पण कर रही थी, पद्मराज कुछ सैनिकों के साथ शशांक के शिविर में जा पहुँचा। उसने शशांक के कक्ष को ध्यानपूर्वक देखा। उसने शशांक की शैया को देख अनुमान लगा लिया कि शशांक कहीं-न-कहीं छिपा हुआ है। पद्मराज को विश्वास था कि शशांक भेष बदलकर बाहर नहीं निकलेगा। अवश्य वह चैत्य में छिप गया होगा। इस विचार के आते ही उसने सौ सैनिक चैत्य के द्वार पर बैठा दिए।

बौद्ध भिक्षुक यह देख क्रुद्ध हो गए। उन्होंने यह चुनौती दे दी कि यदि सैनिकों ने चैत्य में प्रवेश करने का यत्न किया तो यह उनकी हत्या कर ही संभव हो सकेगा।

पद्मराज ने चैत्य के प्रबंधकर्ता को कह दिया, "हमें चैत्य में प्रवेश करने का कोई प्रयोजन नहीं है। हमें संदेह है कि शशांक इसी चैत्य में छिपा हुआ है। यदि वह है तो हमारे अधीन कर दिया जाए।"

चैत्य अधिकारी ने कह दिया, "शशांक भीतर है। परंतु उसने श्रमण होने की दीक्षा ले ली है। अतः उसे बंदी बनाने में कुछ भी प्रयोजन नहीं रहा।"

"तो भिक्षु शशांक को हमारे सम्मुख उपस्थित कर दिया जाए। यदि यह सत्य है कि उसने दीक्षा ले ली है, तो हम उसे बंदी नहीं बनाएँगे।"

अतएव विवश होकर शशांक को सिर मुँडा, पीतवसन पहनकर चैत्य-द्वार तक आना पड़ा। उसको पहचान पद्मराज ने कहा, "भिक्षु शशांक ! यदि तुम भिक्षु न बनते और अपने को मेरे अधीन कर देते तो मैं तुमको अभयदान देना चाहता था और गौड़ राज्य में एक मित्र-अधिपति के रूप में रखे जाने का महाराज से निवेदन करता। परंतु अब तुमने जो मार्ग ग्रहण किया है, मैं तुम्हें उससे लौटने के लिए नहीं कह सकता। भगवान् तुम्हारी सहायता करेंगे, कारण यह कि अब तुम हमारी सहायता से दूर हो गए हो। फिर भी मेरी सम्मति मानो तो इसी रूप में कन्नौज चले आओ। वहाँ भगवान् अवलोकितेश्वर के पास आकर ठहरो। तुम्हारे पुनरुद्धार के लिए यत्न किया जा सकता है।"

इस प्रकार पद्मराज ने अपने विचार से गौड़-समस्या का सुझाव प्रस्तुत कर दिया। पुंड्र में यह समाचार फैल गया कि शशांक ने पराजय स्वीकार कर ली है। परिणाम यह हुआ कि संपूर्ण गौड़ सैनिकों ने हथियार डाल दिए। उनमें से अधिकांश कन्नौज की सेना में भर्ती होने लगे। पद्मराज की योजना यह थी कि उनको छोटी-छोटी मंडलियों में विभक्त कर भिन्न-भिन्न स्थानों पर रखा जाए।

गौड़-समस्या को इस प्रकार सुलझाकर पद्मराज कन्नौज आ पहुँचा। वह स्वयं ही यह समाचार लेकर महाराज हर्षवर्धन के पास आया था।

सेनापति भंडी ने भी यह समाचार सुना। वह इस काँटे को इस प्रकार निकलते देख जल-भुन गया। उसे अपनी विफलता और पद्मराज की सफलता से पद्मराज के प्रति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और भी तीव्र विद्वेष हो गया। उसने महाराज हर्षवर्धन से कहा, "महाराज ! मैं अब बूढ़ा हो गया हूँ। अब आगे मैं वह सेवा नहीं कर सकता जो कि नई पीढ़ी के लोग कर सकते हैं। अतएव मैं चाहता हूँ कि मुझे छुट्टी दी जाए। मैं हरिद्वार जाकर गंगातट पर बैठ भगवत्-भजन करना चाहता हूँ।"

हर्षवर्धन ने पद्मराज से इस विषय में सम्मति माँगी। पद्मराज ने कहा, "मैं समझता हूँ कि सेनापति ठीक ही कहते हैं। उनको पाँच सहस्र स्वर्ण वार्षिक वृत्ति देकर कार्यभार से मुक्त कर दिया जाए।"

हर्षवर्धन पद्मराज की इस उदारता पर विस्मय भी करता था और प्रसन्न भी था।

११

अब हर्षवर्धन के राज्याभिषेक का प्रश्न उपस्थित हुआ। यह अभी तक कई कारणों से टलता आ रहा था। इन कारणों में सबसे प्रमुख तो ज्येष्ठ भ्राता की मृत्यु थी। राज्यवर्धन की मृत्यु को अब दो वर्ष हो चुके थे। पश्चात् राज्यश्री के साथ दुर्व्यवहार करने वाले शशांक को दंड देने का प्रश्न था। यह भी सुलझ गया था।

राज्याभिषेक के विषय पर बातचीत चल रही थी कि भगवान् बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर ने अपना प्रस्ताव रख दिया। उन्होंने कहा, "राजकुमार हर्षवर्धन का राज्याभिषेक स्थानेश्वर, श्रीकंठ की राजधानी में जाकर होना चाहिए। कन्नौज का राज्य तो राज्यश्री का है। राजकुमार ने कन्नौज का उद्धार किया है, इसके लिए कन्नौज के निवासी उनके कृतज्ञ हैं। परंतु यह राज्य तो राजकुमार की भगिनी का है।"

यह प्रस्ताव महामात्य पद्मराज के सम्मुख उपस्थित हुआ तो वह आश्चर्यचकित रह गया। महाराज हर्षवर्धन ने कहा, "भगवन् ! हमने तो राज्यश्री को कहा भी था, परंतु वह नहीं मानीं और भिक्षुणी बन गईं।"

"उस समय की और अब इस समय की परिस्थिति में अंतर आ गया है महाराज !"

"तो आपका अभिप्राय यह है," पद्मराज ने कहा, "कि उस समय राज्य-भार वहन करना कंटकाकीर्ण था। इस कारण महारानी राज्यश्री तैयार नहीं हुई थीं ?"

"मेरा यही अनुमान है।"

"तो भगवन् ! यदि यह अनुमान सत्य है तो महारानी राज्यश्री इस योग्य नहीं कि राज्य-भार उनके कंधे पर डाला जाए। कठिनाइयों से डरकर यदि कोई राज्य का त्याग करता है, तो उसको राज्य-जैसे दुस्तर अधिकार को ग्रहण नहीं करना चाहिए।

"फिर भी हम महारानी राज्यश्री को इतना भीरु नहीं समझते। उन्होंने जो मार्ग ग्रहण किया है, वह मन में वैराग्य उत्पन्न हो जाने से किया है। इस कारण भी यह राज्य तो महाराज हर्षवर्धन को ही मिलना चाहिए।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मेरा विचार है कि महाराज हर्षवर्धन स्थानेश्वर-अधिपति तो हैं ही। यहाँ भी वे राज-कार्य करें, परंतु राज-सिंहासन राज्यश्री के लिए सुरक्षित रखा जाए। जब भी राज्यश्री की इच्छा हो, वह वापस आकर अपना कार्यभार सँभाल लें।"

हर्षवर्धन इस वाक्‌जाल में फँस गया, परंतु पद्मराज ने स्पष्ट कह दिया, "महाराज! यह राजनीति नहीं है। राज्यश्री भिक्षुणी हैं। राज्य आप कर रहे हैं। अतः राज्याभिषेक आपका ही होना चाहिए। प्रजा के हित के लिए तथा पड़ोसी राज्यों के साथ सुख-शांति के संबंध बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उनके साथ बात करने का आपको अधिकार हो। यह अधिकार राज्याभिषेक होने से ही मिल सकता है।"

"अधिकार तो है ही।" अवलोकितेश्वर ने कह दिया, "जब राज्य की पूर्ण बागडोर आपके हाथ में है और सेना आपको सहयोग दे रही है, तो फिर आप राज्य के पूर्ण रूप से अधिकारी तो हैं ही। मैं केवल इतना मार्ग खुला रखना चाहता हूँ कि यदि कभी राज्यश्री की अभिलाषा हो, तो वह इस स्थान को अपने लिए रिक्त पाएँ।"

पद्मराज ने महाराज हर्षवर्धन को अपनी अंतिम सम्मति दे दी, "महाराज! आप अंतिम निर्णय करने से पूर्व यह समझ लें कि महाप्रभु राजनीति से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। उनका कथन राजनीति के सिद्धातों के विपरीत है। मेरी सम्मति में आपका राज्याभिषेक अविलंब हो जाना चाहिए।"

हर्षवर्धन ने अपना अंतिम निर्णय दे दिया, "हमारा राज्याभिषेक स्थानेश्वर चलकर श्रीकंठ राज्य के सिंहासन पर होगा। हम अपनी बहन की संपत्ति उससे छीन नहीं सकते। यह हमारा अंतिम निर्णय है।"

पद्मराज यद्यपि इस निर्णय से प्रसन्न नहीं था, परन्तु वह चुप रहा।

कुछ दिनों के भीतर हर्षवर्धन का विवाह मालव-राजकुमारी मृणालिनी से हो गया और पश्चात् स्थानेश्वर चलकर उनका राज्याभिषेक कर दिया गया। कन्नौज में वे प्रबंधक के रूप में ही रहे। इस नवीन प्रबंध से राज्य की बौद्ध प्रजा ने अत्यंत प्रसन्नता प्रकट की, परंतु वैष्णव आदि अन्य लोग किसी अनिष्ट की आशंका करते रहे।

उक्त घटना के कुछ दिन पश्चात् एक दिन बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर शशांक को गृहस्थ वेश में लेकर महाराज हर्षवर्धन के पास आ पहुँचे। उन्होंने महाराज से प्रार्थना की कि वे शशांक को पुनः गौड़ राज्य के सिंहासन पर बैठने का आदेश दे दें।

हर्षवर्धन ने अस्वीकार कर दिया। शशांक ने कहा, "महाराज! कन्नौज के महामात्य ने मुझे यह वचन दिया था कि वे मुझसे मैत्री-संबंध बना लेंगे।"

"उन्होंने जो वचन आपको दिया था, वह हमारी अनुमति के बिना था। अतएव उसका हम कुछ भी मूल्य नहीं समझते।"

"परंतु महाराज! आपकी अनुमति की आवश्यकता ही नहीं थी।"

"क्यों?"

अवलोकितेश्वर ने कहा, "इस कारण कि कन्नौज की महारानी राज्यश्री हैं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप केवल प्रबंधक के रूप में हैं। उस समय महामात्य ने भी आपसे अनुमति लेनी आवश्यक नहीं समझी थी, क्योंकि आपका राज्याभिषेक नहीं हुआ था। महारानी राज्यश्री ने इन्हें गौड़ प्रदेश पर अधिकार करने की अनुमति दे दी है।"

"कैसे पता चले कि राज्यश्री ने इन्हें अधिकार दे दिया है ?"

"महाराज ! यदि इस पर कोई आपत्ति करेगा, तो आपको इसका प्रमाण दिखा दिया जाएगा।"

पद्मराज के सम्मुख जब यह समस्या उपस्थित हुई, तो उसने कह दिया, "महाराज ! मैंने शशांक को आश्वासन दिया था कि यदि वह गृहस्थी रहता और अपने को मेरे अधीन कर देता तो मैं उसको अभयदान दे देता। मैं गौड़ राज्य में उसे एक मित्र-अधिपति के रूप में नियुक्त रखने की इच्छा रखता था। फिर भी आपकी अनुमति के लिए उसको आपके सम्मुख अवश्य उपस्थित करता। परंतु शशांक एक तो गृहस्थ छोड़ भिक्षु बन गया था और साथ ही उसने अपने को मेरे समर्पण नहीं किया था। उसने बचने के लिए भिक्षु बनने का ढोंग किया अर्थात् हमें धोखा दिया। उसके उस समय के व्यवहार से स्पष्ट है कि वह भय से भिक्षु बना था। उस समय का दिया वचन तो समाप्त हो चुका है। वचन एक शर्त के साथ था और वह शर्त पूर्ण नहीं हुई।"

"अब वह अपने को महामात्य के अधीन करता है।" अवलोकितेश्वर जी ने कहा।

"महाराज ! अब अवसर निकल चुका है।"

"परंतु राज्य की वास्तविक अधिकारिणी ने इन्हें स्वीकृति दे दी है।"

"वह कौन ?"

"महारानी राज्यश्री। वह कन्नौज की महारानी हैं।"

"उनकी लिखित स्वीकृति चाहिए।" हर्षवर्धन ने कहा।

"नहीं महाराज !" पद्मराज ने कहा, "महारानी राज्यश्री का राज्य पर किसी प्रकार से अधिकार नहीं है। उनकी स्वीकृति मान्य नहीं हो सकती।"

"महामात्य !" हर्षवर्धन ने कहा, "जब हम कह चुके हैं कि हम राज्यश्री को यहाँ की महारानी समझते हैं, तो फिर इसका कोई अर्थ नहीं रहता। मैं तो उनका स्थानापन्न-मात्र हूँ। यदि उनकी आज्ञा है तो मुझे माननी ही चाहिए।"

अवलोकितेश्वर ने राज्यश्री का पत्र लाकर हर्षवर्धन के सम्मुख रख दिया। इसमें राज्यश्री ने हर्षवर्धन के लिए त्याग और शांति का उपदेश दिया था। साथ ही उसने लिखा था कि राज्य का उद्देश्य दूसरे राज्यों को अधीन करने का नहीं होना चाहिए, प्रत्युत उनको आत्मसात करना ही उचित है। आत्मसात के अर्थ हैं दूसरों को अपने अनुकूल कर लेना।

शशांक तथा राज्यश्री का विषय मंत्रि मंडल में उपस्थित हुआ। पद्मराज ने अपना संशय स्पष्ट कर दिया. "प्रश्न यह नहीं कि यहाँ का राज्य-अधिकार किसके हाथ में है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समस्या यह है कि महारानी राज्यश्री राज्य की कठिनाइयों और उलझनों से दूर बैठी हुई हैं। उनको यहाँ की परिस्थिति का ज्ञान नहीं। अतः उनकी सम्मति से राज्यकार्य चलाने का अर्थ विनाशकारी हो सकता है।

"इसके अतिरिक्त बौद्ध संप्रदाय के लोग शासन को राजनीति के नियमों से नहीं, प्रत्युत अपने धर्म के नियमों के अधीन चलाना चाहते हैं। इस नीति से पहले भी राज्य दास बन चुका है। महाराज अवलोकितेश्वर मालवराज देवगुप्त के आक्रमण से पूर्व यहाँ की नीति में हस्तक्षेप करते थे। परिणाम यह हुआ था कि राज्य में देश की रक्षा करने की क्षमता नहीं रही थी।

"अत्यंत कठिनाइयों से हम सबने मिलकर देश को स्वतंत्र किया है। अब पुनः महाप्रभु और उनके साथी धर्म की आड़ लेकर आक्रांताओं को बचाना चाहते हैं। देवगुप्त और शशांक के पापों पर पर्दा डाल, शशांक के पराजित होने से पूर्व उससे संधि कराने का यत्न किया गया। शशांक को बंदी होने से बचाने के लिए उसे भिक्षु बना दिया गया और अब उसे पुनः गृहस्थी बनाकर, राज्य वापस दिलवाने का षड्यंत्र किया जा रहा है। महारानी राज्यश्री को भिक्षुणी बनाकर कन्नौज का राज्य बौद्ध संप्रदाय ने अपने हाथ में कर रखा है।"

हर्षवर्धन का उत्तर था, "राज्यश्री मेरी बहन है। राज्य उसका है। अतएव इसकी नीति का संचालन वही करेगी। उसका बौद्ध संप्रदाय में रहना अथवा वैष्णव संप्रदाय में रहना, यह उसका निजी प्रश्न है। मैं इसमें हस्तक्षेप करना नहीं चाहता। हाँ, यदि महामात्य यह सिद्ध कर सकें कि राज्यश्री को चैत्य में रहने के लिए विवश किया जा रहा है, तो मैं उसको वहाँ से निकालने का प्रयत्न कर सकता हूँ।"

"ऐसी अवस्था में मंत्रिमंडल में विचार करने के लिए कोई बात रही ही नहीं।"

"रही हो अथवा नहीं, यह मेरे मन की भावना है। मैं बहन के राज्य को हड़पना नहीं चाहता।"

परिणामस्वरूप गौड़ राज्य पुनः शशांक के अधिकार में आ गया। और इस प्रकार सिंधु नदी के तट से लेकर गौड़ देश की सीमा तक और हिमाचल से लेकर नर्मदा के तट तक राज्यकार्य में पुनः बौद्धों की तूती बोलने लगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्थ परिच्छेद

१

पत्रलता जब पद्मराज को कन्नौज का राज्य अपने हाथ में ले लेने की प्रेरणा देने में सफल नहीं हुई, तो उसकी कन्नौज की राजनीति में रुचि नहीं रही। कुछ दिन तक वह कन्नौज में तांबूलिन का कार्य करती रही। तदनंतर वह वहाँ से लापता हो गई।

पद्मराज राज्य-कार्य और मालवा आदि के झगड़ों में लीन रहने के कारण पत्रलता को सर्वथा भूल चुका था। अब, जब शशांक पुनः गद्दी पर बैठ गया और उसने हर्षवर्धन से मैत्री कर ली, तो उसे राज्य-कार्य से अवकाश मिलने लगा। वास्तव में वह बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर के राज्य-कार्यों में हस्तक्षेप करने से राज्य से तटस्थ होता जाता था। जब महाराज हर्षवर्धन उससे किसी विषय में सम्मति माँगते, तो वह अपनी बुद्धि से विचारकर अपनी सम्मति दे देता, अन्यथा वह सर्वथा चुप रहता।

अब उसको अवकाश मिलने लगा था। इस कारण उसका ध्यान पुनः पत्रलता की ओर चला गया। पत्रलता में एक गुण था, उसके व्यक्तित्व में एक आकर्षण था, उसकी वाणी में रस रहता था और उसकी युक्ति में बल होता था। यही कारण था कि पत्रलता के संपर्क में जो कोई भी आता, वह उसे विस्मरण नहीं कर पाता था।

पद्मराज ने एक गुप्तचर पत्रलता की खोज में लगा दिया। दो मास की खोज के पश्चात् उस गुप्तचर ने सूचना दी, 'पत्रलता को कन्नौज छोड़े एक वर्ष से ऊपर हो गया है। यहाँ से वह हरिद्वार तथा ऋषिकेश चली गई थी। वहाँ कुछ दिन रहकर वह मानसरोवर और कैलाश-यात्रा को चली गई है। कैलाश से लौटने का अभी कोई समाचार नहीं मिला।' कैलाश की यात्रा में एक वर्ष से ऊपर लगता था, अतएव पद्मराज का अनुमान था कि वह कुछ मास में वहाँ से लौट सकेगी।

एक दिन पद्मराज हर्षवर्धन की राज्य-सभा में बैठा हुआ था और भारत की राजनीति के विषय में चर्चा चल रही थी। बोधिसत्त्व भी विद्यमान थे। चर्चा का विषय था कि कश्मीर में हूणों का आधिपत्य बना रहे तो क्या हानि है! बोधिसत्त्व का विचार था कि माणिकंद हूण, कश्मीर का अधिपति, बौद्ध हो गया है। अतएव वह वैसा नहीं रहा, जैसे दूसरे हूण आक्रमणकारी थे। ऐसे व्यक्ति से मित्रता कर लेने में कोई हानि नहीं है।

पद्मराज का विचार था कि तीन-चार गुप्तचर, पृथक्-पृथक् उसके राज्य में भेजे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाएँ जो माणिकंद के प्रजा के प्रति व्यवहार की जानकारी लायें। उसके बाद ही यह विचार किया जा सकेगा कि उसके साथ मैत्री की जाए अथवा नहीं।

"परंतु महामात्य!" हर्षवर्धन ने कहा, "माणिकंद ने हमारे राज्य को किसी प्रकार से हानि नहीं पहुँचाई। ऐसी अवस्था में उससे मैत्री न कर शत्रुता क्यों रखी जाए?"

"शत्रुता करने के लिए मैंने नहीं क़हा महाराज! मैंने मैत्री का विरोध किया है। मैत्री के अभाव में शत्रुता होगी ही, यह सिद्ध नहीं हो सकता।"

अवलोकितेश्वर ने पूछा, "मैत्री और शत्रुता के भीतर क्या स्थिति होगी?"

"तटस्थता की।"

"इससे क्या लाभ होगा?"

"वे सब पाप, जो माणिकंद वहाँ करेगा, उसमें हमारा कुछ भी हाथ नहीं रहेगा। यदि वे पाप इतने घोर हो गए कि धर्म और न्याय के लिए हमें माणिकंद से युद्ध करना पड़ा, तो हम कर सकेंगे।"

"यह तो मैत्री की अवस्था में भी किया जा सकता है।"

"तो भगवन्! मैं मैत्री के अर्थ नहीं समझा। मैं तो मैत्री का अर्थ यह समझता हूँ कि दोनों राज्यों के सुख-दुःख समान हों। दोनों देशों में हृदय से एक-दूसरे के शुभचिंतन का संबंध हो।"

"यह सब वाग्जाल है। राजनीति में मित्रता अथवा शत्रुता सामयिक अर्थ ही रखती है।"

"तो इस समय कश्मीर राज्य के हूण शासक से मैत्री करने की आवश्यकता ही क्या है?"

"आवश्यकता केवल इतनी है कि वह एक चढ़ता सूर्य है। उसकी उष्णता से हम भी उष्णता पा सकेंगे।"

"परंतु भगवन्! वह चढ़ता हुआ सूर्य है अथवा राहु, यही निश्चय करने के लिए तो मैंने गुप्तचर भेजने के लिए प्रस्ताव किया है। राहु से मैत्री करने से उष्णता नहीं, प्रत्युत मृत्यु की कालिमा मिलेगी।"

अवलोकितेश्वर कभी भी पद्मराज को परास्त नहीं कर सका था। परंतु अवलोकितेश्वर जानता था कि हर्षवर्धन भावुक व्यक्ति है और उसे मनोद्‌गारों की बाढ़ में बहाकर साथ लिया जा सकता है। इस कारण उसने अपना अमोघ शस्त्र छोड़ दिया। उसने कहा, "हम शांतिप्रिय हैं। अतः हमें अपनी शांतिप्रियता की घोषणा करते रहने में संकोच नहीं करना चाहिए। हमारी मित्रता का हाथ सबके लिए और सदैव खुला रहना चाहिए। हमारी किसी से शत्रुता नहीं है।"

इन उद्‌गारों के अधीन हर्षवर्धन ने अपना निर्णय दे दिया, "महामात्य! आप कश्मीर में शांति का संदेश ले जाने के लिए दूतों का प्रबंध कर दें और हूण-अधिपति माणिकंद के लिए भेंट तथा एक पत्र तैयार कर दें।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महामात्य ने कह दिया, "महाराज ! एक-दो दिन के भीतर यह सब प्रबंध कर दिया जाएगा।"

इसी समय प्रतिहार ने सूचना दी, "महाराज ! भारत प्रसिद्ध कवि-सम्राट बाणभट्ट श्रीमान् के दर्शन करने के लिए उपस्थित हैं।"

"तो वह अभिमानी कवि आ गया है ?"

"हाँ महाराज !" बोधिसत्त्व ने कहा।

हर्ष ने कहा, "प्रतिहार ! उसको बाहर बैठने दो। हम इसका मानमर्दन करना चाहते हैं।"

"क्या किया है महाराज उसने ?"

"एक समय यह स्थानेश्वर आया था। पूज्य पिताजी ने इसको पुरस्कृत करने के लिए राज-सभा में बुलाया, तो यह अपने साथ एक नर्तकी और मदिरा की सुराही लिए हुए आ पहुँचा।

"पिताजी ने कहा, 'कवि, हम तुम्हारी वाणी सुनना चाहते हैं।'

"वह बोला, 'महाराज ! आज मेरा मन इस नर्तकी का नृत्य देखने को कर रहा है। आज्ञा हो तो यह अपना नृत्य दिखाए।' पिताजी को इसकी बात पर क्रोध आ गया और उन्होंने इसे धक्के मार-मारकर राज-सभा से निकलवा दिया।

"आज यह हमारे पास आया है।"

"वह स्वयं नहीं आया महाराज ! मैंने इसके भाई चंद्रसेन के हाथ संदेश भेजकर इसको बुलवाया था।" अवलोकितेश्वर ने कहा।

"क्यों ?"

"इस कारण कि कवि राज-सभा की शोभा होगा। जहाँ महाराज की शांतिप्रियता, साधुता, शौर्य की कीर्ति फैलेगी, वहाँ श्रीमान् का विद्वानों, आचार्यों और धर्म-गुरुओं के लिए आदर और मान भी कीर्ति के कारण बन जाएँगे।"

"अच्छी बात है। उसको बुलाओ।"

प्रतिहार गया और शीघ्र ही एक सुंदर रूपरेखा वाले युवक को लेकर भीतर आ गया। यह बाणभट्ट था। उसने महाराज को झुककर प्रणाम किया और कहा :

"सूर्य चन्द्र से आलोकित है जग जैसा।
भारत दैदीप्यमान हो रहा है वैसा॥
श्रीकंठ नरेश की शोभा से है जगमग करता।
सकल जगत के सौष्ठव का भार है भरता॥
महाराज देव हर्ष सें हर्षित सारे।
जन-जन के मन पुलकित हों न्यारे-न्यारे॥"

महाराज हर्षवर्धन मुस्करा दिए; परंतु उन्होंने उत्तर न देकर समीप बैठे मालव-राजकुमार को संबोधन कर पूछा, "राजमाता कैसी हैं ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ठीक हैं महाराज !"

"उनको पत्र लिखो तो हमारा नमस्कार लिखना।"

"जैसी आज्ञा महाराज !"

पश्चात् हर्षवर्धन महामात्य को संबोधन कर कहने लगे, "हमने सुना है कि इंद्रजालिक नाम की एक नर्तकी इस नगर में आई हुई है और वह बहुत ही सुंदर नृत्य करती है।"

"हाँ महाराज !" पद्मराज ने कहा।

"हमारी इच्छा उसका नृत्य देखने की हो रही है।"

"तो चंद्रसेन प्रबंध कर देगा, महाराज !"

"कौन चंद्रसेन !"

"महाप्रभु अवलोकितेश्वर ने अभी-अभी एक इसी नाम के व्यक्ति का उल्लेख किया है।"

"ओह, समझा। मैं समझता हूँ कि रात को नृत्य हो। हमारे महामात्य भी आ जाएँ, तो नृत्य की शोभा द्विगुणित हो जाएगी।"

"महाराज ! यदि भूरी मृदंग बजाने वाले को बुला लिया जाए, तो शोभा सौगुनी हो जाएगी।"

"मृदंग बजाने वाला तो नर्तकी का अपना होगा ?"

"फिर भी भूरी के आने से महाराज, रंग जम जाएगा।"

"प्रतिहार !" महाराज ने आगार के बाहर खड़े प्रतिहार को पुकारा। प्रतिहार के आने पर उन्होंने आज्ञा दे दी, "चंद्रसेन को बुला लाओ।"

प्रतिहार के जाने के पश्चात् हर्षवर्धन अवलोकितेश्वर से बोले, "महाप्रभु तो इस नृत्य में सम्मिलित नहीं हो सकेंगे ?"

"रात का समय मेरा चिंतन का होता है। मैं उस समय उपस्थित नहीं हो सकूँगा।"

"ठीक है, जो कुछ हम देखेंगे, हम कल महाप्रभु को बतला देंगे।"

"इंद्रजालिक तो भारत की एक विख्यात नर्तकी है। उसके विषय में महाराज की जो सम्मति होगी, उसका अनुमान मैं अभी से लगा सकता हूँ। वह नर्तकी अभी-अभी दक्षिण पथ का भ्रमण करके आई है। उस ओर के नरेशों से अनेकानेक पुरस्कार, जो इसने पाए हैं, वे बहुत ही मूल्यवान और सुंदर हैं।"

इस समय महामात्य पद्मराज ने विस्मय से पूछा, "ऐसा प्रतीत होता है कि महाप्रभु का इस नर्तकी के विषय में बहुत ही विस्तृत ज्ञान है। क्या यह नर्तकी वही नहीं, जिसने महाराज शशांक को बौद्ध-भिक्षु बनने की प्रेरणा दी थी ?"

"कदाचित् वही है। महाराज शशांक ने भिक्षु-मार्ग छोड़ दिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस नर्तकी ने भी उस मार्ग का त्याग कर अब पुनः सांसारिक जीवन स्वीकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर लिया है।"

"तब तो महाराज, मैंने इसके दर्शन किए हैं।"

"कहाँ ?"

"जब यह नर्तकी मालव-नरेश देवगुप्त की हत्या और उसके साथ ही उसके विरोधी शशांक की हत्या का एकदम दुगुना षड्‌यंत्र कर रही थी।"

"तो महामात्य इस नर्तकी को अधिक घनिष्ठता से जानते हैं ?"

"फिर भी जितना परिचय महाप्रभु को इसका प्रतीत होता है, उतना मुझको नहीं है। उदाहरण के रूप में मुझको यह ज्ञात नहीं कि यह दक्षिण पथ का भ्रमण करके आई है और वहाँ के नरेशों ने इसे पुरस्कार दिए हैं। न ही मुझे इसका ज्ञान है कि वे पुरस्कार मूल्यवान और सुंदर हैं।"

"महामात्य को इतना ज्ञान तो होना चाहिए।"

"भगवन् ! प्रभुओं तथा महाप्रभुओं के विषय में इतना कुछ जानने को सदैव बना रहता है कि एक नर्तकी की बातें जानने के लिए अवकाश ही नहीं रहता। फिर भी महाराज से मैं क्षमा चाहता हूँ और वचन देता हूँ कि इंद्रजालिक के विषय में आज नृत्य से पूर्व पूर्ण विवरण जानकर निवेदन कर दूँगा।"

इस समय चंद्रसेन आ उपस्थित हुआ और बात वहीं समाप्त हो गई। महाराज हर्षवर्धन ने कहा, "चंद्रसेन ! हमारी इच्छा है कि आज रात भारत-विख्यात नर्तकी इंद्रजालिक का नृत्य हो। प्रबंध हो सकेगा ?"

"अवश्य, महाराज !"

"तो जाओ, प्रबंध करो। रात भोजनोपरांत एक प्रहर-भर नृत्य होगा।"

२

पद्मराज राज-सभा के समाप्त होने के पश्चात् आगार से बाहर निकला तो बाणभट्ट भी महाराज को प्रणाम कर बाहर निकल आया। चंद्रसेन ने बाणभट्ट को बधाई दी तो पद्मराज के कान खड़े हो गए।

"मुझे तो बधाई की कोई बात प्रतीत नहीं हुई।" बाण कह रहा था।

"महाराज तुमसे बहुत प्रसन्न हैं।"

"उनकी प्रसन्नता का, सिवाय एक बार मुस्कराकर देखने के अतिरिक्त, अन्य कोई लक्षण दिखाई नहीं दिया।"

"देव अपनी प्रसन्नता का परिचय इसी प्रकार दिया करते हैं। तुम आज रात नृत्य के समय अवश्य आना। इस प्रकार आते-आते तुम अपनी योग्यता की छाप महाराज के मन पर अवश्य डाल सकोगे।"

बाण ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया और राजप्रासाद के बाहर की ओर चल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया। पद्मराज भी उसके पीछे-पीछे चलने लगा। कुछ पग जाकर उसने एक व्यक्ति को, जो प्रांगण में खड़ा था, कह दिया, "देखो, वह एक ब्राह्मण त्रिपुंड लगाए जा रहा है। बिना उसको पता चले, उसके ठहरने का स्थान पता कर आओ।"

यह कहकर पद्मराज अपने कार्यालय में चला गया। वहाँ अपने कार्य की देखभाल कर वह अपने निवासस्थान की ओर चल पड़ा।

घर पहुँचकर उसे अति विस्मय हुआ, जब उसने देखा कि बाणभट्ट वहाँ खड़ा है। पद्मराज के वहाँ पहुँचने पर बाण ने उन्हें नमस्कार किया। पद्मराज ने पूछा, "भट्ट जी! कैसे आगमन हुआ है?"

"कन्नौज मही के गगन में जगी ज्योति देखी थी न्यारी।
दर्शन उसके करने को तब बाणभट्ट ने की तैयारी।"

"ओह! कहाँ है वह ज्योति?"

"पतंग दीपक को कभी कुछ नहीं कहता। वह तो अपने कर्म से ही दीपक की महत्ता सिद्ध करता है। श्रीमान् के दर्शन की अभिलाषा मुझे यहाँ खींच लाई है।"

"पर मैं तो उस महान् ज्योति का, जिसके दर्शन कर तुम गद्गद होकर यहाँ आ रहे हो, एक तुच्छ सेवक-मात्र हूँ।"

"ठीक है! उस महान् ज्योति के दर्शन कर आया हूँ और नर्तकी का नृत्य देखने का निमंत्रण ले आया हूँ। अब उस महान् ज्योति के सेवक के तुच्छ दर्शन करने चला आया हूँ। पूर्ण आशा है कि श्रीमान् उन तुच्छ दर्शनों से इस पतित जीवन को वंचित नहीं रखेंगे।"

"तो आइए भट्ट जी, भीतर आ जाइए।"

महामात्य की बैठक में पहुँच बाणभट्ट ने कह दिया, "श्रीमान्! मैं एक बार पहले भी इस नगरी में आया था और तब दो ही प्रकाश-पुंज यहाँ देख पाया था। उन सूर्य तथा चंद्र-रूपी दो प्रकाश-पुंजों को छोड़कर तो शेष यहाँ अमावस की रात्रि ही दिखाई दी थी। तब तो मनोरंजन ही लक्ष्य था, परंतु अब कुछ अर्जन करने का विचार है। अब गगन में सूर्य तो दिखाई दिया है, परंतु चंद्र नहीं मिल रहा। मुझको संदेह हो रहा है कि चंद्र को केतु ने ग्रस लिया है। क्या श्रीमान् उस चंद्र को केतु से मुक्त नहीं करा देंगे?"

"कवि! कहाँ है तुम्हारा सूर्य, जिसके दर्शन कर हम भी कृतकृत्य हो सकें?"

"भगवन्! कोई कितना भी महान् क्यों न हो, वह अपने दर्शन बिना दर्पण के नहीं कर सकता। महाराज! दर्पण सूर्य के सम्मुख उपस्थित है और सूर्य यदि चाहे तो अपने दर्शन कर सकता है।"

"परंतु क्या दर्पण विकृत होने से देखने वाले को अपना मुख बहुत बढ़ा-चढ़ाकर दिखा नहीं रहा?"

"नहीं महाराज! यह दर्पण विकृत नहीं है। इसकी परीक्षा की जा सकती है।"

"हाँ, यह ठीक है। भला यह बताओ कि उस महान् ज्योति का कैसा प्रतिबिंब बना है दर्पण पर, जिसके दर्शन अभी-अभी करके आए हो?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ज्योति वास्तव में महान् है, भगवान् की विशेष शक्ति उसमें दैदीप्यमान है। विशाल भाल पर भाग्य-रेखा अति गहरी और दीर्घ है। परंतु उस ज्योति पर कृष्ण आवरण चढ़ रहा है। उस आवरण के कारण ज्योति का प्रकाश धीमा हो रहा है।"

"तो उस आवरण को उतार फेंकने के लिए क्या किया जाए?"

"क्या आवश्यकता है इस आवरण को उतारने की?"

"आवश्यकता तो है। भरत-खंड में महाअंधकार छाया हुआ है। इस अंधकार को दूर करने के लिए उस ज्योति के प्रकाश की आवश्यकता है। भरत-खंड के कोने-कोने तक प्रकाश पहुँचाने के लिए इस ज्योति पर के आवरण को उठा देना लाभकारी होगा।"

"भगवन्! क्या यह संभव है? पूर्व दिशा में उदित होते हुए भगवान् अंशुमाली के आगे से मेघमाला को हटा देने पर इस ज्योति की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। दीपक तो रात में ही कार्य करने के लिए जलाए जाते हैं। प्रभाव होते ही इनको बुझा दिया जाता है अथवा बुझ जाने दिया जाता है।"

"परंतु सूर्य है कहाँ? भरत-खंड के आकाश पर आज सूर्य दिखाई नहीं दे रहा मुझको। इसमें टिमटिमाते कई तारागण हैं। परंतु सब तारागणों के सामूहिक प्रकाश से भी सूर्य का-सा प्रकाश नहीं मिल सकता। हाँ, उन तारागणों के समूह में जो ज्योति उदित हुई है, वह मेघाच्छादित न हो, यही मेरा प्रयास है।"

"यह कैसे संभव होगा भगवन्?"

"वेग की बयार चला देने से मेघ छिन्न-भिन्न हो जाएँगे। कवि मल्हार गाएगा तो मेघ बरसेंगे और फिर पश्चिम की बयार उन नीर-रहित मेघों को उड़ाकर ले जाएगी।"

एकाएक भट्ट ने वार्तालाप का विषय बदल दिया। उसने कहा, "यह विषय अति गंभीर है, श्रीमान्! पश्चिम की बयार तो अपने साथ महामारी भी ला सकती है। इससे तो पुर्वई ही चलने दी जाए। मेघों के आने से समस्या इतनी विकट नहीं बनेगी, जितनी महामारी लाने वाली पश्चिमी बयार के आने से।

"पर श्रीमान्! यहाँ कन्नौज में एक मेरा इंदु था। मैं उसकी खोज में हूँ। कन्नौज के राज-पथ पर एक तांबूलिन अपने पूर्ण ओज से पथ पर आने-जाने वालों से अठखेलियाँ करती देखी जाती थी। आज कन्नौज उस मनोहर चितवन से रहित दिखाई दे रहा है। क्यों? यही जानने के लिए श्रीमान् जी की सेवा में उपस्थित हुआ हूँ।"

"आश्चर्य की बात है कि इंदु की खोज में चकोर यहाँ किसलिए आया है?"

"इंदु अपनी आभा जिस सूर्य से पाता था, उसी से तो इस विषय में पूछा जा सकता है। भगवन्! उसी सूर्य के समक्ष उपस्थित हो यह जानने का यत्न कर रहा हूँ कि श्रीमान् की ज्योति से आलोकित वह मेरा इंदु कहाँ छिपा हुआ है?"

"ऐसा प्रतीत होता है, कवि! कि इंदु अपनी परिधि से विचलित हो किसी अन्य सूर्य की परिधि में घूमने लगा है। परंतु इतने काल के पश्चात् चकोर को इंदु का स्मरण कैसे हुआ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"चकोर एक बार इंदु को पाने की अभिलाषा में द्युलोक की यात्रा को चल पड़ा था। इंदु तो द्युलोक में रहा नहीं, प्रभात हो चुका था और आकाश में अंशुमाली अपनी ओज बिखेरने लगा था। उस ओज के आतप से चकोर के पंख झुलस गए, तो वह उन झुलसे पंखों को स्वस्थ करने के लिए पेड़ की छाया में जा बैठा था। पंख पुनः सबल हुए हैं, तो चकोर इंदु के दर्शन के लिए व्याकुल हो, पुनः द्युलोक की यात्रा को निकल पड़ा है।"

"तो चकोर चहचहाए। संभव है कि उसके चहचहाने को सुन इंदु पुनः अपनी परिधि में आकर भ्रमण करने लगे।"

"ऐसा ही होगा भगवन्! श्रीमान् जी के अनुमान की परीक्षा भी होगी।"

"तो कवि रात नृत्य देंखने आएँगे?"

"इस नर्तकी का नृत्य कवि ने तब देखा था, जब यह अभी बालिका-मात्र थी। इस बात को दस वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। इस दस वर्षों में नर्तकी ने कितनी उन्नति की है, यह देखने की अभिलाषा हृदय में उत्पन्न हो गई है। अतएव इस अवसर से कवि लाभ उठाएगा और नर्तकी के दर्शन करने का यत्न करेगा।"

फिर भी कवि रात्रि को इंद्रजालिक का नृत्य देखने के लिए नहीं पहुँचा। महामात्य को कवि की अनुपस्थिति से आश्चर्य हुआ था, परंतु उसने यह प्रकट नहीं होने दिया। महाराज हर्ष ने भी कवि के विषय में पूछने की उत्सुकता प्रकट नहीं की।

३

बाणभट्ट महामात्य के निवासस्थान से निकल अपने गृह की ओर जा रहा था कि उसके साथ-साथ एक पीत-वसनधारी भिक्षुक चलने लगा।

बाण को संदेह हुआ कि यह जानबूझकर उसके साथ चलने लगा है। अपने संदेह का निवारण करने के लिए वह चलते-चलते मार्ग-तट पर खड़ा हो गया। वह भिक्षुक भी खड़ा हो गया! जब बाण पुनः चलने लगा, तो वह भिक्षुक भी साथ-साथ चलने लगा। इस प्रकार यह निश्चय कर कि वह भिक्षुक उसके साथ-साथ ही चल रहा है, उसने उस भिक्षुक से पूछा, "भंते! क्या चाहते हो इस निर्धन ब्राह्मण से?"

"निर्धन?" भिक्षुक ने विस्मय प्रकट कर कहा, "तो कवि अभी तक अपने निवासगृह पर नहीं गया?"

"क्यों, वहाँ क्या हो गया है?"

"वहाँ महाराज हर्षवर्धन के प्रतिहार कवि की प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

"क्या चाहते हैं वे कवि से?"

"वे कवि को महाराज द्वारा भेजे गए पुरस्कार से पुरस्कृत करना चाहते हैं।"

"पर भिक्षुक की इस विषय में जानकारी और रुचि किस प्रयोजन से है?"

"भिक्षुक को उस पुरस्कार से कोई प्रयोजन नहीं। हाँ, उस पुरस्कृत कवि से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवश्य है। महाप्रभु बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर महाराज कवि को अपना आशीर्वाद भेजते हैं। महाप्रभु की उत्कट इच्छा है कि कवि उनको दर्शन दें।"

"तो पहले उन्हीं के दर्शन के लिए चला जाए, भंते! कवि महाप्रभु के दर्शन कर कृतकृत्य होगा।"

"मेरा निवेदन है," भिक्षुक ने कहा, "पहले प्रतिहारों से निबट लिया जाए। हाथ में आई लक्ष्मी का निरादर करना बुद्धिमत्ता नहीं। न ही भगवती लक्ष्मी की छत्रछाया में पहुँचने में विलंब हितकर हो सकता है।"

"वीतराग भिक्षुक भी लक्ष्मी की महिमा से अनभिज्ञ नहीं? बहुत विचित्र है!"

भिक्षुक साथ चलता-चलता हँस पड़ा। जब बाण उसके हँसने का अर्थ जानने के लिए उसके मुख पर प्रश्न-भरी दृष्टि से देखने लगा, तो वह बोला, "मैं कन्नौज राज्य में दो सौ चैत्यों का भंडारी हूँ। सब चैत्यों की धन-संपद् का लेखा-जोखा मेरे ही हाथ में रहता है। अतः लक्ष्मी की छत्रछाया में रहने का आनन्द मुझको उपलब्ध है। इस क़ारण इस सौभाग्य की महिमा कवि जी महाराज के कर्णगोचर की है।"

"तब तो एक अनुभवी व्यक्ति की सम्मति से लाभ उठाना ही चाहिए। प्रभु! मैं अपने निवासस्थान पर जाकर महाराज द्वारा भेजे पुरस्कार से पुरस्कृत होकर ही भगवान् बोधिसत्त्व के दर्शन करने आऊँगा।"

भिक्षुक मुस्कराया और उसके साथ-साथ चलता रहा। बाण मन-ही-मन विस्मय कर रहा था कि महाराज जिस रूखेपन से उसकी ओर देखते रहे थे, उससे किसी भारी पुरस्कार की आशा करनी कठिन है। उसका विचार था कि निर्वाह के लिए कुछ वेतन के रूप में उसको भेजा गया होगा। यह भिक्षुक, जिसने कदाचित् अधिक धनराशि नहीं देखी होगी, उसके वेतन को देख चकाचौंध रह गया होगा। अथवा यह भी संभव है कि वह भिक्षुक उसकी हँसी उड़ाने के लिए एक तुच्छ उपहार की महिमा का गान करने लग गया है।

एक बात बाण की समझ में यह भी आई थी कि महामात्य से मिलकर वह उन पर अच्छा प्रभाव डाल आया है। अब बोधिसत्त्व महाराज की सेवा में उपस्थित हो उनका भी आशीर्वाद प्राप्त कर लेगा। इस प्रकार वह अपनी स्थिति कन्नौज में सुदृढ़ करने का विचार करने लगा था।

इसी प्रकार के विचारों में लगा हुआ वह अपने निवासस्थान पर जा पहुँचा। वह अभी तक चंद्रसेन द्वारा नियत गृह में ही ठहरा हुआ था। चंद्रसेन बाणभट्ट के पिता का असुर-पत्नी से उत्पन्न पुत्र था और भगवान् अवलोकितेश्वर से भली-भाँति परिचित था। वास्तव में महाप्रभु के आदेश से ही उसने बाणभट्ट को कन्नौज में बुलाया था।

जब बाण अपने निवासस्थान पर पहुँचा, तो उसने देखा कि बाहर राज्य का एक सुसज्जित रथ खड़ा है। रथ में दो बिल्कुल श्वेत अश्व जुते हुए थे और रथ तथा उसकी छत रंगारंग भूषणों और आभरणों से सुसज्जित थी। रथ में एक चाँदी का बड़ा-सा थाल रेशमी वस्त्र से ढका हुआ रखा था। पाँच सुभट्ट खड्ग धारण किए रथ की रक्षा कर रहे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। प्रतिहार-नायक स्वर्ण-मंडित वस्त्र पहने रथ के पास खड़ा था।

बाणभट्ट को आया देख प्रतिहार-नायक ने झुककर प्रणाम किया और कहा, "श्रीमान्! महाराज ने यह पत्र और यह रथ, इस पर की प्रत्येक वस्तु के साथ, आपकी सेवा में भेजा है।"

बाण ने पत्र हाथ में लिया, उसको आदर से अपने मस्तक से लगाया और गृह के भीतर प्रवेश करते हुए कहा, "प्रतिहार-नायक! भीतर जाकर पत्र पढ़कर ही इसका उत्तर महाराज देव की सेवा में भेज सकता हूँ। आओ, भीतर आ जाओ।"

प्रतिहार-नायक के संकेत से प्रतिहारों ने रथ में रखे थाल को उठाया। थाल वास्तव में भारी था और सुभट्ट उसे परिश्रम से ही उठा पा रहे थे।

बाण भीतर अपनी बैठक में पहुँचा, तो प्रतिहार उसके पीछे-पीछे थाल उठाकर भीतर ले आए और उन्होंने उसे बाण के सम्मुख रख दिया। बाण ने पत्र खोलकर पढ़ा। लिखा था :

"महाराज स्थानेश्वर-अधिपति, कन्नौज-संरक्षक, उत्तर पथ विजेता श्री हर्षवर्धन की आज्ञानुसार वत्स-वंश शिरोमणि बाणभट्ट की सेवा में निवेदन है कि महाराज कवीश्वर को, अपने राज्य की शोभा मान, यह निवासगृह, जिसमें कवि विराजमान हैं, भेंटस्वरूप देते हैं। साथ ही यह रथ, सारथि-सहित कवि महोदय की सवारी के लिए प्रदान करते हैं।

"महाराज की उत्कट इच्छा है कि कवि, सभा में पधारते समय, राज्य के एक उत्कट व्यक्ति की भाँति वस्त्राभरणों से युक्त पधारें। अतएव इस स्थिति के अनुकूल रहने के लिए कवि को दस सहस्र स्वर्ण भेजते हैं और आज्ञा करते हैं कि प्रतिवर्ष इतना ही धन कवि को अपनी मान-प्रतिष्ठा स्थायी रखने के लिए मिलता रहेगा। निवेदक—राज्य-कोषाध्यक्ष"

बाण महाराज की उदारता देख चकित रह गया। उसने प्रतिहार-नायक की ओर देखा, तो उसके संकेत से प्रतिहारों ने थाल के ऊपर से रेशमी वस्त्र हटा दिए। थाल स्वर्ण-मुद्राओं से भरा हुआ था।

बाण ने संतोषपूर्वक मुद्राओं को देखा और कहा, "कोषाध्यक्ष श्री महासेन जी से मेरा निवेदन कर दें कि महाराज की इस कृपा के लिए मैं स्वयं महाराज की सेवा में उपस्थित होकर अपनी कृतज्ञता प्रकट करूँगा।"

यह उत्तर पाकर प्रतिहार-नायक तथा अन्य प्रतिहार चले गए। इस समय रथ के सारथि ने झुककर प्रणाम करते हुए कहा, "श्रीमान्! मैं रथ का सारथि हूँ। क्या आज्ञा है मेरे लिए?"

"क्या नाम है तुम्हारा?"

"इल्वल, श्रीमान्!"

"ओह! क्या वेतन पाते हो?"

"दस स्वर्ण मासिक।"

"देखो इल्वल! अभी हम उस भिक्षुक के साथ, जो बाहर खड़ा है, भ्रमण के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाएँगे। तुम बाहर हमारी प्रतीक्षा करो। हम आ रहे हैं।"

सारथि गया तो वही भिक्षुक, जो बाण को बोधिसत्त्व जी के पास ले जाने के लिए आया था, भीतर आकर कहने लगा, "अब तो कवि अपने को निर्धन नहीं कहेगा।"

"यह तो भेंट का धन है। भेंटस्वरूप मिले धन से अपने को धनवान मानने वाला व्यक्ति तो बुद्धिरहित ही माना जाएगा।"

"कवि ! यह तुम्हारी प्रतिभा का पुरस्कार है। महाराज ने तुम्हारी 'चंडिका शतक' पढ़ी है और उसमें वर्णित श्लेष और उपमाओं को पढ़कर गद्गद हो यह पुरस्कार दिया है।"

"तो भंते ! अब बोधिसत्त्व महाराज के पास चलें।"

"पहले इस अर्जित धन को समेट लो, कवि !"

"यह इतना बोझल है कि इसको उठाने का सामर्थ्य मुझमें नहीं है।"

"तो यह भिक्षुक कवि की सहायता कर सकता है।"

बाण धन का प्रबंध कर भिक्षुक के साथ रथ पर सवार होकर चल पड़ा। वह अपने सेवक को कहता गया कि वह सूर्यास्त से एक घड़ी के पश्चात् आएगा।

नगर के बाहर एक विशाल चैत्य में पहुँच भिक्षुक कवि को बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर के पास ले गया। बोधिसत्त्व अपने आगार में एक उच्च आसन पर, एक बड़े से प्रश्रय का आश्रय लिए हुए बैठे थे। कवि ने सामने उपस्थित हो झुककर प्रणाम किया। बोधिसत्त्व ने कवि को बैठने को कह, साथ में आए भिक्षुक को संकेत किया, तो वह दोनों को अकेला छोड़कर बाहर चला गया।

"कवि !" अवलोकितेश्वर ने कहना आरम्भ किया, "यह तो तुम समझ ही गए होगे कि चंद्रसेन ने हमारी ही आज्ञा से तुम्हें यहाँ बुलाया है। हमने तुम्हारी 'पार्वती-परिणय' कविता पढ़ी है और पढ़कर अति हर्षित हुए हैं। उस अद्भुत कविता को लिखने वाले को एक ग्राम में अपनी आयु व्यर्थ गँवाते देख हमें बहुत दुःख हुआ। अतएव हमने कविश्रेष्ठ को कन्नौज में बुलाकर एक श्रेष्ठ आसन पर ला बैठाया है।

"हमारी यह अभिलाषा है कि कवि भारत में धर्म, शांति और मुक्ति-पथ की प्रेरणा देने वालों में सर्वश्रेष्ठ हो। कलह, द्वेष, हिंसा और अशांति को जन-जन के हृदय से उन्मूलन करने में कवि सबल सिद्ध हो।

"भगवान् तथागत ने संसार को दुःखों से मुक्त करने के लिए अवतार लिया था। उन्होंने अपने जीवन के परिशीलन से यह परिणाम निकाला था कि सहिष्णुता, सहनशीलता तथा मन के आवेगों पर नियंत्रण ही वास्तविक दुःखों के नाश करने में समर्थ है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार ही सब दुःखों का मूल है और इनसे मुक्ति ही निर्वाण-पथ की ओर ले जाने वाली हो सकती है।

"अतएव कवि ! अपनी वाणी और भाषा में वह प्रेरणा भर दो, जिससे संसार में सुख और शांति व्याप्त हो।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाण को इस भेंट का केवल एक ही अर्थ समझ में आया। वह यह कि उसको समझाया जा रहा है कि महाराज की ओर से जो मान-प्रतिष्ठा और सुख-सुविधा मिलने की आशा प्राप्त हुई है, उसमें बोधिसत्त्व जी का हाथ प्रमुख है। साथ ही यह कि चंद्रसेन बोधिसत्त्व जी के आदेश से ही उसको लेने गाँव गया था।

फिर भी वह समझता था कि उसको बुलाए जाने का जो उद्देश्य वर्णन किया गया है, वह श्रेष्ठ ही है। परंतु वह यह भली-भाँति समझता था कि कवि अथवा लेखक कृत्रिम रूप से निर्माण नहीं किए जाते। ये तो भगवती सरस्वती की प्रेरणा से स्वयमेव प्रस्फुटित होते हैं।

बाण ने बोधिसत्त्व के सम्मुख अपना निवेदन किया, "भगवन्! कवि तो परमात्मा का मुख-मात्र होता है। बिना उसकी इच्छा के एक शब्द भी वह नहीं कह सकता। यदि वह भगवान् की प्रेरणा के बिना कुछ कहता है, तो वह कहा शब्द नीरस, निरर्थक और प्रभावहीन ही रह जाता है। अतएव भगवान् की ओर से ही प्रेरणा होनी चाहिए कि वह अपने इस अनुचर से उचित सेवा ले।"

"भगवान्! कौन भगवान्?" बोधिसत्त्व ने विक्षुब्ध हो पूछा।

"यह तो मैं जानता नहीं। मैंने उसको कभी देखा नहीं। फिर भी मैंने ऐसा कुछ अनुभव किया है कि कविता करते समय अथवा लेख लिखते समय कोई अज्ञात शक्ति मेरी लेखनी में आ बैठती है और उसके बल से मेरी लेखनी चलती चली जाती है। यह परमात्मा है अथवा निर्जीव प्रकृति की प्रेरणा, मैं नहीं बता सकता।"

"यह संस्कार और वातावरण की प्रेरणा होती है। सो कवि! हम तुम्हारा वातावरण और तुम्हारे संस्कार ऐसे प्रस्तुत कर देंगे, जिससे शांति और सहिष्णुता की गूँज तुम्हारी लेखनी का स्पंदन करने लगे।"

"इसके लिए यह कवि भगवान् बोधिसत्त्व का अत्यंत आभारी रहेगा।"

४

अवलोकितेश्वर महाराज से प्रेरणा लेकर कवि अपने रथ में अपने निवासस्थान की ओर लौट पड़ा। सारथि रथ के अश्वों के गले में पड़ी घंटियों की टंकार गुँजाता हुआ रथ को राजपथ पर से निर्दिष्ट स्थान की ओर ले जा रहा था। बाण रथ में रखे प्रश्रय का आश्रय लिए, विचारमग्न अपने चारों ओर चलते-फिरते कन्नौज-निवासियों को देख रहा था। एकाएक उसकी दृष्टि एक स्त्री पर, जो द्रुत गति से राजपथ पर एक किनारे-किनारे चली जा रही थी, पड़ी। उसे देख और उसे पहचान बाण ने सारथि को रथ रोकने के लिए कहा। रथ रुका तो बाण लपककर रथ से उतर पड़ा और सारथि से बोला, "रथ हमारे निवासस्थान पर ले जाओ। अश्वों को खोल देना और उनके घास और दाने का प्रबंध कर देना। जाओ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब रथ चला गया तो बाण ने उस स्त्री की ओर ध्यान दिया, जिसको देख वह रथ पर से उतरा था। वह स्त्री पथ पर पर्याप्त दूर निकल चुकी थी। बाण लम्बे-लम्बे पग उठाता हुआ उसके पीछे चल पड़ा। शीघ्र ही वह उसके समीप पहुँच गया। वह स्त्री पत्रलता थी।

पत्रलता अपने साथ एक युवक को चलते देख खड़ी हो उसको देखने लगी और उसे पहचान अवाक् खड़ी रह गई। बाण ने कहा, "देवी! यहाँ पथ पर इस प्रकार खड़े रहने से तो आने-जाने वालों की भीड़ एकत्रित कर लोगी। चलो, किधर जा रही हो?"

"समीप ही। सामने की वीथिका में।"

"तो चलो मेरे गृह पर।"

"तुम्हारा गृह? वह कहाँ है?"

"राज-पथ के किनारे चौमुखे मार्ग से कुछ हटकर।"

"ऐसा प्रतीत होता है कि कहीं पड़ा हुआ कोष पा गए हो अथवा कहीं डाका डाला होगा।"

"चलकर देखो तो पता चले कि धन पड़ा पाया है अथवा कहीं डाका डाला है।"

"सत्य? तो डाका भी डालने लगे हो? तब तो तुम्हारे घर पर नहीं जाना चाहिए।"

"डाका डालता हूँ, पर निस्सहाय अबलाओं पर नहीं। देवी निस्संकोच मुझ पर विश्वास कर सकती हैं।"

"तो चलो। तुम्हारा विश्वास करना ही होगा।"

दोनों चल पड़े। चलते हुए बाण ने कहा, "मैंने सूर्य भगवान् से पूछा था कि उनकी ज्योति से प्रतिबिंबित होने वाला इंदु कहाँ है, तो सूर्य भगवान् बोले कि ऐसा प्रतीत होता है कि इंदु अपने पथ से विचलित हो किसी अन्य सूर्य की परिधि में घूमने लगा है।"

पत्रलता मुस्कराई और बोली, "सूर्य बेचारा नहीं जानता कि इंदु जिस डोर से बँधा हुआ पृथ्वी और सूर्य की प्रदक्षिणा कर रहा है, वह सहज टूटने वाली नहीं।"

"ओह! तो इंदु अभी भी सूर्य की परिधि में ही घूम रहा है? देखो देवी! क्या अब तांबूल लगाना छोड़ दिया?"

"नहीं श्रीमान्! यह तांबूलिन तीर्थ-यात्रा पर गई थी। यह कन्नौज की वीथिकाओं में चक्कर काटती-काटती ऊब, कैलाश-यात्रा के लिए चल पड़ी थी। आज ही यात्रा से लौटी हूँ और अपनी दुकान देखने गई थी कि वह किसके पास है। सुना है कि उस दुकान में तीन तांबूल बेचने वाले आ चुके हैं और तीनों ही दिवाला निकालकर भाग चुके हैं। दुकान इस समय रिक्त है। मैं उसके स्वामी से बात कर चुकी हूँ। कल से दुकान खुल जाएगी।"

"और निवास?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"निवास का प्रबंध तो वही है, जो पहले था।"

"तो इस सेवक का निवास देख लिया जाए। यदि पसंद हो तो उस स्थान की शोभा बढ़ाई जाए?"

"शोभा तो श्रीमान् से उस गृह की पहले ही बहुत अधिक हो रही होगी। हाँ, तनिक देख लूँ कि श्रीमान् को वह गृह किस बाप के उत्तराधिकार में मिला है। मुझे तो अभी तक वह दिन स्मरण है, जब श्रीमान् के पास एक बीड़ा पान का मूल्य देने तक के लिए कुछ नहीं था। आपको स्मरण होगा कि एक दिन आप मेरी दुकान के सामने, पथ के दूसरे किनारे खड़े एक प्रहर तक मुझे देखते रहे थे। जब मैंने बुलाकर पूछा था, 'युवक! वहाँ खड़े क्या कर रहे हो?'

"तो श्रीमान् का उत्तर था, 'चाँद की शोभा देख रहा हूँ।'

"मैंने हँसकर कहा था, 'चाँद पान बेचने नहीं आता।'

"आपने उत्तर दिया था, 'एक पान इन कर-कमलों से लगा दो तो कृतकृत्य हुआ मानूँगा।'

"जब मैंने पान लगाकर दिया तो श्रीमान् पान मुख में डालकर बोले, 'मूल्य हिसाब में लिख लो, एक दिन सब चुका दूँगा।'

"तदनंतर आप एक मास तक लगातार आ, पान लेकर, मार्ग के दूसरे किनारे खड़े हो मेरी सूरत देखते रहे और इसके उपरान्त एकाएक आप लोप हो गए।"

"अब मैं पिछला सब मूल्य चुका दूँगा।"

"मैंने वह रकम बट्टेखाते में डाल दी है। अब नहीं लूँगी।"

"तो एक ब्राह्मण को एक तांबूलिन के ऋण में दबा रहना पड़ेगा?"

"वह ऋण नहीं रहा। वह तो अब दान-दक्षिणा का रूप हो गया है। ब्राह्मण तो दान-दक्षिणा लेने का अधिकारी होता ही है।"

इस समय वे बाण के निवासस्थान पर पहुँच गए थे। सेवक भोजन तैयार कर स्वामी की प्रतीक्षा कर रहा था। जब दोनों बाण के आगार में पहुँचे तो सेवक ने कहा, "श्रीमान्! भोजन तैयार है।"

"खाने वाले दो हैं।" बाण ने कहा।

"दो नहीं, एक।" पत्रलता ने बात बीच में ही काटकर कहा, "मैं बिना यह जाने कि धन कहाँ से आ रहा है, इसका उपभोग नहीं कर सकती।"

"अर्थात् अपना परिचय दूँ?"

"इस समय तो अपने धन का परिचय दीजिए। साधारण परिचय से काम नहीं चलेगा।"

पत्रलता ने जब से उस गृह में प्रवेश किया था, वह ध्यानपूर्वक गृह को देख रही थी। गृह की सजावट देखकर उसे विश्वास नहीं आ रहा था कि यह बाण का निवासस्थान बन सकता है। एकाएक उसे स्मरण हो आया कि यह कन्नौज महाराज का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतिथिगृह है। इससे वह समझ गई कि बाण कन्नौज महाराज की सेवा में आ गया है। उसने मुस्कराकर कहा, "प्रतीत होता है कि आज श्रीमान् कन्नौज महाराज के अतिथि बने हुए हैं।"

"देवी की सूझ-बूझ अति श्रेष्ठ है।"

"कदाचित् आप महाप्रभु अवलोकितेश्वर के षड्यंत्र से यहाँ पहुँचे हैं।"

"षड्यंत्र?" बाण इस शब्द को सुन चकित रह गया। यही भाव दूसरे शब्दों में बोधिसत्त्व ने स्वयं स्वीकार किया था। इस पर भी उसने विस्मय प्रकट कर कहा, "देवी बोधिसत्त्व के विषय में बहुत ही हीन सम्मति रखती हैं।"

"इसमें हीनता का भास कहाँ से आ गया? श्रीमान्! देखिए, षड्यंत्र स्वयमेव कुछ बुरी बात नहीं। किसी कार्यसिद्धि के लिए गुप्त रूप से प्रयास करने को ही तो षड्यंत्र कहते हैं। षड्यंत्र शुभ कार्य के लिए भी हो सकता है और अशुभ के लिए भी। अतएव षड्यंत्रकारी होना बुरी बात नहीं है। हाँ, किसी नीच कार्य के लिए षड्यंत्र करना बुरी बात है।

"पर एक बात सिद्ध हो गई कि आपके इस अतिथिगृह में ठहरने में अवलोकितेश्वर महाराज का हाथ अवश्य है। क्या यह सत्य है?"

"कुछ तो देवी की धारणा ठीक ही है, परंतु सर्वथा नहीं। सुनो, मैं वत्स वंशजोत्पन्न बाणभट्ट हूँ। मेरा विचार था कि देवी मेरा नाम जानती होंगी?"

"ओह! अब समझी। तो आप ही देशविख्यात बाणभट्ट हैं। मैं कवि महाराज को नमस्कार करती हूँ। ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमान कन्नौज-नरेश पिछले मौखरी महाराज से अधिक रसिक हैं, जो उन्होंने एक कवि को इतने सुंदर गृह में ठहराया है।"

"केवल ठहराया ही नहीं, प्रत्युत यह गृह दान में दे दिया है। साथ ही दस सहस्र स्वर्ण वार्षिक वेतन निश्चित किया है।"

"इतना कुछ देकर क्या उन्होंने आपको यह नहीं कहा कि आप कविता किस विषय पर लिखें?"

"महाराज ने तो नहीं कहा।"

"तो किसी और ने कहा है? सत्य बताओ कवि! क्या इस विषय में आपके पथ-प्रदर्शक बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर नहीं हैं?"

"हैं तो वे ही। फिर भी देवी को यह समझ लेना चाहिए कि बोधिसत्त्व केवल पथ-प्रदर्शक मात्र हैं। इसके यह अर्थ नहीं कि उनके द्वारा निर्दिष्ट पथ को मैंने स्वीकार कर लिया है।"

"किधर का पथ बताया है महाप्रभु ने?"

"निर्वाण का, शांति और सहिष्णुता का।"

"बहुत सुंदर पथ है। पर कवि! शांति और सहिष्णुता क्या ध्येय है? यदि तो ये किसी उद्देश्य के लिए साधन-मात्र हैं, तब तो दूसरी बात है और यदि शांति स्वयमेव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्देश्य बन जाए तो जीवन का अंत ही हो जाएगा। सर्वत्र शांति और सहिष्णुता तो शव का धर्म है। क्या पूर्ण समाज को एक शव के तुल्य बनाने के लिए आपको आमंत्रित किया गया है?"

बाण पत्रलता को युक्ति करते देख चकित रह गया। वह मन में विचार करता था कि यह पान बेचनेवाली ऐसी तार्किक कैसे बन गई? तब उसकी समझ में आया कि जिस सूर्य की परिधि में यह घूमती है, वह महामात्य है। अतएव इसके मन में उस महान् सूर्य का प्रकाश प्रतिबिंबित हो रहा होगा। इतना विचारकर उसने कहा, "शांति और सहिष्णुता तो पथ है, परंतु उद्देश्य निर्वाण-प्राप्ति है।"

"निर्वाण? यह किस बला का नाम है? कवि, निर्वाण के अर्थ पूछे थे महाप्रभु से?"

"निर्वाण का अर्थ है महान् प्रशान्त अवस्था।"

"अर्थात्, महान् शांति के लिए लघुशांति उपाय है। दूसरे शब्दों में यह कहो कि मीठा खाने के लिए मीठा खाना उपाय है। तो उद्देश्य और साधन अभिन्न हो गए। उद्देश्य और पथ एक हो गए। क्या यही उपदेश महाप्रभु ने दिया है?"

इस समय पाचक ने पुनः स्मरण कराया, "श्रीमान्, भोजन तैयार है।"

"तो परस दो। दो व्यक्तियों के लिए।"

इतना कह बाण ने पत्रलता की ओर देखकर कहा, "अब तो देवी को पता चल गया होगा कि यह धन-वैभव चोरी-डाका डालकर उपलब्ध नहीं किया। यह तो महाराज ने अपने सेवक को वेतन-स्वरूप दिया है।"

"महाराज का अन्न तो मैं खाती रही हूँ। वह मैं अपना ही मानती हूँ।"

"वह कैसे? देवी का महाराज से क्या संबंध है?"

"मैं महाराज की प्रजा हूँ। मैं कर देती हूँ और पश्चात् मैं अपनी सेवाएँ देकर, उस कर द्वारा प्राप्त धन में से अपना भाग वापस ले लेती हूँ। साथ ही उचित अधिकारी द्वारा लेती हूँ। आपके धन में भी यही बात है, इस कारण यह पच जाएगा।"

भोजन परसा गया और दोनों खाने लगे। बाण ने कहा, "देवी! मुझको यह देख अत्यंत हर्ष हो रहा है कि इस गृह में पहला अतिथि वही है, जिसको मैं हृदय से आमंत्रित करना चाहता था।

"मैं आज प्रातःकाल इस नगर में आया था। आते ही मुझको इस निवासस्थान पर ठहराया गया और यह कहा गया कि मध्याह्नोत्तर मैं महाराज के दर्शन कर सकूँगा। अतएव पूजा-पाठ इत्यादि से निवृत्त हो पहला कार्य जो मैंने किया, वह देवी के दर्शन करने के लिए चौक में जाना था। वहाँ पान की दुकान बन्द देख मैंने पड़ोसियों से पूछा। पता चला कि देवी जी को दुकान छोड़े एक वर्ष से ऊपर हो चुका है और कोई नहीं जानता कि आप कहाँ हैं। इस समाचार से मुझे भारी निराशा हुई थी। मैं यह समझने लगा था कि मेरी यात्रा निष्फल गई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"महाराज से भेंट हो चुकने के पश्चात् मैं महामात्य के दर्शन करने गया और उनसे भी मैंने देवी जी के विषय में पूछा। यह मेरा अहोभाग्य है कि कन्नौज में आने के पहले ही दिन मैं देवी के दर्शन कर सका हूँ और इस निवासस्थान के अपने बनने के पहले ही प्रहर मैं देवी को आमंत्रित कर सका हूँ। इस गृह में अपने अर्जित वेतन में से यह पहला भोजन करने लगा हूँ। मेरी यह अर्जित वृत्ति कृतकृत्य माननी चाहिए, जो इस समय देवी मेरे साथ बैठकर भोग कर रही हैं।

"मेरी भगवान् से प्रार्थना है कि अब शेष जीवन-भर मुझको यह सौभाग्य नित्य और सदैव प्राप्त रहे, जिससे मैं देवी की सेवा कर उसको प्रसन्न कर सकूँ।"

पत्रलता इस लम्बी वक्तृता को सुनकर मुस्कराई और बोली, "कवि! क्या बात करते समय भी समास पर समास लगाते जाओगे? आपके यह सौभाग्य का बखान, भगवान् की कृपा का आख्यान और आपके मन की आशाओं का आह्वान कब तक चलता जाएगा?

"सुनिए, मैं आप जितनी पढ़ी-लिखी विद्वान् नहीं हूँ। मैं तो एक शब्द में अपने मन की बात कहती हूँ कि कल से तांबूलिन अपनी दुकान पर पान बेचेगी और अपने ग्राहकों को प्रसन्न करने के लिए बढ़िया-से-बढ़िया पान लगाकर देगी।"

"तो फिर क्या हुआ? यह बात मेरी आशा और अभिलाषाओं में बाधक तथा विरोधी कैसे बन सकती है?

"देवी! यह इतना बड़ा गृह रिक्त पड़ा है। कितने ही आगार हैं इसमें। इनको अपने रहने के लिए प्रयोग क्यों नहीं कर सकतीं? पान लगाते-लगाते जब देवी थक जाएँगी तो विश्राम के लिए यहाँ प्रत्येक प्रकार की सुविधा प्राप्त होगी।"

"यह निमंत्रण है अथवा आदेश?"

"निमंत्रण।"

"तो निमंत्रण की स्वीकृति और उस स्वीकृति की सीमा तथा प्रकार तो निमंत्रित व्यक्ति की इच्छा पर ही निर्भर करता है न?"

"हाँ! हाँ! यह तो है ही।"

"तो मुझको स्वीकार है। मैं जिस समय विश्राम की आवश्यकता समझूँगी, यहाँ आ जाया करूँगी। जितना चाहूँगी, खाऊँगी अथवा नहीं खाऊँगी। क्यों, है स्वीकार?"

"हाँ, बिल्कुल।"

"अतिथि की पदवी के अतिरिक्त और कोई पदवी इस निमंत्रण के साथ संबंधित तो नहीं है?"

"अतिथि स्वयं स्वतंत्रता से विचार कर निर्णय करेगा।"

इस प्रकार वार्तालाप में बहुत रात्रि व्यतीत हो गई और कवि नृत्य देखने नहीं जा सका।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५

पत्रलता ने एक-दो दिन में अपनी दुकान का प्रबंध कर लिया। एक दिन वह हाथ में पान की डोली उठाए हुए महामात्य के घर पर जा पहुँची। सूचना भेजते ही उसे भीतर बुला लिया गया। महामात्य के आगार में प्रवेश करते ही महामात्य ने उससे पूछा, "पत्रलता! कब आई हो कैलाश-यात्रा से?"

"तीन दिन हुए यहाँ पहुँची थी। दुकान का प्रबंध करने में व्यस्त रहने के कारण श्रीमान् के दर्शन करने नहीं आ सकी।"

"सुनाओ! यात्रा में कष्ट तो नहीं हुआ?"

"कष्ट और आराम साथ-साथ चलते हैं। यदि यात्रा में आनन्द तथा मानसिक संतुष्टि न मिले तो इतनी कष्टप्रद यात्रा असम्भव हो जाए। कैलाश जाकर मानव-शरीर के सहन करने की सीमा का ज्ञान हो जाता है और इतना मात्र ज्ञान भी कम सुखप्रद नहीं।"

"क्या सीमा है सहनशक्ति की?"

"सहन-शक्ति असीम है। अभ्यास से इसके लिए कुछ भी असंभव नहीं।"

"कन्नौज को देखा है? कुछ परिवर्तन प्रतीत हुआ है यहाँ?"

"हाँ श्रीमान्! पूर्ण नगर में उथल-पुथल देखी है। पथ सपाट और पक्के हो गए हैं। राजमार्ग चौड़ा कर दिया गया है। बीसियों नए भव्य भवन खड़े दिखाई देने लगे हैं। प्रजा भी पहले से अधिक समृद्ध और सम्पन्न प्रतीत होती है। दुकानों पर पहले से अधिक चहल-पहल दिखाई देती है और साधारण लोग भी भूषण और वस्त्रों से अलंकृत दिखाई देने लगे हैं।"

"तो इन दो-तीन दिनों में तुम यही देख सकी हो?"

"हाँ श्रीमान्!" पत्रलता ने महामात्य के सम्मुख भूमि पर बैठ पान लगाते हुए कहा, "एक और वस्तु देखी है, जिसने कन्नौज राज्य में चार चाँद लगा दिया प्रतीत होता है। कल एक नई बात हुई है, जो मेरे जीवनकाल में पहले कभी नहीं हुई। कन्नौज में कवियों और लेखकों का सम्मेलन हुआ था। राज-पथ पर एक विशाल भवन के प्रांगण में कन्नौज के लगभग पचास कवि तथा लेखक एकत्रित हुए थे। उसमें भारत के एक विख्यात कवि सर्वोच्च आसन पर आसीन थे। कन्नौज के महाराज देव भी उसमें एक साधारण कवि के रूप में विद्यमान थे। यह एक चमत्कार था, जो मैंने पहले कभी नहीं देखा था।"

"तो क्या हमारी पत्रलता भी उस कवि-सम्मेलन में उपस्थित हुई थी?"

"हाँ श्रीमान्! परंतु कवि के रूप में नहीं। केवल पान वितरण करने वाली के रूप में।"

"तब तो पत्रलता! तुम्हें महाराज के इस प्रयास के गुण-अवगुण जानने का अवसर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिला होगा। क्या अनुभव किया है तुमने इस कवि-सम्मेलन में ?"

"अभी तो यह आयोजन नितांत प्रारंभिक स्थिति में है। यह प्रथा अभी जड़ भी नहीं पकड़ पाई। गुण-अवगुण तो पेड़ के फल होते हैं। इस वृक्ष के फल कैसे होंगे, अभी कहना कठिन है।"

"महाराज स्वयं कवि हैं। उन्होंने अपने अनुभव और ज्ञान की वृद्धि के लिए नगर में कुछ कवियों और लेखकों को एकत्रित कर लिया है और उनको प्रतिमास एकत्रित कर अपने-अपने विषय पर विचार विनिमय करने का यह अवसर देना आरंभ किया है।"

"तो श्रीमान् इससे अति संतुष्ट प्रतीत होते हैं ?"

"मैंने ऐसी कोई बात नहीं कही। मैंने तो केवल वस्तुस्थिति का वर्णन किया है।"

"मैं यह जानना चाहती हूँ कि श्रीमान् का इस आयोजन में कितना हाथ है। इतना जानने के पश्चात् ही तो मैं इस विषय में अपना मत निवेदन कर सकूँगी।"

महामात्य ने पत्रलता के हाथ से पान लेकर मुख में रख लिया। पान को चबाते हुए उन्होंने कहा, "पत्रलता ! आज लगभग दो वर्ष पश्चात् ऐसा पान खाने को मिला है। क्या मिलाती हो इसमें ?"

"मिलाती तो साधारण कत्था, चूना, सुपारी और कुछ सुगंधित द्रव्य हूँ, परंतु यह तो आप-सरीखे श्रीमानों की अनुकंपा-मात्र ही है, जो इस तांबूलिन की तुच्छ कला की सराहना होती है।"

"तो पान लगाना भी एक कला है ?"

"हाँ श्रीमान् ! वास्तव में संसार में प्रत्येक व्यक्ति का प्रत्येक कार्य कलामय ही होता है, परंतु सबका मूल्य एक समान नहीं होता। किसका मूल्य कितना लगता है और फिर कौन उसका मूल्य लगाता है, यही उस कला की श्रेष्ठता का मापदंड हो सकता है।"

महामात्य कुछ विचार में डूबा हुआ पत्रलता के मुख पर देख रहा था। उसको इस प्रकार अपनी ओर निहारते देख पत्रलता ने पूछा, "श्रीमान् किस विचार में डूब गए हैं ?"

"हम तुम्हारे इस सिद्धांत पर विचार कर रहे हैं कि क्या सत्य ही सृष्टि में प्रत्येक प्राणी का कार्य कला है ?"

"तो श्रीमान् को इसमें संदेह है क्या ?"

"हम तो कला के अर्थ यह कार्य समझे हैं, जो इंद्रियों को प्रसन्न रखने की क्षमता रखता हो।"

"तो श्रीमान् ने ठीक ही समझा है।"

"परंतु मनुष्य का प्रत्येक कार्य तो इंद्रियों को प्रसन्न करने वाला नहीं होता। एक कुली का बोझा ढोना किस प्रकार उसकी इंद्रियों को तुष्टि प्रदान कर सकता है ?"

"कुली को बोझा ढोने से धन मिलता है और यह उसकी क्षुधा-तृप्ति में सहायक होता है। इस प्रकार उसका बोझा ढोना भी उसकी इंद्रियों को सुख देने वाला सिद्ध होता है। वह यह बोझा कभी न ढोए, यदि उसको विश्वास हो जाए कि उसके इस कार्य से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसको कभी कुछ सुखकारक वस्तु नहीं मिलेगी। परंतु बोझा ढोने से किसी-न-किसी रूप में आनन्द तो मिलता ही है। अतएव यह भी एक कला हुई, यद्यपि बहुत ही छोटी श्रेणी की।"

"परंतु बोझा ढोने से कष्ट भी तो होता है ?"

"जी हाँ। वह इस कारण कि बोझा ढोने से फल-प्राप्ति उतनी नहीं होती, जितनी वह कुली आशा रखता है। अतएव उसका कार्य कला न रहकर भार-रूप हो जाता है। यह बात तो श्रीमान् ! सब कलाओं में है।

"अब आपकी बात ही लें। कविता करना तो कला है ही। इसमें तो किसी को संदेह करने को स्थान नहीं। परंतु यदि कवि को कविता करने पर बाध्य किया जाए और उसके लिए विषय का चयन और कविता की रूपरेखा और फिर उसका पुरस्कार देना हो, तो वह कविता करना भी भार-रूप बन जाएगा। उसको तो कविता करना न कहकर बोझा ढोना ही कहना उचित होगा।"

"ओह ! तो तुम कवि-सम्मेलन के आयोजन में छिद्र देखती हो ?"

"हाँ श्रीमान् ! मेरी धारणा तो कवि के विषय में भिन्न है। वह आपके महाराज तथा बोधिसत्त्व की धारणा के विपरीत है। मैं तो यह समझती हूँ कि कवियों को यहाँ नगरों में बिठाकर उनको प्रतिमास मिलकर कविता अथवा लेख पढ़ने को कहना, उनको बोझा ढोने के लिए कहना है। फिर एक कठिनाई यह है कि उनको विषय, जिस पर वे लिखें, संकेत कर दिया जाता है। कल के सम्मेलन में एक कवि को पुरस्कृत किया गया था। वह कवि शांति की व्याख्या करने में सर्वश्रेष्ठ माना गया था।"

"क्या कहा था उसने ?"

"जिन शब्दों में उसने कहा था, वे तो मैं दोहरा नहीं सकती। हाँ, भाव कुछ ऐसे थे :

'निर्वाण सकल संसार को गति से शून्य करना है। महाप्रभु, महाप्रबुद्ध, महान् पथ-प्रदर्शक महात्मा गौतम के पथ पर चलते हुए संसार का अंत पूर्ण शांति, पूर्ण निस्तब्धता और पूर्ण निश्चलता उत्पन्न होना है। जब पशु-पक्षी, वनस्पति अथवा मानव सब एक स्तर पर हों, ऊँच-नीच से रहित हों, एक-सार, एक-रस, एक-भाव और एक-रूप हों, तब ही निर्वाण-सिद्धि समझनी चाहिए। जब पूर्ण जगत् एक आलोक से ओतप्रोत एक ही हो जाए, तो संसार की निर्वाणावस्था माननी चाहिए।

'मनुष्य संसार की संकीर्ण जटिलता है; यह प्रकृति की नवीनतम गाँठ है; यह जल में गंभीर भँवर है; यह आदि प्रकृति की अवस्था से अति दूर की वस्तु है, इसी कारण यह प्रारंभिक शांतावस्था से अति दूर अशांतिमय समस्या बनी हुई है। भगवान् इसको निर्वाण-पथ का अनुगामी करे।' "

"अरे, तुम क्या इसको कवि की एक उच्चतम भावना नहीं मानतीं ? मैं समझता हूँ कि कवि ने कल्पना की डोर को बहुत दूर तक खींचा है। वह वास्तव में ही पुरस्कृत होने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के योग्य था।"

"मैं तो श्रीमान्! एक अनपढ़ तांबूलिन हूँ। अतएव मेरी उस विद्वान् मंडली की विवेचना अनधिकृत कार्य ही है। फिर भी एक अन्य युवा कवि था। नाम था मयूर। मुझे तो उसकी कविता पसन्द थी। उसने गाया था :

'वनों में मोर नाचते हैं। उनको यह पृथ्वी अति सुंदर और हर्षदायिनी प्रतीत होती है। वह निश्चलता, निस्तब्धता और अकर्मण्यता को पसन्द नहीं करता। उसको भय है कि ऐसा होने से उसमें कोयल के मधुर गीत, बादलों का घोर गर्जन, चंद्र की शीतल चंद्रिका, प्रेयसी के प्रिय कथन और फिर भगवान् तथागत के प्रबुद्ध प्रवचन सुनने की शक्ति नहीं रह जाएगी।

'वह जानता है कि माँ के गर्भ में नौ मास पर्यन्त मल-मूत्र में विचरना अति भयानक और गंदी अवस्था है। परंतु उसके सहन करने में भी वह हर्ष अनुभव करता है, क्योंकि उसको पता है कि नौ मास के अनंतर जब उसके चक्षु खुलेंगे, उसके कर्ण श्रवण कर सकेंगे और उसकी अन्य इंद्रियाँ तथा मन इस संसार के सौंदर्य, वैभव और माधुर्य को अनुभव कर सकेंगे, तो उसको नौ मास की यंत्रणा के फलस्वरूप यह सौ वर्ष का आनन्द पाने के योग्य हो जाना अच्छा प्रतिकार प्रतीत होगा।

'वह मनुष्य को एक दुस्तर गाँठ नहीं समझता, प्रत्युत उसको भगवान् और प्रकृति के संयोग की सर्वोत्कृष्ट विभूति मानता है। वह इसको मोक्ष-प्राप्ति की अंतिम सीढ़ी समझता है। मकड़ी के अपने तार के अंतिम पग पर पहुँचने के समान, वह मनुष्य-जीवन का उद्देश्य आत्मा के परम ध्येय के समीप पहुँचना समझता है।'

"श्रीमान्! मयूर की इस कृति को जब सब कवि लोग सुन-सुनकर गद्गद हो रहे थे, तो मैं समझी थी कि उस दिन का पुरस्कार वह प्राप्त कर गया है, परंतु पुरस्कार मिला मनुष्य को प्रकृति की दुस्तर गाँठ बताने वाले को, जो इस संसार को विकृत मानता है और इससे दूर भागने को सत्कार्य मानता है; जो अकर्मण्यता को कार्य समझता है।"

महामात्य हँस पड़ा और उठते हुए बोला, "पत्रलता! हम तुम्हारे प्रति अत्यंत आभारी हैं, जो तुम इतने स्वादिष्ट और स्फूर्तिदायक पान खिलाती हो। फिर भी हमको आश्चर्य है कि कल वाले कवि-सम्मेलन में तुम्हारे पान केवल मयूर को ही स्फूर्ति दे सके।"

पत्रलता भी उठ खड़ी हुई। उसने कह दिया, "श्रीमान्! यह मेरे पानों का दोष नहीं। पान खाने वाले तो सुंदरी के सौंदर्य, मयूर के नृत्य, जूही-चंपा की सुगंधि और सुरा की मस्ती को अनुभव करते थे। परंतु पान न खाने वाले भी बैठे थे, जिनको इस सांसारिक वस्तुओं में सार प्रतीत नहीं हुआ था। मैंने यत्न किया था कि एक दक्षिणी पान उनके अधरों को भी रंगीन कर दे, परंतु उनको इससे घृणा प्रतीत होती थी। इस कारण उनका निर्णय महाशांति के पक्ष में रहा।"

महामात्य ने एक स्वर्ण पत्रलता की पान की डोली में डालते हुए कहा, "इस समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमको राज्य-परिषद् में जाना है। हम आशा करते हैं कि देवी पत्रलता नित्य इसी समय पान लेकर आया करेगी, जिससे हमारे विश्राम का यह समय अत्यंत रुचिकर एवं उपयोगी तथा ज्ञानयुक्त बातों में व्यतीत हो सके।"

पत्रलता ने एक पत्ते में पाँच पान लपेटकर महामात्य के सेवक को देते हुए कहा, "पुण्डरीक ! यह महामात्य जी को राज-सभा में जाने से पूर्व अवश्य खिला देना।"

महामात्य हँस पड़ा और पूंछने लगा, "यह क्यों ?"

"इसलिए श्रीमान् कि आप राज्य-परिषद् में श्मशान भूमि की निस्तब्धता को रोकने में सबल हो सकें।"

६

राज्य-परिषद् में उस दिन कई अति गंभीर विषयों पर निर्णय होने वाले थे। अतएव महाराज हर्षवर्धन की प्रार्थना से बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर भी राज-सभा में उपस्थित थे। सबसे महत्त्वपूर्ण विषय यह था कि शशांक पुनः सीमा पर छुटपुट आक्रमण करने लगा था और निर्धन, निस्सहाय कृषकों के धन-माल को लूटने लगा था। महाराज के पास इस प्रकार के समाचार आने लगे थे कि शशांक के सैनिक कन्नौज राज्य के मगध प्रांत में घुस, वहाँ से स्त्रियों का अपहरण कर ले जाते हैं और फिर उन्हें गौड़ राज्य के धनीमानी जनों की सेवा के लिए बेच देते हैं।

महामात्य ने राज्य-परिषद् में इन समाचारों की एक लम्बी सूची पढ़कर सुनाई। तत्पश्चात् इन समाचारों के निराकरण का उपाय बताया, "महाराज ! मैं राज्य परिषद् से यह आदेश चाहता हूँ कि गौड़ राज्य के इन कुकृत्यों को रोकने के लिए तथा उनका प्रतिकार लेने के लिए हमारे सैनिक सीमा पर सदैव भ्रमण करते रहें।"

"कितने सैनिक इस कार्य के लिए चाहिए ?" महाराज का प्रश्न था।

"सीमा तीन सौ कोस लम्बी है। प्रति पाँच कोस पर एक सैनिक शिविर बनेगा। उन साठ शिविरों में छः सहस्र अस्त्र-शस्त्र सुसज्जित सैनिक रहेंगे। पाँच-पाँच सौ के आठ दलों में वे सदा सीमा पर भ्रमण करते रहेंगे।"

"इस सबमें कितना व्यय होगा ?"

"दस सहस्र सैनिकों का भोजन तथा वस्त्रों का व्यय दो सहस्र स्वर्ण मासिक अर्थात् वार्षिक व्यय चौबीस सहस्र स्वर्ण। इनका वेतन तो पहले ही राज्य के व्यय में सम्मिलित है।"

"महाराज ! यह तो बहुत भारी व्यय है।" अवलोकितेश्वर बोले।

"चौबीस सहस्र स्वर्ण तो केवल पुंड्र के चैत्य का वार्षिक व्यय है।" महामात्य ने कहा, "हमारे राज्य में इस समय एक सहस्र से ऊपर चैत्य हैं, जिनका व्यय राजकोष से दिया जाता है। पुंड्र के महान् चैत्यों के स्तर के पचास चैत्य और हैं। मेरा कहने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिप्राय यह है कि राज्य, जो चैत्यों-जैसी राज्य के लिए अनावश्यक वस्तु के लिए इतना धन व्यय कर सकता है, उसके लिए प्रजा की रक्षा के निमित्त चौबीस सहस्र स्वर्ण तो कुछ भी नहीं है।"

"परंतु महामात्य! इतने में तो हम दो अन्य चैत्य खोल सकते हैं। दस अन्य भव्य भवन निर्माण कर सकते हैं। प्रजा के लिए सैकड़ों नित्य नए मनोरंजन के साधन जुटा सकते हैं।"

"ये तो महाराज, होते ही रहेंगे; परंतु इस समय तो प्रजा की लुटेरों से रक्षा का प्रश्न है। मनोरंजन तथा अन्य सुविधाओं की तुलना में प्रजा की रक्षा अधिक मूल्य रखती है। सुरक्षा से अधिक सुख कोई नहीं। साथ ही राजा कर लेता है, तो प्रजा की रक्षा के लिए न कि मनोरंजन के लिए। मनोरंजन तो मनुष्य अपनी-अपनी रुचि तथा सामर्थ्य के अनुसार और अपने-अपने ढंग पर स्वयं कर सकते हैं। परंतु अपनी-अपनी रक्षा प्रत्येक मनुष्य पृथक्-पृथक् नहीं कर सकता।

"राज्य का गठन सुरक्षार्थ है, मनोरंजन राज्य के लिए गौण वस्तु है।"

"देखो महामात्य!" अवलोकितेश्वर ने कहा, "होगा यह कि यदि हमारी सेना सीमा पर गई तो दोनों राज्यों में मुठभेड़ हो जाएगी। इसका अर्थ युद्ध भी हो सकता है। युद्ध का अंत क्या होगा, कहना कठिन है। हाँ, इसमें सैकड़ों मनुष्य मृत्यु के घाट उतारे जाएँगे। परिणाम यह होगा कि सैकड़ों स्त्रियाँ विधवा हो जाएँगी, अनेक माताएँ पुत्रविहीन हो जाएँगी। भूमि पर अन्न-अनाज पैदा करने वाले न रहने से भूमि बंजर हो जाएगी और शेष जो बच रहेंगे, उनके लिए खाने-पहनने का अभाव हो जाएगा। यह मूल्य देना पड़ेगा, उन सीमावर्ती कुछ कृषकों के किंचित्-मात्र कष्ट का प्रतिकार लेने का।"

"तो फिर महाप्रभु क्या उपाय बताते हैं?"

"मेरा तो यह कहना है कि मनुष्य में अच्छाई पर भरोसा रखकर शशांक के पास दूत भेजकर वार्तालाप किया जाए और उनसे जो कठिनाइयाँ हमारी प्रजा को हो रही हैं, कहकर दूर कराने का यत्न करना चाहिए।"

"ऐसा तो अभी पिछले वर्ष शशांक से मैत्री-संधि के समय विचार-विनिमय हो चुका है। उस समय मैत्री के लोभी शशांक ने हमारी प्रत्येक बात मान ली थी, परंतु उन बातों पर कार्य नहीं हुआ।

"शशांक के गौड़ राज्य में लौटने के पश्चात् केवल दो-तीन मास ही शांति से व्यतीत हुए हैं, परंतु उस काल के पश्चात् ये छुटपुट आक्रमण होने लगे। पहले मास तो एक-दो स्थानों पर ही हुए। दूसरे मास आठ स्थानों पर और अब पिछले मास में बीस बार से भी अधिक गौड़ सैनिक हमारे राज्य में सीमोल्लंघन कर, हमारी प्रजा को कष्ट पहुँचा चुके हैं।"

"महामात्य!" हर्षवर्धन ने आदेश दिया, "शशांक के पास दूत भेजकर इस विषय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में वार्तालाप किया जाए।"

"महाराज की आज्ञा का पालन किया जाएगा। फिर भी मेरा निवेदन है कि इस वार्तालाप में काफी समय भी लग सकता है। इतने समय के लिए तो सीमावर्ती गाँवों की रक्षा के लिए सेना भेजनी चहिए।"

"हम प्रजा की कठिनाई को अनुभव करते हैं, परंतु एक महान् दुर्घटना अर्थात् युद्ध से बचने के लिए, प्रजाजनों का थोड़ा-बहुत कष्ट सहन करना हम उचित समझते हैं। यही बुद्धिमत्ता है।"

"महाराज! पश्चिमोत्तरी सीमा से कुछ समाचार आए हैं, वह मैं आपके सम्मुख रखना चाहता हूँ। आज ही प्रातःकाल कश्मीर से समाचार आया है कि कश्मीर-नरेश हूण माणिकंद ने क्रुद्ध होकर श्रीनगर में कश्मीर की प्रजा पर हूण सैनिक छोड़ दिए और उन्होंने एक भयंकर हत्याकांड सम्पन्न कर दिया। दस सहस्र से अधिक नागरिक मृत्यु के घाट उतार दिए गए हैं और उनकी सहस्रों युवा स्त्रियाँ सैनिकों ने दासियाँ बना ली हैं।"

"तो हमारा इससे क्या संबंध है?"

"महाराज! वहाँ की जनता शैव है। हूण-नरेश ने उनको बौद्ध हो जाने को कहा और युवा बालकों और स्त्रियों को बलपूर्वक चैत्य में डालना आरंभ कर दिया। परिणाम यह हुआ कि प्रजा रुष्ट हो गई। यह संभव है कि जनता ने इसके प्रतिकार में कुछ किया हो और इस पर यह हत्याकांड किया गया हो।"

"तो जाँच के लिए अपने राजदूत को लिखा जाए और पूर्ण विवरण मँगवाया जाए।"

"महाराज! कन्नौज-राजदूत और उसके सब साथी मौत के घाट उतारे जा चुके हैं। ऐसा क्यों किया गया, इसका पता नहीं चला।"

"तो हमारे राजदूत ने भी शैव प्रजा के साथ विद्रोह आदि कुछ किया होगा।"

"इसका हमें कुछ भी ज्ञान नहीं हुआ महाराज! किसी भी राज्य में कभी किसी राजदूत से कोई अनुचित बात हो जाए, तो नियम यह है कि राजदूत को वापस अपने राज्य में भेज दिया जाता है और उस राजदूत के अनुचित कार्यों का विवरण लिखकर राजा के पास भेज दिया जाता है।"

"वे तो जंगली ही हैं। उनको लिखा जाए कि प्रत्येक राजकर्मचारी की हत्या की क्षतिपूर्ति प्रति-व्यक्ति पाँच सहस्र स्वर्ण और राजदूत की हत्या के लिए एक लक्ष स्वर्ण अविलंब भेज दिया जाए, अन्यथा दोनों राज्यों में शत्रुता की अवस्था बन जाएगी।"

"इतने मात्र से कुछ भी प्रभाव नहीं होगा, महाराज!"

"तो महामात्य क्या करना चाहते हैं!"

"मैं यह चाहता हूँ कि कश्मीर-हूण दूत, जो कन्नौज में विद्यमान है, बंदी बना लिया जाए और पश्चात् हूण-नरेश को यह संदेश भेजा जाए कि यदि हमारे राजदूत तथा अन्य कर्मचारियों की हत्या की हानि की पूर्ति एक मास के भीतर न की गई, तो उनके राजदूत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Central Library 157930 Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

को मृत्युदंड दिया जाएगा।"

"क्या यह न्याय है?"

"उसको बंदी बना लेना सर्वथा न्यायोचित है। हाँ, मृत्यु की धमकी अवश्य असंगत प्रतीत होगी। परंतु महाराज! वे लोग जंगली हैं। उनसे सभ्य मनुष्यों का-सा व्यवहार उनको उचित मार्ग पर लाने में सफल नहीं हो सकता। अतः जब तक कोई प्रबल धमकी न दी गई, उनका मस्तिष्क ठीक हो जाएगा, यह कहना कठिन है।"

अवलोकितेश्वर ने कहा, "हमारे विचार में राजदूत को बंदी कर लेना पर्याप्त है। कन्नौज-स्थित हूण-दूत माणिकंद की पत्नी का सगा भाई है। अतः उसके बंदी बना लेने मात्र से ही हमारा कार्य सिद्ध हो जाएगा।"

"ठीक है।" महाराज ने निर्णय दे दिया, "हूण-राजदूत और उसके साथियों को बंदी बना लिया जाए और माणिकंद को पत्र लिख दिया जाए।"

इसके पश्चात् अवलोकितेश्वर ने पिछले दिन हुए कवि-सम्मेलन की चर्चा चला दी। उन्होंने कहा, "महाराज! सुभद्र को, जिसे कल पुरस्कार मिला है, राजकवि के पद पर विभूषित किया जाए।"

महाराज हर्षवर्धन ने बात बदलकर कहा, "हमें भारी खेद है कि महामात्य कल के कवि-सम्मेलन में उपस्थित नहीं हुए। कवि-सम्मेलन अत्यंत सफल रहा।"

"महाराज! मुझको सूचना ही नहीं थी कि ऐसा कोई सम्मेलन होने वाला है, जिसमें श्रीमान् भी भाग लेने वाले हैं।"

"'महामात्य को इसकी सूचना नहीं मिली?"

"नहीं महाराज! फिर भी जो कुछ वहाँ हुआ, वह मुझको सूचित कर दिया गया है।"

"किसने सूचित किया है?"

"मेरे सेवकों ने सुभद्र के पुरस्कृत किए जाने की सूचना दी है।"

"यह ठीक है। सुभद्र की कविता सुन सब अश्रुपात करने लगे थे।"

"तब तो वहाँ उपस्थित न हो सकने का मुझे वास्तव में खेद है। मनुष्य जैसे जटिल, संकीर्ण और कठिन गाँठ की बुरी अवस्था पर मैं भी दो अश्रु गिरा सकता। महाराज! आपके आगामी कवि-समारोह पर अवश्य आमंत्रित किया जाऊँगा, ऐसी आशा करता हूँ।

"मयूर के विषय में मेरे गुप्तचर ने बहुत ही प्रशंसात्मक बात कही है।"

"वह तो विदूषक प्रतीत होता था। उसकी बात सुन सब श्रोतागण हँस-हँसकर दोहरे हो रहे थे। फिर भी उसकी कविता में कुछ विशेष भाव नहीं था।

"हमने बाणभट्ट से यह कहा है कि वह हमारी जीवनी लिखे। इस महाकवि में एक बात विलक्षण है। वह जब लिखता है तो शब्द, वाक्य और प्रश्वास पूर्ण गद्य एक अटूट धारा-सी बन जाती है। उस धारा में न कहीं पूर्णविराम होता है और न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्ध-विराम। परिणाम यह होता है कि वाक्य के आरंभ से चल अंत तक पहुँचने तक पाठक यह भूल जाता है कि वाक्य कहाँ से आरंभ हुआ था।"

"महाराज ! इसी कारण उसकी कृतियाँ सर्व-साधारण में प्रचार नहीं पा सकेंगी।"

"तो महाराज ! उसको आदेश दे दिया जाए कि श्रीमान् का चरित्र सरल भाषा में लिखा जाए।" अवलोकितेश्वर ने कहा।

"यह कह दिया गया है। देखें, कैसे लिखता है।"

७

पत्रलता प्रातःकाल से लेकर मध्याह्न तक नगर के जिन विशेष-विशेष व्यक्तियों के घरों में पान देने जाया करती थी, इनमें बाण और पद्मराज का घर भी था। महामात्य पद्मराज के घर पर, जहाँ वह राजनीति और इतिहास की चर्चा करती थी, वहाँ महामात्य की लड़की अलकनंदा से चित्रकला के विषय में वार्तालाप भी करती थी। अलकनंदा अब बाईस वर्ष की युवती थी। अभी तक उसका विवाह नहीं हुआ था। अलकनंदा स्वयं तो चित्रों में इतनी लीन रहती थी कि उसको विवाह की सुध-बुध तक नहीं थी। साथ ही उसके ऊपर किसी युवक की दृष्टि भी नहीं टिकी थी, जो उससे विवाह का प्रस्ताव करता। पत्रलता प्रायः नित्य अलकनंदा के आगार में जाती और उसको तूलिका लिए किसी चित्र पर चलाते देख, उसके समीप बैठ, उसको एक बीड़ा पान दे, कभी उसकी कला पर एक-आध टिप्पणी कर चली आती थी। अलकनंदा को पत्रलता की टिप्पणियाँ अति शिक्षाप्रद प्रतीत होती थीं।

जब से पत्रलता कैलाश-यात्रा से लौटी थी, अलकनंदा उससे यात्रा का विवरण पूछती रहती थी। पत्रलता का स्वभाव था कि वह अपनी समालोचना में सभ्यतापूर्वक, परंतु निर्भीकता से अपनी सम्मति दिया करती थी।

अलकनंदा पार्वती-सहित शिव का चित्र बना रही थी। उस चित्र पर कार्य करते हुए उसे कई मास व्यतीत हो चुके थे। पत्रलता के वर्णनानुसार उसने शिव तथा पार्वती के पीछे कैलाश पर्वत चित्रित किया था। आज वह समझ रही थी कि उसका चित्र पूर्ण हो चुका है। इस कारण वह पत्रलता की प्रतीक्षा कर रही थी। पत्रलता जब महामात्य से उलझी, तो तीन घड़ी-भर वहाँ बैठी रही। उसको इतनी देर तक अपने पिता के आगार में बैठे देख वह उकता गई और उसको बुलाने वहाँ जा पहुँची।

पत्रलता महामात्य को राजनीति के विषय में अपनी सम्मति दे रही थी। उसका कहना था, "श्रीमान् ! एक दुर्बलात्मा को भारत का सम्राट् बनाकर भारी भूल हुई है।"

"ठीक है पत्रलता !" महामात्य का कहना था, "परंतु एक बात तुम नहीं समझतीं कि कौन है किसी को सम्राट् बनाने वाला ? कोई सम्राट् बनता है तो वह अपने पूर्वजन्म के कर्मों के फल से बनता है। हम विद्वान् लोग तो यही कर सकते हैं कि इन महापुरुषों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के विचार और कार्यों को ठीक दिशा में चलने की प्रेरणा देते रहें। वह मैं नित्य करता हूँ, परंतु इस भाग्यशाली सम्राट् की भाग्यरेखा का मार्गदर्शन करने वाला एक अन्य महापुरुष उपस्थित है। वह है बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर। जब-जब भी मैं कोई ऐसी सम्मति देता हूँ, जिसमें किंचित् मात्र भी संघर्ष की संभावना प्रतीत होती हो, तो महाप्रभु उस संघर्ष के परिणामों का इतने भयानक रूप में वर्णन कर देते हैं कि महाराज संघर्ष से भागकर शांति का मार्ग ग्रहण करने लगते हैं।"

"श्रीमान् जी ठीक कहते होंगे। मुझको श्रीमान् के प्रयत्नों में अविश्वास नहीं। मैं तो यह कह रही थी कि भारत देश पर काले बादलों की घटाएँ उमड़ती चली आ रही हैं। गांधार देश से हूण, वाह्लीक देश पर आक्रमण कर वहाँ की प्रजा को लूट-पीटकर सिंधु पार लौट जाते हैं। कश्मीर के हूण तो अब पुनः श्रीकंठ में ऊधम मचाने पर उतर आए हैं। हूणों ने अपने राज्य-प्रसार की अब एक नवीन विधि निकाली है। वे एकाएक आक्रमण करते हैं। लूट मचाकर लोगों को पकड़, दास-दासियाँ बना यहाँ से ले जाते हैं। अपने देश में पहुँच वे कुछ बौद्धों को मुक्त कर यहाँ भेज देते हैं। ये बौद्ध हूणों की प्रशंसा के पुल बाँध देते हैं। परिणाम यह हो रहा है कि श्रीकंठ तथा वाह्लीक देश में प्रजा हमारे राजा की अकर्मण्यता देख विदेशी राजाओं की प्रशंसक होती जा रही है। साथ ही भारत की बौद्ध प्रजा के मन में बौद्ध हूणों के लिए सहानुभूति उत्पन्न हो रही है।

"श्रीमान्! यह एक भयंकर स्थिति है। इसका प्रतिशोध अविलंब होना चाहिए।"

"मैं विवश हूँ पत्रलता!"

"क्यों? आपके मार्ग में बाधा क्या है? बाणभट्ट की सम्मति है कि महाराज हर्ष तो देवता हैं, सरलचित्त हैं और शूरवीर भी हैं। केवल वे किसी दुष्ट प्रभाव में आकर विपरीत मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं।"

"वह दुष्ट प्रभाव है अथवा श्रेष्ठ, मैं इस पर टीका-टिप्पणी नहीं कर सकता। जो कुछ भी है, वह बोधिसत्त्व का प्रयत्न ही है।"

"तो इस प्रभाव को दूर करने का उपाय श्रीमान् नहीं जानते?"

"मैं यत्न करता रहता हूँ। परंतु दिन-प्रतिदिन महाराज पर महाप्रभु का प्रभाव बढ़ता जाता है। इस बढ़ते हुए प्रभाव में कुछ मेरा भी हाथ है, यद्यपि सीधे रूप में नहीं।

"राज्यांतर्गत पूर्ण व्यवस्था मेरे हाथ में है—कर-प्राप्ति, कर-वृद्धि, कर-वितरण और फिर राज्य-भर के नागरिकों की सुख-सुविधा का प्रबंध, बौद्ध-चैत्यों पर उचित व्यय तथा मंदिरों और देवालयों की सहायता, वे सब-कुछ कार्य मैं कर रहा हूँ। मैंने नगरों को विशाल और सुंदर बनाने में, प्रजा के रहने के लिए सहस्रों गृह-निर्माण कराने में, बालकों की शिक्षा-दीक्षा का प्रबंध कराने में, रुग्णालय और पशुशालाएँ खुलवाने में और अन्य अनेक सरकारी कार्यों में राज्य का धन व्यय किया है। प्रजा यह सब देखकर राजा का गुणानुवाद करती है। इस राज्यान्तर्गत उन्नति, शांति और सुव्यवस्था को इस बात का प्रमाण माना जाता है कि राज्य की विदेश नीति सफल है। महाप्रभु का कहना है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब-कुछ तभी संभव हो सका है, जब राज्य बाहर के सब राज्यों से मित्रता रखे हुए है। यदि राज्य अन्य राज्यों से युद्ध में उलझ गया तो यह सब उन्नति रुक जाएगी।

"इस प्रकार अपने राज्य की विदेश नीति की प्रशंसा करने में मैं भी एक साधन बन रहा हूँ; फिर भी मैं यह अपना कर्तव्य मानता हूँ कि जहाँ तक मेरी शक्ति है, मैं प्रजा-हित के कार्यों में लगा रहूँ।"

"परंतु श्रीमान्! यह सुख-सुविधा, यह धन-वैभव, यह आमोद-प्रमोद सबके-सब धरे रह जाएँगे, जब विदेशी सेना के पाँव तले यह आमोद-प्रमोद में संलग्न प्रजा कुचली जाएगी।

"कश्मीर में हूण सैनिकों ने जो कुछ भी अत्याचार किया है, उसको श्रवण कर तो दुःख और ग्लानि से मन भर जाता है। वही कुछ अन्य राज्यों में भी हो सकता है।"

"पत्रलता! यह राजनीति है। इसको उचित मार्ग पर ले जाने का प्रयत्न हो सकता है, परंतु फल भगवान् के अधीन है।

"साथ ही समाज और राष्ट्र के सुख-दुःख में एक-आध व्यक्ति का कार्य कारण नहीं होता। महाराज अशोक का राज्य एक महान् ढोंग था। वह एक ढोंग के आश्रय चलता रहा। उसके चलने में प्रजा के विचार तथा सामयिक सुख-लालसा भारी कारण था। उसका परिणाम भी प्रजा को सहन करना पड़ा। पूर्ण देश सीथियनों और शकों के पाँव तले कुचला गया। यहाँ की स्त्रियाँ गांधार तथा दमिष्क के बाजारों में नीलाम की गईं। सती-साध्वी स्त्रियाँ वेश्याओं का जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य की गईं। यह अशांति और दुःख उस क्षणिक शांति और सुख का परिणाम था, जिसके लिए प्रजा एक भ्रममूलक विचारधारा की उपासिका बनी रही।"

"ठीक है श्रीमान्! परंतु प्रजा को भ्रममूलक विचारधारा से निकालकर वास्तविक परिस्थिति का ज्ञान कराना किसका काम है?"

"यह कार्य है ब्राह्मण वर्ग का। आज ब्राह्मण वर्ग तेजहीन, क्षीणबुद्धि और लोभी हो गया है। ब्राह्मण समाज व्यर्थ के देवालयों और मंदिरों में पूजा-कीर्तन करने में लगा हुआ है। वह भक्ति-मार्ग को ही सब-कुछ मान, कर्म-मार्ग को हीन समझ, इसका त्याग करता जाता है। कर्म का त्याग तो हो नहीं सकता, त्याग हुआ है श्रेष्ठ कर्मों का और ग्रहण हुआ है विकृत, दूषित और दुःखदायी कर्मों का। भोग-विलास की लालसा बढ़ गई है और तपस्या दुस्तर होने से त्याज्य हो गई है।"

पत्रलता इस वार्तालाप से संतुष्टि अनुभव नहीं करती थी। एक बात वह समझ रही थी कि बौद्ध सम्प्रदाय पापों को शांत करने के प्रयास में मनुष्य में मानवता ही शांत करने का कार्य करने लगा है। वह समझती थी कि निर्वाण-कर्म हीनता है। इसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने से कर्महीनता बढ़ जाती है। महामात्य के कथनानुसार कर्मरहित होना असंभव होने से, श्रेष्ठ कर्म, जो कठिनता से संपन्न होते हैं, छूटते जाते हैं और वे कर्म, जिनको करने में कम कठिनाई और अधिक सुख प्राप्त होता है, ग्रहण किए जा रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह उदास मुख नमस्कार कर महामात्य के आगार से निकली तो द्वार पर उसने हाथ में तूलिका लिए अलकनंदा को देखा। पत्रलता को उठते देख अलकनंदा ने कहा, "सखी ! आज मेरी चित्रशाला में नहीं आओगी ?"

"क्यों नहीं ! जब सखी आमंत्रित करती है तो क्यों नहीं आऊँगी ? चलो।"

अलकनंदा ने चलते हुए कहा, "मेरा पार्वती तथा शिव का चित्र पूर्ण हो चुका प्रतीत होता है। चलकर देखो। मैं तुम्हारी सम्मति जानने के लिए उत्सुक हूँ।"

पत्रलता चुपचाप अलकनंदा के साथ चल रही थी। अलकनंदा ने अपना कहना चालू रखा, "जैसा तुमने कैलाश का वर्णन किया था, वैसा ही मैंने चित्रित करने का यत्न किया है। देखो, ठीक बैठा है अथवा नहीं।"

इस समय दोनों चित्रशाला में जा पहुँचीं। सत्य ही अलकनंदा ने भव्य दृश्य चित्रित किया था। कैलाश के दृश्य का वर्णन करने में पत्रलता ने अपने पूर्ण ज्ञान का परिचय दिया था और अलकनंदा ने उसको चित्रपट पर अंकित करने में अपनी पूर्ण कुशलता का प्रयोग किया था। यह तो थी पृष्ठभूमि। वास्तविक चित्र था महादेव का समाधिस्थ अवस्था में और पार्वती का उनका ध्यान आकर्षित करने के लिए नृत्य-मुद्रा में। पत्रलता चित्र को देख मुग्ध खड़ी रह गई। चिरकाल तक अध्ययन करने के पश्चात् उसने कहा, "सखी अलकनंदा ! सत्य ही तुम बधाई की पात्र हो। बहुत सुंदर चित्र बनाया है तुमने।

"परंतु एक बात है। यह चित्र वही प्रेरणा दे रहा है, जो अन्य अनेक कलाकार, लेखक, कवि आदि आज समाज को दे रहे हैं। इससे तुम्हारी कृति अति सुंदर होते हुए भी विशेषताहीन है। देखो सखी ! कला के दो रूप हैं। एक इंद्रियों को प्रसन्न करना। यह तो तुम्हारे चित्र में विविध रंगों के सम्मिश्रण से भली-भाँति स्पष्ट हो रहा है। यदि किसी कला में केवल मनोरंजन ही हो तो वह निष्प्राण ही मानी जानी चाहिए। फिर प्रेरणा भी हो और वह सबल भी हो, परंतु दूषित दिशा की ओर हो तो कला सप्राण तो होगी, परंतु एक बोझा बन समाज को दुःख-सागर में डुबो देने में सबल हो जाएगी।

"आज समाज में कवि हैं तो शांति के गुण गाते हैं, लेखक हैं तो अकर्मण्यता की सराहना करते हैं और चित्रकार समाधि और भक्ति के चित्र बनाते हैं। ये सब प्रेरणाएँ समाज को अशुद्ध मार्ग की ओर ले जा रही हैं। परिणाम विनाशकारी ही हो सकता है।

"सखी ! कोई ऐसा चित्र बनाओ, जिसमें शिव तांडव करता दिखाई दे, जिसमें महादेव राक्षसों का दमन करता प्रतीत हो। पार्वती और गंगा के स्थान दुर्गा और काली का निर्माण करो, जिससे दुष्टों का दमन करने की प्रेरणा मिले, न कि वास्तविक अशांति में शांति की।"

"क्या अशांति को दूर करने में शांति सबल नहीं है ?" अलकनंदा ने पूछा।

"सखी ! शांति की स्थापना के लिए प्रत्येक उपाय शुभ है। सब उपायों में भेद और दंड अंतिम हैं। इनके प्रयोग की प्रेरणा देने वाला भी तो कोई कलाकार चाहिए। मेरी हार्दिक इच्छा है कि वह तुम बन जाओ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८

पत्रलता तीसरे प्रहर कन्नौज के राजमार्ग के चौक में दुकान पर बैठती थी। उसके दुकान खोलते ही नगर के सैकड़ों युवक पान लेने आते और उसके अलौकिक सौंदर्य और पान लगाने के चातुर्य की प्रशंसा करते।

यह कार्य एक प्रहर रात्रि तक चलता था। उस समय वह दुकान बंद कर, अपने पानों की डोली उठा अपने घर चली जाती। वह कन्नौज की एक वीथिका में, वहाँ के एक विख्यात विद्वान् आचार्य वाराहमित्र के गृह पर रहती थी। यद्यपि बाण उसको अपने गृह में रहने का निमंत्रण दे चुका था और वह बाण को बहुत पसंद भी करती थी, फिर भी वह उसके गृह में उसके साथ रहने के लिए अपने मन को तैयार नहीं कर सकती थी।

जिस दिन वह अलकनंदा को प्रेरणा देकर आई, उस दिन अपनी दुकान पर अन्यमनस्क भाव में बैठी एक यंत्र की भाँति पान लगाती रही। ग्राहक आते, पान लेते और उसके सामने एक टका से लेकर एक रजत तक पान का मूल्य देकर चले जाते थे। पत्रलता का यह स्वभाव था कि मूल्य की ओर कभी आँख उठाकर भी नहीं देखती थी कि कौन क्या दे गया है। कभी कोई एक रजत देकर शेष वापस लेना चाहता, तो स्वयं ही गिनकर उठा लेता। पत्रलता को इतना अवकाश ही नहीं मिलता था कि वह गिनती-मिनती में पड़े।

उसी दिन बाणभट्ट भी उसकी दुकान पर आ पहुँचा। पत्रलता अपने विचारों में इतनी लीन थी कि उसे पता ही नहीं चला कि बाण आया है। बाण ने उसका ध्यान आकर्षित करने के लिए पूछा, "देवी! कई दिनों से दर्शन नहीं हुए। स्वास्थ्य तो ठीक है?"

"ओह!" पत्रलता ने आँख उठाकर बाण को देखते हुए कहा, "नहीं।"

"तो चिकित्सा होनी चाहिए। मेरे ज्ञान में एक सिद्ध चिकित्सक आए हैं। उनके दर्शन नहीं करोगी?"

"क्या होगा दर्शनों से?"

"यहाँ यह पान लगाने से क्या हो रहा है? कन्नौज के धनिकों के कर्महीन युवा पुत्र तुम्हारे कमल-नेत्रों को एक बार देखने के लोभ में दीपशिखा पर पतंगों की भाँति मँडराते रहते हैं। तुम उनको अपने तेज में झुलसा-झुलसाकर जलाती हो और उनको जलते देख आनंद लेती हो। यह भी भला कोई कार्य है!"

उसी समय कन्नौज के एक धनकुबेर का पुत्र अपनी प्रेमिका के साथ पान लेने आ खड़ा हुआ। युवक की प्रेमिका ने कहा, "पत्रलता, आज ऐसा पान खिलाओ कि रात-भर आँखों में झपकी-मात्र न आ सके।"

"देवी!" पत्रलता ने हँसकर कहा, "ऐसा यदि प्रणयी को खिलाओगी तो वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊबकर किसी दूसरी प्रेयसी का रसास्वादन करने चला जाएगा और यदि स्वयं खाओगी तो कामज्वर से संतप्त रात-भर बिलखती रहोगी।"

"तो हम दोनों ही खाएँगे।" धनी युवक ने कहा, "जिससे तुम्हारी दोनों भविष्य-वाणियाँ असत्य हो जाएँ।"

पत्रलता हँस पड़ी और बोली, "भगवान् तथागत तुम्हारा कल्याण करें।"

बाण पत्रलता के आशीर्वाद-भरे वचन सुनकर हँसते हुए पूछने लगा, "देवी ! पान का दाम तो मिला आधी रजत और इस शुभ कल्याण-कामना का क्या मिला तुमको ?"

युवक की प्रेमिका ने कह दिया, "इस कल्याण-कामना के प्रतिकार में हम कामना करते हैं कि तांबूलिन का प्रणयी आज रात इससे रूठ जाए, जिससे यह किसी अन्य के कल्याण में संलग्न हो सके।"

"शुभकामना के लिए धन्यवाद देवी !" पत्रलता ने कहा

जब वे चले गए तो बाण ने कहा, "इन मूर्खों को पान खिलाने से और अपनी युवावस्था को इस प्रकार जलाने से क्या लाभ हो रहा है तुमको ?"

"भट्ट ! तुम इस बात को समझ नहीं सकोगे। इस पर बातचीत से कुछ लाभ नहीं। बताओ, तुम्हारे सिद्ध चिकित्सक कौन हैं ? कहाँ से आए हैं ?"

"वे तुषार शैलभू-प्रदेश के रहने वाले हैं। महाकाल भैरव के उपासक अघोरी बाबा हैं।"

"उन्होंने मुझको स्मरण किया है ?"

"देवी ! तुम उनको जानती हो ?"

"हाँ, नगर से पाँच कोस के अंतर पर एक टूटी दीर्घिका के तट पर एक भैरव का मंदिर है। कहीं वही दीर्घिका वाले ही तो नहीं हैं ?"

बाण हँस पड़ा।

पत्रलता ने अन्यमनस्क भाव में कहा, "मेरी रुचि उन बाबा से मिलने की नहीं है।"

"क्यों ?"

"मुझे वह कोई मायावी व्यक्ति प्रतीत होता है। वह दूसरों के हृदय की बात जान लेता है, परंतु अपने हृदय की बात नहीं कहता।"

"तो इसमें वैचित्र्य क्या है ? दूसरों के हृदय की बात जानने के लिए अपने हृदय को उसके हृदय से सुस्वर करना पड़ता है न ! यदि ऐसा कर सकोगी तो तुम भी जान जाओगी।"

"उसके हृदय से सुस्वर होने के लिए तो उसकी सेवा में अपना सब-कुछ अर्पण कर देना पड़ता है। यह मैं नहीं कर सकती। न ही मेरी ऐसी इच्छा है। नर-कपाल में मद्य सेवन करते हुए मैंने एक बार उसे देखा था और देखते ही मेरा मन ग्लानि से भर गया था और मैं वहाँ से चली आई थी। उसका आग्रह था कि मैं भी उस मद्य में से पान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करूँ। इसके पश्चात् एक सप्ताह तक मैं उस ग्लानि को अपने मन में से निकाल नहीं सकी थी।"

"देवी! आज बाबा ने मुझको बताया है कि तुम चित्त में उद्विग्न बैठी हो। वे, इसका कारण और उसकी चिकित्सा जानते हैं। उनका आदेश है कि मैं तुमसे कहूँ कि तुम उनसे आज मध्य-रात्रि से पूर्व मिलो।"

"यहाँ से पाँच कोस की यात्रा करूँ?"

"नहीं, देवी को इस सेवक के गृह तक चलना पड़ेगा। आधी घड़ी में पहुँच जाओगी। आधी घड़ी वापस आने में लगेगी।"

"और क्या उन बाबा जी का भैरवी से आमोद-प्रमोद देखूँ?"

"आश्चर्य है कि देवी पत्रलता इन बाबा जी के विषय में बहुत कुछ जानती हैं।"

"इस ज्ञान पर भी चित्त को वैसी शांति नहीं, जैसी उस वाममार्गी बाबा और उनकी भैरवी में है। वह भैरव-स्थान है, वहाँ श्मशान की-सी निस्तब्धता है। नर-मांस की, जो आग पर भूना जाता है, दुर्गंधि और मदिरा, जो नर-कपाल में पी जाती है, अगर-तगर आदि द्रव्यों के जलने की सुगंधि, यह सब एक ऐसा मिश्रण-सा प्रतीत होता है, जिसको देख और अनुभव करने पर वमन करने को चित्त करने लगता है।"

"इस पर भी देवी को यह ज्ञान होना चाहिए कि बाबा बहुत पते की बात कहते हैं।"

"हाँ, यह चमत्कार तो देखा है। मैं कैलाश-यात्रा से लौट रही थी। कन्नौज आते हुए उस टूटी दीर्घिका तक पहुँचते-पहुँचते रात हो गई। भैरव-स्थान को मैं शिव-मंदिर समझ भीतर चली गई। उस स्थान को निर्जन पा, मैंने अपने आँचल से थोड़ा-सा स्थान साफ किया और रात्रि वहीं व्यतीत करने का निश्चय करके लेट गई।

"थकावट से शीघ्र ही निद्रा में लीन हो गई, परंतु बहुत देर तक नहीं सो सकी। जहाँ सोई थी, उसके सामने एक प्रांगण में किसी के अट्टहास को सुन मैं जाग पड़ी। मेरी आँख खुली तो देखा कि आँगन में अग्नि प्रज्वलित थी। एक गाढ़-गौरिक वस्त्रधारिणी स्त्री हाथ में त्रिशूल लिए उस प्रज्वलित अग्नि को हिला रही थी। इस समय सड़े मांस की दुर्गंध को मैंने अनुभव किया। मैं समझ गई कि वह मांस भून रही है।

"मन में आया कि उठकर भाग जाऊँ, परंतु इस भय से कि इस निर्जन स्थान पर इस पिशाचिनी द्वारा परलोकगामिनी न बन जाऊँ, चुपचाप लेटी रही। अग्नि धक-धक जल रही थी। ऐसा प्रतीत होता था कि मांस की मेद उस अग्नि में होम हो रही है और उस अग्नि को अधिकाधिक प्रज्वलित कर रही है।

"इस प्रकाश में मैंने देखा कि उस स्त्री के खुले पिंगल-वर्ण केश गुल्फों तक लटके ऐसे लग रहे थे, मानो सायंकालीन अरुण मेघ-मंडल में विद्युत् की शाखाएँ अचंचल होकर रुक गई हैं। उस स्त्री का सुनहरा मुखमंडल उन जटाओं में अग्नि के प्रकाश में द्विगुण दीप्ति से चमक रहा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"स्त्री के नेत्र रक्त-वर्ण थे और उनमें से एक विशेष प्रकार की चमक निकल रही थी। इस समय प्रांगण के दूसरी ओर एक दालान में से पुनः अट्टहास सुनाई दिया और मेरी दृष्टि उस ओर गई। अग्नि के प्रकाश से पूर्ण दालान जगमगा रहा था। मैंने देखा कि एक तेजोमय जटाजूटधारी, शरीर से नग्न, केवल कमर पर व्याघ्र-चर्म लपेटे हुए और व्याघ्र-चर्म के आसन पर बैठा एक विशालकाय व्यक्ति है, नर-कपाल को हाथ में लिए उसमें से कुछ पी-पीकर हँस रहा है। खूब हँसकर उसने कहा, 'ओ भैरवी ! भोज तैयार हुआ ?'

'अभी कुछ देर है बाबा !'

'आधी रात्रि व्यतीत हो गई। साधना का समय निकल रहा है।'

'बस आई बाबा !'

'देखो, वह सामने के दालान में एक भक्तिनी भूखी विश्राम कर रही है। यह कालभैरव का प्रसाद उसको भी देना है।'

"मैं इस बात से सन्न रह गई। मेरा विचार कि मैं वहाँ अनदेखी लेटी हुई हूँ, असत्य सिद्ध हुआ। अब वहाँ लेटा रहना ठीक न समझ मैं उठकर बैठ गई। मुझको अनुभव हुआ कि मेरे पूर्ण अंग शिथिल और शक्तिहीन हो रहे हैं और मैं वहाँ से उठकर भागने में असमर्थ हूँ।

"मैंने यत्न किया कि उठकर मंदिर के बाहर हो जाऊँ, परंतु कुछ ऐसा अनुभव हुआ कि मुझको कोई पकड़कर बैठाए हुए है। मैं चुपचाप बैठी रही। इतने में उस स्त्री ने त्रिशूल पर उस मांस के पिंड को अग्नि से बाहर निकाला। देखने से यह किसी मनुष्य की जाँघ प्रतीत होती थी। मैं यह देख काँप उठी। उस स्त्री ने अपनी कमर से एक छुरी निकाली और मांस-पिंड में से टुकड़े काट-काटकर ढाक के पत्तों में डालने लगी। चार पत्ते थे। चारों में उसने मांस के टुकड़े डाले। जब मांस-पिंड पूर्ण काट डाला गया और टाँग की लंबी हड्डी मात्र रह गई तो उसने वह हड्डी मेरी ओर फेंक दी। मैंने देखा कि वह वास्तव में नर-जाँघ की हड्डी थी।

"मेरे पूर्ण शरीर से पसीना छूटने लगा। मैंने एक बार फिर यत्न किया कि उठूँ। इस बार मैं उठने में सफल हो गई। इस समय सामने के दालान में बैठे बाबा ने कहा, 'बिटिया ! प्रसाद लिए बिना मत जाना, अन्यथा घोर अमंगल होगा।'

"मैं मूर्तिवत् खड़ी रह गई। उस स्त्री ने चारों डूने उठाए और बाबा के सम्मुख ले गई। तदनंतर क्या हुआ मैं कह नहीं सकती। मेरे पाँव उठे और अनायास ही उस दालान की ओर चल पड़े, जिधर बाबा बैठा था। जब मैं दालान में पहुँची तो मुझे दालान की दीवार के साथ भैरव की मूर्ति दिखाई पड़ी। अग्नि के प्रकाश में, जो अब मेद के जल चुकने से कुछ धीमा पड़ गया था, काल-भैरव की विकराल मूर्ति लंबी जिह्वा निकाले, श्वेत आँखों से मेरी ओर मुस्कराती हुई प्रतीत हुई। मैं समझ रही थी कि वहाँ की दुर्गंध से मेरा मस्तिष्क विचारशून्य हो रहा है, परंतु मैं विवश थी और वहाँ से लौटना चाहते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी हट नहीं सकी। मैं मानयुक्त मुद्रा में उस मूर्ति के सम्मुख खड़ी थी।

"भैरवी ने चारों डूने मूर्ति के सम्मुख रख दिए। पश्चात् उसने एक कोने में पड़े चार नर-कपालों को उठाकर, झाड़-फूँककर सामने रख, उनमें एक मटकी में से मद्य, जिसकी तीव्र गंध दालान में फैल रही थी, डाली। अब भैरवी एक ठीकरे पर अग्नि में से कुछ अंगार उठा लाई और उनको मूर्ति के सम्मुख रख, हाथ जोड़ खड़ी हो गई। इस समय बाबा अपने आसन से उठकर भैरवी के समीप आ खड़ा हुआ। वे दोनों मुझसे कुछ आगे परंतु एक ओर हटकर खड़े थे। बाबा ने एक चुटकी-भर कुछ द्रव्य अंगारों पर फेंका। वह द्रव्य ऐसे जलने लगा, जैसे कर्पूर जलता है, परंतु वह कर्पूर नहीं था। उसके जलने से कुछ ऐसी गंध उठी जो न तो सुगंधि कही जा सकती थी और न ही दुर्गंध। साथ ही मुझको कुछ ऐसा प्रतीत होने लगा कि वह दालान जगमग-जगमग करने लगा है। मैं अचेत नहीं हो रही थी, फिर भी मुझे ऐसा अनुभव होने लगा था कि मैं स्वप्न में हूँ और उस स्वप्न में वहाँ प्रकाश देख रही हूँ। वह भैरवी और बाबा भी वहाँ थे, परंतु अत्यंत सुंदर आभरण पहने हुए। न तो भैरवी गेरुए वस्त्र पहने थी और न बाबा व्याघ्र-चर्म पहने था। बाबा की वे जटिल जटाएँ अब सुंदर घुँघराले केश दिखाई देने लगे थे और बाबा कोई ओजस्वी युवक प्रतीत होता था। भैरवी भी अब कोई अत्यंत सुंदर स्त्री का रूप धारण कर चुकी थी।

"इस समय सामने की प्रतिमा ने हाथ पसारा और एक डूना उठाकर उसने मांस अपने मुख में डाल लिया। पश्चात् एक नर-कपाल को उठाकर वह प्रतिमा मद्य पी गई। उस समय इस सबमें मुझे कुछ विशेषता अनुभव नहीं हुई थी; कुछ देर पश्चात् उस द्रव्य के जल चुकने पर पुनः अंधकार हो गया और इसके साथ ही मुझे फिर सब-कुछ वास्तविक रूप में दिखाई देने लगा। मैंने अनुभव किया कि मुझमें पुनः चपलता आ गई है और मेरे अंग-प्रत्यंग थकावट से मुक्त हो चलने के लिए तैयार हो गए हैं।

"मैंने भैरव बाबा की ओर देखा। वह और भैरवी अपने पूर्व वस्त्रों और रूपरेखा में दिखाई दे रहे थे। मैंने डूनों की ओर देखा। तीन डूने मांस वाले और तीन नर-कपाल मदिरा से भरे हुए थे। एक खाली डूना मूर्ति के चरणों में पड़ा था और खाली नर-कपाल मूर्ति के हाथ से लुढ़ककर गिरते-गिरते अटका लटक रहा था।

"मैं इस चमत्कार को देख आश्चर्य और विस्मय में डूबी हुई वहाँ खड़ी थी।"

९

"बाबा ने कहा, 'भक्तिनी! यह डूना और यह मदिरा उठा लो। बाहर की दीर्घिका के जल में इनको प्रवाह दो। प्रवाह करते समय मन में यह कह देना :

'अरुण इव पुरःसरो रविं पवन इवातिजवो जलागमम्।
शुभमशुभमथापिवा नृणां कथयति पूर्व निदर्शनोदयः॥'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं इस आदेश को पा मन में अति प्रसन्न हुई और तुरंत दोनों वस्तुओं को उठाकर मंदिर से बाहर आ गई। यह अमावस की रात्रि थी और बाहर पूर्ण अंधकार छा रहा था। तारों के प्रकाश में मैं मार्ग टटोल-टटोलकर दीर्घिका के तट पर पहुँची और डूना और नर-कपाल, दोनों दीर्घिका में फेंक, वहीं बैठ गंभीर विचार में पड़ गई। मैं सोचती थी कि मैंने जो कुछ देखा था, क्या वह स्वप्न है ? परंतु मैं सोई हुई नहीं थी और मैं देख रही थी कि मांस के डूने और नर-कपाल के जल में फेंकने से जल अभी भी तरंगित हो रहा था। सबसे आश्चर्यजनक बात यह थी कि मुझको अपना पेट किसी भारी वस्तु के ख़ाने से भरा हुआ प्रतीत होता था। मैं तृप्ति अनुभव कर रही थी।

"अमावस की रात्रि होने के कारण मुझको मार्ग का ज्ञान नहीं हो रहा था। अतएव मैंने वहीं दीर्घिका के तट पर बैठे-बैठे रात्रि व्यतीत कर दी।

"सूर्योदय होने पर मैं वहाँ से चलने के विचार से उठी। उस समय मेरे मन में लालसा उठी कि देखूँ कि रात्रि की घटना क्या वास्तव में घटित हुई थी अथवा वह मेरा भ्रम-मात्र था ? यद्यपि मैं भीतर जाने से डरती थी, फिर भी मैं अपनी उत्सुकता मिटाने से स्वयं को रोक नहीं सकी। मैं भीतर गई और वहाँ रात्रि की घटना के सब चिह्न देख चकित रह गई। नर-जाँघ की हड्डी वहीं पड़ी थी, जहाँ फेंकी गई थी। दालान में दो डूने खाली पड़े थे। एक डूना मूर्ति के चरणों पर पड़ा था। मूर्ति के मुख पर मांस खाने के लक्षण थे। एक नर-कपाल अभी भी मूर्ति के हाथ में उँगली से अटका हुआ लटक रहा था।

"दालान के बीच अग्नि जलने के स्पष्ट लक्षण थे। बाबा और भैरवी वहाँ नहीं थे। मंदिर सुनसान था।

"मैं इस सब घटना पर विचार करती हुई लौट आई। नर-मांस के भुनने और नर-कपाल में मद्य की बात स्मरण कर मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। जब मुझको उस काल की तृप्ति का ज्ञान होता है तो वमन करने को जी करता है।"

"देवी !" बाण ने कहा, "आज तीसरे पहर वह बाबा मेरे पास आया और कहने लगा, 'बेटा ! महाकाल भैरव की आज्ञा हुई है कि तुम देवी पत्रलता को यहाँ ले आओ।'

"मुझको उसके कथन पर संदेह हुआ तो उसने मुझको समीप बिठाकर कहा, 'देखो, उस खिड़की में क्या है ?' वह खिड़की प्रांगण में खुलती थी, परंतु मुझे उसमें से प्रांगण दिखाई नहीं दिया। मुझको तुम वहाँ खड़ी दिखाई दीं। तुम अपनी दुकान पर बैठी पान लगा रही थीं। बाबा ने कहा, 'इस भक्तिनी को बुला लाओ। भगवान् को इससे कार्य लेना है।'

"मैं अभी भी संशयात्मक भाव में तुम्हें खिड़की में से देख रहा था। एकाएक क्या देखता हूँ कि महाप्रभु बोधिसत्त्व महाराज तुम्हारे सामने आ खड़े हुए हैं और तुम उनको पान लगाकर देने लगी हो। वे पान लेकर प्रसन्न हुए और तुमको आशीर्वाद देकर चले गए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तभी खिड़की में से वह दृश्य लोप हो गया और प्रांगण की वस्तुएँ दिखाई देने लगीं। बाबा ने कहा, 'देखो बेटा! कल यह होने वाला है। उससे पूर्व इस देवी से मुझे मिलना है। उसको कहना कि दीर्घिका के तट पर महाकाल भैरव मंदिर वाले बाबा उसको बुलाते हैं।'

"सो मैं तुम्हें बुलाने चला आया हूँ।"

पत्रलता ने पूछा, "कब चलना होगा?"

"आज मध्य-रात्रि से पूर्व। पश्चात् वह कन्नौज से चला जाना चाहता है।"

"तो अभी चलना चाहिए।"

पत्रलता ने यह कहकर दुकान के भीतर आवाज दी, "प्राण!"

एक सुकुमार बालक भीतर से निकल आया। उसके हाथ पान लगाने के कारण चूने-कत्थे से लाल हो रहे थे। पत्रलता ने उससे कहा, "देखो प्राण! आज मैं एक विशेष कार्य से जा रही हूँ। तुम दुकान समेटकर घर चले जाओ और वहाँ आचार्य जी से कह देना कि मैं रात्रि को देर से वापस आऊँगी; वे सो जाएँ, परंतु द्वार खुला ही रहने दें।"

इतना कह पत्रलता उठ खड़ी हुई। दुकान के भीतर जाकर, कौशेय उत्तरीय पहन बाहर आकर बाण के साथ चलने को तैयार हो गई।

बाण ने पूछा, "यह दुकान पर जो धन पड़ा है, क्या वह यहीं पड़ा रहेगा?"

पत्रलता ने मुस्कराकर बाण की ओर देख कहा, "यह मेरा नहीं है। जिसका है, उसके पास चला जाएगा।"

दोनों चल पड़े। बाण ने चलते हुए पूछा, "किसका है?"

"जिसकी मैं हूँ।" पत्रलता ने मुस्कराकर कहा।

बाण ने विस्मय में पूछा, "और देवी पत्रलता क़िसकी हैं?"

"उनका नाम मैं नहीं लेती।"

"अर्थात् तुम्हारे पतिदेव हैं?"

"मैंने ऐसा कहा है?"

"नाम न लेने से तो यही अनुमान लग सकता है।"

"कवियों के अनुमान हैं न!"

"देवी! सत्य बताओ। तुम्हारा विवाह हो चुका है क्या?"

"यह कैसा प्रश्न है? कवि! भला कुँवारी लड़कियों से कोई ऐसे प्रश्न पूछता है?"

"तो तुम कुँवारी हो। भगवान् का धन्यवाद है।"

"भला यह बात धन्यवाद की कैसे हो गई? मेरी आयु पच्चीस वर्ष के लगभग है। मैं कुँवारी हूँ और आपको यह बात अच्छी लग रही है। कैसी बात विचार रहे हैं आप?"

"मैं विचार कर रहा हूँ कि देवी पत्रलता को मैं यदि अपने गृह की शोभा के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ले जा सकूँ तो अपने को कृतकृत्य मानूँगा। जब देवी ने कहा कि वह कुँवारी हैं तो मुझे अपने विचार की पूर्ति में आशा की किरण दिखाई दी। इसी कारण तो भगवान् का धन्यवाद किया था।"

"केवल मात्र मेरे कुँवारी होने से कवि की आशा पूरी होगी और मैं कवि के घर जा बैठूँगी, क्या यह अनुमान निराधार नहीं है?"

"तो देवी जीवनपर्यन्त कुँवारी रहने का प्रण ले चुकी हैं?"

"ऐसी कोई बात नहीं। फिर भी मुझको कोई कारण प्रतीत नहीं होता कि मैं आपके घर की शोभा बनूँ।"

"इसमें कोई बाधा है क्या?"

"है; परंतु बाधा कवि में ही है। कवि से बाहर कुछ नहीं।"

"अर्थात् तुम मुझमें किसी बात का अभाव देखती हो?"

"वह तो है ही, परंतु यह मेरी सामर्थ्य के बाहर की बात है, जो मैं उसका निरूपण कर सकूँ। कदाचित् मैं स्वयं ही इसे समझ नहीं सकती।"

"यह देवी का भ्रम-मात्र भी तो हो सकता है।"

"भ्रम जब तक भी रहता है, सत्य बनकर रहता है। भ्रम निवारण होने पर भी वह भ्रम की संज्ञा प्राप्त करता है।"

"तो इस भ्रम के निवारण का प्रयत्न कैसे किया जाए? जब तक यह पता न चले कि अभाव क्या है, कहाँ है, तब तक उस विषय का भ्रम दूर नहीं हो सकता।"

"ऐसी अवस्था में भगवान् से प्रार्थना करनी चाहिए कि वह मेरे मन के संशयों का निवारण करे और मेरे मन में प्रकाश दे, जिससे यह भ्रम दूर हो सके।"

"तो देवी! यही बता दो कि भगवान् को कहाँ ढूँढूँ?"

"जहाँ धन्यवाद करने के लिए ढूँढ़ा था। तनिक विचार कर देखिए कि यह भ .वान् को न जानना ही तो कहीं वह अभाव नहीं, जो मेरे मन में खटक रहा है?"

"अर्थात् मेरा नास्तिक्य मेरा अभाव है, जिस कारण मैं देवी को रुचिकर नहीं हूँ?"

"मैंने यह नहीं कहा। कवि! मैं अपने मन की बात नहीं जानती। जब मैं तीर्थयात्रा से लौटी और यहाँ पहुँचने के पहले ही दिन कवि के दर्शन हुए तो मैं बहुत प्रसन्न हुई थी। कवि ने अपने गृह में मुझे ठहरने का निमंत्रण भी दिया था, परंतु जब मुझको ज्ञात हुआ कि इस निमंत्रण के पीछे मुझे गृहस्थिनी बनाने की इच्छा प्रेरणा दे रही है, तो मैंने निमंत्रण अस्वीकार कर दिया। मैंने अपने एक पूर्व-परिचित आचार्य श्री वाराहमित्र के गृह में निवास ले लिया है। वे मुझसे अपनी लड़की के समान व्यवहार रखते हैं। वहाँ माता जी भी हैं और उन विदुषी देवी की छत्रछाया में रहते हुए मुझको किसी प्रकार का कष्ट नहीं है।

"आचार्य जी का कहना है कि मुझको अभी अपना पूज्यदेव नहीं मिला।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"देवी के आचार्य कहाँ रहते हैं ?"

"क्या करेंगे जानकर ?"

"उनका शिष्य बनूँगा। कदाचित् वे अपने शिष्य को उसके अभाव का दर्शन करा सकें और फिर उसको दूर करने का उपाय भी बता दें।"

"ठीक है। नगर के चौक में से, जहाँ मेरी दुकान है, राजप्रासाद को जाते हुए, दाहिने हाथ पाँचवीं वीथिका में आचार्य जी का घर है। उनके घर के बाहर एक मैना, स्वेच्छा से, बिना पिंजड़े में बंद, एक आलने में बैठी वेद-मंत्र गान किया करती है।"

"तो वह मैना उड़ नहीं जाती ?"

"कदाचित् उसको वन में उड़ने से अधिक स्वतंत्रता उस आलने में प्राप्त है। ऐसा प्रतीत होता है कि एक ऊँचे वृक्ष पर बैठकर विचरने से जो रक्षा वह अनुभव करती है, उससे कहीं अधिक वह आलने में पाती है। तभी तो वह कभी उड़कर, आकाश-भ्रमण कर भी वहाँ लौट आने में अपना कल्याण मानती है।"

"तब तो उन महापुरुष के दर्शन करने ही होंगे !"

"यह तो चमत्कार माता जी का है। घर में माता जी का राज्य है और घर के सब प्राणी माता जी की आज्ञा के अधीन रहते हैं।"

"तो और प्राणी भी हैं वहाँ ?"

"हाँ, उस मैना के अतिरिक्त एक मैं भी तो हूँ। वह प्राण भी है, जिसको दुकान में पान लगाते छोड़ आई हूँ। सब प्रसन्न और संतुष्ट रहते हैं।"

१०

अघोरी बाबा बाणभट्ट के गृह के प्रांगण में डेरा डाले बैठे थे। जब पत्रलता और बाण वहाँ पहुँचे तो बाबा भोजन कर रहे थे। भट्ट का सेवक भोजन करा रहा था। शाक-भाजी, मिष्ठान्न, रोटी, भात, चटनी, अचार जो कुछ पाकशाला में था, वह सब बाबा जी के सामने ला-लाकर रखा जा रहा था और बाबा जी उसे चट करते जाते थे।

बाण और पत्रलता बाबा जी के सम्मुख भूमि पर जा बैठे। बाबा ने उनको देखकर कहा, "बैठो बिटिया ! भगवान् कालभैरव ने तुमको स्मरण किया है। तुम्हारी उससे भेंट अभी कराता हूँ। पहले इस कवि भट्ट के पाचक का अभिमान चूर कर दूँ।"

बाण ने सतर्क हो पूछा, "क्या हुआ है, महाराज ! क्या धृष्टता कर दी है इसने, जो इस पर कोप निकाला जा रहा है ?"

"भट्ट ! उसने तुम्हारे आदेश से मुझसे भोजन करने का आग्रह किया। मैंने कहा कि इच्छा नहीं है। इसने पुनः आग्रह करते हुए कहा कि इस गृह में सदैव दस-बारह व्यक्तियों के भोजन का प्रबंध रहता है। मैंने कहा कि यह व्यर्थ की बात करता है। वह तो ईश्वरेच्छा के बिना एक को भी पेट भरकर खिला नहीं सकता। फिर भी इसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिमानपूर्वक कहा कि वह एक वर्ष से यहाँ कार्य कर रहा है और नित्य कवि के भोजन के पश्चात् पंद्रह-बीस भिक्षुओं को बढ़िया-बढ़िया पकवान बाँटे जाते हैं। मैंने विचार किया कि इस अभिमानी पाचक को बता दूँ कि देने वाला न वह है, न कवि। भगवान् देता है। तुम दोनों तो साधन-मात्र हो। इस कारण कह दिया कि आज यह एक ही अतिथि का पेट भर दे तो जानूँ। वह पकाने लगा है। सेवक खिला रहा है। अब तक सारा अन्न समाप्त हो चुका प्रतीत होता है।"

बाण और पत्रलता हँस पड़े। भैरव बाबा सामने रखी रोटियों को, एक-एक रोटी का एक-एक ग्रास बनाकर निगल रहा था। पत्रलता को कालभैरव के मांस के डूने को मुख में उँडेलने का दृश्य स्मरण हो आया। लगभग वैसे ही वह भैरव बाबा रोटी पर रोटी मुख में डाल रहा था। इस समय सेवक रोटियों की एक थई एक थाली में रखकर ले आया। उनको बाबा के सम्मुख रख बाणभट्ट के मुख की ओर देख बोला, "स्वामी! घर में अन्न समाप्त हो चुका है। आज्ञा हो तो बाजार से और ले आऊँ?"

बाण ने हँसकर कहा, "पाचक को बुला लाओ।"

बाबा अभी भी एक-एक रोटी को ले, पूनी की भाँति लपेट मुख में रख, एक-दो बार चबाकर निगल रहा था। इस समय पाचक आया और साष्टाँग प्रणाम कर बोला, "महाराज! क्षमा कर दें। पाकशाला में सब-कुछ समाप्त हो चुका है।"

भैरव बाबा हँस पड़ा और बोला, "क्षमा किया। उठो और देखो। देने वाला भगवान् है। सदैव नम्रता से अतिथि की सेवा किया करो। जाओ, जीवन-भर सुख और शांति पाओगे।"

पाचक उठा तो बाबा ने भी खाना समाप्त कर दिया। सेवक बर्तन उठाकर ले गया। बाण स्वयं लोटे में जल ले आया और बाबा के हाथ धुलाने और कुल्ला कराने लगा।

पश्चात् सब लोग बैठक में चले गए। बाबा अपने व्याघ्र-चर्म को बिछाकर उस पर बैठ गया। पत्रलता ने भी बैठते हुए पूछा, "बाबा! क्या आज्ञा है?"

"बेटी! आज प्रातःकाल महाकाल भैरव ने आदेश दिया है कि तुमको मिलकर कल होने वाली एक घटना का संकेत दे आऊँ। तुम आ गई हो। भगवान् कालभैरव की अत्यंत कृपा है। घटना इस प्रकार होगी। वह देखो।"

बाबा ने सामने दीवार पर टँगे एक चित्र की ओर उँगली कर दी। पत्रलता और बाण दोनों उस चित्र की ओर देखने लगे। वह चित्र महाराज हर्षदेव का था, परंतु बाबा के उस ओर संकेत करने पर वह एक सफेद पट के समान दिखाई देने लगा।

एक श्वेत पट पर कुछ हिल रहा प्रतीत होने लगा। पत्रलता को विस्मय हुआ, जब उसने देखा कि उस पर वह स्वयं अपने हाथ में पान की डोली लिए चली जाती दिखाई दे रही है। धीरे-धीरे उस पट पर और भी कुछ दिखाई देने लगा। यह कन्नौज बाजार का चित्र था और वह बाजार में पान की डोली हाथ में लिए हुए चली जा रही है। कुछ दूर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाने पर महामात्य का निवासगृह दिखाई देने लगा। वह उस गृह में प्रवेश कर गई। भीतर गृह की बैठक में वह चली गई। वहाँ महामात्य और महाप्रभु बोधिसत्त्व बैठे गंभीर वार्तालाप में मग्न दिखाई दिए। पत्रलता उन्हें देखकर लौटने ही लगी थी कि महामात्य ने उसे बुला लिया। वह बैठक में प्रवेश कर उनके सामने जा खड़ी हुई। महामात्य ने कहा, "पत्रलता! पान नहीं खिलाओगी आज?"

पत्रलता वहीं बैठ गई और डोली खोल पान लगाने लगी। पान लगाकर जब उसने महामात्य को दिया, तो महामात्य ने वह पान महाप्रभु की ओर बढ़ाते हुए कहा, "भगवन्! इस देवी के हाथ का पान लीजिए। यह अपनी कला में अत्यंत प्रवीण है।"

"यह कौन है?"

"कन्नौज की सुविख्यात तांबूलिन, देवी पत्रलता।"

"ओह! समझ गया। लाओ देवी! आज तुम्हारे हाथ का लगा पान खाकर देखूँ कि वास्तव में तुम्हारे पान की महिमा है अथवा तुम्हारे रूप-लावण्य की।"

महाप्रभु ने पान लेकर मुख में डाल लिया और चबाने लगे। पत्रलता ने दूसरा पान लगाकर महामात्य को दे दिया। पश्चात् वह उन दोनों के वार्तालाप में विघ्न न डालने के लिए उठ खड़ी हुई। तदनंतर वह चित्र धुँधला होने लगा और हर्षवर्धन का चित्र पुनः दिखाई पड़ने लगा।

पत्रलता इस भ्रममूलक दृश्य को देख उस रात्रि के महाकाल भैरव के मंदिर के दृश्य को स्मरण करने लगी। उसको दोनों में समानता प्रतीत हुई। इससे वह बोली, "बाबा! यह क्या नाटक करते हैं आप? उस रात भी आपने कुछ दिखाया था और आज भी। मैं इन सबको मस्तिष्क का विकार समझती हूँ।"

"बेटी! मैं यह कुछ नहीं जानता। मेरा तो कहना है कि काल एक अति प्रबल प्रवाह है। उसको रोकने की सामर्थ्य किसी में नहीं। जो लोग उसको रोकने का यत्न करते हैं, वे स्वयं इस चक्की में पिस जाते हैं। कुछ भी कार्य करना हो तो काल के प्रवाह के साथ-साथ बहते हुए ही किया जा सकता है। देखो देवी! उस दिन तुमने जो देखा था, वह सत्य था, भ्रम नहीं था। केवल उसका आलंकारिक रूप ही दृष्टिगोचर हुआ था। आज भी जो तुमने देखा है, वह आलंकारिक रूप में सत्य है और कल जो तुम देखने जा रही हो, वह भी सत्य ही होगा।

"महाकाल भैरव के आदेश से तुमको यह अद्‌भुत वस्तु देने आया हूँ। कल तुम जो पहला पान महामात्य के हाथ में दोगी उसमें यह अद्‌भुत द्रव्य डालकर देना। यदि तुमने इसके कुछ भी विपरीत किया, तो भारी अनिष्ट हो जाने की संभावना है।"

इतना कह बाबा ने एक पुड़िया में कुछ श्वेत द्रव्य बँधा हुआ पत्रलता को दे दिया। पत्रलता ने पुड़िया को खोलकर देखा और पूछा, "बाबा! यह क्या है? कहीं विष तो नहीं?"

बाबा हँस पड़ा और पुड़िया में से आधी चुटकी ले, मुख में डालकर निगल गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुड़िया में से एक विशेष प्रकार की सुगंधि आ रही थी। बाबा ने कहा, "देखो, यह विष नहीं है। यह महाकाल भैरव का प्रसाद है। महाप्रभु से भगवान् भैरव कुछ कार्य सिद्ध कराना चाहता है। यह क्या कार्य है, मैं स्वयं नहीं जानता। न ही मैं जानता हूँ कि यह किस प्रकार सिद्ध होगा। मैं तो एक क्षुद्र अनुचर रूप में आया हूँ और उनका संदेश दे रहा हूँ।"

"जब तक मुझको पता न चले कि इससे क्या कार्य-सिद्धि होगी, मैं इसका प्रयोग नहीं करूँगी।"

"तुम नास्तिक प्रतीत होती हो। आश्चर्य तो यह है कि भगवान् किस-किससे अपना कार्य सिद्ध कराता है।"

"पर बाबा ! यदि महाकाल भैरव इतना कुछ कर सकता है, तो वह मुझको ही क्यों नहीं बता देता कि वह क्या कार्य सिद्ध कराना चाहता है? वह मेरें मन को प्रेरणा क्यों नहीं देता कि यह कार्य की सिद्धि मानव-कल्याण के हेतु है? जैसे उसने कल की होने वाली घटना को दिखाया है, वैसे ही उसके आगे की बात क्यों नहीं दिखा देता? देखो बाबा ! मैं समझती हूँ कि आप सिद्धि-प्राप्त व्यक्ति हैं। आपकी सिद्धि यही है कि अपने मन के भावों को दूसरों के मस्तिष्क में ऐसा अंकित करते हैं कि वह दूसरा व्यक्ति वैसा ही देखने लगता है, जैसा आप चाहते हैं। उस दिन जो आपने दिखाया, वह अपने सम्मोहन के प्रभाव से दिखाया था। मैं सम्मोहित हुई वही कुछ देख रही थी, जो कुछ आप दिखाना चाहते थे। आज भी आपने अपने मन की बात मुझको दिखा दी है। आप जो कुछ दिखाते हैं, सत्य ही होगा और जो कुछ इस पुड़िया का प्रभाव होने वाला है, वह होकर ही रहेगा, इस पर मुझे विश्वास नहीं आता। मैं न तो परिस्थितियों और घटनाओं की दासी हूँ और न ही मैं किसी आदेश को, बिना उसका कारण और परिणाम जाने, पालन करूँगी।"

"देखो बिटिया ! उस दिन तुमको बिना प्रसाद खाए आधार हो गया था, क्या वह भी कल्पना थी?"

पत्रलता यह सुन आश्चर्यचकित रह गई। बाबा ने आगे कहा, "देखो, तुम इस पुड़िया को रखो। यदि तुम्हारा मन माने तो इसका प्रयोग करना और यदि न माने तो मत करना। इतना मैं कह देना चाहता हूँ कि जो कुछ होने वाला है, वह हुए बिना नहीं रहेगा। तुम और मैं उसको रोक नहीं सकेंगे। केवल इतना कहना चाहता हूँ कि यदि सत्य हृदय से भगवान् से प्रार्थना करोगी, तो वह तुमको इस सबका रहस्य भी बता देगा। वह तुम्हारे मन में प्रवेश करेगा और फिर तुम्हें प्रेरणा देकर तुमसे कार्य सम्पन्न कराएगा।"

"परंतु मुझसे ही भगवान् ऐसा क्यों कराएगा? भगवान् बिना मेरे अथवा किसी अन्य की सहायता के भी तो अपना कार्य सिद्ध कर सकता है। वह ऐसा कर क्यों नहीं लेता? मैं तो एक बुद्धिशील प्राणी हूँ और बिना सोचे-समझे कोई कार्य नहीं कर सकती।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं यह सब नहीं जानता। तुमको कुछ दूर तक भविष्य में होने वाली घटना का दर्शन मिला। भगवान् की कृपा होगी तो उससे भी आगे होने वाली बात का पता चल जाएगा।"

बाण बाबा की सब बातों से अत्यंत ही प्रभावित हुआ था। पत्रलता पर भी प्रभाव तो पड़ा था, परंतु अभी तक वह मन में अपने कर्तव्य का निश्चय नहीं कर सकी थी। वह गंभीर विचार में लीन हो गई। बाण ने बाबा से पूछा, "बाबा! यह आपको किसने बताया था कि मैं इस देवी से परिचित हूँ?"

"भगवान् महाकाल ने।"

"उसने यह भी बताया है क्या कि मेरा इस देवी से क्या संबंध है?"

"हाँ, भगवान् का कहना है कि तुम इस देवी के पिछले जन्म के पति हो, परंतु इस जन्म में एक महापुरुष के श्राप के कारण तुम्हारा समागम नहीं हो सकता।"

बाण का मुख यह सुन उतर गया। पत्रलता अवाक् बैठी रह गई। कुछ काल तक दोनों गंभीर विचार में बैठे रहे। पश्चात् पत्रलता ने एकाएक कहा, "मुझको तो आपका यह न सिद्ध हो सकने वाला वक्तव्य-मात्र ही प्रतीत होता है।"

बाण ने बाबा से अति दुःखित मन से पूछा, "मैंने उन महापुरुष का क्या अनिष्ट किया था, जो उन्होंने मुझे श्राप दिया?"

"यह जानना असंभव नहीं बेटा!" बाबा ने कहा, "परंतु यह तुम्हारी निज की बात है। तुम ही इसके रहस्य को जान सकते हो। महाकाल भैरव की उपासना करो। वह त्रिकालज्ञ है और तुमको सब-कुछ दिखाने की सामर्थ्य रखता है।"

"उसकी उपासना किस प्रकार की जा सकती है?"

"इसको जानना और सीखना चाहते हो तो भैरवी को तुम्हारे पास भेज दूँगा। उसको प्रसन्न करोगे तो वह तुमको बता देगी।"

"महाराज! आपने मुझे अपने भूतकाल में झाँकने का अवसर दिया है। मैं जीवन-भर आपका आभारी रहूँगा। मुझे आगे भी मार्ग दिखाइए।"

इस समय राजप्रासाद से मध्य रात्रि का घड़ियाल बजा और बाबा उठ खड़ा हुआ। उठते ही उसने कहा, "बेटा! अब मैं चलता हूँ। कार्य किसी अन्य स्थान पर मेरा आह्वान कर रहा है।"

इतना कह, बिना कवि अथवा पत्रलता को कुछ भी कहे, घर से निकलकर अन्धकार में विलीन हो गया। पत्रलता और बाण दोनों अपने-अपने विचारों में लीन बैठे रहे।

कितनी ही देर तक वे वैसे ही बैठे रहे। बाण अपने भूतकाल और श्राप के विषय में विचार कर रहा था और पत्रलता बाबा द्वारा दी गई भभूत के प्रयोग के विषय में सोच रही थी। आखिर बाण ने शान्ति भंग की। उसने कहा, "देवी! तुम क्या समझती हो?"

"किस विषय में?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तुम किस विषय पर विचार कर रही हो?"

"महाप्रभु को पान में भभूत देने के विषय में।"

"वाह! यह भला कोई विचार करने की बात है! देखो पत्रलता! बाबा ने जो चित्र कल की घटनाओं का बताया है, उसमें तुम्हारे पान खिलाने से पूर्व बहुत-सी बातें पहले होंगी। यदि वे सम्पन्न हुईं तब तो तुमको समझ लेना चाहिए कि किसी अदृश्य प्रेरणा के अधीन सब-कुछ हो रहा है। उस अदृश्य प्रेरणा में तुम्हें बाधा बनने का अधिकार नहीं। उसमें लाभ-हानि की भी तुम्हें चिन्ता नहीं करनी चाहिए। इससे होने वाले पाप-पुण्य की तुम भागी नहीं होगी।

"परन्तु मैं तो अपने और तुम्हारे सम्बन्ध के विषय में विचार कर रहा था।"

११

"देखो पत्रलता! मैं तुम्हें अपना अनुभव बताता हूँ। मैं जब बालक-मात्र था तभी मुझको पूर्ण अष्टाध्यायी कण्ठस्थ हो गई। मैं एक बार जो कुछ पढ़ता था, वह मुझे कण्ठस्थ हो जाता था। मेरे पिता कहा करते थे कि मुझे सरस्वती का वर प्राप्त है। मैं जब पन्द्रह वर्ष की आयु का हुआ तो मैं घर से निकल पड़ा। नए-नए नगर तथा तीर्थस्थान और प्राकृतिक सौन्दर्य के स्थान देखने की लालसा प्रबल हो उठी थी। मैंने कन्याकुमारी और रामेश्वर से लेकर कैलाश तक की यात्रा की है। इतने काल में मैंने अनेक नाटक लिखे, कविताएँ लिखीं और गीत बनाए। इस काल में मैंने अनेक नर्तकियों और सुन्दर ललनाओं का भोग किया, परन्तु जब मैं कन्नौज पहुँचा और तुम्हारी दुकान के सामने से निकला तो तुम्हारे दर्शन कर मूर्तिवत् खड़ा रह गया। पश्चात् मैं नित्य तुम्हारे दर्शन करने जाने लगा और घण्टों ही तुम्हारी दुकान के सामने खड़ा हो तुम्हारी चेष्टाएँ देख-देख आनन्द और उल्लास अनुभव करने लगा। फिर भी मेरा तुम्हारे साथ बात करने का साहस नहीं होता था।

"इसके पश्चात् एक दिन तुमने मेरा आह्वान किया। तुम मुझे उधार पान देने लगीं। एक दिन मुझे विचार आया कि तुमसे सम्बन्ध बनाना चाहिए। इस कारण मैं सीधा तुम्हारे पास पहुँचा। मैंने उस समय कहा था, 'तांबूलिन! तुम इतनी निधि की स्वामिनी होते हुए भी यह टके-टके का पान बेचकर अपना यौवन व्यर्थ गँवा रही हो।'

"तुमने उत्तर दिया था, 'मेरी निधि को लूटने वाला अभी कोई नहीं उत्पन्न हुआ। इसको छूने की किसमें सामर्थ्य है?'

"मैंने कहा था, 'देवी! तनिक आँख उठाकर देखो। कौन खड़ा है? तुम्हारी निधि लूटने वाला नहीं, प्रत्युत इस निधि की रक्षा करने वाला।'

"तुमने मुस्कराकर कहा था, 'पथिक! पहले सामर्थ्य पैदा करो। तुम अपनी निधि की तो रक्षा नहीं कर सके, मेरी क्या रक्षा कर सकोगे।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि तुम्हारे इसी कथन ने मेरी कायापलट कर दी। मैं उसी दिन कन्नौज से वापस घर लौट गया। घर पहुँच मैंने 'पार्वती परिणय' नाटक लिखा। मैंने मद्य-मांस और नारी का सम्पर्क त्याग दिया। मेरे मन में यह दृढ़तम लालसा उत्पन्न हो गई थी कि तुम्हारी रक्षा का सामर्थ्य अपने में उत्पन्न करूँ। इसके पश्चात् ही मैं तुमसे मिलूँगा। मेरे 'पार्वती परिणय' नाटक ने मेरी साहित्य-संसार में धूम मचा दी और आज जो कुछ मुझे कन्नौज में प्राप्य है, वह इसी नाटक के कारण है।

"देवी! यह तुम्हारी ही कृपा का फल है कि मैं अब इस अवस्था में हूँ। मैं दिन-प्रतिदिन तुम्हारी आँखों में अपने प्रति अनुराग बढ़ता हुआ देख रहा हूँ। मुझे आशा थी कि एक-न-एक दिन तुम मुझे अपनाओगी, परन्तु यह अघोरी बाबा तो कुछ और ही बता गया है।"

"कवि! मुझे इस बात की कभी चिन्ता नहीं हुई कि मेरा विवाह किससे होगा और कब होगा। यह जीवन अति क्षुद्र है। इसमें मैं किसी अन्य कार्य में लगी हुई हूँ और उसकी पूर्ति में मुझको विवाह-जैसी बात पर विचार करने का अवकाश ही नहीं है।"

"तभी बाबा कह गया है कि मैं श्रापित हूँ।"

"यह तो मैं नहीं जानती। मैं अपने विषय में इतना जानती हूँ कि मैं भाग्यवान हूँ, जो मुझे कुछ ऐसा कार्य करने को मिला है, जो मैं कर रही हूँ।"

"क्या कार्य कर रही हो?"

"वह मैं नहीं बता सकती। वास्तव में यह एक प्रकार की सिद्धि है। आचार्य ने उस कार्य की सिद्धि की प्राप्ति का मार्ग बताया है और उसमें मैं संलग्न हूँ।"

"यह आचार्य जी कौन हैं?"

"जानना चाहेंगे उनको? तो एक दिन घर पर आओ।"

"तब तो आना ही पड़ेगा।"

"ठीक है, परन्तु एक बात का ध्यान रखना। जो कोई उस घर में प्रवेश करता है, वह सर्वथा परिवर्तित होकर वहाँ से निकलता है।"

"यह मेरा अहोभाग्य होगा। देवी के दर्शन-मात्र और एक कटाक्ष-मात्र से यह आवारा कवि एक राजकवि-पद पर जा पहुँचा है। देवी के आचार्य की कृपा होगी तो क्या कुछ नहीं हो सकता, कहना कठिन है। मैं इसके लिए तत्पर हूँ।"

"तो ठीक है। किसी दिन सूर्योदय से एक मुहूर्त के भीतर आओ, उस समय आचार्य जी मिलेंगे।"

एकाएक पत्रलता उठी और जाने के लिए तैयार हो गई।

कवि ने कहा, "ठहरो देवी! मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ।"

"कहाँ?"

"तुम्हें घर तक पहुँचा आऊँगा।"

"क्यों?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मार्ग में अन्धकार है और मधुशालाओं से मदमस्त युवक घरों को लौट रहे होंगे।"

"नहीं कवि! तुम विश्राम करो। मुझको कभी भी भय नहीं लगा। कन्नौज के युवकों में इतना साहस नहीं कि भगवान् वाराह की भक्तिनी की ओर आँख उठाकर भी देख सकें।"

फिर भी बाण उसके साथ हो लिया। चलते हुए उसने कहा, "और कुछ नहीं तो तुम्हारी संगति कुछ और समय तक प्राप्त हो जाएगी।"

बाण पत्रलता को उसके घर तक छोड़ने गया। उसने देखा कि घर के द्वार पर दीपक जल रहा है। दीपक के प्रकाश में उसने आलने में एक छोटे-से पक्षी को भी सोये देखा। पत्रलता ने द्वार खटखटाया तो वही बालक, जिसको पत्रलता दुकान पर छोड़ आई थी, द्वार खोलने आया। द्वार खोलते समय उसके हाथ में एक दीपक था। उसने पत्रलता को देखा तो कहा, "दीदी! आचार्य जी तुमसे मिलना चाहते हैं। उनका कहना है कि प्रातः महामात्य जी के गृह को जाने से पूर्व उनसे अवश्य मिलकर जाना।"

"माँ कहाँ हैं?" पत्रलता ने पूछा।

"सो गई हैं। मुझे द्वार खोलने के लिए कह गई थीं।"

"प्राण, तुम बहुत ही अच्छे बालक हो। तुम्हें इस सेवा का पुरस्कार अवश्य मिलेगा।"

"मैं पुरस्कार के लिए यह सब-कुछ नहीं करता। अच्छा दीदी! चलो, अब तो सवेरा होने वाला है।"

"ओह! ठीक है, चलो। अच्छा कवि!" बाण की ओर देख पत्रलता ने कहा, "अब तुम जाओ।"

पत्रलता एक-दो ही झपकी ले पाई थी कि आचार्य जी की पूजा का शंख बज उठा। पत्रलता उठी और शीघ्रता से नित्यकर्म से निबटकर पूजागृह में जा पहुँची। आचार्य जी वाराह भगवान् की मूर्ति के सम्मुख पद्मासन लगाए बैठे थे। उनके पीछे कुछ अन्तर पर उनकी धर्मपत्नी बैठी थीं। पत्रलता भी उनके पास जाकर बैठ गई।

पूजा समाप्त हुई तो आचार्य जी ने पुनः शंख बजा दिया। इससे पत्रलता तथा आचार्य जी की पत्नी उठीं और भगवान् की आरती उतारने लगीं। आरती के पश्चात् आचार्य जी ने पत्रलता से पूछा, "रात कहाँ गई थीं तुम?"

"उस अघोरी बाबा ने बुलवाया था, जिसको मैंने नर-मांस खाते देखा था।"

"तो वह भैरवी भी साथ थी उसके?"

"नहीं पिता जी!"

"तो उसने तुम्हें कुछ आज्ञा दी है?"

पत्रलता ने विस्मय में आचार्य की ओर देखा। वह समझ नहीं सकी कि इसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूचना आचार्य जी को कैसे पहुँच गई ? उसको विस्मय में चुप खड़े देख आचार्य जी ने कहा, "पत्रलता ! इसमें विस्मय करने की कोई बात नहीं। भैरव, वाराह, वासुदेव आदि सब भगवान् के भिन्न-भिन्न रूप हैं। भगवान् जो कुछ करना चाहता है, वह, उसके रूपों में भिन्नता होते हुए भी, भिन्न नहीं होता।"

"तो मुझको उसका आदेश पालन करना चाहिए ?"

"यह तो तुम्हारी इच्छा पर है। भगवान् ने इस कार्य के लिए तुमको साधन बनाया है, तो मैं बीच में कौन हूँ जो तुम्हें सम्मति दूँ ?"

"परन्तु पिता जी ! आपको भगवान् ने क्या कहा है ?"

"मध्य रात्रि तक तुम्हारे न आने के कारण मैं चिन्तित था। मैं जानता था कि कवि तुम्हारा प्रेमी है। मुझे चिन्ता लग गई कि कहीं वह तुम्हारा अनिष्ट न कर दे। परन्तु इसी समय भगवान् की कृपा से मन में यह प्रकाश उठा कि कोई चिन्ता की बात नहीं है। मन में यह बात स्फुरित हुई कि तुम जिस कार्य के लिए गई हो, वह भगवान् का कार्य ही है।

"इससे निश्चिंत हो मैं सोने चला गया। सोते समय मैंने प्राण से कह दिया था कि वह तुम्हारी प्रतीक्षा करे और तुम्हें कहे कि प्रातः जाने से पूर्व तुम मुझसे मिलकर जाना।"

१२

पत्रलता को आचार्य के कथन से मन में शांति मिली। जब वह महामात्य के घर पान की डोली लेकर चली, तो उसने अघोरी बाबा की भभूत एक पान में डाल ली। जब वह महामात्य के गृह पर पहुँची तो उसने देखा कि महाप्रभु की पालकी बाहर खड़ी है। कुछ भिक्षुगण बाहर द्वार पर खड़े थे, जो महाप्रभु के साथ आए थे। यह सब देखते ही उसे अघोरी बाबा की सभी बातें स्मरण हो आईं। वह समझ गई कि कोई चमत्कार होने वाला है।

गृह के भीतर प्रवेश कर वह बैठक में जा पहुँची। बैठक-द्वार पर भी एक भिक्षुक खड़ा था, परंतु उसने पत्रलता को रोका नहीं। पत्रलता मुस्कराकर भीतर चली गई। भीतर महामात्य और महाप्रभु गंभीर वार्तालाप में मग्न थे। पत्रलता उन्हें बातों में लीन देख बैठक से बाहर निकलने लगी। इसी समय महामात्य की दृष्टि उस पर पड़ गई और उसने पुकारा, "आओ पत्रलता ! पान नहीं खिलाओगी आज ?"

पत्रलता यंत्रवत् घूमी और दोनों के सामने जाकर भूमि पर बैठ गई। पश्चात् उसने अपनी डोली में से भभूत वाला पान निकाला और महामात्य के हाथ में दे दिया। महामात्य ने वह पान लेकर महाप्रभु की ओर बढ़ाकर कहा, "भगवन् ! यह पान खाइए और मुझे अनुगृहीत कीजिए।"

महाप्रभु ने पत्रलता की ओर देखा तो महामात्य ने उसका परिचय दे दिया, "आप इसे नहीं जानते क्या ? यह कन्नौज की विख्यात तांबूलिन पत्रलता है। भगवन् ! इसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाथ का पान एक बार खा लेने पर बार-बार खाने की अभिलाषा हो जाती है।"

"ओह! देवी का नाम तो सुना है और प्रशंसा भी सुनी है। आज पान खाकर देखूँगा कि यह इसके पान का चमत्कार है अथवा इसके सौंदर्य का।"

पत्रलता महाप्रभु के ये वचन सुनकर मुस्कराई। महाप्रभु ने पान हाथ में ले मुख में डाल लिया। पत्रलता ने एक और पान निकालकर महामात्य के हाथ में दे दिया।

महाप्रभु ने पान खाते हुए कहा, "देवी, तुम्हारा यह ओज या तो तुम्हें श्राविका बनाकर छोड़ेगा, अथवा किसी राजकुल में रानी।"

"महाप्रभु!" पत्रलता ने कहा, "मैं तो तांबूलिन ही बने रहने में अपना अहोभाग्य समझती हूँ।"

"ठीक है। परंतु किसी की इच्छा से कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। जो होना होता है, वह होकर ही रहता है।"

पत्रलता महाप्रभु के मुख पर पान का प्रभाव देखने लगी। पान चबाते हुए महाप्रभु ने कहा, "सुगंध तो वास्तव में अद्‌भुत है।"

पत्रलता ने कहा, "महाप्रभु के दर्शन हुए और मेरा बना पान पसंद आने की बात सुनकर मैं कृतकृत्य हो गई। परंतु भगवन्! आपको प्रतिदिन पान खिलाने के लिए मुझे नित्य चैत्य में जाना पड़ेगा। कदाचित् यह मैं न कर सकूँगी।"

"परंतु एक बात तो कर सकती हो। तुम चैत्य में ही रहना आरंभ कर दो। मैं तुम्हारा वहाँ प्रबंध करवा दूँगा।"

"मैं आपकी अत्यंत आभारी हूँ भगवन्! परंतु मुझे चैत्य की जलवायु कभी अनुकूल नहीं पड़ी।"

महामात्य ने विस्मय में पूछा, "तो पत्रलता! तुम किसी विहार में भी रह चुकी हो? क्या भिक्षुणी के रूप में वहाँ रही हो?"

"नहीं श्रीमान्! मैं श्राविका कभी नहीं हुई। कौशांबी में भगीरथ नाम के चैत्य में मेरा एक भिक्षुणी के पेट से जन्म हुआ था। मेरी चौदह वर्ष की आयु तक मेरी माँ जीवित रहीं। वे विदुषी थीं। उन्होंने मरने से पूर्व अपनी जीवन-कथा लिखकर मुझे दी थी और साथ ही यह आदेश दिया था कि जब मैं बाईस वर्ष की हो जाऊँ, तब उसे पढ़ूँ।

"अपनी माँ की मृत्यु के पश्चात् दो वर्ष-पर्यंत मैं उस चैत्य में रही। परंतु एक दिन मैं वहाँ से निकाल दी गई। सब भिक्षुक एवं भिक्षुणियाँ मुझसे अत्यंत प्रेम करते थे, मानो मैं कोई देवी का अवतार होऊँ। मेरे इतने प्रभाव से महाप्रभु अत्यंत चिन्तित हो उठे और उन्होंने मुझे आज्ञा दी कि या तो मैं भिक्षुणी बन जाऊँ अथवा चैत्य छोड़ दूँ। मैंने चैत्य छोड़ना उचित समझा। मैं अपनी माँ का अंतिम पत्र लेकर चैत्य छोड़कर आ गई।

"भाग्य से कौशांबी की एक तांबूलिन की दृष्टि मुझ पर पड़ गई। उसने मुझे अपने पास रखा। मुझको अपना धंधा सिखाया। पश्चात् मुझे ग्राहकों के पास बेचने का यत्न किया। परंतु मुझे यह पसंद नहीं था। इस कारण उसकी मनोकामना पूरी होने से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्व ही मैं वहाँ से भाग निकली। मैं कन्नौज पहुँची। यहाँ मुझे पूज्य आचार्य वाराहमित्र जी का आश्रय मिल गया। उन्होंने मुझे पुत्री-समान रखा और मुझे शिक्षा-दीक्षा दी। मैं अभी भी उनके पास रहती हूँ।

"जब मैं बाईस वर्ष की हुई तो मैंने माँ का पत्र पढ़ा। उससे और आचार्य जी की शिक्षा के प्रभाव से मेरे मन में चैत्यों के वातावरण से ग्लानि उत्पन्न हो गई है।"

"ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हारी माँ का चैत्यों के विषय में अनुभव कुछ अच्छा नहीं रहा।"

"मेरा अपना अनुभव भी कुछ अच्छा नहीं है।"

महाप्रभु हँस पड़ा और कहने लगा, "इस लड़की के विषय में मैंने जैसा सुना था, वैसा ही इसे पाया है। यह बहुत ही वाचाल है।"

महामात्य भी हँस पड़ा, परंतु उसने कुछ कहा नहीं। पत्रलता ने उठते हुए कहा, "मैं महाजनों की वार्तालाप में विघ्न बनने की धृष्टता के लिए क्षमा चाहती हूँ।"

"हमारा वार्तालाप समाप्त हो चुका है। तुम बैठो।" महाप्रभु ने उठते हुए कहा। पश्चात् वे महामात्य से बोले, "मैं विचार करता हूँ कि आपका दृष्टिकोण भी विचारणीय है। मुझे एक-दो दिन का अवसर दीजिए। मैं विचार करूँगा और पश्चात् पुनः इस विषय में बातचीत करूँगा।"

महामात्य आश्चर्य से महाप्रभु का मुख देखने लगा। पश्चात् उसने कहा, "ठीक है, परंतु मैं तैयारी करने की आज्ञा दे रहा हूँ।"

महाप्रभु कुछ विचार में पड़ गए। पश्चात् इस विषय में कुछ न कहकर पत्रलता से कहने लगे, "देवी! तुम्हारा बनाया पान वास्तव में अत्यंत स्फूर्तिदायक है। क्या फिर कभी इसके खाने का सौभाग्य प्राप्त नहीं होगा?"

"भगवन्! मैं तो सेविका मात्र हूँ। परंतु इतनी दूर पहुँचने में असुविधा होगी। मेरा दिन-भर का कार्यक्रम बिगड़ जाएगा। हाँ, यदि किसी विशेष दिन महाप्रभु स्मरण करेंगे तो इन असुविधाओं को पार कर आपकी सेवा के लिए अवश्य उपस्थित हो जाऊँगी।"

महाप्रभु गए तो पत्रलता बैठकर पुनः पान लगाने लगी। महामात्य ने कहा, "ऐसा प्रतीत होता है कि महाप्रभु भी स्त्री के सम्मोहन से बचा नहीं रहा। पत्रलता! यदि तुम कुछ पहले आ जातीं तो आज बहुत काम बन गया होता।"

"श्रीमान् आज्ञा भेज देते तो सेवा में शीघ्र ही उपस्थित हो जाती।"

"तुम्हारे आने से पूर्व महाप्रभु कह रहे थे कि जीवन के विषय में इनका एक विशेष दृष्टिकोण और नीति है। वह इसके अनुसार जीवन को चलाने का दृढ़ संकल्प किए बैठे हैं। मैं सब प्रकार की युक्तियाँ और धमकियाँ देकर हार चुका था। तुम्हारे आने से पूर्व मैं अपने मन में निर्णय कर चुका था कि महाराज से, पूर्ण परिस्थिति का वर्णन कर महामात्य-पद से त्यागपत्र दे दूँ। जब तुमने पान दिया तो वह पान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चबाते-चबाते ही अपने निश्चय से हटकर कहने लगे कि मेरा दृष्टिकोण भी विचारणीय है। मैंने जब कहा कि मैं अपनी योजना की तैयारी करने जा रहा हूँ, तो वह मुझे उत्तर देने के स्थान पर तुम्हारे पान की प्रशंसा करने लगे।"

"बहुत आश्चर्यजनक है, श्रीमान्!"

"छोड़ो इस बात को। पत्रलता! तुमने अपने पूर्व जीवन की एक झाँकी आज उपस्थित की, जो मेरे बार-बार कहने पर भी तुमने कभी नहीं बताई। इस झाँकी से मेरी उत्सुकता और भी बढ़ गई है, शांत नहीं हुई।"

"जी! बात यह है कि उस काल के साथ महाप्रभु के धर्मावलंबियों का घना संबंध था। इस कारण उसकी झलक अनायास ही मुख से निकल गई। अन्यथा मैं अपने जीवन के उस काल की बात आपसे अथवा किसी से भी नहीं कहना चाहती थी। इससे मुझे सुख नहीं मिलता।"

"परंतु पत्रलता····।" महामात्य कहता-कहता रुक गया और गंभीरतापूर्वक पत्रलता का मुख देखने लगा। पत्रलता महामात्य को इस प्रकार अपने मुख की ओर देख व्याकुलता अनुभव करने लगी। महामात्य ने कहा, "पत्रलता! मैं एक बात और पूछना चाहता हूँ। यदि बताने की कृपा करोगी, तो मैं तुम्हारा बहुत ही आभारी होऊँगा।"

पत्रलता को कुछ ऐसा अनुभव हुआ कि महामात्य के स्वर में कंपन उत्पन्न हो गया है। वह अपने को सँभाल न सकी। उसका धीरज छूट गया और उसकी आँखों से अश्रु बहने लगे। महामात्य ने कहा, "एक बार तुमने कहा था कि तुम्हारा जन्म एक प्रतिष्ठित परिवार का रहस्य है। मुझे ऐसा लग रहा है कि यह रहस्य मेरा अथवा मेरे परिवार का है। क्या तुम मेरी बहन सुलक्षणा को जानती हो?"

"मैं आपकी पुत्री हूँ।"

महामात्य कदाचित् यही सुनने की आशा कर रहा था। पद्मराज की छोटी बहन सुलक्षणा बौद्ध-भिक्षुणी बन गई थी। वह कौशांबी में भगीरथ नाम के चैत्य में रहती थी। लगभग तेरह वर्ष पूर्व उसका देहांत हो चुका था। जब पत्रलता ने यह बताया था कि उसकी माँ भगीरथ चैत्य में भिक्षुणी थी और उसका जन्म चैत्य में हुआ था, तभी से महामात्य को संदेह हो गया था। अब पत्रलता के यह कहने पर कि वह उनकी पुत्री है, वह स्तब्ध रह गया। उसने पूछा, "इसका तुम्हें कब से पता था?"

"तीन वर्ष पूर्व जब मैंने माँ का अंतिम पत्र पढ़ा था। उसमें उन्होंने लिखा था कि मैं किसकी लड़की हूँ और किस प्रकार उनको मेरी हत्या कर देने के लिए कहा गया था, परंतु माँ की ममता के कारण वे विहार छोड़ने के लिए तैयार थीं। किंतु मेरी हत्या करना उन्हें अभीष्ट नहीं था। अनेकानेक कष्ट सहन कर उन्होंने मेरा पालन किया।"

"क्या नाम है तुम्हारे पिता का?"

"मैं समझती हूँ कि यह आप न ही पूछें तो ठीक है।"

महामात्य चुप रहा। पत्रलता ने पान बनाकर महामात्य को दिया तो उसने कहा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"पत्रलता ! यदि तुमको यह विदित हो गया था कि तुम मेरी पुत्री-तुल्य हो, तो तुमको मेरे पास यहाँ आकर रहना चाहिए था। यह ठीक है कि आचार्य जी तुम्हारे संरक्षक हैं, फिर भी तुम्हारा यहाँ रहना ही ठीक था।"

"मैं तो अब भी आपके पास आकर रहना उचित नहीं समझती। अलकनंदा को उसकी बुआ की लज्जा की बात बताना मैं उचित नहीं समझती।"

"अच्छी बात है। इस विषय पर पुनः कभी विचार कर लेंगे।"

१३

पद्मराज महाराज से मिलने गया तो वहाँ एक अन्य चमत्कार साक्षात् हुआ। महाराज हर्षवर्धन ने उससे कहा, "कश्मीर, वाह्लीक और गांधार के समाचारों से तो मेरे मन के भाव कुछ बदल गए हैं। मैं समझता हूँ कि तीन वर्ष तक हमने इन राज्यों को अवसर दिया था कि हमसे मैत्री का भाव रखें और हम भी उनसे वैसा ही भाव रखेंगे परंतु उन्होंने हमारे इस कथन को हमारी दुर्बलता समझ रखा है।"

"महाराज ! महाप्रभु जी से इस विषय पर आज वार्तालाप हुआ था और उन्होंने भी यह माना है कि मेरे दृष्टिकोण में भी कुछ सार है। वे एक-दो दिन में इस विषय में अपना निश्चित मत देंगे। परंतु हमको तो समर की तैयारी की आज्ञा दे देनी चाहिए।"

"परंतु महामात्य !" हर्षवर्धन ने विस्मित होकर कहा, "कल रात्रि ही वह कह रहे थे कि इस मिथ्या संसार के लिए सत्य की आहुति नहीं दी जा सकती।"

"हाँ महाराज ! मैंने उनको समझाने का यत्न किया है कि सत्य की रक्षा अब खड्ग धारण करने से ही होगी। ऐसा प्रतीत होता है कि कश्मीर में बौद्धों की हत्या का वर्णन उनके मन में बुरी तरह चुभा है। कुछ भी हो, मुझे पूरी आशा है कि वे अब समर के पक्ष में हो जाएँगे।"

"तो महामात्य ! शीघ्र तैयारी आरंभ कर दी जाए। मैं इन हूणों के बच्चों को भारत-सीमा से पार किए बिना सुख की साँस नहीं लूँगा।"

"महाराज ! अभी कुछ ही समय पूर्व दक्षिण से एक समाचार आया है कि चालुक्याधिपति कृष्णन ने मालवा की महारानी से संधि कर ली है। इस संधि की एक शर्त यह है कि दोनों राज्यों की सेनाएँ एकत्रित होकर समर करेंगी और जो कुछ भी उन समरों में प्राप्त होगा, आधा-आधा बाँटा जाएगा।"

"इस संधि का क्या प्रभाव होगा ?"

"महाराज ! वे सौराष्ट्र पर अधिकार करना चाहते हैं। इससे उनके अधिकार में समुद्र-तट आ जाएगा। समुद्र द्वारा वे अपना व्यापार विस्तृत करना चाहते हैं। साथ ही वे विदेशी राजाओं से संधि करने के प्रयत्न में भी सफल हो जाएँगे। इस संधि में भारत के पूर्ण राज्यों को, विशेष रूप में श्रीकंठ और कश्मीर राज्य को भी सम्मिलित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना होगा, अन्यथा यह संधि दक्षिणा पथ को तो सुरक्षित कर देगी, परंतु भरत-खंड के अन्य राज्य, विशेष रूप से श्रीकंठ, इन विदेशी कुत्तों के सम्मुख, उनकी दया पर रह जाएँगे।

"सौराष्ट्र में इस समय शैवों का राज्य है। शैव अपने भक्ति-भजन आदि में इतने लीन हैं कि उनको न तो विदेशियों से संपर्क उत्पन्न करने की लालसा है और न ही विदेशियों से देश की रक्षा की।"

हर्ष ने कहा, "ठीक है। पहले पश्चिमोत्तरी सीमा की समस्या हम सुलझाना चाहते हैं, पश्चात् हम दक्षिणी राज्यों से भी निबट लेंगे।"

"तो महाराज! आज ही नवीन भर्ती की आज्ञा हो जानी चाहिए। हमें एक लक्ष्य नवीन सैनिक चाहिए। साथ ही हमें घोषणा कर देनी चाहिए कि जो युवक देश और धर्म की रक्षा के लिए भर्ती होंगे, हम उनके शौर्य के लिए उन्हें पुरस्कृत करेंगे।"

"ठीक है, आज्ञा लिख दीजिए।"

"एक-एक पत्र इन राज्यों को भेज देना चाहिए कि हम भारत के महाराजा हैं। भारत के सब राजा हमें कर देते हैं। अतः हमारी आज्ञा है कि पिछले वर्ष का कर तुरंत भेज़ दिया जाए।"

हर्षवर्धन ने महामात्य को उचित निर्देश दे दिए। अधीनस्थ राज्यों को उसी दिन धन और सैनिक भेजने के लिए पत्र लिख दिए गए।

परिणाम यह हुआ कि राज्य की नीति बदलते ही विद्युत् की भाँति राज्य की नस-नस में नव-जीवन का संचार होने लगा। अखाड़े लगने लगे। बाजारों, वीथिकाओं और उद्यानों में नकली द्वंद्व होने लगे। लोहारों की भट्टियाँ अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण के लिए धधकने लगीं। युवकों के मन उल्लास से भर उठे। अभिप्राय यह कि पूर्ण देश में सिंह-गर्जना का-सा नाद होने लगा।

अगले दिन महाप्रभु महाराज हर्षवर्धन से मिलने आए और देश में युद्ध की तैयारी पर वार्तालाप होने लगा।

महाप्रभु ने कहा, "हर्ष! राज्यश्री ने जब कश्मीर में भिक्षुणियों पर अत्याचार की कथा सुनी तो रोने लगी। मैं उसकी बात कह रहा हूँ। वह कह रही थी कि अपने भाई हर्ष को रक्षाबंधन बाँधने के लिए वह आएगी।"

हर्षवर्धन मन में विचार करता था कि जब देवगुप्त मालवाधिपति ने दस सहस्र भिक्षुणियों और गृहस्थ युवतियों को अपनी सेना की दया पर छोड़ दिया था, तब महाप्रभु अवलोकितेश्वर का मन द्रवित नहीं हुआ था। अब एक दूरस्थ देश में, उससे कम संख्या में युवतियों के साथ हुए अत्याचार से ही महाप्रभु का मन उद्विग्न होने लगा है। क्या यह आश्चर्य का विषय नहीं? फिर भी इस विषय में कुछ न कह उसने पूछा, "तो महाप्रभु की सम्मति है कि इन दुष्टों को दंड देने के लिए हम तैयारी करें?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

"यह तो करना ही होगा। साथ ही वहाँ पर विदेशियों के राज्य को हटाकर अपना

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्य स्थापित करना होगा।"

"ठीक है महाप्रभु! हम समझते हैं कि दो वर्ष के भीतर ही हमारी समर-नीति का शुभ परिणाम निकल आएगा।"

महाप्रभु ने बात बदल दी। उसने कहा, "महाराज! कल मैं महामात्य के निवासगृह पर गया था। वहाँ मुझे देवी पत्रलता का पान खाने का अवसर मिला। ऐसा बढ़िया पान महाराज! मैंने अपने जीवन में कभी नहीं खाया। अभी तक उसकी स्फूर्ति मेरे मस्तिष्क में विद्यमान है। मैं कुछ ऐसा अनुभव कर रहा हूँ, मानो आकाश में उड़ रहा हूँ।"

"सत्य? तो महामात्य से कहना चाहिए कि ऐसे बढ़िया पान का प्रबंध हमारे लिए भी कर दें।"

"पत्रलता नगर-चौक में पान की दुकान करती है।"

"तो भगवन्! इच्छा हो तो पत्रलता को पान देने के लिए यहाँ बुलवा लिया जाए?"

"यही तो मैं कह रहा हूँ, महाराज!"

हर्षवर्धन ने बैठक के बाहर खड़े प्रतिहार को बुलाकर आदेश दिया, "शीघ्र चौक में पत्रलता तांबूलिन की दुकान पर जाकर कहो कि महाराज उसके पान खाने की इच्छा करते हैं।"

प्रतिहार गया और कुछ ही काल के पश्चात् पान के छः बीड़े लेकर आ गया। पान देते हुए उसने कहा, "महाराज! तांबूलिन ने कहा है कि आप इन्हें स्वीकार करें। उसको महाराज की सेवा से अत्यंत प्रसन्नता हुई है।"

"तो वह स्वयं नहीं आई?" महाप्रभु ने पूछा।

"भगवन्! इस समय उसकी दुकान पर कन्नौज के युवकों की, पान खाने के लिए भारी भीड़ एकत्रित रहती है।"

"फिर क्या हुआ?" महाप्रभु ने कहा, "जाओ, उसको कहो कि महाराज का आदेश है कि पान लेकर वह स्वयं शीघ्र आवे।"

"ऐसे नहीं भगवन्!" हर्ष ने कहा, "प्रतिहार! जाओ, उसको कहो कि महाराज ने उसके पानों को बहुत पसंद किया है। वे देवी से आग्रह करते हैं कि वह नित्य राजप्रासाद में पान दे जाया करे।"

महाप्रभु मुस्कराया, परंतु चुप रहा। प्रतिहार गया तो महाराज ने महाप्रभु को पान भेंट किया। महाप्रभु ने पान मुख में डालकर चबाते हुए कहा, "समझ में नहीं आ रहा महाराज! भगवान् तथागत ने मांस खाने का विरोध तो किया नहीं, परंतु पान का विरोध क्यों किया?"

हर्ष ने अवलोकितेश्वर जी की बातों से उत्साहित होकर कहा, "भगवन्! इसी प्रकार अन्य कई बातें हैं, जो हम क्षुद्र जंतुओं की बुद्धि से दूर हैं। उदाहरण के रूप में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मांस खाने के लिए तो पशु की हत्या स्वीकार कर ली, परंतु धर्म और सत्य की रक्षा के लिए सेनाओं द्वारा शत्रुओं से युद्ध उचित नहीं माना।"

बोधिसत्त्व ने मुंस्कराकर कहा, "इससे यही सिद्ध होता है कि हमारी बुद्धि उस स्तर तक नहीं पहुँची, जिस तक भगवान् की पहुँची थी।"

हर्ष भी मुस्कराकर चुप रहा। इस समय प्रतिहार ने आकर पत्रलता का संदेश दे दिया, "महाराज ! पत्रलता ने कहा है कि दासी पानों की सराहना से अति अनुगृहीत हुई है। महाराज की आज्ञा के अनुरूप वह कल महाराज की सेवा में भोजनोपरांत उपस्थित होकर पान भेंट करेगी। इस समय वह प्रजा की सेवा में संलग्न है।"

प्रतिहार के चले जाने के पश्चात् हर्ष ने कहा, "भगवन् ! यदि पान खाने की इच्छा हो तो इस क्षुद्र प्राणी के गृह पर कल मध्याह्न का भोजन करने का कष्ट करें।"

"ठीक है। पान की इच्छा होगी तो राजप्रासाद में भोजन भी करना पड़ेगा। परंतु महाराज ! आप तो महारानी के साथ बैठकर भोजन करते हैं और महारानी इस भिक्षुक से रुष्ट प्रतीत होती हैं।"

"भोजन के लिए तो आपको मना नहीं करेंगी।"

"परंतु उनके कोप का भाजन बनना भी तो हमें स्वीकार नहीं।"

"महाप्रभु की महारानी से मैत्री संधि करा दी जाएगी।"

"महाराज ! संधि कराने के लिए महामात्य-जैसे योग्य व्यक्ति की आवश्यकता है।"

"महामात्य की सेवाएँ इस कार्य के लिए उपलब्ध हो जाएँगी।"

"तब तो भोजन के लिए आने में कोई हानि नहीं।"

१४

पत्रलता अगले दिन महामात्य के गृह पर पान देने गई तो महामात्य अंतःपुर में अपनी पत्नी विरोचना और लड़की अलकनंदा के साथ बातचीत कर रहा था। पत्रलता ने जब गृह-द्वार में प्रवेश किया तो द्वार पर खड़ी दासी ने कहा, "श्रीमान् महामात्य जी ने आपको अंतःपुर में बुलाया है।"

"क्यों ?"

"यह तो देवी स्वयं ही उनसे पूछ सकती हैं। इस गृह में श्रीमान् महामात्य जी की आज्ञाओं में कारण जानने की प्रथा नहीं है।"

पत्रलता मुस्कराकर भीतर अंतःपुर में प्रवेश कर गई। विरोचना देवी के आगार में पूर्ण परिवार एकत्रित था। महामात्य ने पत्रलता को आते देखा तो उसे भीतर बुला लिया। अलकनंदा के समीप ही एक उच्च रिक्त आसन पर उसे बैठने के लिए कहा गया। पत्रलता समझ गई कि उसका रहस्य अब इनमें रहस्य नहीं रहा। इससे उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुख लज्जा से लाल हो गया। वह खड़े-खड़े कहने लगी, "श्रीमान्! दासी के लिए इतना मान तो अनादर का सूचक हो जाएगा।"

अलकनंदा ने पत्रलता की बाँह पकड़कर उसे अपने समीप बिठा लिया और कहा, "वाह! अब मेरे समीप बैठने में अनादर मानने लगी हो सखि! पहले क्यों नहीं बताया कि मैं तुम्हारी छोटी बहन हूँ?"

"अपने कलुषित जीवन से कन्नौज के अति प्रतिष्ठित परिवार को अलिप्त रखने के लिए ऐसा ही मुझे आवश्यक समझ में आया था। कल महाप्रभु जी के दर्शन से मन में कुछ ग्लानि उत्पन्न हुई कि यह चिररक्षित रहस्य फूट निकला। इस धृष्टता के लिए क्षमा चाहती हूँ।"

अलकनंदा ने पत्रलता के गले में बाँह डालकर उसे अपने समीप खींच अपने अंग लगा लिया। पद्मराज ने कहा, "पत्रलता! मैं तो यह विचार कर रहा हूँ कि तुमको अब तांबूलिन के कार्य से पृथक् कर कैसे परिवार में आत्मसात् करूँ। यदि यह बात तुमने तब ही बता दी होती जब तुमको पता चली थी, तब तुम्हें इस कार्य से पृथक् करने में कठिनाई न होती। अब तो तुम राज्य-भर में और राजपरिवार में भी तांबूलिन के रूप में परिचित हो चुकी हो। महाप्रभु तक तुम्हारा पान खाने के लिए व्याकुल रहने लगे हैं। दूसरी ओर बाणभट्ट तुम्हारे घर पर आचार्य जी से मिल आया है। मैं इस सब झमेले में से तुमको निकालना चाहता हूँ।"

"पर श्रीमान्! मेरे विषय में आप यह सब जानकारी रखने का कष्ट क्यों कर रहे हैं? मैं तो एक पक्षी की भाँति स्वच्छंद रहना चाहती हूँ।"

"ठीक है, यह भी विचारणीय है। देखो पत्रलता! तुम्हारी मामी विरोचना का यह आदेश है कि आज से तुम पान देने के लिए अंतःपुर में आया करोगी। दुकान पर पान बेचने के लिए धीरे-धीरे समय कम देना आरंभ करोगी और कुछ दिन में ही दुकान बंद करनी होगी। अभी तुम आचार्य जी के घर पर ही रहोगी और दो-चार गृहों के अतिरिक्त और कहीं पान देने नहीं जाओगी। मुझको अभी पता नहीं चला कि बाण कवि ने आचार्य जी से क्या बातचीत की है और तुम्हारे विषय में उसे आचार्य जी ने क्या उत्तर दिया है। साथ ही मैं यह भी नहीं जानता कि तुम्हारा कवि के विषय में क्या विचार है। यह सब कुछ जानने के पश्चात् ही तुम्हारे भविष्य का संचालन होगा।"

"तो मैं पिजड़े में बंद कर दी गई हूँ?" पत्रलता ने मुस्कराते हुए और आँखें भूमि पर टेकते हुए कहा।

"तो क्या तुम्हारे आचार्य जी के घर के द्वार पर बैठने वाली मैना पिंजड़े में बंद है? मैं तो समझता हूँ कि वह स्वेच्छा से वहाँ रहती है। पत्रलता! पिंजड़ा किसी को बंदी बनाने में सफल नहीं होता। मन की प्रेरणा ही किसी को कहीं ठहरने के लिए विवश कर सकती है। विरोचना का विचार है कि अब तुम यहाँ रहना पसंद करोगी। उसका विधान तो तुमको एक जीवन से दूसरे जीवन में ले जाने का क्रम-मात्र है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"खैर, छोड़ो इस बात को। क्या आज हमें पान खाने को नहीं मिलेगा? देखो, तुम अपनी मामी को भी पान लगाकर दो। यहाँ से तुमको महाराज के प्रासाद में जाना है। वहाँ महाप्रभु तुम्हारे पान की प्रतीक्षा में बैठा है। मुझको भी वहाँ पहुँचने का आदेश है। इस कारण तुम मेरे साथ ही चलोगी।"

"तो श्रीमान् के साथ रथ पर चलूँगी? इससे तो कन्नौज में श्रीमान् की ख्याति पर कलंक लग सकता है।"

"हमने इस विषय पर विचार कर लिया है। विरोचना देवी की पालकी में तुम राजप्रासाद में जाओगी। तुमसे पूर्व ही मैं रथ द्वारा वहाँ पहुँच जाऊँगा। भविष्य में विरोचना देवी की पालकी तुम्हारी सेवा में रहेगी।"

"तो अब कन्नौज की तांबूलिन महामात्य की पत्नी की पालकी में घूमा करेगी?"

"नहीं पत्रलता! विरोचना देवी यह पालकी और इसके उठाने वाले कहार अपनी लड़की पत्रलता को भेंट में दे रही हैं। आज से यह पालकी तुम्हारी है और अपनी पालकी में तुम्हें आने-जाने में संकोच नहीं करना चाहिए।"

इतना कह महामात्य राजप्रासाद के लिए रवाना हो गया। पत्रलता भी पालकी में बैठ चल दी। राजप्रासाद के बाहर पालकी रख दी गई और पत्रलता उसमें से पान की डोली हाथ में लेकर बाहर निकली। द्वार पर महारानी की दासी उसको महारानी के पास ले जाने के लिए तैयार खड़ी थी।

दासी पत्रलता को जानती थी। उसे पालकी में बैठ आते देखकर वह विस्मित हुई। पश्चात् आगे बढ़कर कहने लगी, "महारानी जी ने देवी पत्रलता को स्मरण किया है।"

"पहले महारानी जी की सेवा में जाऊँ अथवा महाराज की?"

"दोनों अंतःपुर में हैं। महाप्रभु बोधिसत्त्व भी वहाँ विद्यमान हैं।"

पत्रलता इस विशिष्ट सम्मेलन के समाचार से अन्यमनस्क-भाव में खड़ी रह गई। पश्चात् कुछ विचारकर बोली, "चलो।"

दासी पत्रलता को अंतःपुर की ओर ले गई। पत्रलता अंतःपुर में कई बार आ-जा चुकी थी; परंतु मालव-राजकुमारी का महाराज से विवाह होने के पश्चात् उसके लिए यह पहला ही अवसर था। उसने मालव-राजकुमारी को अब तक देखा नहीं था। इस कारण उसे देखने की उत्सुकता लिए वह अंतःपुर में प्रवेश कर गई।

दासी उसको लेकर एक अति सुसज्जित आगार में जा पहुँची। वहाँ एक अन्य दासी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। पहली दासी पत्रलता को वहीं छोड़ बाहर चली गई। दूसरी दासी पत्रलता को लेकर साथ के आगार में जा पहुँची। इस आगार में महाराज हर्षवर्धन, महारानी मृणालिनी, महाप्रभु और महामात्य तथा सुरक्षा मंत्री बैठे थे। पत्रलता ने जब आगार में प्रवेश किया तो महाराज एक क्षण उसे देख आश्चर्यचकित रह गए। पत्रलता सुन्दर तो थी ही, साथ ही उसके मुख पर सरलता की आभा थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्रलता ने महाराज को अपनी ओर निहारते देख कहा, "यदि महाराज भोजन कर चुके हों तो पान लगाऊँ?"

"हाँ देवी! भोजन हो चुका है। महाप्रभु तुम्हारे पानों पर इतने मुग्ध हुए हैं कि इनको भिक्षुक बनने पर पश्चात्ताप होने लगा है। ये कह रहे थे कि पत्रलता-जैसी स्त्री के लिए निर्वाण-प्राप्ति को एक जीवन तक के लिए पीछे करने को वे तैयार हैं।"

१५

पत्रलता भूमि पर बैठ गई और अपनी डोली खोल पान लगाने लगी। पान लगाते-लगाते वह बोली, "महाराज! मैंने यह पान लगाने का कार्य व्यवसाय के रूप में नहीं किया। रिक्त समय में स्वयं को व्यस्त रखने के लिए ही यह करती हूँ। परंतु इस कार्य से मुझको कन्नौज तथा अन्य देशों के महाजनों के दर्शनों का सौभाग्य मिलता रहा है। उसी सौभाग्य की शृंखला में यह आज का अवसर भी स्मरणीय बना रहेगा।"

महारानी ने अवसर देखा तो कहा, "देवी पत्रलता के उस कार्य का विवरण, जो उसने हमारे पूज्य पिता देवगुप्त और उनके मित्र शशांक को परस्पर लड़ाने में किया था, राजप्रासाद की दासियों से हमने सुना था। आज उस चतुर स्त्री को साक्षात् सामने बैठे देख इस काल को जीवन की चिरस्मरणीय घड़ी ही मानेंगे। हमको अति प्रसन्नता होगी यदि देवी नित्य हमको भी अपनी इस पान लगाने की कला का रसास्वादन कराने का यत्न करेंगी।"

"तब तो महारानी जी! मुझे बाजार से दुकान उठा लेनी पड़ेगी। कन्नौज के सहस्रों व्यक्ति मेरे कौशल से वंचित रह जाएँगे। राजप्रासाद में सेवा के लिए आने पर मेरे पास समय ही नहीं रहेगा कि प्रजा की भी सेवा कर सकूँ।"

महाप्रभु कहने लगे, "ठीक तो है। वहाँ क्या मिलता होगा देवी को?"

"भगवन्! वहाँ स्वच्छंदता, स्वतंत्रता और सहृदयता मिलती है।"

"वह सब-कुछ यहाँ भी मिल जाएगा।"

"यहाँ एक महान् व्यक्ति के आश्रय और संपर्क में रहने से मन की अनेकानेक भावनाओं को दबाकर रखना होगा। वहाँ पान लगाने की कला और कलाकार के अनेक प्रशंसक होने से किसी को भी शिष्टता की सीमा उल्लंघन करने का साहस नहीं होता। यहाँ यह हो सकेगा क्या? संदेहात्मक है प्रभु! वहाँ अनेक से व्यवहार होने पर एक के रुष्ट हो जाने की कभी चिंता नहीं होती। यहाँ एक ही व्यक्ति से व्यवहार होने पर, उसके रुष्ट हो जाने का भय और चिंता सदैव मन को त्रस्त करती रहेगी।"

"देवी को हरजाई बने रहने में अधिक आनंद अनुभव होता है?" महारानी मृणालिनी ने माथे पर त्यौरी चढ़ाकर पूछा।

"महारानी जी कदाचित् हरजाई के अर्थ ही नहीं जानतीं। तभी तो कला-जैसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पवित्र वस्तु का उस पतित वस्तु से मेल कर रही हैं।"

"तुम हरजाई के अर्थ समझती हो?"

"भली-भाँति महारानी जी! कन्नौज की वीथिकाओं में रहने वाली तथा बौद्ध-विहार में पालन-पोषण पाई हुई पत्रलता इसके अर्थ भली-भाँति समझती है। एक राजपरिवार की कन्या के लिए यदि इस दिशा में जानने की उत्सुकता हो, तो इस तांबूलिन से अधिक ज्ञान महाप्रभु बोधिसत्त्व महाराज दे सकेंगे।"

इस समय पत्रलता ने पाँच बीड़ा पान लगा लिए थे। उसने सबसे पहले महारानी जी को देते हुए कहा, "फिर भी मेरा निवेदन है कि भगवान् ने नगरों की गंदगी को टटोलने से कहीं अच्छा कार्य महारानी जी के लिए नियत कर रखा है। अपने समय के सदुपयोग के लिए महारानी जी को हम क्षुद्र जीवों की ओर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है।"

महाप्रभु पान चबाते हुए पान की प्रशंसा करते हुए पूछने लगे, "देवी! यह कला तुमने कहाँ से सीखी है?"

"भगवन्! कौशांबी की एक तांबूलिन से।"

"क्या वह जीवित है?"

"स्वाभाविक रूप में वह अभी जीवित होनी चाहिए। फिर भी मुझे उससे मिले चिरकाल हो गया है।"

महारानी मृणालिनी को इन व्यर्थ की बातों में कुछ रस नहीं मिल रहा था। उसको दासियों ने पत्रलता के कार्य का विवरण, जो उसने देवगुप्त और शशांक में झगड़ा कराने के लिए किया था, बताया था और वह उसको ही अपने पिता की हत्या का कारण समझती थी। पत्रलता ने उसके प्रथम व्यंग्य से ही समझ लिया था कि वह उसे अपना शत्रु समझती है। इससे वह सतर्क थी। उसने संकेत से कह दिया था कि महारानी जी को उसकी ओर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं; परंतु महारानी ने अपनी बात पुनः कहने के लिए बात बदलते हुए कहा, "एक बात दासी बेचारियाँ नहीं जानतीं। क्या पत्रलता उस पर प्रकाश डालेगी? मैं यह जानता चाहती हूँ कि क्या हमारे महाराज के ज्येष्ठ भ्राता पत्रलता के षड्यंत्र से ही ठीक समय पर राजप्रासाद में प्रवेश पा सके थे? वे स्त्री का रूप धारण कर भीतर आए थे अथवा योद्धा के रूप में?"

पत्रलता ने देखा कि महारानी शिष्टता की सीमा का उल्लंघन कर गई हैं और उसके ऊपर कटाक्ष करते-करते अपने पति के ज्येष्ठ भ्राता का अपमान करने लगी हैं। पत्रलता ने, इस कटाक्ष के परिणामस्वरूप महाराज के मुख की मुद्रा, एक क्षण के लिए दृढ़ होते देखी थी। महामात्य भी वार्तालाप के इस बहाव पर चकित था। अतएव उसने बात को सीमा से बाहर न जाने देने के लिए कहा, "महारानी जी को उस समय की परिस्थिति का ठीक-ठीक ज्ञान नहीं हुआ। उस समय कन्नौज में पाँच षड्यंत्र चल रहे थे और पाँचों षड्यंत्रकारियों को अन्य षड्यंत्रों का ज्ञान नहीं था। एक तो मालव-नरेश देवगुप्त शशांक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की हत्या का षड्यंत्र चला रहे थे। इसमें इंद्रजालिक नाम की एक नर्तकी मुख्य कार्य कर रही थी। दूसरा, शशांक कन्नौज में अपना राज्य स्थापित करने के लिए अपने गुप्तचरों द्वारा मालव सेना में अव्यवस्था उत्पन्न कराने का षड्यंत्र कर रहा था। इस षड्यंत्र की बागडोर नाभर के एक चतुर सेनानायक के हाथ में थी। तीसरा, नगर के वासुदेव मंदिर के पुजारी विष्णुकांत कुछ नागरिकों के बल पर कन्नौज में विप्लव खड़ा करने का प्रयत्न कर रहे थे। ये लोग तो शुद्ध देशभक्ति के विचार से ही कन्नौज को स्वतंत्र कराने के लिए षड्यंत्र में भाग ले रहे थे। इसमें इनका कुछ भी स्वार्थ निहित नहीं था। चौथा षड्यंत्र पंडित भगीरथ तथा महाराज ग्रहवर्मन के गुप्तचर विभाग के मुख्याधिकारी मंगलेश्वर कर रहे थे। ये मालव-नरेश महाराज देवगुप्त के कन्नौज की प्रजा तथा स्त्री वर्ग पर अत्याचार से पीड़ित होकर इस षड्यंत्र में संलग्न हुए थे। पाँचवाँ षड्यंत्र वर्तमान कन्नौज-अधिपति के ज्येष्ठ भ्राता राजकुमार राज्यवर्धन अपने पाँच सौ सैनिकों के बल पर चला रहे थे।

"महाराज शशांक का षड्यंत्र तो नाभर की हत्या से निस्तेज हो गया था। नाभर की हत्या अनजाने में मुझसे हो गई थी। मैं स्थानेश्वर से लौटकर अपने परिवार की टोह ले रहा था कि नाभर मुझे कोई गुप्तचर समझ मेरा पीछा करने लगा। मैं कन्नौज में गुप्त रूप से आया था और नाभर से पीछा छुड़ाने के विचार से एक अँधेरी वीथिका में प्रवेश कर गया। उसने उस वीथिका में मेरे पीछे प्रवेश किया और पश्चात् वह मेरे हाथों मारा गया। महाराज देवगुप्त का शशांक की हत्या का षड्यंत्र देवी पत्रलता के प्रयत्नों से विफल हो गया। शेष जो कुछ हुआ उसमें देवी पत्रलता का हाथ कदापि नहीं था। राजकुमार राज्यवर्धन अपने बल और युक्ति से राजप्रासाद में प्रवेश पा गए और महाराज देवगुप्त की हत्या उनसे द्वंद्व-युद्ध करते समय हुई। यह तो दैवी घटना थी कि महाराज राज्यवर्धन और भगीरथ दोनों अपने-अपने प्रयत्नों से लगभग एक ही समय राजप्रासाद में प्रविष्ट हुए और दोनों महाराज देवगुप्त के आगार में भिन्न-भिन्न मार्गों से पहुँचे।"

महामात्य पद्मराज के इस परिस्थिति के वर्णन के पश्चात् हर्षवर्धन ने कहा, "कुछ भी हो। हमने भी देवी पत्रलता के विषय में अनेक किंवदंतियाँ सुनी हैं। हमारा मन भी उन सब बातों को जानने का कर रहा था। महामात्य के वृत्तांत से पूर्ण चित्र स्पष्ट हो गया है। इससे हम यह समझ पाए हैं कि उस समय कन्नौज में बहुत-सी शक्तियाँ स्वतंत्र रूप से कार्य कर रही थीं। इनमें कुछ शक्तियाँ कार्य करती हुई परस्पर समर्थन करके सफल हुईं। इनको एक सूत्र में पिरोने के लिए देवी पत्रलता ने प्रयत्न किया। हम देवी पत्रलता के आभारी हैं। इन शक्तियों के संगठित होने से ही हम राज्यासीन हुए हैं तथा महारानी मृणालिनी-जैसी सुंदरी के पति होने का हमें सौभाग्य मिला है।

"आज की इस गोष्ठी में हम एक अन्य शुभ समाचार देना चाहते हैं। महाप्रभु ने कन्नौज की भिक्षुणी महारानी राज्यश्री का एक पत्र हमें लाकर दिया है। उसमें राज्यश्री ने लिखा है कि वे आज से राज्य-भार से मुक्त हो रही हैं और हमें कन्नौज का राज्य अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधीन करने की स्वीकृति देती हैं।"

"तब तो महाराज को हमारी बधाई है। कब आयोजन किया जाए इस अभिषेक का ?" महामात्य का प्रश्न था।

पत्रलता इस परिवर्तन में भी अघोरी बाबा की भभूत का प्रभाव देखती थी। फिर भी अपने संदेह की पुष्टि के लिए वह कहने लगी, "महाराज ! यह समाचार कन्नौज की पूर्ण प्रजा के लिए हर्ष का विषय होगा और इससे कन्नौज राज्य-भर में महाराज की जय-जयकार हो उठेगी। यदि धृष्टता क्षमा करें तो महाप्रभु इस पर प्रकाश डाल सकेंगे कि महारानी राज्यश्री का यह निर्णय महाप्रभु की सम्मति से हुआ है अथवा महारानी राज्यश्री की स्वतंत्र सम्मति से ?"

"क्या करोगी यह जानकर ?" महाप्रभु ने संशित मन से पूछा।

"कन्नौज की प्रजा यह जानकर हर्षित होगी कि इस शुभ निर्णय में भगवान् बोधिसत्त्व का समर्थन और सहयोग प्राप्त है। जहाँ श्रीमान् महाराज के लिए प्रजा के मन से शुभकामनाएँ उठेंगी, वहाँ महाप्रभु के लिए शीघ्र निर्वाण-प्राप्ति के लिए प्रार्थनाएँ होंगी।"

महाप्रभु हँस पड़ा और बोला, "इस परिवर्तन का वास्तविक स्रोत जानना चाहती हो तो सुनो। इसका श्रेय, यदि यह शुभ कार्य है तो, मुझको नहीं है। जहाँ तक मैं समझता हूँ, मेरे मस्तिष्क की बनावट में पिछले तीन-चार दिनों से अंतर आना आरंभ हो गया है और इस आरंभ का श्रीगणेश देवी के हाथ का पान खाने से हुआ है।

"उस दिन महामात्य जी के गृह पर जब मैंने पहली बार पान खाया था तो मुझे कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि मेरी आँखों के आगे से पर्दा हटने लगा है। मुझको महामात्य की युक्तियाँ सारपूर्ण प्रतीत होने लगीं। मुझको संसार में एक नवीन सौंदर्य का भास होने लगा। स्वयं देवी पत्रलता मुझे एक विशेष आलोक से आलोकित दिखाई देने लगीं।

"उस रात्रि मुझे नींद नहीं आई और रात्रि-भर मैं भारत देश और समाज की अवस्था पर विचार करता रहा था। मुझको यह समझ में आया कि मैं अकेला इस देश और समाज की प्रगति में बाधक बना हुआ हूँ। मैंने तब ही निश्चय कर लिया था कि मैं एक ओर हटकर इस प्रगति के मार्ग को प्रशस्त कर दूँगा।

"अपने इन विचारों के अनुरूप ही मैंने महाराज को चक्रवर्ती राज्य प्राप्त करने की अनुमति दे दी है। इसी कार्य की सिद्धि के लिए मैंने राज्यश्री से कहकर महाराज हर्षवर्धन को कन्नौज की राजगद्दी पर आरोहण की स्वीकृति दिलाई है और आज मैं एक और निश्चय की घोषणा कर रहा हूँ। वह यह कि आज से बौद्ध-चैत्यों में युवा भिक्षुणियों को प्रवेश न दिया जाए।

"देवी पत्रलता ने अपने जन्म की जो कथा महामात्य के निवासगृह पर सुनाई थी, उससे मेरे मन में ऐसा आघात पहुँचा है कि मैं अपने पूर्ण जीवन के कार्य पर संदेह करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगा हूँ।"

महाप्रभु के इस कथन पर महामात्य और पत्रलता अत्यंत आश्चर्यचकित रह गए। यह एक अनहोनी घटना थी। महाराज हर्षवर्धन ने, महाप्रभु के कथन पर कि पत्रलता के पान खिलाने के पश्चात् ही यह सब परिवर्तन हुआ है, पत्रलता की ओर अत्यंत प्रेम-भरी दृष्टि से देखते हुए कहा, "हमको तो इस वर्तमान सौभाग्य और सुविधा के लिए पत्रलता का ही आभारी होना चाहिए। देवी! मैं सत्य हृदय से तुम्हारा धन्यवाद करता हूँ। चिरकाल से मैं ऐसा अनुभव कर रहा था कि मैं कन्नौज और स्थानेश्वर की सीमाओं में सीमित रहकर अपनी शक्तियों पर तुषारपात कर रहा हूँ। अब मेरी शृंखलाएँ ढीली हुई हैं और मैं अपने भुजदंडों में क्षत्रिय-रक्त स्पंदित होता अनुभव कर रहा हूँ। मेरे लिए मेरा जीवन-कार्य खुल गया है और महाप्रभु की सहायता से तथा भगवान् तथागत की कृपा से मैं इस कार्य को सम्पन्न करूँगा।

"फिर भी महाप्रभु के अनुसार इस परिवर्तन का स्रोत पत्रलता के पान को मानते हुए, हम देवी को, उसकी इस पान लगाने की कला से प्रसन्न होकर पुरस्कृत करते हैं। माँगो देवी! क्या चाहती हो?"

"महाराज! मैं नहीं जानती कि इस परिवर्तन में मेरा कितना भाग है। भगवान् बोधिसत्त्व के कथनानुसार यदि यह मान भी लिया जाए कि वास्तव में ही मेरे इस तुच्छ प्रयास का विस्तृत प्रभाव हुआ है, तो मेरा यह निवेदन है कि आज से मुझको पान न लगाने की आज्ञा प्रदान की जाए और मुझको अपना शेष जीवन छिपकर संसार के किसी अज्ञात कोने में व्यतीत करने की अनुमति दी जाए।"

"तब तो किसी चैत्य में प्रवेश करना पड़ेगा।" महाप्रभु बोले।

"नहीं भगवन्! वहाँ की चंचलता, अस्थिरता और उच्छृंखलता का दर्शन मैंने किया है। बाहर से शांत किंतु भीतर से ज्वालामुखी की भाँति प्रज्वलित वासनाओं का भंडार मैंने वहाँ पाया है और आप तो अभी आदेश दे चुके हैं कि युवा स्त्रियों को चैत्यों में न लिया जाए। मुझको स्वीकृति दी जाए कि मैं अपने लिए अपने छिपने का स्थान स्वयं ढूँढ़ूँ। मैं तो यह चाहती हूँ कि मुझे अब स्वेच्छा से विचरने की स्वीकृति हो।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंचम परिच्छेद

१

महाराज हर्षवर्धन की सेना के साथ उनका संधि-विग्रह अधिकृत मंत्री सदैव साथ रहता था। वह मंत्री बौद्ध था। जिस-जिस राजा ने हर्षवर्धन की अधीनता स्वीकार की, उससे प्रथम कर प्राप्त कर और वार्षिक कर नियत कर संधि कर ली गई।

श्रीकंठ से चलकर प्रथम मोर्चा प्रमथम (सिंध) की सीमाओं पर लगा। प्रमथम पर एक शूद्र वंश के राजा का राज्य था, जो बौद्ध हो गया था। प्रमथमाधिपति ने युद्ध करने के स्थान पर कर देना लाभप्रद माना। दूसरा मोर्चा गांधार देश के विरुद्ध लगा। महाराज के प्रयत्न से युद्ध करने का अवसर ही नहीं आया। सेना को इस प्रकार बाँटा गया और चलाया गया कि छोटे-छोटे युद्धों से ही गांधार की सेना को सिंधु नदी से धकेलकर सुमेरु पर्वत के पार कर दिया गया। इस प्रकार के समर में समय तो लगा, परंतु पूर्ण विजय प्राप्त हुई और कापिश (काबुल) में हर्षवर्धन की विजयपताका गाड़ दी गई। विजय के पश्चात् गांधार राज्य बौद्ध आयुक्तक के हाथ सौंप दिया गया। वहाँ से श्रीकंठ की सेना कश्मीर की ओर चली। कश्मीर में हूणों का अधिकार था। कश्मीर के हूण-नरेश माणिकंद को हिमालय पार कर तिब्बत में धकेल दिया गया। हूण, जो कश्मीर में रह गए थे, वे सब बौद्ध धर्मानुयायी हो गए थे और उन्होंने हर्ष के अधीन रहना स्वीकार कर लिया। यहाँ भी एक बौद्ध हूण को सामंत बनाकर राज्य का कार्यभार उसको सौंप दिया गया। कश्मीर के पश्चात् हर्ष ने अपनी दृष्टि तुषार-शैलभू (नेपाल) की ओर की। इसकी पराजय के पश्चात् हर्षवर्धन धन-धान्य से लदा हुआ स्थानेश्वर, तदनंतर कन्नौज लौटा। इस समय बाण ने हर्षवर्धन को सकलोत्तर पथ की उपाधि दी।

इस समर में छः वर्ष लग गए और छः वर्ष तक श्रीकंठ तथा कन्नौज की राज्य-व्यवस्था पद्मराज के हाथ में रही। स्थानेश्वर और कन्नौज में पूर्ण उत्तर पथ के देशों का धन-संपद् एकत्रित होने लगा और प्रजा धन-धान्य से पूर्ण हो गई।

राज्य में व्यापार और कला-कौशल का विस्तार होने लगा। विदेशों से भी इन राज्यों में धन एकत्रित होने लगा।

जब महाराज हर्षवर्धन इस समर पर गए हुए थे, तो पत्रलता अपने भावी जीवन के विषय में विचार कर रही थी। जब हर्ष उत्तर पथ विजय कर लौट रहा था तो पत्रलता कन्नौज से चले जाने का विचार कर बैठी। एक दिन वह बाण से मिलने गई। बाण ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके मुख पर अवर्णनीय ओज देखा तो चकाचौंध हो देखता रह गया।

"कवि!" पत्रलता ने उसको सचेत करने के लिए कहा, "क्या आज शिष्टाचार भी भूल गए? बैठने को भी नहीं कहोगे?"

"ओह! देवी! क्षमा करना। इस व्यवहार में त्रुटि का मैं दोषी नहीं हूँ।"

"तो कौन दोषी है?"

"यदि देवी सत्य बात सुनना चाहती हैं तो मैं कहता हूँ कि आज देवी के मुख पर अद्वितीय आलोक दिखाई देता है। यह क्षुद्र प्राणी इस आलोक का अद्‌भुत प्रकाश देखने में स्वयं को भूल गया था।"

"तो इसका अर्थ यह हुआ कि कवि को अशिष्ट बनाने का अपराध मैंने किया है।"

"मैं इसको अपराध नहीं कह सकता। यदि इसे अपराध कहूँ तो प्रत्येक सुंदरी अपराधिन बन जाएगी। मैं तो यही कहूँगा कि देवी का सौंदर्य मुझ-जैसे साधारण व्यक्ति पर सम्मोहन का-सा प्रभाव किए हुए था। फिर भी देवी! आओ, विराजो। क्या सेवा करूँ?"

"धन्यवाद!" पत्रलता ने संकेत किए हुए आसन पर बैठते हुए कहा, "मैं आज कवि से अंतिम भेंट करने आई हूँ। मैं कन्नौज छोड़कर जा रही हूँ।"

"कहाँ?"

"किसी अलक्षित लक्ष्य-स्थल पर। मैं इस संसार से विलुप्त हो जाना चाहती हूँ।"

"क्यों?"

"इसलिए कि मैं एक अबला नारी हूँ। मुझे अपने-आपको सबल बनाना है। एक महात्मा कहते हैं कि ज्ञान शक्ति है। ज्ञान-प्राप्ति से ही मनुष्य अपने परम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

"उन ज्ञानवान महात्मा जी की सेवा में मैं कई वर्ष रह चुकी हूँ। जब भी वे मुझको ज्ञान प्राप्त करने को कहते हैं तो मैं पूछती हूँ कि क्यों ज्ञान प्राप्त करूँ? वे कहते हैं कि मोक्ष-प्राप्ति के लिए। जब मेरा प्रश्न होता है कि मोक्ष क्या है? वे कुछ इतना धुँधला-सा चित्र मोक्ष का खींचते हैं कि उससे न तो संतोष होता है और न ही वह प्राप्ति-योग्य वस्तु समझ में आती है।

"एक कवि हैं। वे मुझको कहते हैं कि संसार की सृष्टि भगवान् ने भोग करने के लिए बनाई है। वे इस सृष्टि की सर्वोत्कृष्ट वस्तु नारी के उपासक हैं और मेरी उपासना करना चाहते हैं। मैं पूछती हूँ, कवि महाराज! यह सांसारिक भोग कब तक चल सकता है?

"उनका उत्तर है, 'यौवनावस्था तक, अर्थात् जब तक इंद्रियाँ शिथिल नहीं हो जातीं।'

"मेरा कहना है कि यह तो इतना न्यूनकाल है कि उसके लिए अपनी शक्ति का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ह्रास कर जरा का आह्लाद करना कुछ बुद्धिमत्ता प्रतीत नहीं होती। इंद्रिय-सुख क्षणभंगुर और फीका पड़ जाने वाली वस्तु है।

"एक कर्मयोगी से मेरा पाला पड़ा है। वे कहते हैं कि निष्काम कर्म करने से मोक्ष सिद्ध होता है। उनको युक्ति में परास्त न कर सकने पर भी कर्म करते-करते ऊब गई हूँ। मूर्ख संसार को पान खिलाने में कुछ भी लाभ दिखाई नहीं पड़ रहा। वे कर्मठ अपनी तीन-चौथाई आयु तक राज्य की सेवा में व्यतीत कर चुके हैं। जब-जब भी वे कोई नवीन योजना चलाते हैं तो उनकी युक्तियों, अनुभवों और प्रमाणों का उत्तर न रखते हुए भी लोग, विशेष रूप से अधिकारी, उनकी योजनाओं को विफल करने लगते हैं।

"महाराज को अनेक युक्तियों, प्रलोभनों और प्रमाणों से निरुत्तर कर इस उत्तर पथ की विजय के लिए उन्होंने भेजा था, परन्तु परिणाम वह नहीं हुआ जो होना चाहिए था।

"वे कर्मयोगी चाहते थे कि महाराज समर में जाएँ और पीछे से उनकी सहायता धन, जन और साधनों से की जाए। समर का उद्देश्य महाराज की धन-धान्य में वृद्धि नहीं थी। भारत और भारतीयता की सुरक्षा उनका ध्येय था। सब-कुछ होने पर भी कर तो बहुत एकत्रित हो गया, परन्तु भारत और भारतीयता की सुरक्षा का प्रबन्ध नहीं हुआ। समर का उद्देश्य सिद्ध नहीं हुआ। प्रमथम में शूद्र राज्य बना रहा। यह राज्य भारत का द्वार है। इसका अर्थ यह हुआ कि देश का द्वार उस शूद्र के हाथ में रहा, जिसने एक बूँद रक्त बहाए बिना महाराज की अधीनता स्वीकार कर ली। वह न केवल शूद्र है, प्रत्युत बौद्ध भी है। वह भीरु है। किसी भी विदेशी आक्रमणकारी के सम्मुख वह वैसे ही नतमस्तक हो जाएगा, जैसे महाराज हर्षवर्धन के सम्मुख हो गया था।

"गांधार विजय किया गया। कापिश में विजयपताका गाड़ दी गई, परन्तु गांधार को कन्नौज का प्रान्त न बनाकर स्वतन्त्र देश ही रहने दिया गया। फिर भी वहाँ के वीर राजा को शासन की बागडोर न देकर एक विदेशी को वहाँ का अधिपति बना दिया गया।

"कश्मीर में से माणिकन्द को तो निकाल दिया गया, परन्तु माणिकन्द के भाई के पुत्र को वहाँ का आयुक्तक बना दिया गया।

"इसी प्रकार तुषार-शैलभू पर भी उनका ही राज्य रहने दिया गया, जो तिब्बत देश से पुनः अपने सम्बन्ध बनाकर भारत का द्वार विदेशियों के लिए खोल देंगे।

"मेरे कहने का अर्थ यह है कि छः वर्ष के अतुल प्रयास के पश्चात् भारत तथा भारतीयता वैसी-की-वैसी ही अरक्षित रही, जैसी पहले थी।

"कवि! इन कर्मठ महानुभाव का पूर्ण आयोजन मैं असफल होते देख आई हूँ। इससे अब तो कर्म में भी विश्वास नहीं रहा।

"इस कारण ज्ञान, कर्म, योग तीनों को व्यर्थ मान अपने जीवन के लिए कोई अधिक कल्याण का मार्ग ढूँढ़ने जा रही हूँ।"

पत्रलता का वक्तव्य समाप्त होने पर कवि खिलखिलाकर हँस पड़ा। कुछ देर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक हँसकर उसने कहा, "देवी ! मैं कहता हूँ कि जो कुछ तुमने वर्णन किया है, वह सत्य ही अज्ञान का सूचक है। मेरा विचार है कि तुम सोचती बहुत अधिक हो और करती कम हो। तुमने कालिदास पढ़ा है ?"

"कैसी असंगत बातें करते हो कवि ! कालिदास ने संसार के चित्र खींचे। वे चित्र अलौकिक हैं। उनमें भाषा और भाव अद्भुत हैं। फिर भी वे किसी लक्ष्य की ओर संकेत नहीं करते। वे लक्ष्यहीन हैं। सुन्दर भाषा, सुन्दर कल्पना और सुन्दर उपमा सब ठीक है, परन्तु प्रयोजन क्या है, यह उनमें दिखाई नहीं पड़ता।"

"दिखाई क्यों नहीं पड़ता ? देखने वाले को चक्षु खोलकर पढ़ना चाहिए। सुनो देवी ! कैसा सुन्दर लिखा है :

'अपरक्षित कोमलस्य यातुकुसुमस्येव'

"देखा, कितना सुन्दर वर्णन किया है मन की चाहना का।"

"क्या सौन्दर्य है इस कथन में ? एक कामी पुरुष की उच्छृंखलतापूर्ण वाणी को तुम कवि लोग कवित्व कहते हो। इसी कारण तो गेरा मन संसार से ऊब रहा है। क्या अर्थ है आपकी कविता करने का ? उस दिन मैं यहाँ आई थी, तो आपके कुछ लेख यहाँ चौकी पर पड़े दिखाई दिये। कवि पूजा-पाठ के लिए पूजागृह में थे। अतः भेंट करने के लोभ में यहाँ बैठी तो लेख पढ़ने लगी। एक पत्र पर लिखा था :

" 'राज-गृह में कर्ण-परम्परा से सुना जाता है, परिजन भी ऐसा ही बताते हैं, बाहर के लोग भी ऐसा ही कहते हैं, दिगन्तरों में भी यही बात प्रचलित है और यह ही हमने सुना है कि कादम्बरी की तांबूलवाहिनी तमालिका के साथ प्रेम में फँसा परिहास नाम का तोता, काम के वश होकर भी यह नहीं जानता था कि दिन किस प्रकार व्यतीत होते हैं। इसलिए यह दुराचारी, निज-कलत्र त्यागी निर्लज्ज इसके साथ रहे, परन्तु कादम्बरी को क्या यह उचित है कि ऐसी चपला दुष्ट दासी को नहीं रोकती। अथवा देवी ने प्रथम ही इस बेचारी कालिन्दी को ऐसे अविनयी तोते को देकर अपनी निस्नेहता स्पष्ट कर दी है। अब यह बेचारी क्या करे....।' इस प्रकार पन्ने-पन्ने पढ़ती गई और जब लेख का कुछ सिर-पैर समझ में नहीं आया तो विचार करने लगी कि कवि महोदय ने कैसा सुन्दर गद्य लिखा है। गद्य के शब्द और अलंकारों में फँसी हुई मैं दो घड़ी-भर उस लेख के जंजाल में भटकती रही, परन्तु अन्त में अपने को वहीं पाया, जहाँ आरम्भ में थी।

"मन में आया कि आप पूजागृह से उठकर आएँ तो पन्ने आपके मुख पर दे मारूँ और कहूँ, 'राज्य का धन खा-खाकर क्यों गन्दा कर रहे हो ?' परन्तु यह विचार कर कि इसमें आपका दोष ही क्या है, यथा राजा तथा प्रजा वाली बात ही है, मैं चुप रही। राजा को अनेकानेक प्रयत्नों से कार्य में संलग्न किया और वह कार्य करते-करते उसको अधूरा छोड़ चला गया। राजा ने यह समझा कि संसार उसके चारों ओर घूम रहा है। वह संसार का अनुचर नहीं, प्रत्युत संसार उसकी महिमा गान करने के लिए बना है। उसके कार्य राज्य अथवा प्रजा के हित में नहीं हैं, प्रत्युत प्रजा उसका हित करने के लिए बनी है। अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करोड़ों स्वर्ण-मुद्रा प्रजा से कर-रूप में प्राप्त कर समर पर गए भी, परन्तु प्रजा तो वहाँ की वहाँ ही रही, जहाँ समर के आरम्भ में थी।

"फिर विचार करती हूँ कि राजा का भी क्या दोष है? प्रजा भी यही चाहती है। प्रजा यह देखती है कि अकर्मण्यता से देश रसातल को जा रहा है। फिर भी अकर्मण्य ही बनी रहना पसन्द करती है।

"जब कोई दुष्ट उसके धन-दौलत को लूटता अथवा उसकी बहू-बेटियों को अपमानित करता है, तो वह यह अनुभव करती है कि उसकी मानसिक स्वतन्त्रता पर छापा डाला जा रहा है। तथा जब उसको ज्ञान होता है कि वह अयुक्तियुक्त बातों को करने पर विवश की जा रही है, तो वह छटपटा उठती है और कर्म पर आरूढ़ हो कार्य करने के लिए विचार करने लगती है; परन्तु दूसरे ही क्षण उसको धर्म तथा शान्ति के नाम की निर्वाण के आवरण में लपेटी अहिफेन खाने को दे दी जाती है। वह उसे मजे में खाती है और सो जाती है। भ्रममूलक शान्ति के लोभ में शताब्दियों से संचित निधि का त्याग कर बैठती है।

"प्रजा जो चाहती है, कवि वही लिखता है; कवि जो लिखता है, राजा वही करता है और प्रजा के साथ जब अन्याय और दुराचार होते हैं, तो राजा कवि को दोष देता है, कवि प्रजा को दोष देता है और प्रजा राजा को दोष देती है।

"मैं इस घेरे से बाहर निकलना चाहती हूँ। कैसे निकलूँ, यही जानने की लालसा से कन्नौज से जा रही हूँ।"

बाण गम्भीर विचार में डूबा हुआ पत्रलता के मुख पर देख रहा था। आज उसके लेखों पर टीका-टिप्पणी करने वाली एक स्त्री उत्पन्न हो गई है। उसने उसको झकझोरकर बताया है कि वह राज्य का धन खा-खाकर उसे गन्दा कर रहा है। वह विचार करता था कि क्या यह सत्य है? परन्तु उसके मन में साहित्य का एक लक्षण बना था और वह उसी लक्षणों वाले साहित्य को लिखता था। यह स्त्री कौन है जो शताब्दियों से चली आ रही साहित्य की परम्परा को अशुद्ध बता रही है? वह उससे जूझ जाने का विचार कर रहा था और उस स्त्री को अपने स्थान पर बिठाकर सिद्ध करना चाहता था कि वह अनधिकार चेष्टा कर रही है।

पत्रलता भी गम्भीर विचार में मग्न थी। इस समय आगार के बाहर से किसी के अट्टहास का स्वर सुनाई दिया। दोनों सतर्क हो बाहर की ओर देखने लगे और उनके विस्मय का ठिकाना नहीं रहा, जब अघोरी बाबा और उसकी भैरवी ने उस आगार में प्रवेश किया।

२

बाण ने बाबा को देखा तो आगे बढ़कर उनका स्वागत करते हुए कहा, "आइये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराज ! अहोभाग्य हैं हमारे जो आप दोनों के दर्शन हुए हैं।"

बाबा और भैरवी को आसन पर बिठाकर, बाण हाथ जोड़, पूछने लगा, "क्या सेवा करूँ महाराज ?"

"बेटा ! दूध मँगवा दो। आज हमें अन्न नहीं लेना है।"

बाण ने प्रतिहार चेतक को बुलाकर दूध लाने का आदेश दे दिया।

बाबा ने भैरवी की ओर देखकर कहा, "भैरवी ! इनको बताओ कि हम किस कारण हँस रहे थे ?"

भैरवी ने हँसकर कहा, "कल अमावस की रात्रि थी। दीर्घिका पर के मन्दिर में पूजा का आयोजन था। काल-भैरव की पूजा कर जब हम निवृत्त हुए तो दिन निकलने वाला था। बाबा बोले, 'भैरवी ! नगर में कोई आह्वान करता प्रतीत होता है।'

"मैंने कहा, 'बाबा ! मैं तो आज की प्रक्रिया से थक गई हूँ और विश्राम करना चाहती हूँ।'

"पर बाबा बोले, 'नहीं ! आज तो चलना होगा और यदि तुम थकी हो तो गाँव के श्मशानिये की बैलगाड़ी पर चलेंगे। परन्तु मैं देख रहा हूँ कि भक्तिनी के जीवन ने करवट ली है। वह जीवन-मार्ग नहीं पा रही। चलो, भक्तिनी को सन्मार्ग पर लगावें।'

"मैं कई बार बाबा जी से पूछ चुकी हूँ कि वे इस भक्तिनी के पीछे क्यों पड़े हैं ? यह तो काल-भैरव की उपासिका नहीं। उसके आचार्य जी तो वाराह के पुजारी हैं।

"बाबा का कहना है, 'संसार में भगवान् एक है। ये सब उसी महाशक्ति के भिन्न-भिन्न रूप हैं। कौन किसकी उपासना करता है, यह उसके अपने मन की भावना पर निर्भर है। इस कारण कोई किसी सुन्दरी के सौन्दर्य पर आसक्त है अथवा कृष्ण मेघों की श्यामल छटा पर मोहित है; कोई किसी चंचल चपला के नृत्य में पायलों की झंकार सुन मुग्ध हो जाता है अथवा कोई कोयल की कू-कू सुनकर नाचने लगता है; कोई सरस्वती वीणापाणि के प्रिय दर्शन पर अपना सर्वस्व न्योछावर कर देता है, कोई महावाराह भगवान् के आश्रय पर चित्त को शान्ति देता है। अभिप्राय यह है कि यह सब उस महान् शक्ति के, जिसके बल से सकल जगत् का कार्य होता है, भिन्न-भिन्न रूप हैं। कोई उसको शक्ति कहता है, कोई भगवान् का नाम देता है; कोई उसको इहलोक मानता है और कोई परलोक कहकर सुधारने का यत्न करता है। वास्तव में सब एक ही हैं। अतएव भक्तिनी किसकी उपासिका है, यह देखने की आवश्यकता नहीं। जानने योग्य बात यह है कि वह निष्ठावान, दृढ़ संकल्प, स्वार्थरहित उद्देश्य-प्राप्ति में संलग्न है। यही तो कर्म है। शेष तो कार्यसिद्धि के उपकरण-मात्र हैं।'

"इतना समझाकर बाबा मुझको लेकर चल पड़े। श्मशानी की बैलगाड़ी पर सवार हो, पाँच कोस की यात्रा कर हम यहाँ आ पहुँचे हैं। मार्ग में बाबा कह रहे थे, 'भक्तिनी चल पड़ी है अपने प्रेमी को जली-कटी सुनाने। वह उससे प्रेम करती है, परन्तु किसी कारण-विशेष से दोनों भिन्न-भिन्न दिशाओं की ओर मुख किये बैठे हैं और दोनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक-दूसरे को न देखने से समझ नहीं रहे।'

"हम इस आगार के बाहर आकर आप दोनों का विवाद सुन रहे थे और जब भक्तिनी कह रही थी कि राजा कवि को दोष देता है, कवि प्रजा को और प्रजा राजा को, तो हम इन गोलाकार रेखाओं के पुनः अपने जन्मस्थान पर पहुँचने की बात पर, इसको विस्मय करते देख हँस पड़े थे।"

पत्रलता बाबा की भविष्य देखने की शक्ति से परिचित थी। इस कारण अपने भविष्य में पुनः इस सिद्ध को चिन्ता करते देख विस्मय में उनका मुख देखती रह गई।

अघोरी बाबा पत्रलता को अवाक् मुख से अपनी ओर निहारते देख पूछने लगा, "तो क्या मेरी बात का अभी भी तुमको विश्वास नहीं होता? क्या और कुछ देखना चाहती हो? तो देखो सामने क्या है।"

पत्रलता और बाण दोनों सामने देखने लगे। वे यह देख चकित रह गए कि आगार की दीवार पर एक मरुभूमि का दृश्य बन गया है। एक पंक्ति में ऊँट, जिन पर बड़े-बड़े गट्ठरों में माल लदा है, चले जा रहे हैं। सबसे आगे के एक ऊँट पर एक प्रौढ़ावस्था का पुरुष सिर पर श्वेत चादर की पगड़ी लपेटे और कन्धे पर मोटा श्वेत कम्बल डाले हुए बैठा है।

ऊँटों की पंक्ति में अन्तिम ऊँट पर एक सोलह-सत्रह वर्ष का ओजस्वी बालक बैठा है। बालक अपने विचारों में लीन ऊँट के चलने से हिचकोले लेता हुआ चला जा रहा है।

"यह क्या है बाबा?" पत्रलता का प्रश्न था।

"एक बीत चुकी घटना का चित्र है। यह ऊँटों का 'कारवाँ' दमिष्क नाम के एक नगर में जा रहा था। पहले ऊँट पर मालिक बैठा था। अन्तिम पर स्वामी का सेवक। यह सेवक प्रकृति के एक केन्द्र में भारी हलचल का कारण होने वाला सिद्ध हुआ है।

"यह देखो।" बाबा ने पुनः कहा। दीवार पर वह चित्र परिवर्तित हो गया। एक पुष्करिणी के किनारे वही बालक, जो ऊँटों की पंक्ति में सबसे अन्तिम ऊँट पर था, खड़ा पुष्करिणी में पत्थर फेंक रहा है। पत्थर जल में गिरता है और फिर उसमें से तरंगें उठने लगती हैं। ये तरंगें पत्थर गिरने के स्थान से चलकर पुष्करिणी के दूर-दूर किनारों तक पहुँचती हैं। वहाँ से टकराकर लौटती हैं और पुनः अपने केन्द्र-स्थान पर जा पहुँचती हैं। पश्चात् पुनः किनारों की ओर चल पड़ती हैं।

"क्या अर्थ है इसका बाबा?"

"यह 'कारवाँ' जब दमिष्क में पहुँचा, तो स्वामी का देहान्त हो गया। माल बेचने पर सब धन उस लड़के को मिल गया। इस प्रकार लाखों मुद्राओं का स्वामी बन वह बालक विचार करने लगा कि इस धन का क्या करे। उसके मन में विचार आया कि किसी मन्दिर में जाकर देवता को प्रसन्न कर इस धन के विषय में जानने का यत्न करे।

"वह एक यहूदी मन्दिर में पहुँचा। वहाँ मन्दिर खाली पड़ा था, परन्तु उसमें से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्वनि आ रही थी कि 'परमात्मा एक है। वह सब-कुछ देखता है। उससे कुछ छिपा नहीं।'

"बालक के हाथ में इस अदृश्य से आई ध्वनि ने एक पत्थर दिया था। इस बालक ने वह पत्थर अरब की पुष्करिणी में फेंक दिया है और उसमें से तरंगें उठने लगी हैं और पुष्करिणी के दूर-दूर किनारों तक पहुँच रही हैं तथा सब विघ्न-बाधाओं को तोड़कर वे यहाँ तक पहुँचने वाली हैं।"

"तब क्या होगा बाबा! प्रत्यक्ष रूप में तो परमात्मा एक है। परमात्मा महान् है। वह सब-कुछ देखता है। यह ध्वनि किसी प्रकार से भी चिन्ता का विषय नहीं हो सकती। यदि संसार इस प्रकार से तरंगित होने वाला है, तो शुभ ही है।"

"यदि ऐसा हो सकता, तो सत्य ही चिन्ता का विषय न होता। परन्तु वह पत्थर अर्थात् 'परमात्मा एक है का विचार' तो पुष्करिणी में डूबकर वहीं जल की तह में जा बैठा है और तरंगें तो उस जल में उठ रही हैं, जो जल उस पुष्करिणी में विद्यमान था। पुष्करिणी का जल शुद्ध-पवित्र होता, तो इन तरंगों से शुद्धता तथा पवित्रता संसार में फैलती। वास्तव में अरब देश का समाज अत्यन्त ही पतित है और पिछड़ा हुआ है और दुर्दैव से उसमें पत्थर फेंका गया है। तरंगें उठ रही हैं उस दूषित जल में और उस जल की गन्दगी ही तो संसार में फैलेगी।

"इस महानात्मा का प्रयास ऐसे माध्यम में प्रयोग हुआ है, जो संसार में वह उथल-पुथल मचाएगा, वह अत्याचार और अनाचार का रंग लाएगा, वह दुःख और क्लेश उत्पन्न करेगा कि संसार के लोग दाँतों-तले उँगली देने लगेंगे।

"उधर देखो।" वे पुनः उसी दीवार पर देखने लगे। एक भव्य नगर का दृश्य था। बाबा ने कहा, "यह है बगदाद।"

तंग बाजार और ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएँ थीं। पत्थर के फर्श और संगमरमर के फव्वारे थे। बड़ी-बड़ी पगड़ियाँ और चोगे पहने पुरुष थे और बुर्का ओढ़े स्त्रियाँ थीं।

"यह क्या है बाबा!" पत्रलता ने सिर से पाँव तक कपड़ों में लिपटी एक चलती-फिरती वस्तु की ओर संकेत कर पूछा।

"ये स्त्रियाँ हैं। इनको उस सुन्दर और ओजस्वी युवक ने दासता की शृंखलाओं में जकड़ दिया है। इसने आज्ञा दी है कि उसकी राह पर चलने वाले पुरुषों के घरों की स्त्रियाँ सदैव पर्दा किया करें। वे अपने शरीर के किसी भाग को भी किसी पर-पुरुष को देखने न दें।"

"क्यों?"

"इस कारण कि कहीं वे उन पर मोहित हो, पथभ्रष्ट न हो जाएँ।"

बाण हँस पड़ा और बोला, "यदि यह प्रथा यहाँ भी चल पड़ी, तब तो बहुत कठिनाई हो जायेगी। अभी तो पुरुष सुन्दर स्त्रियों पर ही आसक्त होते हैं, तब तो चलते-फिरते इन ख़ेमों पर भी आसक्त हो जाया करेंगे। आसक्ति का विषय सौन्दर्य न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहकर स्त्री हो जायगा।"

"यह तो दूर भविष्य ही बताएगा। परन्तु अभी तो निकट भविष्य की बात देखो। वह देखो क्या है ?"

दीवार के दृश्य में पुनः परिवर्तन हुआ। एक विशाल भव्य भवन में, एक उच्च आसन पर, एक अधेड़ आयु का व्यक्ति बैठा था। उसके सामने दो पंक्तियों में अन्य अनेक व्यक्ति सम्मानयुक्त मुद्रा में खड़े थे। सब लोग अत्यन्त बढ़िया एवं मूल्यवान वस्त्र पहने हुए थे। उन दो पंक्तियों में खड़े पुरुषों के मध्य में कुछ लोग भारी गट्ठर उठाये हुए आए और उन गट्ठरों को उस उच्चासन पर विराजित व्यक्ति के सम्मुख रख खोलने लगे। एक-एक गट्ठर खोलकर उसमें की वस्तुएँ दिखाने लगे। उसमें से हीरे, मोती, माणिक्य तथा अन्य मूल्यवान रत्न निकालकर दिखाये गए। उच्चासन पर बैठा व्यक्ति उन वस्तुओं को देखकर प्रसन्न हुआ।

बाबा ने कहा, "यह उस बालक का, जिसको तुम पुष्करिणी में पत्थर फेंकते देख चुके हो, खलीफा है। वह युवक वृद्ध हो अब संसार से उठ चुका है। अब उसका खलीफा बगदाद में राज्य करता है और पत्थर के पुष्करिणी में फेंके जाने से उठने वाली तरंगों से लाभ उठा रहा है। वे तरंगें यह धन-दौलत सीरिया, फिलिस्तान, मिस्र, ईरान इत्यादि देशों से ला रही हैं। यह वह कुछ है, जो विजित देशों के अमुसलमानों से कर के रूप में एकत्रित किया गया है। उधर देखो, वह क्या हो रहा है।"

कुछ युवा लड़कियाँ, जिनके हाथों को रस्सी से बाँधा गया था, घसीटकर उस उच्चासन पर बैठे व्यक्ति के सम्मुख लाई गईं।

"ये कौन हैं ?" उस खलीफा ने पूछा।

"हजरत ! ये शाह मिस्र की लड़कियाँ हैं। फौज के साथ एक मुफती ने इन्हें हुक्म दिया था कि ये इस्लाम कबूल कर लें। इन्होंने इनकार कर दिया है।"

खलीफा ने पूछा, "लड़कियो ! तुम इस्लाम कबूल क्यों नहीं करतीं ?"

लड़कियाँ चुप रहीं। केवल एक, जो सबसे बड़ी थी, कहने लगी, "हम बादशाह की लड़कियाँ हैं। हम चाहती हैं कि हमारे साथ हमारे ओहदे के मुताबिक सलूक किया जाए।"

"इस दुनिया में बादशाह एक है। वह है खुदा। वली-उल-इस्लाम हजरत मुहम्मद उस शाहंशाहों के शाह के पैगंबर हैं। यह गुलाम, जो तुम्हारे सामने बैठा है, उसका खलीफा है। इसलिए हुक्म खुदा का है। वली-उल-इस्लाम हजरत मुहम्मद ने उस हुक्म का बखान किया है। उस पर ईमान लाओ और तुमको सब तरह की इज्जत और आराम मिलेगा।"

"जिस खुदा के हुक्म से काहिरा की गलियाँ आदमियों के खून से लथपथ की गई हैं, जिस खुदा के बंदों ने मिस्र की सब कुँवारी लड़कियों से बलात्कार किया है, जिस खुदा की फौजों ने निहत्थे लोगों पर अन्याय और जुल्म ढाए हैं, जिस खुदा के हुक्म में इंसान और इंसान में फर्क आ गया है, उस खुदा पर हम ईमान नहीं ला सकतीं।"

"लड़की !" खलीफा ने कहा, "देखो, किसके सामने खड़ी हो ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"एक अन्यायी, अत्याचारी, दुराचारी खुदा के गुलाम के सामने। हमको रिहा कर दिया जाए।"

"जल्लाद ! इस लड़की को नापाक जिस्म से रिहाई दे दी जाए।"

एक अति भयानक आकृति का व्यक्ति हाथ में खड्ग लिए आगे बढ़ा और उसने एक ही वार में उस लड़की का सिर धड़ से पृथक् कर दिया। रक्त के छींटे उड़े और अन्य लड़कियों पर पड़े। इस पर वे तीव्र स्वर में चीत्कार कर भागने का यत्न करने लगीं।

"लड़कियो !" खलीफा ने कहा, "क्या चाहती हो ? बोलो, मौत या ईमान ?"

"हमें बचाओ ! हमें माफ कर दो !" सब लड़कियों ने चिल्लाकर कहा।

खलीफा मुस्कराया और अपने समीप खड़े एक व्यक्ति से कहने लगा, "इनको हमारे हरम में भेज दो। इनको माफ कर दिया गया है।"

पत्रलता यह दृश्य देख काँप उठी। उसकी आँखें तरल हो गईं। अब बाबा ने पुनः कहा, "उस पुष्करिणी में फेंके पत्थर से उठी तरंगें भरत-खंड की सीमाओं को पार कर यहाँ भी आने वाली हैं। भक्तिनी ! जानती हो, इन तरंगों को रोकने का उपाय क्या है ? उस पुष्करिणी को सीमित कर दो और उसके किनारों को भारत की सीमा से बाहर रहने दो। सीमाओं को इतना सुदृढ़ करो कि तरंगें वहाँ से टकराकर वापस लौट जाएँ।"

"परंतु बाबा ! इसका मुझसे क्या संबंध है ?"

"तुम संसार से भागकर जा रही हो। मैं तुमको इस भगदड़ से मना करने आया हूँ। भारत के एक महान् पुरुष ने एक बार कहा था, 'कर्म करने से कोई नहीं बच सकता। इस कारण अच्छे कर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीवन व्यतीत करो।' महाकाल भैरव का कथन है, समय व्यतीत हो रहा है और वे तरंगें, जिनका दर्शन भगवान् की कृपा से मैंने कराया है, यदि एक बार इस पुण्य-भूमि की सीमाओं को पार कर, इस समाज में घुस आईं तो सहस्रों वर्षों तक यहाँ का समाज दुःख-यंत्रणा से त्राहि-त्राहि करता रहेगा।"

इस समय बाण का सेवक दूध का प्रबन्ध कर लाया। उसने सबके सामने चौकियों पर दूध रख दिया। बाण ने कहा, "बाबा ! आप दूध पीजिए। भविष्य की चिन्ता छोड़ वर्तमान की बात करिए। कौन जानता है कि कल क्या होगा ! आज की बात तो समझ में आती है। कल की चिन्ता न केवल निरर्थक है, प्रत्युत दुःखदायी भी है।"

: ३ :

बाबा तथा भैरवी ने दूध पिया और पश्चात् उठकर चल दिए। बाबा को मायावी प्रदर्शन और भविष्य की चिन्ता करते बाण तथा पत्रलता दोनों पर इसका भिन्न-भिन्न प्रभाव पड़ा था। बाबा के चले जाने के पश्चात् बाण ने कहा, "भविष्य का ज्ञान अति दुःखकारक होता है। यह ज्ञान सत्य भी हो सकता है और असत्य भी। परन्तु दुःख तो सत्य होता है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"परंतु कवि ! यदि सत्य ही यह होने वाला है, तो इससे बचने का उपाय किया जाना चाहिए।"

"क्या उपाय हो सकता है ?"

"भारत की सीमाओं पर सुदृढ़ छावनियाँ बनवा दी जाएँ, जिससे उस भगवान् के तथा उसके पैगंबर के अनुयायी इन सीमाओं को पार न कर सकें। एक बात बाबा जी ने दिखाई है। इस नवीन पंथानुयायियों की सेनाएँ पहले किसी देश को विजय करती हैं, फिर वे अत्याचार होते हैं जिनका हमने चित्र देखा है।"

"परंतु क्या तुम भरत-खंड की सेना हो अथवा सेनानायक हो? भला तुम कैसे इन तरंगों को रोकने में सामर्थ्यवान हो सकती हो ?"

"एक बार इसी बाबा ने भभूत दी थी। वह मैंने महाप्रभु को पान में खिलाई थी। उसका चमत्कारिक प्रभाव हुआ था। उसके खाने के कुछ ही काल पश्चात् महाप्रभु की बुद्धि में अंतर आने लगा था। उस अंतर का परिणाम यह हुआ कि महाराज हर्षवर्धन वर्तमान समर पर चल पड़े थे।

"महाराज हर्षवर्धन अति ओज और बल के स्वामी हैं, परंतु कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि इस ओज और बल पर तुषारपात करने वाला कोई अन्य व्यक्ति इनके साथ गया हुआ है, जिसका परिणाम यह हो रहा है कि भरत-खंड की सीमाएँ अभी भी उसी प्रकार अरक्षित हैं, जैसे पहले थीं। वहाँ पर अभी भी उन लोगों का आधिपत्य है, जो न तो भारत के साथ किसी प्रकार का अनुराग रखते हैं और न ही यहाँ की संस्कृति को श्रेष्ठ मानते हैं। इस परिस्थिति का परिणाम भयंकर होने वाला है।"

"तो ?"

"बाबा जी का आदेश यही प्रतीत होता है कि मैं संसार छोड़कर न जाऊँ। यहीं रहूँ और अपने जीवनकाल में इस प्रयत्न में लगी रहूँ कि यहाँ पर बुद्धिवाद का बोलबाला हो और भावुकता निर्मूल हो।"

"तब तो ठीक है देवी ! बाबा जी के आशीर्वाद से तुम यहाँ रहो और थोड़ा-सा मेरा कहा मान लो कि मेरे गृह को अपने वास से सुशोभित करो। मेरे प्रेम को सफल करो और भगवान् के विधान को चरितार्थ करती हुई पुत्र-पौत्रों से इस गरीब ब्राह्मण के घर को भरपूर करो।"

पत्रलता हँस पड़ी। उसने कहा, "इस विषय पर मैं चिरकाल से विचार करती आ रही हूँ। फिर भी अंतिम निर्णय नहीं कर पा रही। क्यों ? मैं नहीं जानती। जानने का यत्न तो किया है, पर अभी तक जान नहीं सकी। ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान् को यह स्वीकार नहीं !"

"देखो देवी ! तुमको अपने अयुक्तिसंगत व्यवहार में भगवान् को घसीटते देख मुझे भगवान् से घृणा होने लग गई है। मैं उसके विधान को अस्वीकार करता हूँ और कहता हूँ कि तुम भी उसका अवलंबन छोड़कर मेरे कंधे पर हाथ रख लो। मैं तुमको इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसार-रूपी दुस्तर सागर से पार कर दूँगा।"

"अच्छा, कैसे करोगे? तनिक समझाओ तो।

"मैंने अघोरी बाबा द्वारा दी गई भभूत पान में रखकर महाप्रभु को दी थी और उनकी मति में परिवर्तन हो गया था। परंतु साथ ही इसका यह परिणाम भी हुआ है कि वे अस्वस्थ रहने लगे हैं। संभव है, यह उसी भभूत के कारण हुआ हो। कुछ भी हो। कदाचित् किसी दिन यह रहस्य खुल जाए और मुझे इस अपराध में पकड़ लिया जाए। यदि मैं आपके साथ रहने लगी तो संभव है, आपको भी इस षड्यंत्र में सम्मिलित समझ लिया जाए और पुरुष होने के कारण आपको फाँसी के तख्ते पर चढ़ा दिया जाए।

"साथ ही मैं बौद्धों द्वारा राज्य-कार्य में हस्तक्षेप पसंद नहीं करती। मेरा यह अनुमान है कि महाराज की यह लँगड़ी नीति सेना में किसी बौद्ध विचारधारा से प्रभावित व्यक्ति की सम्मति पर चल रही है। मान लो, मैं अपने विचार की पूर्ति में कोई यत्न करूँ और उस प्रयत्न में राजद्रोह के अपराध में पकड़ ली जाऊँ तो श्रीमान् मेरे पति होने के नाते फाँसी पर लटका दिए जा सकते हैं।

"आप मुझे इस दुस्तर सागर से पार करते-करते स्वयं इसमें डूब जाएँगे।"

बाण पत्रलता के विचारों को सुन काँप उठा। वह अपना जीवन-कार्य तो केवल हर्ष के गुणानुवाद करना और स्त्रियों के सौंदर्य, देवताओं के वैभव तथा प्रकृति की शोभा का वर्णन करना और भाषा में वैचित्र्य लाना मात्र समझता था। पत्रलता ने जो कार्य उसके सामने रखा था, वह तो राजनीति से संबंधित था। फिर भी उसने कहा, "मैं समझता हूँ कि जब तक तुम कुँवारी रहोगी, ऐसे विचार तुम्हारे मस्तिष्क में उठते रहेंगे। ये विचार तुम्हें टेढ़े-मेढ़े रास्तों पर ले जाने की प्रेरणा देते रहेंगे। जहाँ तुमने गृहस्थ धर्म स्वीकार किया और सौभाग्य से एक-दो बालकों की माँ बन गईं, तो यह षड्यंत्र अथवा धर्म और संस्कृति का ज्वर और संप्रदायों में विवाद पीछे रह जाएँगे, उनकी ध्वनि दूर, पीछे छूट जाएगी और समय पा दूर के नकारों के शब्द के समान फीकी पड़ जाएगी।"

"इसीलिए तो मैं गृहस्थ में प्रवेश करने से भय खाती हूँ। मैं अपने जीवन-लक्ष्य को छोड़ना नहीं चाहती। विवाह करने से यह जीवन-कार्य दूर के ढोल-ढमकीरे मात्र रह जाएँगे। मैं यह जानती हूँ और इसी कारण मैं ऐसा नहीं चाहती।"

इतना कह पत्रलता उठ खड़ी हुई। बाण उसके मुख पर गंभीरतापूर्वक देख रहा था। पत्रलता ने आगार से बाहर निकलते हुए कहा, "मैं तो अंतिम भेंट करने आई थी, परंतु यहाँ तो बात ही दूसरी निकली। मैं कर्म से भाग नहीं सकती।"

बाण भी उठा और उसके साथ चलने के लिए आगार से बाहर निकलकर आया। उसने पूछा, "देवी, किधर जा रही हो?"

"महामात्य के गृह पर। मैं उनसे विदा लेकर आई थी। परंतु अब तो कार्यक्रम बदल गया है। अतएव सबसे पहले उन्हें ही इन बदले हुए विचारों से सूचित करना चाहती हूँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"चलो, मैं भी उस ओर ही चल रहा हूँ।"

दोनों वहाँ से निकल महामात्य के गृह की ओर चल दिए। चलते हुए पत्रलता ने पूछा, "महाराज का जीवन वर्तमान काल तक लिख दिया है?"

"नहीं, अभी नहीं। महाराज राज्यवर्धन के शशांक की भगिनी के साथ विवाह पर जाने तक पहुँचा हूँ।"

"बहुत धीरे-धीरे लिखते हो कवि!"

"महाराज दीर्घायु हों। उनका जीवन लिखने के लिए अभी बहुत समय है।"

"तो दिन-भर क्या मक्खियाँ मारा करते हो?"

"नहीं, एक गद्य-काव्य 'कादंबरी' लिख रहा हूँ।"

"ओह! वही जो मैं एक दिन पढ़ गई थी?"

"हाँ, वास्तव में जब तक तुम पूरी कथा नहीं पढ़ लेतीं, तब तक तुम्हें उसमें रस नहीं आएगा।"

"रस तो आया था, परंतु वह कटु रस था। कवि! तुमने भारत-युद्ध का इतिहास पढ़ा है?"

"हाँ, पढ़ा है।"

"महर्षि वेद-व्यास की भाषा की सरलता पर कभी विचार किया है?"

"किया है।"

"तो वैसी भाषा क्यों नहीं लिखते? देखो कवि! कैसी सुंदर बात कैसी सरल भाषा में लिखी गई है :

अष्टौ पूर्व निमित्तानि नरस्य विनशिष्यते।
ब्रह्मणाम प्रथमं द्वेष्टि ब्राह्मणश्च विरुध्यते॥
ब्रह्मणस्वानि चादत्ते ब्राह्मणश्च जिघांसति।
रमते निन्दया चैषां प्रशंसो नाभिनन्दति॥
नैनाम् स्मरति कृत्येषु याचितश्चाभ्यसूयति।
एतान् दोषान् नरः प्राज्ञो बुध्येद् बुद्धवा विसर्जयेत्॥

"और यदि इससे भी सुंदर लेख देखना है तो महर्षि वाल्मीकि लिखित रामायण पढ़ लो। क्यों अपना समय व्यर्थ गँवा रहे हो। एक निम्न कोटि के पुरुष के गुणगान कर और वह भी ऐसी भाषा में, जिसको बिरले ही पढ़ पाएँगे।"

"तो तुम मेरी भाषा को पसंद नहीं करतीं?"

"मैं तो यही कह रही हूँ कि कुछ ऐसा लिखो कि भारत की प्रजा में वीर-रस का संचार हो उठे। कुछ ऐसी बात बताओ, जिससे वास्तविक शांति की स्थापना हो सके। वह शांति, जो श्रेष्ठ, सत्यवक्ता और धर्मपरायण लोगों के हृदय को शांत करे न कि उनको छोड़कर दुष्ट, दुराचारी, पतित और मूर्खों को आनंद देने वाली हो।

"वह दुर्गंधयुक्त, दूषित और रोगकारक जल में उठ रही तरंगें भारत में आ रही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। कुछ ऐसा आयोजन विचार करो कि जिससे तरंगें भरत-खंड की सीमाओं से पार ही टकराकर लौट जाएँ।"

"पत्रलता! मैं तो समझा था कि बाबा ने तुम्हें आसक्ति का मार्ग बताकर मेरा कल्याण किया है, परंतु यह तो तुमने आसक्ति में विरक्ति का संचार करना आरंभ कर दिया है।"

"हाँ, मैं भूल कर रही थी। मैं भूल गई थी कि :

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः।"

: ४ :

बाण और पत्रलता महामात्य के निवासगृह पर पहुँचे तो बोधिसत्त्व जी की पालकी द्वार पर खड़ी देख समझ गए कि महाप्रभु भीतर विद्यमान हैं। पत्रलता ने बाण से कहा, "आप भीतर सूचना भेजकर प्रतीक्षा करें, तब तक मैं विरोचना देवी से मिलकर आती हूँ।"

बाण ने अपना और पत्रलता का नाम भीतर भेजकर दर्शनों की अभिलाषा प्रकट कर दी। भीतर महाप्रभु और महामात्य हर्षवर्धन के विजय के उपलक्ष्य में महाराज के स्वागत में समारोह के प्रबंध पर विचार कर रहे थे।

बोधिसत्त्व ने बाण को भीतर बुला लाने के लिए आदेश दे दिया। महामात्य ने प्रतिहार को कह दिया कि बाण कवि को भीतर ले आया जाए।

बाण को केवल अपने बुलाए जाने पर आश्चर्य हुआ, परंतु भीतर जाने पर उसका आश्चर्य मिट गया। बाण को बैठाकर महाप्रभु कहने लगे, "कवि! हम महाराज की विजय-यात्रा के उपलक्ष्य में तथा उनके कन्नौज वापस आने की प्रसन्नता में एक महान् उत्सव करना चाहते हैं। हमारी इच्छा है कि इस उत्सव में नृत्य, संगीत, नाटक-कला तथा अन्य मनोरंजन के कार्यों का भार तुम अपने ऊपर ले लो। हम चाहते हैं कि कल मध्याह्न तक तुम इस विषय में तीन दिन की योजना बनाकर महामात्य को दिखा दो। महाराज एक-दो दिन में समर से लौटने वाले हैं। परंतु यह उत्सव तो सेना के यहाँ पहुँचने पर ही मनाया जाएगा। उसको लगभग दो मास लग जाएँगे।

"सो कवि! यह कार्य तुम्हारे उत्तरदायित्व पर छोड़ रहा हूँ। अब तुम जा सकते हो।"

बाण चुपचाप उठकर चला गया। उसके जाने के पश्चात् महाप्रभु ने कहा, "अब पत्रलता को बुला लीजिए। चिरकाल से उसके हाथ का बना पान खाने का सौभाग्य नहीं मिला।"

महामात्य ने मुस्कराकर उत्तर दिया, "महाप्रभु! उसने तांबूलिन का कार्य छोड़ दिया है। वह संन्यासिनी बन रही है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"सत्य? तब तो उसको बुला लीजिए। तनिक हम भी उसकी सहायता कर दें। वह किस चैत्य में जाकर रहना चाहती है?"

महामात्य हँस पड़ा। हँसते हुए उसने कहा, "जहाँ तक मुझको विदित है, वह अभी बद्रीनारायण की यात्रा पर जाएगी। वहाँ से लौटकर निर्णय करेगी कि वह कहाँ पर और किस रूप में अपना शेष जीवन व्यतीत करना चाहती है। फिर भी यदि भगवन् चाहें, तो उसे बुला लें। हमारा विचार-विनिमय-कार्य तो समाप्त हो गया है।"

"पत्रलता की बातें सत्य ही अत्यंत रोचक होती हैं। उसे बुला लीजिए। कुछ समय के लिए मनबहलाव हो जाएगा।"

पत्रलता के आने पर महाप्रभु ने उसे बैठने का संकेत करते हुए कहा, "देवी! हमें यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हुई है कि तुम संन्यास लेने जा रही हो।"

"हाँ भगवन्! परंतु अब विचार बदल गया है।"

"ओह!" महामात्य ने आश्चर्यचकित होकर पूछा, "पुनः कवि के लिए प्रेम उमड़ आया है, जो संसार की निःसारता में सार प्रतीत होने लगा है?"

"कवि से मेरा प्रेम तो जन्म-जन्मान्तर का है, परन्तु कवि से विवाह के लिए अभी भी रुचि उत्पन्न नहीं हुई। मैं श्रीमान् से कहकर गई थी कि मैं बद्रीनारायण के लिए प्रस्थान कर रही हूँ, परंतु अभी कुछ काल पूर्व एक घटना घटी है, जिसने मेरे जीवन की दिशा बदल दी है। मैं अभी कुछ काल तक कन्नौज में रहना चाहती हूँ।"

"वह कौन-सी घटना है, जिसने हमारी पुत्री-तुल्य पत्रलता को संन्यास-मार्ग से विचलित कर दिया है?" बोधिसत्त्व महाराज ने पूछा।

"भगवन्! उसको आप जानकर क्या करेंगे? आप तो भगवान् तथागत की पदवी तक पहुँचे हुए व्यक्ति हैं। आपको तो सांसारिक तत्त्वों में कुछ सार प्रतीत नहीं होता। लाखों मरते हैं अथवा दुखित हैं, इससे आपको कोई सरोकार नहीं। आपके पास तो संसार की प्रत्येक विकृति का एक उपाय है। वह है, 'शांतं पापं, शांतं पापं !' परन्तु भगवन्, जाप करने से पाप शांत नहीं होते। प्रत्येक पाप को शांत करने की अपनी-अपनी विधि है। आप कदाचित् उन विधियों से परिचित नहीं, अथवा उनके लिए साहस नहीं रखते।"

"बहुत नाराज हो हमसे देवी!"

"क्षमा करें भगवन्! आपने क्या किया है, जिससे यहाँ के रहने वाले कोटि-कोटि जन-साधारण की वेग से आ रही आँधी से रक्षा हो सके?"

"कहाँ है आँधी? कैसी बातें कर रही हो तुम?"

"एक जानकार व्यक्ति ने बताया है कि मदीना से उठी आँधी बगदाद तक आ गई है। 'अल्लाह एक है, अल्लाह महान् है' का नारा लगाकर उसने संसार की दूषित शक्तियों को संगठित कर लिया है और वे शक्तियाँ अब शीघ्र ही संसार में वह हलचल मचाने वाली हैं, जिससे भूतल पर अबलाओं और असहायों का वह चीत्कार मचेगा, जैसा कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज तक कभी नहीं मचा।"

"महामात्य! देवी की चिकित्सा करानी होगी। किसी ने इस पर मोहिनी मंत्र फूँका है, जिससे यह बौखला उठी है।"

"प्रभु!" महामात्य ने कहा, "हमारे गुप्तचरों ने कुछ ऐसी ही सूचना दी है। मैंने लगभग दो वर्ष से गुप्तचरों का एक विदेश विभाग खोला हुआ है। यहाँ से पड़ोसी देशों में कई गुप्तचर भेजे जा चुके हैं। उनकी सूचना है कि अरब देश में एक महापुरुष का प्रादुर्भाव हुआ है और वहाँ के लुटेरे, जो पहले परस्पर झगड़ा किया करते थे, एक-दूसरे की पत्नियाँ और लड़कियाँ चुराया करते थे, जिनकी दिनचर्या केवल मात्र छापा डालना थी, इस महापुरुष के सम्मोहन में एकत्रित हो रहे हैं और वह महापुरुष उन लोगों की शक्ति से संसार को विजय करने का स्वप्न देखने लगा है।"

पत्रलता को अघोरी बाबा द्वारा मायावी ढंग से दिखाई घटनाओं पर, महामात्य के कथन से कोई संदेह नहीं रहा। इस विषय में उसने और जानने के लिए पूछा, "क्या यह सत्य नहीं श्रीमान् कि वह महान् व्यक्ति अत्यंत ओजस्वी है और उसने संगठन करने की यह योजना मूसाइयों से सीखी है?"

"हाँ! उस महानात्मा का इतिहास हमारे पास आ चुका है। यह मदीना के एक सौदागर का सेवक था। सौदागर के मरने पर उस सेवक ने उसकी पत्नी, जो उससे बीस वर्ष अधिक आयु की है, विवाह कर लिया है। इस विवाह से वह लाखों की संपत्ति का स्वामी बन गया है। इस संपत्ति के आश्रय से वह जीविकोपार्जन से निश्चिंत हो कुछ काल तक एकांतवास कर एक नवीन पंथ की स्थापना कर रहा है।

"अरब-जैसे देश में, जहाँ किसी भी नारी के नयनों के कटाक्ष पर सैकड़ों का रक्त बहाया जा सकता है, एक संगठन का निर्माण सत्य ही भयंकर बात हो जाएगी। प्रजा के चरित्र को सुधारे बिना उसमें संगठन करना एक महान् भय की वस्तु हो जाती है। जैसे एक चोर उतनी हानि नहीं पहुँचा सकता, जितनी डाकुओं का एक संगठित दल। इसी प्रकार चरित्रहीन प्रजा का संगठन भी संसार में महान् भय की बात माननी चाहिए।

"राजनीतिक विस्तार बिना मानसिक तथा आत्मिक उत्थान के एक भयंकर परिस्थिति उत्पन्न कर सकता है।"

"तो देवी की सूचना सत्य है?" बोधिसत्त्व का प्रश्न था।

"हाँ भगवन्! ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे किसी गुप्तचर से देवी की भेंट हो गई है और उसने देवी को भयंकर बात कहकर डरा दिया है।"

पत्रलता ने कहा, "श्रीमान्! मुझको आपके किसी गुप्तचर से इन बातों का पता नहीं मिला। एक सिद्ध योगी ने मुझे वहाँ हो रही घटनाओं का वास्तविक चित्र दिखाया है। साथ ही इस नवीन आंदोलन से आज से चालीस-पचास वर्ष पश्चात् मिस्र, रूस, बगदाद, ईरान में क्या-क्या होने वाला है, उसका दिग्दर्शन भी कराया है।"

"क्या दर्शन कराया है?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"उस महापुरुष के प्रयत्न से पंथ और राजनीति का एक भयानक मिश्रण होने वाला है। कहीं यह सम्मिश्रण उन्नत होने लगा तो संसार में वह उथल-पुथल मचेगी, जिसका उदाहरण वह स्वयं ही होगी।

"यह शाश्वत सत्य है कि परमात्मा एक है, वह पूर्ण चराचर का स्वामी है और उसकी तुलना कोई नहीं कर सकता। यह विचार एक पुष्करिणी में एक पत्थर के समान फेंका गया है। उस पत्थर ने पुष्करिणी में तरंगें उत्पन्न कर दी हैं। परंतु सच्चाई तो पत्थर के समान जल की सतह में डूब गई है और अब केवल तरंगें रह गई हैं। इन तरंगों से दूषित जल के अवगुण, जहाँ-जहाँ तरंगें जाएँगी, वहाँ-वहाँ पहुँच जाएँगे। सच्चाई, जो अरब-रूपी पुष्करिणी में पत्थर की भाँति डूब गई है, वह तो वहाँ रह गई, परंतु उसके बल से तरंगित जल इधर को चला आ रहा है।

"अरब देशों में विरोधियों की बहू-बेटियों को दासियाँ बना लेने की प्रथा तो गई नहीं, हाँ, विरोधी के लक्षण बदल गए हैं। पहले कबीले परस्पर शत्रु-भाव रखते थे और विरोधी माने जाते थे। अब दूसरे धर्म वाले विरोधी माने जाने लगे हैं। इस भावना के साथ एक और भावना उत्पन्न हो गई है। विरोधियों से लड़ते-लड़ते मर जाने पर जन्नत अर्थात् स्वर्ग प्राप्त होगा, जहाँ मद्य और हूरें, अंगूर और पुलाव मिलेगा। इसके विपरीत विरोधियों पर विजय प्राप्त कर लेने वाला दीनदार विरोधी का धन और उनकी बहू-बेटियों का स्वामी हो जाएगा।

"यह एक ऐसी भयंकर मीमांसा है, जिसके मानने वालों के यहाँ आ जाने से देश में त्राहि-त्राहि मच जाएगी।

"श्रीमान्! केवल यही नहीं, प्रत्युत उस सिद्धात्मा ने यह भी दिखाया है कि इस प्रकार के प्रलोभन से प्रेरित कोटि-कोटि जनों से संयुक्त सेना इस भरत-खंड की सीमाओं को तोड़-फोड़ यहाँ घुस आएगी और यहाँ की प्रजा, जो शांति-शांति की अहिफेन खाकर मस्त हो रही होगी, अपनी धन-संपदा को, अपनी बहू-बेटियों को, अपनी चिर-संचित ज्ञान-विज्ञान की उन्नति को और सहस्रों वर्षों से अनुभूत संस्कृति को खोकर हाथ मलती रह जाएगी।"

"तो उस महात्मा ने यह नहीं बताया कि इस दुर्भाग्य से बचने का उपाय क्या है?" महाप्रभु ने पूछा।

"बताया है। उसने बताया है कि झूठी शांति के प्रचार का परित्याग करो। शांति वह है जो 'परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम्' में सहायक हो। इसी शांति की स्थापना के लिए देवताओं का संगठन करो और असुरों का विघटन करो।"

महाप्रभु विस्मय में पत्रलता को देख रहा था। महामात्य देख रहा था कि बताते समय पत्रलता का मुख विशेष ओज से चमकने लगा है।

महाप्रभु ने संदेह-निवारणार्थ पूछा, "परंतु देवी! साधु कौन है और दुष्कृत्य करने वाला कौन है? उस महापुरुष के अनुयायी तो यह समझते होंगे कि वे ही स्वयं साधु हैं और जो उस महान् पुरुष को अपना पथ-प्रदर्शक नहीं मानते, वे असुर हैं, अतः जो वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हैं, वह भी तुम्हारे सिद्धांतानुसार पुण्य ही कर रहे हैं। वे भी 'परित्राणाय साधूनाम्' कर रहे हैं।"

पत्रलता मुस्कराकर बोली, "भगवन्! आपके लिए यह युक्ति अकाट्य है। कारण यह कि आपने कभी दर्शनशास्त्र का अध्ययन नहीं किया। साधु-असाधु में भेद की चिंता आपको नहीं होती।

"साधु वह है, जो प्राणिमात्र में कल्याण के लिए यत्नशील है। अपने स्वार्थ के लिए दूसरे का अहित करने वाला असाधु होता है। जब कोई राजा अथवा सैनिक इस कारण समर पर चढ़ता है कि उस समर से उसकी धन-संपदा में वृद्धि होगी अथवा वह दूसरों की लड़कियों का भोग करेगा, तो वह असाधु है। ऐसी प्रेरणा देने वाला साधु नहीं हो सकता। ऐसे का विनाश ही शांति-स्थापना में सहायक हो सकता है।

"देखिए भगवन्! महाराज हर्षवर्धन गए थे भारत की सीमाओं को सुरक्षित करने, परंतु सामयिक शांति के लोभ में प्रमथम के शूद्राधिपति से कर के रूप में कुछ स्वर्ण के टुकड़े लेकर वापस चले आए। उस शूद्र बौद्ध-सामंत ने महाराज से संधि की, परंतु उसी समय अपने दूत ईरान में इस कारण भेज दिए कि वह वहाँ की शक्ति से अपने को सबल बनाना चाहता था।"

"तो यह भी सिद्ध महात्मा ने तुम्हें बताया है?"

पत्रलता ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा, "चिंता इस बात से नहीं मिट जाती कि एक द्रोही मित्र हमारे विरुद्ध दूसरे से सहायता पाने में असमर्थ हुआ है। चिंता का कारण यह है कि जिसको हम साधु समझ अपना हितैषी मानते हैं, वह वास्तव में असाधु है। वह हमको धोखा दे रहा है और उसको हमारी पीठ में छुरा घोंपने की सामर्थ्य देने वाले भी हम ही हैं।"

"पर हो ही क्या सकता है? कैसे पता चले कि जो व्यक्ति हमारी मैत्री का दम भरता है, वह मन में कुछ अन्य विचार भी कर रहा है?"

"फिर वही बात भगवन्! ज्ञान-प्राप्ति के कुछ नियम हैं। आपने उन नियमों का पालन नहीं किया, इस कारण आप साधु-असाधु में, मित्र-अमित्र में, विश्वस्त-अविश्वासी में भेद नहीं समझ पा रहे।

"महाराज हर्षवर्धन के साथ रहने वाले सम्मतिदाता का यह कार्य था कि वह इसे जाने। जो कुछ वर्ष तक के भविष्य की बात का भी अनुमान नहीं लगा सकता, वह एक शक्तिशाली महाराज का परामर्शदाता कैसे हो सकता है।"

५

"पत्रलता!" महाप्रभु ने कहा, "मैं समझता हूँ कि तुमको स्वयं अपने पान खाने की आवश्यकता पड़ गई है, अन्यथा तुम इतनी उत्तेजना में बात नहीं करतीं। बिना उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्ति की बात सुने, जिसने महाराज को प्रमथम के सामंत से मैत्री करने की सम्मति दी है, उसकी आलोचना करना तो अशांत मन की बात कही जा सकती है।

"अब देवी पान नहीं बनातीं ?"

"बनाने छोड़ दिए थे, परंतु अब पुनः आरंभ करने वाली हूँ। सिद्ध योगी महाराज की आज्ञा हुई है कि मेरा कार्य कर्मभूमि छोड़ तुषार-शैलों पर जाकर गल जाना नहीं, प्रत्युत इस संसार में रहते हुए, इसको उचित मार्ग पर चलाने का प्रयत्न करना है। उनका कहना है कि इस प्रकार ही मैं ऋषि-ऋण से मुक्त हो सकती हूँ।"

"भला कन्नौज के चौक में तांबूलिन की दुकान पर बैठ यहाँ के रसिक युवकों को पान खिलाते हुए तुम संसार का उद्धार कर रही अनुभव करोगी ? यह बात तो समझ में नहीं आई, देवी !"

"भगवन् ! जब महाप्रभु उज्जयिनी में बैठे देवगुप्त के महामात्य का आतिथ्य ग्रहण कर रहे थे तो पत्रलता कन्नौज के चौक में बैठी, युवकों को पान खिलाती हुई, इस कन्नौज के उद्धार में सफल यत्न कर रही थी। इस कथा को वासुदेव के मंदिर के पुजारी विष्णुकांत ही बता सकते हैं अथवा वे युवक जानते हैं, जो पान खाते-खाते देश के लिए लड़ मरने को तैयार हो गए थे। आपकी नीति असफल रही थी और आप निराश हो अपने चैत्य में छिपकर जा बैठे थे। उस समय कन्नौज के रसिकों को पान खिलाने वाली इस तांबूलिन ने जो कुछ किया था, वह आपको पता नहीं चल सकता। कुछ-कुछ भास आपकी शिष्या इंद्रजालिक को हुआ था, जब वह अपने षड्यंत्र में सफल न हो सकी और अपनी जान बचाकर यहाँ से भाग गई थी।"

महाप्रभु उस काल के काले इतिहास में अपने भाग को समझ लज्जित हुआ, परंतु अपनी बात पर हठ करते हुए कहने लगा, "देवी ! वह सब उत्पात तुम्हारे-जैसे विचारों को मानने वाले देवगुप्त और शशांक के कारण हुआ था। मैंने उस उत्पात को शांत करने के लिए यत्न किया; परंतु आसुरी प्रवृत्तियाँ अधिक बलशाली थीं और उन तक सुमति नहीं पहुँच सकी। अब तुम भी वही कुछ कर रही हो, जो शशांक और देवगुप्त कर रहे थे।"

पत्रलता के मस्तक पर त्यौरी चढ़ गई। महामात्य ने यह देख लिया और विवाद को समाप्त करने के लिए कहा, "भगवन् ! इस समय तो मुझे राज-कार्यालय को जाना है। देवी पत्रलता से इस विषय पर पुनः किसी दिन विचार करेंगे। अब मुझे स्वीकृति दीजिए। एक बात का तो मुझे संतोष है कि देवी पत्रलता के हाथ का बना पान खाने का सौभाग्य अभी बना रहेगा। देवी ! कब से यह कार्य आरंभ कर रही हो ?"

"मेरी पान की डोली आचार्य जी के गृह पर रखी है। यहाँ से उधर ही जाने का विचार है। वह निकलवाऊँगी और पश्चात् महाप्रभु जी की सेवा में शीघ्रातिशीघ्र पान भेंट करने का सौभाग्य प्राप्त करने का यत्न करूँगी।"

महाप्रभु ने प्रसन्न होकर कहा, "मैं देवी की बातों से रुष्ट नहीं हूँ। मैं तो इनसे लाभ उठाता हूँ। यदि देवी कल मध्याह्न के समय महामात्य जी के गृह पर पधारें तो मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पान खाने का सौभाग्य प्राप्त कर सकूँगा।"

महाप्रभु के जाने के पश्चात् महामात्य ने कहा, "पत्रलता ! तुम्हारे संन्यास न लेने के निर्णय से मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई है। जब से मुझे तुम्हारे साथ अपने संबंध का ज्ञान हुआ है, मैं तुम्हारे प्रति अपने कर्तव्य को समझता हूँ। इस कारण तुम्हें अपने समीप देख अपने कर्तव्यपालन में सुविधा पाता हूँ।

"इसी कारण मैं यह कहूँगा कि तुमको चौक में पान बेचने की आवश्यकता नहीं। जो कुछ तुम करना चाहती हो, उसका प्रबंध अन्य प्रकार से भी हो जाएगा।

"तुम विरोचना देवी से मिल लो। वह तुमको एक अति शुभ समाचार सुनाएगी।"

"सुन आई हूँ। बहन अलकनंदा का विवाह आचार्य वाराहमित्र के सुपुत्र श्री यज्ञशात से हो रहा है। मुझको इससे बहुत प्रसन्नता है, यद्यपि यज्ञशात विवाह के पश्चात् कश्मीर चले जाना चाहते हैं, तो भी यह संयोग अच्छा ही है।"

"तुम कश्मीर जाना पसंद नहीं करतीं क्या ?"

"नहीं। कारण स्पष्ट है कि वहाँ अभी भी हूण राजा है और वह म्लेच्छ है। म्लेच्छ के राज्य में रहकर सुख की आशा बहुत क्षीण है।"

"परंतु इस समय तो दक्षिण के चालुक्य राज्य के अतिरिक्त अन्य कोई ऐसा राज्य नहीं, जिसको हम आर्य राज्य कह सकें। वह राज्य भी सुसंस्कृत है, यह कहना भी कठिन है।"

"यों तो पृथ्वी-भर में कोई राज्य आदर्श रूप में होगा, ऐसी संभावना नहीं। फिर भी न्यूनाधिक मात्रा का विचार करना ही होगा। कश्मीर में एक भद्र परिवार का रहना संभव नहीं। पिछला राजा बौद्ध था। उसने बलपूर्वक प्रजा को बौद्ध धर्म स्वीकार कराना चाहा। परिणाम यह हुआ कि अबौद्धों ने बौद्धों में हत्याकांड रचा दिया। पश्चात् वहाँ अबौद्ध हूण राजा हुआ है। महाराज हर्ष ने उसके राज्यारोहण में सहायता दी है और इसके राज्याभिषेक के समय उसको आशीर्वाद दिया है। परंतु सुना है कि वह चीन के सम्राट् को भारत पर आक्रमण करने का निमंत्रण दे रहा है।"

"पत्रलता ! तुम्हें ये सब बातें कौन बता जाता है ?"

"यह सब मुझको पान खाने वाले बता जाते हैं। कदाचित् आपके गुप्तचरों के मुख से निकली बातें उन तक पहुँच जाती हैं।"

महामात्य पत्रलता के यह सब चित्रण सुनकर गंभीर विचार में पड़ गया। पश्चात् उसने एक लम्बी साँस खींचकर कहा, "पिछले छः वर्षों का यह युद्ध-प्रयास सर्वथा विफल गया है। परंतु हम कर क्या सकते थे ! मैं देश की आंतरिक स्थिति को ठीक रखने के कारण महाराज के साथ नहीं जा सका। हमारे संधि-विग्रहकर्ता अमात्य सोमभद्र भी इसमें कितने दोषी हैं, कहा नहीं जा सकता। हम अभी भी उतने ही आरक्षित हैं, जितने इस समर से पहले थे।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ठीक है, इसमें इक्का-दुक्का व्यक्ति कुछ भी नहीं कर सकता। वास्तव में राज्याधिकार जब अयोग्य व्यक्तियों के हाथ में जाता है, तब ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है। राज्य पर ब्राह्मणों अर्थात् विद्वानों और निःस्वार्थ भाव से कार्य करने वालों का प्रभाव रहना चाहिए। जब से यह प्रभाव उठा है, तब से ही देश की दुर्व्यवस्था हुई है। इस प्रभाव की पुनः स्थापना हमारा कर्तव्य होना चाहिए।"

"देखो पत्रलता! इसमें दोषारम्भ तब से हुआ है, जब से ब्राह्मणों ने अपने ज्ञान को जन्म के ब्राह्मणों तक सीमित रखने के प्रयत्न किए। देश में राक्षस संस्कृति का आगमन हुआ और उसका वैदिक संस्कृति के साथ संघर्ष हुआ। हमको उनके मन पर अपनी संस्कृति की श्रेष्ठता अंकित करनी चाहिए थी। इसके लिए तो उसे संस्कृति के विद्वानों को अपने धर्म-शास्त्र, ज्ञान-विज्ञान और आचार-विचार का ज्ञान कराना था। हमारे विद्वानों ने ऐसा करने से इंकार किया, परंतु जनसाधारण को राक्षस संस्कृति के साथ समझौता करने का अवसर दिया।

"दोनों संस्कृतियों का जो समझौते से मिश्रण बना, वह एक अतिभद्दा और निरर्थक रूप था। हमने लिंग की उपासना स्वीकार की और उसको महादेव का प्रतीक माना। हमने परमात्मा को मानते हुए भी प्रकृति की अर्थात् शक्ति की उपासना की। हमने लिंग-पूजा और शक्ति-पूजा को पर्यायवाचक माना। परिणामस्वरूप वाममार्ग का प्रादुर्भाव हुआ।

"राक्षस संस्कृति में दो मुख्य बातें थीं। एक तो राजा ही धर्मरक्षक हो सकता है, अर्थात् उसमें राज्यसत्ता और विद्वत्ता को पर्यायवाचक समझा जाता था। हमने धीरे-धीरे इस धारणा को स्वीकार किया।

"साथ ही राक्षस संस्कृति में सर्वसाधारण लोगों के मत को विद्वत्मंडली के मत से अधिक बलशाली माना जाता था। जहाँ हमारे यहाँ क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के लिए ब्राह्मण को अपना मस्तिष्क मानने का आयोजन है, वहाँ राक्षस संस्कृति में राजा सर्वेसर्वा माना जाता था और राजा को जनमत का आदर करना होता था।

"इसमें भी हमने राक्षस संस्कृति से समझौता किया और जहाँ एक ओर वाममार्ग का प्रचलन हुआ, वहाँ दूसरी ओर गणतंत्र बने, जिनको धर्मशास्त्र-निर्माण करने का अधिकार प्राप्त हो गया।

"वैदिक काल के गणतंत्रों में और इन मध्यकालीन गणतंत्रों में अंतर यह था कि मध्यकालीन गणतंत्र शासन के कार्य के साथ-साथ विधि-विधान में परिवर्तन का कार्य भी करने लगे। धर्म-व्यवस्था अर्थात् व्यक्तिगत और समष्टिगत आचरण का विधान ब्राह्मणों के हाथ से निकलकर गणतंत्रों के हाथ में चला गया, जिनमें साधारण योग्यता और साधारण ज्ञान के लोग रहते थे।

"अब हमने गणतंत्रों को स्थानच्युत कर सम्राट् निर्माण किए। परंतु सम्राटों ने वह अधिकार, जो गणतंत्रों ने ब्राह्मणों से छीन लिए थे, अर्थात् धर्म-व्यवस्था देने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकार, पुनः विद्वानों के हाथ में देने के स्थान पर अपने हाथों में ले लिया है।

"इसके साथ राज्य पर बौद्ध-संप्रदाय का प्रभाव बढ़ने से एक नवीन परिस्थिति उत्पन्न हो गई है। बौद्ध गुरुओं ने, जो इस कारण गुरु नहीं हैं कि वे विद्वान् और बुद्धिशील हैं, प्रत्युत इस कारण हैं कि वे महात्यागी हैं, विद्वानों का स्थान लेना आरंभ कर दिया है। केवल बौद्ध-शांति और बौद्ध-त्याग को मानने वाले इस संप्रदाय में गुरु माने जाते हैं और उनका राज्य पर प्रभाव स्थापित हो गया है। बौद्ध गुरु अपना राज्य पर प्रभाव जन-बल के द्वारा बना रहे हैं।

"परिणाम यह हो रहा है कि राज्य बुद्धि और ज्ञान के अवलम्बन से दूर होता जा रहा है अतः विनाश अवश्यंभावी है।"

"मैं तो पंडित यज्ञशात जी से कहूँगी कि वे दक्षिण पथ में अपना कार्य ढूँढ़ें। कश्मीर स्वास्थ्यप्रद स्थान हो सकता है, परंतु वर्तमान परिस्थिति में यह सुरक्षाप्रद नहीं है।"

"क्या सब जनों के लिए सुरक्षित स्थानों पर रहना ही उचित है? यदि सब तुम्हारी सम्मति पर ही आचरण करने लगें तो उत्तर पथ के सब देश शून्य हो जाएँगे और दक्षिण पथ के देशों में रहने को स्थान नहीं रहेगा।

"पहले ही श्रीकंठ, कश्मीर और गांधार के बहुत-से ब्राह्मण अपने देशों को छोड़कर दक्षिण पथ के देशों में जा चुके हैं।

"साथ ही पत्रलता! मैं तुमसे पूछता हूँ कि तुम तुषार-शैलभू पर जाकर संन्यासी होती-होती रुक क्यों गई हो? क्या वैसी ही भावना से यज्ञशात को कश्मीर में जाकर रहने के लिए कहना उचित नहीं? देखो, मैं तो यह चाहता हूँ कि भारत की वैदिक संस्कृति पर श्रद्धा रखने वाले विद्वान् व्यक्तियों को संसार-भर के देशों में फैल जाना चाहिए। इससे ही संसार में शांति और उन्नति संभव है।

"हमारी विचारधारा यह है कि हम स्वयं जीना चाहते हैं और दूसरों को जीने का अवसर देना चाहते हैं। जो हमारे जीवन में बाधक है, उसको हम जीने नहीं देंगे। इसके साथ ही हमारे यहाँ निःस्वार्थ भाव से रहने वाले ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा सर्वोपरि है। हम समाज में निम्न कोटि के मानवों को जीवन की सुविधा तो देते हैं, परंतु उनको हम समाज की रूप-रेखा बदलने का अधिकार देना नहीं चाहते।

"देखो पत्रलता! धर्म के दस लक्षण, एक व्यक्तिगत बात होते हुए भी, समाज में व्यवस्था रखने के लिए अपरिवर्तनीय हैं। यम और नियम हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन की धुरी हैं। वर्णाश्रम धर्म की हमारे मन में प्रतिष्ठा है। आर्थिक विधान हमारा यह है कि उक्त धर्म के अनुकूल रहते हुए हम धनोपार्जन तथा धन व्यय करने की स्वीकृति और स्वतंत्रता देते हैं।

"इन सब बातों का प्रतिपादन करते हुए हमको निर्भीकता से तथा स्वेच्छा से विचरने की इच्छा और अधिकार होना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"परंतु हमारे इस अधिकार को चुनौती मिलने लगी है। यह चुनौती प्रायः विदेशीय विचारधारा के लोग दे रहे हैं। अब अरब में उत्पन्न इस्लाम संप्रदाय तो इस मानव-स्वतंत्रता को एक महान् चुनौती के रूप में प्रकट हो रहा है।

"इस संप्रदाय का अर्थ यह प्रतीत होता है कि हम जिएँगे और तुमको जीना है तो हमारी भाँति जीवन रखना आवश्यक है। यह हम सहन नहीं कर सकते। इस चुनौती का उत्तर देने के लिए हमें अपने देश को तैयार करना है। ऐसा करने के लिए यह आवश्यक है कि हमारे विचार के लोग दूर-दूर देशों में चले जाएँ और वहाँ के लोगों को अपने विचारानुकूल बना लें। दूरस्थ देशों में अपने विचार के लोगों की पीठ पर राज्य-बल सदैव रहना चाहिए।"

पत्रलता निरुत्तर हो गई थी। इससे वह अलकनंदा का, विवाह के पश्चात् कश्मीर जाने का विरोध करने का विचार छोड़ बैठी।

६

बाण ने विजयोत्सव मनाने के लिए अपनी एक योजना बना ली थी। उस योजना में उसने तीन नाटक लिख डाले। साथ में नृत्य-समारोह का आयोजन कर लिया और स्थान-स्थान पर संगीत-समारोहों के लिए प्रबंध कर दिया। कई नाटक-मंडलियाँ तैयार की गईं, जिन्हें उन तीन नाटकों को राज्य-भर में भिन्न-भिन्न स्थानों पर जाकर खेलना था। सैकड़ों नर्तकियों को बुलाकर नृत्य में प्रवीण किया जाने लगा और संगीत-समारोहों के लिए संगीतज्ञों की एक भीड़ एकत्रित कर ली गई।

महाराज हर्षवर्धन राजधानी में आ गए थे। तुषार-शैलभू से सेना कन्नौज की ओर चली आ रही थी। उस सेना के पहुँचने से पूर्व उत्सव का प्रबंध पूर्ण होना चाहिए था। इस कारण बाण के गृह में दिन-रात धिक्-धिक् ता, धिक्कट-धिक्कट धा इत्यादि स्वरों की गुंजार उठने लगी।

कभी पायलों की झंकार और कभी किसी कोकिल-कंठी का स्वर लहराता सुनाई देने लगा। साथ ही नाटक-मंडलियाँ भी अपनी-अपनी तैयारी में लगी थीं। कभी किसी देहाती के आर्तनाद 'त्राहि माम्! त्राहि माम्!!' से भट्ट के भवन की दीवारें काँपने लगती थीं। इस प्रकार वेग से उत्सव की तैयारी हो रही थी।

नगर में सड़कों की सफाई और बाजारों की सजावट हो रही थी। राज-पथ के दोनों ओर के निवासगृहों पर पुताई करवाकर मार्ग को उज्ज्वल कर दिया गया था। नगर के उत्तरी द्वार से लेकर राजप्रासाद के द्वार तक सैकड़ों विजय-द्वार खड़े किए गए थे, जिन पर गोटा-किनारी और मणि-माणिक्य से सजावट की गई थी।

पूर्ण नगर में दीपावली का आयोजन था। नगर के एक सहस्र से अधिक नागरिकों द्वारा महाराज की विजयी सेना का नगर-द्वार पर स्वागत का प्रबंध था। मार्ग में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान-स्थान पर भी नागरिकों द्वारा महाराज और सेना के स्वागत का प्रबंध किया गया था।

तीन दिन तक राज्य की ओर से पूर्ण जनता को भोजन का निमंत्रण था। मुहल्ले-मुहल्ले में हलवाई बिठा दिए गए थे, जो पूरी-मिठाई और साग-भाजी बिना मूल्य वितरण करने लगे थे।

पत्रलता ने चौक से दुकान उठा ली थी और अब वह केवल महामात्य, महाराज हर्ष और महाप्रभु तथा बाणभट्ट को ही पान देने जाया करती थी। उन स्थानों के लिए पान देने का समय निश्चित था और यह कार्य उसका मध्याह्न तक समाप्त हो जाता था। महारानी मृणालिनी की एक दासी आचार्य जी के गृह पर आकर महारानी के लिए उससे पान ले जाया करती थी। नित्य मध्याह्नोत्तर वह महामात्य के निवासगृह में विरोचना देवी के दर्शन के लिए जा पहुँचती थी। वहाँ अलकनंदा के विवाह की तैयारियाँ अति वेग से चल रही थीं।

उस तैयारी में अलकनंदा भी अति व्यस्त थी। वह अपने भावी कार्यक्रम की कल्पना करती रहती थी। इस कल्पना से उसकी चित्रकला शिथिल पड़ रही थी। उसके रंग के पात्र और तूलिकाओं पर धूल जम रही थी।

पत्रलता आती तो वह भी अपनी कल्पनाओं के क्षेत्र से निकल वास्तविकता में आकर विचरने लगती। बहुत बातें होतीं।

आचार्य जी का सुपुत्र यज्ञशात श्रीनगर में गुरु जी के पास शिक्षा ग्रहण करने गया हुआ था। वहाँ से शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् वह अपने माता-पिता से मिलने जब कन्नौज आया तो यहाँ उसे एक दिन महामात्य ने अपने गृह पर निमंत्रण दिया था। वहाँ उसका अलकनंदा से साक्षात्कार हुआ था और पश्चात् विवाह निश्चित हो गया था।

विवाह की तिथि विजयोत्सव समाप्त होने के दो दिन बाद की रखी गई। महामात्य तब तक उत्सव के प्रबन्ध से मुक्त हो जाना चाहता था। यज्ञशात का विचार श्रीनगर में मार्कण्डेय ऋषि के पुण्य आश्रम पर विद्यालय चलाने का था। वास्तव में वह आचार्य जी से इसी विषय पर सम्मति और आशीर्वाद लेने आया था कि यहाँ विवाह-बंधन में बँध जाने का यह संयोग हो गया।

इस संबंध से दोनों परिवार प्रसन्न थे। साथ ही वर-वधू भी इस संबंध के सम्पन्न होने से आनंदविभोर हो रहे थे। दूसरे-तीसरे दिन यज्ञशात अपनी भावी पत्नी से मिलकर कश्मीर के विषय में अपनी योजना पर विचार-विनिमय कर जाया करता था।

एक दिन जब पत्रलता आई तो यज्ञशात अलकनंदा के आगार में बैठा ऐसे ही स्वप्नों का ताना-बाना चला रहा था। पत्रलता इनको इस प्रकार बातचीत करते देख विरोचना देवी के आगार की ओर चल पड़ी; परंतु उसको अलकनंदा ने देख लिया। इस कारण उसने आवाज दे दी, "दीदी ! दीदी ! ! कहाँ भागी जा रही हो ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्रलता लौट आई और अंदर आकर कहने लगी, "मैंने विचार किया था कि आपके मधुर वार्तालाप में विघ्न न डालूँ। सो माता जी के पास जा रही थी।"

"पत्रलता बहन!" यज्ञशात ने कहा, "हम तुम्हारे विषय में ही विचार कर रहे थे।"

"क्या विचार कर रहे थे?"

"यही कि तुम्हें निमंत्रण दें कि तुम हमारे साथ कश्मीर चलो। कदाचित् वहाँ कोई ऐसा माली मिल जाए, जो पत्रलता को सींचकर, इसको फल-फूलों से भर दे।"

पत्रलता हँस पड़ी। उसने उनके सम्मुख बैठते हुए कहा, "क्या अपने फलने-फूलने का प्रबंध कर लिया है, जो यह सौभाग्य दूसरों को बाँटना आरंभ कर दिया है?"

"हमारा प्रबंध तो भगवान् ने कर ही दिया मालूम होता है।"

"तो मेरे लिए भी जब उसकी रुचि होगी, भगवान् ही कर देगा। भैया यज्ञशात! मैं आऊँगी, परंतु अभी नहीं। पहले मेरी छोटी बहन की बेल हरी-भरी हो ले।"

"यह तो बहुत बड़ी शर्त है।" अलकनंदा ने लजाते हुए कहा, "विशेष रूप से बड़ी बहन की बेल को रुण्ड-मुण्ड देख तो छोटी बहन की बेल फूलेगी, इसमें संदेह ही है।"

"फूलेगी अवश्य। भगवान् पर यह लाँछन लगाते हुए कि उसका आयोजन निरर्थक होने वाला है, तुम्हें लज्जा नहीं लगती? देखो अलकनंदा! मुझको कुछ ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मैं इस जन्म में फलूँगी नहीं। इस कारण मेरी-जैसी लता के साए में तो लगी बेल भी फलने से रह जाएगी।

"अच्छा बताओ, पत्र कैसे भेजा करोगी?"

"पिता जी को लिखा करूँगी और उसके साथ माता जी को और तुमको भी लिखूँगी।"

"जब तुम्हारा पत्र आएगा कि तुम्हारी गोद हरी-भरी हो गई, तो मैं अमरनाथ की यात्रा पर आऊँगी।"

"वचन रहा?"

"हाँ।"

इस समय विरोचना देवी की दासी राजप्रासाद की एक दासी को लेकर उनके आगार में आ गई। सब प्रश्नभरी दृष्टि से उसको देखने लगे, तो विरोचना की दासी ने कहा, "यह राजप्रासाद से आई है और देवी पत्रलता से मिलना चाहती है।"

"आओ, क्या नाम है?" पत्रलता ने पूछा, "मैंने तुमको वहाँ पहले कभी नहीं देखा?"

"हम वहाँ नए आए हैं।"

"हम? क्या अर्थ है तुम्हारा?"

"मैं हूँ और मेरे साथ अन्य चार दासियाँ हैं और···।"

इसके पश्चात् वह चुप रही।

"और कौन?" पत्रलता ने पूछा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आपमें देवी पत्रलता कौन है ?" उस दासी ने पूछा।

"मैं हूँ।"

"तो आपसे पृथक् में बात करूँगी।"

पत्रलता उसको साथ लेकर आगार के बाहर आ गई। आगार के बाहर प्रांगण में खुले स्थान पर खड़े हो, जहाँ कोई सुन न सके, दासी ने धीरे से कहा, "मैं देवपुत्र तुवर की दासी हूँ। भाग्यवश मैं और सामंत देवगुप्त की कन्या राजकुमारी मलिंद महाराज हर्षवर्धन के राजप्रासाद में आ पहुँचे हैं। राजकुमारी आपको स्मरण करती हैं। इससे अधिक मुझे इस समय आपको बताने की स्वीकृति नहीं है।"

"कब मिलना चाहती हैं ?"

"यदि देवी जी को कुछ विशेष असुविधा न हो तो इसी समय।"

पत्रलता कुछ विचार करती रही। पश्चात् बोली, "चलो, मैं इन लोगों से विदा ले लूँ, तब चलेंगे।"

चौथाई घड़ी में ही पत्रलता उस दासी के साथ राजप्रासाद में जा पहुँची। पत्रलता के लिए राजप्रासाद कोई नवीन स्थान नहीं था। यद्यपि महाराज हर्षवर्धन के बहुत काल के पश्चात् समर से लौटने के उपलक्ष्य में विशेष सफाई और सजावट की गई थी, परंतु राजप्रासाद में कुछ परिवर्तन, परिवर्धन, परिशोधन नहीं हुआ था।

दासी पत्रलता को राजप्रासाद के उस कक्ष में ले गई, जहाँ कभी देवगुप्त ने शशांक को ठहराया था। पत्रलता ने समझा कि कदाचित् ये लोग भी वहीं ठहरे हुए हैं। परंतु वह समझ नहीं सकी कि मलिंद तथा उसकी दासियाँ बंदी-रूप में हैं अथवा स्वतंत्र रूप में। यदि बंदी हैं तो दासी इतनी स्वतंत्र क्यों है ? शशांक के काल में इस कक्ष में आने में अत्यंत कठिनाई पड़ती थी। अब तो कोई बाधा नहीं थी।

एक छोटे-से द्वार में से प्रासाद में प्रवेश कर एक सँकरे मार्ग में से चलते हुए और कई प्रांगणों को, जिनमें चाय-चेटियाँ (स्त्री निरीक्षिकाएँ) बैठी हुई पहरा दे रही थीं, को पार कर ये सीढ़ियों पर चढ़ने लगीं। उन सीढ़ियों पर भी चाय-चेटियाँ पहरा दे रही थीं। उन सबको वहाँ बैठे देख पत्रलता को विश्वास हो गया कि हर्षवर्धन देवगुप्त से अधिक चतुर पुरुष है। देवगुप्त ने जो प्रहरी बिठाएँ हुए थे, वे प्रायः पुरुष और अस्त्र-शस्त्रधारी थे। अब प्रायः स्त्रियाँ थीं और बिना अस्त्र-शस्त्र के थीं। वे सब ध्यानपूर्वक पत्रलता को देखती थीं और मुस्कराकर एक ओर हटकर मार्ग छोड़ देती थीं। पत्रलता को कुछ ऐसा प्रतीत हुआ था कि या तो ये स्त्रियाँ किसी बंदीगृह की रक्षिका नहीं, अन्यथा ये अति चतुर हैं और किसी प्रकार से भी बंदीगृह की निरीक्षिका होने का संदेह नहीं होने देना चाहतीं।

इस प्रकार विचार करती हुई वह दासी के साथ ऊपर चढ़, एक अति विशाल आगार में जा पहुँची। यह वह आगार था, जहाँ राज्यवर्धन और देवगुप्त में द्वंद्व-युद्ध हुआ था। आज इस आगार में चाय-चेटियाँ स्थान-स्थान पर खड़ी परस्पर बातचीत कर रही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थीं। पत्रलता को जाते सबने देखा, किसी ने सामने से और किसी ने घूमकर। उसको देख सब मुस्करा उठती थीं। पत्रलता इस मुस्कराहट का अर्थ समझ नहीं सकी थी।

इस विशाल आगार को लाँघकर ये एक छोटे-से आगार में, जो किसी अन्य आगार की ड्योढ़ी-मात्र ही कहा जा सकता था, पहुँच गईं।

जिस द्वार से वे आई थीं, उसके सामने एक अन्य द्वार था। वह बंद था, परंतु उसके अंदर से वीणा की झंकार आ रही थी—टुं''''टुं''''टुं। वीणा बज रही थी। पत्रलता के साथ आई दासी ने कह दिया, "आपको यहाँ कुछ काल तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।"

इस आगार में चाय-चेटियाँ नहीं थीं। दासी के संकेत से पत्रलता एक चौकी पर बैठ गई। दासी उसके समीप ही खड़ी रही।

७

सामने के आगार से वीणा के मधुर स्वर झंकार कर रहे थे। पत्रलता ध्यान से सुनने लगी। स्वर थे—स-निधि नि प म प नि प नि स। स रे मग् म मग् प नि प मग् ग् म रे स।

इन स्वरों के साथ किसी ने गाना आरंभ कर दिया :

'आ''''अ''''आ।'

अब साथ ही पाठ भी आरंभ हो गया :

'ततः समुत्क्षिप्य धरां स्वदंष्ट्रया महावराह स्फुट पद्मलोचना।
रसातला दुत्पल-पत्र सन्निभिः समुत्थितो नील इवाचलो महान्॥
इह पदमं महु यासो जणस्य ही अ आ ई कुणई मिदुलाई
पच्चा विद्धई कायो लद्धप्य सदेहि कुसम वाणे हि
जलौ मग्ना सचराचरा धरा विषाण कोट्याखिल विश्वमूर्तिना
समुद्धता येन वराह रूपिणा स मे स्वयंभू भगवान् प्रसीदतु॥
वराह महाप्रभु तारनहारो देवन देव सदा शरण तिहारो
सचराचर धरा सागर तल से, दिव्य पराक्रम से पार निकारो,
मैं पापिन भारी दीन हूँ, भवसागर से अब पार उतारो॥'

पत्रलता को इन स्वरों में और इस वाणी में अधीरता और व्यग्रता प्रतीत हुई। उसको कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो कोई वियोगिनी अपने प्रियतम से दूर होने के कारण आतुरता में यह वियोग-गीत गा रही है।

कितने ही समय तक यह संगीत चलता रहा। स्वरों में सहानुभूति उत्पन्न करने की शक्ति थी और अनायास ही पत्रलता के आँसू टपकने लगे। फिर भी वह संज्ञाहीन, अपने गिरते आँसुओं से सर्वथा अनभिज्ञ उस संगीत-प्रवाह को सुन रही थी।

संगीत समाप्त हुआ। पत्रलता को चेतना हुई। उसको आभास हुआ कि वह कहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैठी है। वह अपने कपोलों से अश्रु पोंछ ही रही थी कि दासी आई और पत्रलता को अश्रु बहाते देख विस्मय में उसके सामने खड़ी रह गई। पत्रलता आँचल से आँसू पोंछ रही थी और उसकी आँखें लाल हो रही थीं।

दासी ने पूछा, "देवी ! क्या बात है ?"

"कुछ नहीं।" इतना कह पत्रलता उठ खड़ी हुई।

दासी ने कहा, "राजकुमारी पूजा कर चुकी हैं। चलिए।"

पत्रलता उसके साथ आगार के भीतर चली गई। एक चौकी पर महावाराह की मूर्ति रखी थी। उसके आगे धूप और दीया जल रहा था।

पूजा की चौकी के सामने भूमि पर राजकुमारी, जो सोलह-सत्रह वर्ष की प्रतीत होती थी, गंभीर-मुख बैठी भगवान् के चरणों में देख रही थी।

पत्रलता उसके पीछे आकर खड़ी हो गई। राजकुमारी ने पीछे किसी के आकर खड़े होने की आहट सुनी तो दोनों हाथ जोड़ भगवान् के सम्मुख शीश नवा दिया। पश्चात् वह उठी और घूमकर पत्रलता की ओर देखने लगी। पत्रलता राजकुमारी का सौंदर्य देख चकित रह गई। वह अद्वितीय सुंदरी थी। इसके साथ ही उसकी शोक-मुद्रा उसके सौंदर्य को और भी बढ़ा रही थी। कितनी ही देर तक उसकी रसीली मदभरी आँखों की ओर देखती हुई पत्रलता चुपचाप खड़ी रही। पत्रलता को शांत खड़े देख राजकुमारी ने कहा, "बैठो, बहन ! तुम आई हो, इससे मेरे इस मुर्झाए हृदय में पुनः आशा का अंकुर जमने लगा है। बैठो।"

वह स्वयं बैठी तो पत्रलता भी उसके सम्मुख भूमि पर बैठ गई। उसने पूछा, "मेरा परिचय मिला है ?"

"हाँ, राजकुमारी जी ! श्रीमान् देवपुत्र तुवर की सुपुत्री राजकुमारी मलिंद के दर्शन करने का सौभाग्य मिल रहा है।"

"ठीक, और मैं कन्नौज की सुविख्यात तांबूलिन देवी पत्रलता को अपने सामने देख रही हूँ। ठीक है न ?"

"आपका अनुमान ठीक है, राजकुमारी ! किसलिए स्मरण किया है मुझे ?"

"तुमने देखा है कि मैं किस परिस्थिति में हूँ।"

"देखा तो है, परंतु मुझे इसमें कुछ विशेषता का भास नहीं हुआ। राजकुमारियाँ राजाओं के गृह को सुशोभित करती ही हैं।"

"परंतु क्या कन्नौज में राजकुमारियों की रक्षा के लिए पाँच-पाँच सौ चाय-चेटियाँ नियुक्त रहती हैं और क्या राजकुमारियाँ कहीं घूमने जाएँ, तो इन चाय-चेटियों की एक सेना उनके आगे-पीछे रहती है ?"

"राजकुमारी जी ! ऐसा होना अति सम्मान का सूचक माना जाता है।"

"पर क्या इस आर्यावर्त देश में," राजकुमारी ने माथे पर त्यौरी चढ़ाकर कहा, "किसी स्त्री को उसकी इच्छा के बिना बाँधकर रखा जाता है ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"राजकुमारी ! क्या किसी ने आपको यहाँ बाँधा हुआ है ? बंधन तो दिखाई नहीं पड़ रहे ।"

"ये इस कारण दिखाई नहीं दे रहे कि ये अति सूक्ष्म, परंतु अति सुदृढ़ हैं। साधारण दृष्टि वाले को दिखाई नहीं देते। फिर भी यह टूटते नहीं।"

"अच्छी बात है। यदि राजकुमारी जी इन सूक्ष्म बंधनों को अनुभव करती हैं, तो वास्तव में ही चिंता की बात है। मुझको यह स्वीकार करना ही होगा कि राजकुमारी कन्नौज के राजप्रासाद में एक बंदी के रूप में रखी हुई हैं। मैं क्या कर सकती हूँ ? क्या आज्ञा है तांबूलिन के लिए ?"

राजकुमारी इस रुक्ष वार्तालाप से भौचक्की हो कुछ देर तक पत्रलता को देखती रही। फिर उसकी समझ में आया कि दोनों की वार्ता समीप खड़ी दासी सुन रही है और कदाचित् इस कारण पत्रलता खुल नहीं रही। उसने दासी को संकेत किया और दासी आगार से बाहर चली गई। इस पर पत्रलता ने राजकुमारी के निकट होकर धीरे से फुसफुसाकर पूछा, "तो क्या राजकुमारी मुझसे कोई गुप्त वार्ता करना चाहती हैं ?"

"हाँ।" राजकुमारी ने भयभीत होकर कहा।

"तब तो यह स्थान ठीक नहीं।" पत्रलता ने उसी प्रकार धीमे स्वर में कहा।

"क्यों ?"

"यह स्थान न तो गुप्त है और न ही सुनने का यत्न करने वालों से सुनाई देने के अंतर से दूर है।"

"क्या कहती हैं, देवी पत्रलता ?"

"मैं सत्य कहती हूँ। मुझको विश्वास है कि आपकी प्रत्येक बात यहाँ से किसी-न-किसी प्रकार सुनी जाकर महाराज के कानों तक पहुँच जाती है।"

"तो ?"

"यह आपका प्रयास विफल जाएगा।"

"अच्छी बात है, मैं कोई ऐसा स्थान ढूँढूँगी, जहाँ मैं पृथक् बातचीत कर सकूँ।"

"देखिए, आप एक गीत और गा दीजिए।"

"क्यों ?"

"इस कारण कि मुझे आपसे पुनः मिलने का अवसर मिल जाया करेगा।"

"मैं कोई संगीतज्ञ नहीं हूँ।"

"आप संगीत की विद्यार्थिनी तो हैं। मैं आपके संगीत की समालोचक बन सकती हूँ।"

राजकुमारी इसका अर्थ समझने के लिए पत्रलता का मुख देखने लगी। पश्चात् उसने कुछ विचार कर वीणा हाथ में उठा ली और उसे झंकार देकर एक गीत गाने लगी। उसने एक धुन छेड़ दी :

'स ग ध् म पध् म ग् रे स। स नि ध् नि स।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब उसने गाने के बोल आरंभ कर दिए :

'टेर-टेर रसना थकी हारी।
विनती करूँ गिरधारी ॥
मन मंदिर में आन विराजो।
सदा रहूँ बलिहारी, टेर-टेर रसना थकी हारी ॥
इस पतिता के इस मानस को।
अब उभारो, ब्रज बिहारी ॥'

संगीत के साथ-साथ तानालाप भी चलता रहा।

पत्रलता बीच-बीच में प्रशंसात्मक शब्द कहती जाती थी। एक-आध बार उसने राजकुमारी के आलाप-संशोधनार्थ स्वयं आलाप कर दिखा दिया।

इस प्रकार दो घड़ी तक संगीत चलता रहा। पश्चात् पत्रलता ने कान के समीप मुख कर कहा, "राजकुमारी संगीत-समालोचना चाहती हैं और मेरे पान खाने की इच्छुक हैं। मैं संगीत की समालोचना करने और पान बेचने वाली हूँ।"

इतना कह पत्रलता उठ खड़ी हुई और उच्च स्वर से कहने लगी, "मैं कल पुनः पान लेकर आऊँगी।"

इस पर राजकुमारी ने ताली बजाई। दो दासियाँ भीतर आ गईं तो राजकुमारी ने कहा, "देखो, देवी पत्रलता को छोड़ आओ और कल इसी समय इन्हें पुनः ले आना।"

पश्चात् उसने पत्रलता को संबोधन कर कहा, "देवी पत्रलता ! मैं तुम्हारी बहुत ही कृतज्ञ हूँ। यदि तुम नित्य पान लेकर आ सको तो मैं तुम्हारी बहुत ही कृपा मानूँगी।"

"यत्न करूँगी राजकुमारी !"

इतना कह पत्रलता उस दासी के साथ, जो उसे लेकर आई थी, बाहर चली गई। बाहर जाते समय जो उसने विशेष बात देखी, वह यह थी कि इस समय चाय-चेटियों के मुख गंभीर थे। पत्रलता इस पर विचार करती हुई राजप्रासाद से बाहर निकल गई।

८

चाय-चेटियों के गंभीर मुखों का उसे अर्थ तब समझ आया, जब अपने गृह पर जाकर उसे बताया गया कि उसे महाराज ने बुलाया है।

पत्रलता गृह पर पहुँची तो उसे यज्ञशात मिला। गृह पर उसके विवाह की धूमधाम से तैयारियाँ चल रही थीं। यज्ञशात भी प्रबंध में लगा हुआ था। पत्रलता को आया देख वह अपना कार्य छोड़ उसके पास आया और कहने लगा, "क्या कार्य था बहन पत्रलता को राजप्रासाद में ?"

"वहाँ एक अतिथि आए हुए हैं। उनको मेरे पान खाने की आवश्यकता थी।"

"बहुत विचित्र है !" यज्ञशात ने कहा, "न जाने कन्नौज वालों को तुम्हारे पान में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या रस आता है कि दिन-रात उसकी प्रशंसा करते फिरते हैं।"

"मैं स्वयं इस बात को समझ नहीं सकी। पान उत्पन्न होते हैं खेतों में, खदिर आता है विंध्याटवी से। सुपारी आती है चालुक्यांतर्गत वनों से। केशर कश्मीर से आता है। कस्तूरी तुषार-शैलभू से। ये सब सामग्रियाँ कोई भी एकत्रित कर सकता है और पान लगा सकता है।"

"मैं तो समझता हूँ कि कन्नौज के लोगों के, महाराज से लेकर साधारण निर्धन युवक तक, मस्तिष्क में कुछ खराबी है और यह खराबी बहन पत्रलता को कष्टदायक बन रही है।"

पत्रलता हँस पड़ी। हँसते हुए उसने कहा, "कुछ भी हो भैया! पत्रलता का जीवन रसमय बना हुआ है। यदि यह पागलपन न होता तो कदाचित् पत्रलता स्वयं विषण्णता के रोग से ग्रसित हो दुःखी हो जाती।"

"पर देखो न, अभी-अभी तुम राजप्रासाद से आ ही रही हो कि वहाँ से दो पृथक्-पृथक् संदेश तुम्हें बुलाने के लिए आ चुके हैं।"

"अच्छा? कौन आया था?"

"एक महाराज का प्रतिहार था। वह तो संदेश देकर चला गया है। एक महारानी मृणालिनी की चाय-चेटी आई है। वह भीतर माता जी के पास बैठी है।"

"ठीक है। तो मैं चलती हूँ। पहले महारानी की चाय-चेटी से बात कर लूँ।"

पत्रलता मन-ही-मन इस नई परिस्थिति के उत्पन्न होने से आनंद का अनुभव करने लगी थी। वह यह अनुभव कर रही थी कि मलिंद अपने-आपको राजप्रासाद में बंदी अनुभव करती है। वह यह अनुभव करती थी कि मलिंद से उसकी भेंट की सूचना महाराज तथा महारानी दोनों को मिल चुकी है और वे दोनों इस विषय में उससे जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं। अतः मन में एक योजना बनाती हुई वह महारानी की चाय-चेटी को साथ लेकर राजप्रासाद में जा पहुँची।

पत्रलता महारानी के आगार में पहुँची तो उसे यह देख अत्यंत विस्मय हुआ कि महारानी उत्सुकता से उसकी प्रतीक्षा कर रही है। पत्रलता के आगार में प्रवेश करते ही महारानी उठी और उसे अपने साथ लेकर अपने शयनागार में चली गई। वहाँ जाकर पत्रलता को एक आसन पर बिठाकर और स्वयं उसके सामने एक उच्च आसन पर बैठ कहने लगी, "देवी पत्रलता! मुझे ज्ञात हुआ है कि तुम राजकुमारी मलिंद से मिलने गई थीं। क्या यह सत्य है?"

"हाँ, महारानी जी! आपको किसी ने ठीक सूचना दी है। केवल अंतर यह है कि राजकुमारी ने मुझे बुलवाया था। मैं अपने-आप नहीं गई थी।"

"क्यों ?"

"वे मुझसे पान लेना चाहती थीं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

"उससे किसने तुम्हारे पान की प्रशंसा की है?

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यह मैं नहीं जानती।"

"तो फिर तुमने पान दिया था उसको ?"

"जी हाँ।"

"परंतु तुम्हारे जाने के पश्चात् भी उसके अधर खदिर रंग से रंजित नहीं हुए थे ?"

"वे कहती थीं कि रात्रि को सोते समय खाएँगी।"

"ओह! परंतु दो घड़ी पूर्व ही पान मँगवाने की क्या आवश्यकता थी ?"

"इसका कारण अभी मुझको पता नहीं चला।"

"पत्रलता! तुम्हें एक बात का ज्ञान होना चाहिए। तुम्हारे पान के अतिरिक्त भी तुम्हारी आवश्यकता पड़ सकती है।"

"महारानी जी! मैं जानती हूँ कि मैं एक स्त्री हूँ और एक स्त्री की किसी पुरुष को पान खाने के अतिरिक्त भी आवश्यकता पड़ सकती है। परंतु मैं जिसके पास गई थी, वह पुरुष नहीं प्रत्युत मेरी ही भाँति एक स्त्री है।"

मृणालिनी हँस पड़ी और कहने लगी, "पत्रलता! तुम अपने एक अन्य गुण को छिपाने का यत्न कर रही हो। वह है षड्यंत्र करने में चतुरता।"

"परंतु उस गुण की अब आवश्यकता नहीं रही। महाराज कन्नौज प्रजा के मनोनीत शासक हैं। इनके राज्य में प्रजा को अपार सुख मिल रहा है और मैं महाराज के प्रशंसकों में से हूँ।"

"फिर भी महाराज मनुष्य हैं और भूल करना मनुष्य का स्वभाव है।"

"जिसको महारानी जी भूल समझती हैं, महाराज को वह कोई अन्य उचित कार्य भी प्रतीत हो सकता है। अभी तक तो मुझे महाराज की किसी भूल का ज्ञान नहीं हुआ।"

"क्या मलिंद ने बताया नहीं कि वह उस आगार में बंदी है ?"

"बताया था, परंतु मुझे विश्वास नहीं आया।"

"मान लो कि वह बंदी है, तब क्या करोगी ?"

"उसको मुक्त कर देने का महाराज से निवेदन करूँगी। आर्य-संस्कृति में किसी स्त्री को बंदी बनाना अधर्म है।"

"परंतु क्या महाराज आर्य हैं ?"

"इसमें महारानी जी को संदेह है क्या ? वे आर्यावर्त के रहने वाले हैं। यहाँ के जनसाधारण जिस आचार-विचार को अपनाएँगे, उसको वे भी मानेंगे।"

"उनके पिता ने किसी समय मालवा के दो राजकुमारों को बंधक के रूप में रखा हुआ था और अब वे मलिंद को रखे हुए हैं।"

"सत्य ? मुझको इस बात का ज्ञान नहीं है।"

"यह बात सत्य है। मलिंद देवपुत्र तुवर के आचरण को अनुकूल रखने के लिए बंदी की गई है।"

"तो महारानी जी! आप महाराज से कहकर उसे मुक्त करा दीजिए। यह तो पाप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है।"

"तुम महाराज से यह कहो। मुझको पता चला है कि तुमने एक पान खिलाकर महाप्रभु अवलोकितेश्वर की मति बदल दी थी। क्या महाराज में यह चमत्कारिक परिवर्तन नहीं हो सकता?"

"महारानी जी से मेरा निवेदन है कि मेरे पान से महाप्रभु में परिवर्तन हुआ है, यह बात सत्य नहीं है। वास्तव में महाप्रभु पहले बच्चों की-सी सरल बातें किया करते थे। धीरे-धीरे उनको संसार का ज्ञान हो गया और उनके विचार बदल गए। इस परिवर्तन का श्रेय मुझको नहीं है।"

"यह बात तो महाप्रभु ने स्वयं स्वीकार की है।"

"यह उनका भ्रम भी हो सकता है।"

"कुछ भी हो। महाराज को इस विषय में समझाना चाहिए।"

"महारानी जी से क्षमा चाहती हूँ। मैं इस विषय में दूत का कार्य तब तक नहीं कर सकती, जब तक इस विषय में मुख्य व्यक्ति मुझे महाराज से जाकर कहने के लिए न कहे।"

"तो मलिंद ने तुम्हें इस विषय में कुछ नहीं कहा?"

"कहा होता तो मैं विचार करती। राजकुमारी ने यह अवश्य कहा था कि वे बंदी हैं, परंतु मुझको विश्वास नहीं आया। पश्चात् वे मुझको वीणा सुनाने लगीं। मैंने उनके वीणावादन तथा संगीत की समालोचना की तो वे मुझको पुनः आकर उसके अभ्यास में सहयोग देने के लिए कहने लगीं।"

"तो कल तुम पुनः वहाँ जाओगी?"

"हाँ।"

"तो वह एक-दो दिन पश्चात् बंधनमुक्त कराने के लिए तुम्हें प्रयत्न करने को कहेगी।"

"यदि कहेगी तो मैं विचार करूँगी कि मैं महाराज और उसके भीतर किस प्रकार समझौता करा सकती हूँ।"

"परंतु यदि महाराज नहीं माने तो?"

"तो फिर मैं क्या कर सकती हूँ!"

"तुम किसी भी प्रकार उस निस्सहाय बालिका की सहायता नहीं करोगी?"

"मुझको तो कुछ ऐसी विधि समझ में आती नहीं, जिसका प्रयोग मैं महाराज को समझाने के लिए करूँ।"

"विचार करो देवी पत्रलता! मैं समझती हूँ कि तुम्हारा मस्तिष्क इस दिशा में बहुत कार्य कर सकता है!"

"विचार करूँगी महारानी जी! परंतु क्या मैं पूछ सकती हूँ कि महारानी जी को इस कार्य में रुचि क्यों है?"

"मेरी रुचि का कारण स्पष्ट है। वह लड़की अत्यंत सुंदर है। मुझको महाराज के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके साथ दूसरा विवाह कर लेने की संभावना प्रतीत होती है।"

"तो फिर क्या हुआ ?"

"हुआ यह कि मैं किसी दूसरी स्त्री को कन्नौज की महारानी बनते नहीं देख सकती।"

"महारानी जी, आप बड़ी हैं। इस कारण पटरानी तो आप ही रहेंगी। फिर कोई दूसरी रानी बनकर यहाँ आती है तो हानि ही क्या है ?"

"नहीं पत्रलता ! तुम नहीं जानतीं। मैं अभी तक निस्संतान हूँ। मेरे संतान होने की आशा भी कम है। मैं अपनी पदवी किसी दूसरे के साथ नहीं बाँट सकती।"

"क्या महारानी जी को पता है कि इस दिशा में राजकुमारी मलिंद के क्या विचार हैं ?"

"मैं निश्चय से नहीं कह सकती। इतना जानती हूँ कि राजकुमार की माँ बनने का प्रलोभन कोई भी स्त्री अवहेलना की दृष्टिं से नहीं देख सकती।"

"सत्य ? यह बात भी मेरे लिए तो बिल्कुल नई है। मेरा एक कवि से परिचय है और वे नारी को मंदिर का रूप समझते हैं। उसके अंदर देवता की स्थापना मानते हैं। उनका विचार है कि देवता लोभ, मोह इत्यादि विकारों से ऊपर होते हैं।"

"बहुत ही भोले हैं वे कवि ! नारी प्रलोभनों का भंडार है। उसमें एषणाओं का निवास है। लोभ, मोह आदि उसकी स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ हैं।"

पत्रलता मुस्कराकर बोली, "महारानी जी का ज्ञान मुझसे अधिक है। इस कारण मुझको अपनी अनुभवहीनता स्वीकार कर महारानी जी की विवेचना माननी ही पड़ेगी।

"यदि राजकुमारी मलिंद कन्नौजाधिपति से विवाह के लिए मान गई तो मैं इस बात में हस्तक्षेप नहीं करूँगी। महारानी जी को विदित होना चाहिए कि यद्यपि मैं स्वयं विवाह नहीं कर रही, तो भी दूसरों का विवाह होते देख मुझको प्रसन्नता अवश्य होती है। आचार्य जी के सुपुत्र का महामात्य जी की लड़की से विवाह हो रहा है और न जाने क्यों, जब से मैंने इस विवाह का समाचार सुना है, मैं प्रसन्नता से उतावली हो रही हूँ।"

९

पत्रलता महारानी के आगारों से निकल महाराज के आगारों में जा पहुँची। वहाँ महाराज को अपने आगमन की सूचना भेज द्वार पर खड़ी होकर प्रतीक्षा करने लगी। इसी समय उसने देखा कि वह दासी, जो उसे मलिंद के पास ले गई थी, इन्हीं आगारों में घूम रही है। पत्रलता समझ गई कि यह भी मलिंद के समाचार महाराज के पास पहुँचा रही है। इसी समय एक प्रतिहार महाराज के आगार में से निकला और उसको देख मुस्कराता हुआ निकल गया। पत्रलता समझ गई कि महाराज मलिंद को फँसाने का कोई षड्यंत्र करना चाहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधी घड़ी-भर प्रतीक्षा करने के पश्चात् एक प्रतिहार उसके पास आया और कहने लगा कि महाराज बुला रहे हैं।

पत्रलता उस प्रतिहार के साथ महाराज की बैठक में जा पहुँची। वहाँ महाराज को झुककर नमस्कार कर खड़ी हो गई। प्रतिहार उसे वहाँ छोड़ चला गया।

प्रतिहार के जाने पर महाराज ने पत्रलता को बैठने के लिए संकेत किया। पत्रलता वहाँ, महाराज के सम्मुख भूमि पर बैठ गई और महाराज के कहने की प्रतीक्षा करने लगी। महाराज ने पत्रलता के मुख पर कुछ देर तक देखने के पश्चात् कहा, "देवी ! जब से मैं समर से लौटा हूँ, तुम्हारे पान खाने का सौभाग्य नहीं मिला।"

"महाराज! उत्तर पथ प्रदेशों में पान नहीं खाया जाता। मैंने यह समझा कि कदाचित् महाराज उन प्रदेशों में रहकर पान खाने की आदत छोड़ चुके हैं और इसी कारण कदाचित् इस तांबूलिन को कभी स्मरण भी नहीं किया।"

"यह बात नहीं देवी ! पान तो हम कश्मीर-जैसे देश में भी खाते रहे हैं। फिर भी यहाँ आकर देवी को पान देने के लिए बुलाने में संकोच करते रहे हैं। कारण यह कि जब से देवी का महामात्य से संबंध का ज्ञान हुआ है, तब से तांबूलिन के रूप में देवी को बुलाने का साहस नहीं हुआ। हाँ, यदि हमारी कोई छोटी बहन होती तो जैसे उससे हम पान माँग सकते थे, वैसे ही माँगने का अधिकार भी रखते हैं।"

"महाराज की इस कृपादृष्टि की मैं अत्यन्त आभारी हूँ। अतएव महाराज के लिए इस नाते पान देने में मैं अपना कर्तव्य माना करूँगी। फिर भी यह जानकर कि मेरे जन्म की कथा प्रचारित हो रही है, मुझको प्रसन्नता नहीं होती, महाराज! अपनी माँ तथा मामा के नाम इत्यादि का ध्यान करके मैं चाहती थी कि यह कथा सर्वसाधारण से ओझल ही रहे।"

"हम देवी को विश्वास दिलाते हैं कि इस कथा को किसी पर प्रकट नहीं करेंगे। वास्तव में हमें यह कथा अवलोकितेश्वर महाराज ने बताई थी और वे यह भी कह रहे थे कि उन दिनों वे कौशांबी में एक साधारण भिक्षुक के रूप में रहते थे।"

"इसका अर्थ यह हुआ कि मुझे महाप्रभु की सेवा में उपस्थित होकर उनसे यह निवेदन करना पड़ेगा कि वे मुझ अबला पर अपनी कृपादृष्टि रखें।"

"परंतु पत्रलता ! जो कुछ तुम्हारे विषय में कन्नौज में विख्यात हो रहा है, उसको जानकर तुम्हें अबला कहने से तो शब्दकोश में इस शब्द के अर्थ को बदलना पड़ेगा। तुम तो राज में उथल-पुथल मचाने की शक्ति रखती हो। तुम तो कन्नौज के रसिक युवकों को अपनी तर्जनी उठाने मात्र से भगा देती हो। बाण-जैसे अत्यंत सुंदर युवक के प्रेम-प्रयासों को तुम वर्षों से ठुकरा रही हो। तुम अबला कैसे हो ?"

"महाराज! इस सबमें मैं करने वाली कौन हूँ। भाग्य और भगवान् ही इसमें साधन हुए थे और होते रहे हैं। मेरे मन में तो केवल एक भावना रही है और अब भी वही भावना कार्य कर रही है। मैं अपने भाई बांधवों मित्र-संबंधियों-पड़ोसियों और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देशवासियों को सुख-संपदा-सम्पन्न और हर्षानंद से उल्लसित देखने की उत्कट अभिलाषा रखती हूँ। मेरी इस इच्छापूर्ति में जो कुछ प्रेरणा मुझे भगवान् से मिलती है, मैं उसी से प्रेरित होकर अपना कार्यक्रम निश्चित करती हूँ।"

"अच्छा, यह बताओ, तुम राजकुमारी मलिंद से मिलने के लिए किस प्रेरणा से गई थीं?"

पत्रलता इतनी देर से इसी प्रश्न की प्रतीक्षा कर रही थी। महाराज ने साधारण वार्तालाप में इस आवश्यक प्रश्न को ऐसे रख दिया, मानो वह उसे कुछ भी महत्त्व न देते हों। महाराज के इस चातुर्य को देख पत्रलता समझ रही थी कि महारानी मृणालिनी तो सर्वथा फूहड़ बुद्धि की हैं। पत्रलता इस प्रश्न का उत्तर मन में विचार कर चुकी थी। इस कारण मुस्कराकर कहने लगी, "राजकुमारी मलिंद से मिलने से पूर्व मैं उनके विषय में कुछ नहीं जानती थी। मुझको तो उनके राजप्रासाद में उपस्थित होने का भी ज्ञान नहीं था। जब वहाँ उनके पास गई तो राजकुमारी ने मुझे बताने का यत्न किया कि वे बंदी हैं। मुझको उनके इस कथन पर संदेह हुआ, क्योंकि वहाँ बंदी होने के कोई लक्षण नहीं थे। इस कारण वे पान खाने की इच्छा करने लगीं। वे मेरी सखी बनना चाहती थीं। किसी की इस इच्छा को, बिना किसी आपत्ति का ज्ञान प्राप्त किए, मैं ठुकरा नहीं सकी। मैंने उनसे कहा कि सखी-भाव कोई ठेकेदारी नहीं है। राजकुमारी जी मुझको अपने से मिलने का अधिकाधिक अवसर दें, तो सखी-भाव उत्पन्न हो सकता है। तब उन्होंने मुझे अपना संगीत सुनाया और साथ ही वीणावादन भी। मैंने उनकी इन दोनों योग्यताओं पर टीका-टिप्पणी की। इस अर्थ वे मुझे पुनः बुलाने को कहती थीं।"

"तो देवी को मलिंद के बंदी होने के लक्षण दिखाई नहीं दिए?"

"प्रत्यक्ष रूप में तो कोई नहीं दिखाई पड़ा।"

"परंतु देवी! वे वास्तव में मेरी बंदी हैं। वे बंदी हैं अपने सौंदर्य के कारण।"

"बहुत विचित्र है। भला आर्यावर्त में किसी का सौंदर्य भी उसको बंदी बनाए जाने का कारण कैसे हो सकता है?"

"फिर भी यह सत्य है। इसमें कारण है। मैं चाहता हूँ कि मेरा उसके परिवार से संबंध हो जाए।"

"तो श्रीमान् जी ने उसके पिता से उसे क्यों नहीं माँग लिया?"

"विवाह भी होगा, परंतु वह मलिंद के मान जाने पर। अब यदि देवी पत्रलता उसके मन को इस अर्थ तैयार कर सकें, तो हम बहुत प्रसन्न होंगे। हम देवी के इस प्रयत्न का प्रतिकार देने का पूर्ण प्रयत्न करेंगे।"

"प्रतिकार अथवा पुरस्कार का विचार छोड़ देने पर भी मुझको महाराज की सेवा करने में अत्यंत प्रसन्नता होगी। परंतु यदि मैं और महाराज दोनों उसको विवाह के लिए तैयार करने में सफल न हुए, तो फिर उसका क्या होगा?"

"भला यह कैसे हो सकता है? वह तैयार क्यों नहीं होगी? क्या मैं इतना कुरूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और श्री-विहीन हूँ कि मैं उसको नितांत अरुचिकर होऊँगा ?"

"आशा तो बहुत है कि वह मान जाएगी। मैंने तो इस संभावना को इस कारण पूछा है कि असफलता की अवस्था में क्या होगा ?"

"इसका निर्णय तो असफल होने पर ही किया जाएगा।"

"मुझको इस विषय में प्रयत्न करने में भारी प्रसन्नता होगी।"

"हम चाहते हैं कि देवी इस विषय में आज ~~से ही~~ प्रयत्न आरंभ कर दें। हमें देवी की चतुराई पर पूर्ण विश्वास है।"

इतना कहकर महाराज अपने आसन से उठ गए। परिणामस्वरूप पत्रलता भी उठी और महाराज की आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगी। महाराज चुपचाप आगार से बाहर निकल गए। पत्रलता भी वहाँ से निकल आई।

राजप्रासाद से निकल वह पालकी में बैठ सीधी महामात्य के निवासगृह पर जा पहुँची। वहाँ पहुँच उसको पता चला कि महामात्य उसके विषय में चिंता कर रहे हैं। अलकनंदा ने उसके आते ही कहा, "दीदी ! पिता जी तुमसे मिलना चाहते हैं।"

"कहाँ हैं वे ?"

"मंत्रिमंडल में बैठे हैं। उनका कहना है कि तुम उनसे मिले बिना मत जाना।"

अलकनंदा ने एक दासी के हाथ महामात्य को सूचना भेज दी कि पत्रलता आ गई है। दोनों के विस्मय का ठिकाना नहीं रहा, जब उन्होंने देखा कि महामात्य मंत्रिमंडल की बैठक से उठकर आ रहे हैं।

पत्रलता अभी विस्मय में महामात्य जी का मुख ही देख रही थी कि वे कहने लगे, "पत्रलता ! मेरे साथ इधर आओ।" यह कह महामात्य उसे साथ के आगार में ले गए। वहाँ पत्रलता को बिठाकर और उसके सामने स्वयं बैठकर पूछने लगे, "क्या बातचीत हुई है मलिंद से तुम्हारी ?"

"बहुत ही विचित्र बात है, श्रीमान् ! मैं मलिंद से मिलने गई और कन्नौज-भर में धूम मच गई है। महारानी मृणालिनी, महाराज और महामात्य और कदाचित् पूर्ण मंत्रिमंडल को इसकी चिंता लग गई है कि मैं एक बंदी राजकुमारी से मिली हूँ। यह क्या है ?"

"महारानी जी ने भी बुलाया था तुमको ?"

"जी हाँ।"

"उन्होंने भी मलिंद के विषय में बातचीत की थी ?"

"जी।"

"क्या कहा था ?"

पत्रलता इस प्रश्न से चकित रह गई। वह समझती थी कि चूँकि महारानी और महाराज दोनों भिन्न-भिन्न दिशाओं में कार्य कर रहे हैं, उसको अधिकार नहीं कि उनमें से किसी एक के रहस्य को प्रकट करे। अब महामात्य के, जिनको वह अपने पितातुल्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझती थी, इस प्रकार प्रश्न करने पर वह द्विविधा में पड़ गई। वह एक क्षण तक विचार करके पूछने लगी, "यह प्रश्न कन्नौज के महामात्य कर रहे हैं अथवा मेरे पितातुल्य मामा?"

पद्मराज इस उत्तर पर चकित रह गया। यद्यपि वह इससे चिंता करने लगा था, तो भी वह प्रसन्न था। यह पत्रलता में एक चरित्र-विशेष विद्यमानता का द्योतक था, जिसका अनुमान लगाकर वह अति प्रसन्न था। फिर भी वह समझता था कि इससे उसकी योजना में बाधा पड़ रही है।

जब पत्रलता ने प्रश्नभरी दृष्टि में उसकी ओर देखा तो उसने कहा, "पत्रलता! मैं आठों प्रहर राज्य का सेवक हूँ। अतएव प्रतिक्षण कन्नौज का महामात्य हूँ।"

"पिता जी! मैं महामात्य की पुत्री नहीं हूँ। मैं श्रीमान् पंडित पद्मराज की पुत्री हूँ। न मैं राज्य की सेविका हूँ। अतएव यदि यह प्रश्न मुझसे न पूछा जाए, तो ठीक रहेगा?"

पद्मराज ने कुछ विचार कर कहा, "पत्रलता किस रूप में राज-कार्य में सम्मिलित हो सकती है?"

"किसी रूप में भी नहीं।"

"पत्रलता! यह तो देशद्रोह हो जाएगा।"

"देशद्रोह तब होगा, जब कोई यह सिद्ध करेगा कि मेरे महारानी जी के मन की बात न बताने से देश को हानि पहुँच रही है। मैं जानती हूँ कि महारानी जी देशद्रोही नहीं हैं। अतएव मैं उनकी बात बिना उनकी स्वीकृति के न बताने से देशद्रोह नहीं कर रही।"

महामात्य समझता था कि पत्रलता पर देशद्रोह का आरोप लगाने का अर्थ है महारानी को देशद्रोही कहना। यह वह नहीं कर सकता था। इस कारण वह चुप रहा। पत्रलता ने कहा, "क्या महामात्य आठों प्रहर में एक क्षण के लिए भी पिता अथवा कुछ अन्य नहीं हो सकते?"

"हो सकता हूँ, परंतु केवल उन बातों में, जो देश और राज्य के साथ संबंध न रखती हों।"

"क्या महाराज अथवा महारानी का विवाह राज्य के संबंध की बात है?"

"हाँ।"

"तब तो ठीक है, पिता जी! मैं केवल इतना कह सकती हूँ कि महारानी जी ने कुछ ऐसी बात बताई है, जो उनके आंतरिक विचारों से संबंध रखती है। इस विषय में किसी राज्याधिकारी को बताने का अधिकार स्वयं महारानी जी को ही है। उनसे ही पूछ लिया जाए।"

महामात्य इस परिस्थिति से गंभीर विचार में मग्न हो पुनः मंत्रिमंडल की बैठक में चला गया।

मंत्रिमंडल में क्या विचार हो रहा था और उसमें महारानी जी के विचार जानने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या आवश्यकता आ पड़ी थी, पत्रलता यह समझ नहीं सकी।

रात भोजन के समय तक विरोचना देवी ने उसको रोक रखा। पत्रलता को संदेह हो रहा था कि महामात्य के कहने पर ही उसे रोका हुआ है। उसका यह विचार सत्य हुआ।

१०

भोजन करते समय महामात्य ने बात आरंभ कर दी। उसने कहा, "महाराज का देवपुत्र तुवर की कुमारी लड़की को पकड़कर ले आना कन्नौजराज की स्थिति को डाँवाडोल कर देने वाला है। उससे भरत-खंड में एक ऐसा बवंडर उठ सकता है कि कदाचित् महाभारत की पुनरावृत्ति हो जाए।"

पत्रलता चुपचाप सुनती रही। बात विरोचना ने आगे चलाई, "क्या हुआ है श्रीमान्?"

"हुआ यह है कि देवपुत्र तुवर से हमारी मैत्री की संधि है। महाराज तुषार-शैलभू से लौटते समय तुवर के राज्य में से होकर आ रहे थे कि वहाँ गंगा के तट पर कुछ लड़कियाँ खेलती दिखाई दीं। उनमें से एक को देख महाराज उस पर मोहित हो गए और उसको अपनी सखियों सहित पकड़कर ले आए हैं। अभी तक देवपुत्र तुवर को पता नहीं चला कि उनकी लड़की कहाँ गई है। आज पहले दिन यह समाचार राजप्रासाद से बाहर आया है कि एक अति सुंदर लड़की वहाँ बंदी है। उस पर दो सौ चाय-चेटियाँ पहरा दे रही हैं।

"आज पत्रलता उसको मिलने गई थी। यह समाचार महाराज तथा महारानी को मिल गया और पत्रलता को दोनों ने बुलवा लिया। हम मंत्रियों ने इस समस्या पर विचार करने के लिए अपने मंडल की गुप्त बैठक बुलाई थी। अभी तक हम इस समस्या को सुलझाने के लिए किसी सुझाव पर नहीं पहुँच पाए। कारण यह है कि इस नाटक के मुख्य पात्रों में से हमारे साथ कोई भी संपर्क नहीं रखे हुए हैं।"

अब पत्रलता ने मुख खोला। उसने कहा, "वास्तव में श्रीमान्! यह एक अति भयंकर परिस्थिति है। मलिंद ने मुझको कहा था कि वह बंदी है। मैंने उसका विश्वास नहीं किया। अब आपके कहने पर उसके कथन की सत्यता प्रतीत होने लगी है।"

"ऐसी परिस्थिति में मंत्रिमंडल क्या करना चाहता है?" विरोचना देवी का प्रश्न था।

"मंत्रिमंडल ने अभी कोई निर्णय नहीं किया। मेरा मन कहता है कि मलिंद महाराज से विवाह करना स्वीकार कर ले तो समस्या सुगमता से सुलझ सकती है।"

"सुझाव तो अच्छा है, परंतु यह विवाह बिना दोनों की अनुमति के कैसे हो सकता है? क्या महाराज इस विवाह के लिए तैयार हैं?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यही तो मैं कह रहा हूँ कि हमारे साथ दोनों में से किसी का भी संपर्क नहीं है।"

"मैं कल मलिंद से मिलने जा रही हूँ। क्या आप उससे संपर्क बनाना चाहेंगे?"

"यह तो बहुत ही अच्छा होगा।" महामात्य ने प्रसन्नता से खिलते हुए कहा।

"यह संपर्क बन जाएगा। यदि महामात्य एक बात स्वीकार कर सकें कि वे मलिंद की बात महाराज अथवा मंत्रिमंडल के सम्मुख न रखेंगे, जब तक कि राजकुमारी से उसकी स्वीकृति न ले लें।"

"इसका मैं वचन देता हूँ।"

"तो मैं आपको उसके मन की इच्छा बता दूँगी।"

"कल किस समय जाओगी?"

"जब उसकी दासी मुझको लेने आएगी।"

"ठीक है, तो कल उससे मिलकर मुझसे मिलने आना।"

"आऊँगी।"

पत्रलता को अपनी स्थिति अत्यंत विकट प्रतीत हुई। वह अपने को एक जाल में फँसता हुआ अनुभव करने लगी थी। इस कारण उसने सबसे पहले यह विचारने का यत्न किया कि किस प्रकार वह मलिंद के चारों ओर गुप्तचरों के जाल को तोड़ सकती है।

वह रात्रि-भर इसी समस्या पर विचार करती रही। इसके परिणामस्वरूप वह एक योजना बनाने में सफल हो गई।

अगले दिन जब मलिंद की दासी आई तो पत्रलता ने पहले उससे ही पूछना आरंभ किया। उसने पूछा, "दासी! तुम्हारा नाम क्या है?"

"कामिनी।"

"ओह! तो कल महाराज ने तुमसे राजकुमारी के विषय में पूछताछ की थी?"

"राजकुमारी के विषय में नहीं, आपके विषय में पूछा था।"

"क्या पूछा था?"

"वे जानना चाहते थे कि आप वहाँ किस कार्य से आई थीं?"

"और तुमने सब-कुछ बता दिया।"

"वे मुझे मार डालने को तैयार हो गए थे।"

"पर तुमने झूठ क्यों कहा? मैंने तो राजकुमारी को कुछ सिखाया-पढ़ाया नहीं था।"

"नहीं देवी! मैंने सिखाने के विषय में कुछ नहीं कहा। मैंने तो केवल यह कहा था कि आप कुछ धीरे-धीरे बातें कर रही थीं, जो मैं सुन नहीं सकी।"

"तो तुमने यह नहीं कहा कि मैंने राजकुमारी को भाग जाने के लिए प्रोत्साहन दिया है?"

"नहीं देवी! ऐसी कोई बात नहीं कही। मैंने तो केवल यह कहा था कि आप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों कुछ कानाफूसी करती रही हैं, जो मैं सुन नहीं सकी।"

"देखो कामिनी! महाराज ने मुझको कहा है कि राजकुमारी की एक दासी ने उन्हें बताया है कि मैं राजकुमारी के साथ कुछ षड्यंत्र कर रही हूँ। यह सब तुमको किसने बताया है?"

"मैंने ऐसी कोई बात नहीं की। किसी ने आपको मेरे विरुद्ध भड़का दिया है।"

"अच्छी बात है, चलो।"

"पर देवी! राजकुमारी से इस विषय में कुछ मत कहिएगा।"

"अभी तो कुछ नहीं कहूँगी, परंतु तुम पर यह संदेह होते ही कि तुम झूठमूठ की बातें कह सकती हो, मैं तुमको यमलोक का द्वार दिखा दूँगी। अब चलो।"

आज भी राजकुमारी पूजा के आगार में पूजा कर रही थी। वीणा उसके सम्मुख रखी थी। पत्रलता जब वहाँ पहुँची तो दासी उस आगार से बाहर निकल गई। पत्रलता ने वह द्वार बंद कर लिया और संकेत से मलिंद को उठाकर किसी अन्य आगार में चलने को कहा। साथ ही उसने मुख पर अंगुली रख चुप रहने का भी संकेत कर दिया।

जब राजकुमारी चलने लगी तो पत्रलता ने उसकी वीणा उठा ली। राजकुमारी कुछ कहना चाहती थी, परंतु पत्रलता ने उसे संकेत द्वारा बोलने से मना कर दिया। दोनों वहाँ से निकल भीतर शयनागार में जा पहुँचीं। पत्रलता को वहाँ भी संतोष नहीं हुआ। उसने हाथ के संकेत से वहाँ से भी निकल आने को कहा। वहाँ से वे साथ वाले आगार में चले गए। पत्रलता ने सब द्वार तथा गवाक्ष आदि बंद कर दिए और दीवारों को ठोक-ठोककर देखा। द्वार-गवाक्षादि बंद करने से आगार में अँधेरा हो गया था। मलिंद ने दीपक जलाया। पत्रलता और मलिंद कमरे के बीचोबीच बैठ गए। पश्चात् पत्रलता ने कहा, "राजकुमारी! यहाँ की दीवारें भी गुप्तचर का कार्य करती हैं। आपको पता होना चाहिए कि कल का हमारा वार्तालाप महाराज को कर्णगोचर हो गया था। कल मुझे अपने गृह से बुलवाकर महाराज ने सब-कुछ बता दिया था। इससे मैं समझ गई कि राजकुमारी चारों ओर से गुप्तचरों से घिरी हुई हैं।"

"परंतु ऐसा क्यों है?"

"यह मैं क्या जानूँ? यह तो राजकुमारी ही बता सकती हैं कि उन्होंने क्या अपराध किया है, जिससे वे इतना कड़ा दंड पा रही हैं।"

"अपनी जानकारी में मैंने कुछ नहीं किया। एक दिन गंगा-तट पर मैं अपनी दासियों के साथ विहार कर रही थी कि महाराज अपने सैनिकों के साथ वहाँ पहुँच गए और मुझको दासियों सहित यहाँ ले आए।"

"ओह! परंतु एक बात तो बताइए। राजकुमारी को ये महानुभाव कैसे जँचे हैं?"

"बहुत सुंदर कलेवर में कोई घोर नारकीय आत्मा प्रतीत होती है।" यह कहते-कहते राजकुमारी ने घृणा से नाक सिकोड़ ली।

"ओह! क्या नारकीय कार्य किया है कन्नौजाधिपति ने?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजकुमारी मलिंद एक क्षण तक विस्मय में पत्रलता का मुख देखती रही। तदनंतर कहने लगी, "मैंने देवी पत्रलता के विषय में यह सुना था कि वे अति दयालु और प्राचीन आर्य-परिपाटी को मानने वाली हैं। इसी से आशा कर बैठी थी कि मेरा उद्धार करेंगी। परंतु यह आज मैं क्या सुन रही हूँ, देवी! कुँवारी कन्या का अपहरण, बिना उसकी तथा उसके माता-पिता की इच्छा के, नारकीय कार्य नहीं है।"

"किसी कार्य की अच्छाई-बुराई उस उद्देश्य से जानी जाती है, जिसके लिए वह कार्य किया गया है। मैं यह बात अभी समझने का यत्न ही कर रही हूँ कि महाराज के इस कार्य में उद्देश्य क्या हो सकता है।"

"तो महाराज से देवी ने पूछा नहीं?"

"पूछा है। उन्होंने बताया भी है। परंतु मैं उसका समर्थन राजकुमारी के मुख से चाहती हूँ।"

"क्या महाराज मेरा अपहरण करना किसी श्रेष्ठ उद्देश्य के लिए मानते हैं?"

"हाँ, वे आपको अपनी महारानी बनाना चाहते हैं।"

"जैसे रावण सीता को बनाना चाहता था?"

"सीता पूर्व-विवाहिता थी, राजकुमारी!"

"मैं किसी अन्य से प्रेम करती हूँ।"

"प्रेम करना तथा विवाह हो जाना दोनों भिन्न-भिन्न बातें हैं।"

"जहाँ तक शरीर का संबंध है, देवी का कथन ठीक है। प्रेम आत्मा का विषय है। यह बंधन विवाह से भी अधिक सुदृढ़ होता है।"

"क्या प्रेम के बिना विवाह नहीं हो सकता?"

"देवी पत्रलता क्या समझती हैं?"

"मैंने तो प्रेम किया है, परंतु विवाह नहीं किया। इस कारण मैं दोनों को पृथक्-पृथक् समझती हूँ।"

"मेरा इस विषय में देवी से मतभेद है। मैं विवाह का अर्थ जैसा समझती हूँ, वह बिना प्रेम के अनुचित मानती हूँ। परंतु कन्नौज के महाराज द्वारा मुझको इस प्रकार बंदी बनाकर रखने के कारण मैं उनसे घृणा करती हूँ। मैं यह पसंद नहीं करती कि मेरा विवाह उससे हो, जिससे मैं घृणा करती हूँ।"

"तो राजकुमारी महाराज से विवाह पसंद नहीं करतीं?"

"देखो देवी! रावण ने सीता का अपहरण किया था और उसका सर्वनाश हुआ था। भीष्म पितामह ने काशिराज की लड़कियों पर उनकी इच्छा के बिना अपहरण किया था। भीष्म पितामह के वंश का भी सर्वनाश हो गया था। आज इस पापी ने मेरा अपहरण किया है, इसके परिवार का भी सर्वनाश ही होगा।

"एक बात और सुन लो, देवी! राजा देश की प्रजा का प्रतिनिधि होता है। यदि प्रजा उसके द्वारा लूटमार किए हुए धन का उपभोग करती है, तो वह भी उसके [illegible]नों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भागी होगी। आज भारत, विशेष रूप में उत्तर पथ के देशों में इस मूर्ख राजा की महिमा गाई जाती है, तो महिमा गाने वाले शताब्दियों तक इस भूल का फल पाएँगे।"

"राजकुमारी हम सबको श्राप दे रही हैं?"

"यह श्राप नहीं। यह अति दुखित मन की हूक है। यह भस्म कर देगी इस संसार को।"

पत्रलता कुछ काल तक विचारमग्न बैठी रही। एकाएक पत्रलता के कान खड़े हो गए। उसने मुख पर अँगुली रख मलिंद को चुप रहने का संकेत किया। पश्चात् वह उसको हाथ से पकड़कर एक अन्य आगार में ले गई। वहाँ ले जाकर उसने धीरे से कहा, "मुझको कुछ ऐसा भास हुआ था कि भूमि के नीचे कोई सरक रहा है। यह भ्रम भी हो सकता है। देखिए राजकुमारी जी! मैं आपके मन की भावना को समझती हूँ। किसी भी कुमारी को विवश करके उससे विवाह करना तो किसी भाँति भी उचित नहीं। मैं आपकी सहायता करना चाहती हूँ, परंतु मैं आपको बताती हूँ कि आपकी अपनी दासियाँ भी विश्वास योग्य नहीं हैं। कामिनी पर भी भरोसा मत कीजिएगा। कल वह महाराज के सामने स्वेच्छा से अथवा विवशता से उपस्थित होकर बहुत कुछ बता आई है। इस परिस्थिति में मैं क्या सहायता कर सकती हूँ, यह एक अति कठिन और विचारणीय बात है। इस समय मैं आपको तुरंत कुछ नहीं कह सकती। मैं चाहती हूँ कि आप मेरे साथ भविष्य में लिखकर विचार-विनिमय किया करें। इसके लिए मैं आपके पास नित्य आया करूँगी। आपके लिखे का उत्तर मैं अगले दिन स्वयं लिखकर आपको दे जाया करूँगी। यह उत्तर पढ़कर आप पत्र को जलाकर भस्म कर दें। इस प्रकार हम परस्पर विचार कर सकेंगे। यहाँ पर तो आपको यदि संगीत सुनाने की रुचि हो तो सुना दिया करें। आप मुझे कल लिखकर दीजिएगा कि आप चाहती क्या हैं। तदनंतर मैं आपको लिखकर बता दूँगी कि मैं क्या सहायता कर सकती हूँ।

"एक बात स्मरण रखें। लिखा हुआ पत्र पढ़ने के पश्चात् अवश्य जलाकर भस्म कर दें। अच्छा, अब मैं चलती हूँ। कल लिखकर आप बताएँ कि आप क्या चाहती हैं।"

११

विजयोत्सव का दिन समीप आ रहा था और नगर की शोभा बढ़ती जाती थी। राजपथ के दोनों ओर के गृहों के स्वामियों को आज्ञा दी गई थी कि वे अपने गृहों की सफेदी कराएँ और महाराज की सवारी के पूर्व मार्ग को पुष्पमालाओं और तोरणों से विभूषित कर दें। मार्ग के बड़े-बड़े दुकानदारों को कह दिया गया था कि वे महाराज तथा विजेता सेना पर, जो सवारी के साथ होगी, पुष्प-वर्षा करें तथा नागरिकों को यह आदेश दिया गया था कि वे अपने बच्चों सहित नवीन रंगारंग वस्त्र पहन राजपथ के दोनों ओर खड़े रहें। पथ के दोनों ओर बाँस गाड़कर उनके साथ रंगारंग पताकाओं की लड़ियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाँध दी गई थीं। बाँसों पर सुनहरे तथा रूपहले कपड़े लपेट दिए गए थे।

कार्यक्रम यह था कि महाराज अपनी विजयी सेना के एक मुख्य भाग के साथ नगर के उत्तरी द्वार से नगर में प्रवेश करेंगे और एक कोस से अधिक नगर के राजपथ पर चलकर, राजप्रासाद के बाहर जा पहुँचेंगे। राजप्रासाद के बाहर खुले मैदान में खुली सभा होगी। उसमें वे कुछ घोषणाएँ करेंगे। मध्याह्न के भोजन के पश्चात् राजसभा होगी, जिसमें राज्य के प्रमुख विद्वान्, व्यापारी, सुभट्ट तथा शूद्र वर्ग के लोग आएँगे। महाराज वहाँ अपने राज्य की नीति घोषित करेंगे। मध्याह्नोत्तर राजप्रासाद के बाहर एक मेला लगेगा। इसमें बाजार लगेगा तथा मनोरंजन के अड्डे बनाए जाएँगे। नट-नटनियाँ खेल दिखाएँगी; नर्तकियों का नृत्य होगा; बाजीगर अपने मायावी खेल दिखाएँगे। जनसाधारण को इस मेले में विचरने की तथा क्रय-विक्रय करने की स्वीकृति होगी।

सायंकाल एक महान् भोज होगा, जिसमें सर्वसाधारण को सम्मिलित होने का निमंत्रण होगा। इस भोज के अतिरिक्त नगर-भर के हलवाइयों की दुकान पर बिना मूल्य के मिष्ठान्न मिलने का प्रबंध था। निर्धनों में, उत्सव के एक दिन पूर्व, वस्त्र वितरण करने का प्रबंध था, जिससे पूर्ण प्रजा रंगारंग वस्त्रों में राजपथ पर उपस्थित होकर स्वागत की शोभा बढ़ा सके।

इसके साथ ही बाणभट्ट के तीन नाटकों के रंगमंच पर खेलने का आयोजन था। एक दिन कवि-सम्मेलन का भी आयोजन किया गया था। इसके साथ ही धनुर्विद्या, खड्‌ग चलाने की तथा अन्य कई खेलों की प्रतियोगिताएँ भी रखी गई थीं।

इस प्रकार राज्य-भर के लोग इस उत्सव को सफल बनाने तथा इसमें भाग लेने की तैयारी कर रहे थे।

बाण ने अपने तीनों नाटकों के लिए सैकड़ों अभिनेता तैयार किए थे और उसके नाटकों का राज्य-भर में बीसियों स्थान पर खेलने का प्रबंध किया गया था। राजधानी में भी तीन मंच भिन्न-भिन्न स्थानों पर इसके लिए तैयार किए गए थे जहाँ नाटक खेलने का प्रबंध था।

उत्सव के लगभग एक सप्ताह पूर्व पत्रलता बाण के नाटकों के खेले जाने का अभ्यास होता देखने आई। बाण ने जब उसे देखा तो अपना कार्य छोड़ उसके पास आ खड़ा हुआ और पूछने लगा, "देवी ! क्या देख रही हो ?"

"मैं यह देख रही हूँ कि आपने बहुत ही योग्यता से कर्म और ज्ञान में संघर्ष रंगमंच पर उपस्थित किया है। कर्म का अंत संगठन में होता है। संगठन का परिणाम विजय और अधिनायकवाद है। ज्ञान का अर्थ आत्म-विश्लेषण है, जिसका अंत शून्य में है।"

"पत्रलता ! तुम ठीक ही समझी हो। मेरे इस नाटक की पांडुलिपि अवलोकितेश्वर महाराज ने पढ़ी है परंतु वे इसको इस प्रकार नहीं समझ सके। उनको यह बौद्ध-मीमांसा का समर्थक प्रतीत हुआ है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जब मंच पर खेल देखेंगे तो समझ जाएँगे कि इनमें बौद्ध-मीमांसा की हँसी उड़ाई गई है।"

"कुछ भी हो। मेरा आशय स्पष्ट है। मैं यह प्रकट करना चाहता हूँ कि इस संसार की गाड़ी के दो चक्र हैं। एक कर्म और दूसरा भक्ति। इन दोनों चक्रों पर चलने वाली गाड़ी का सारथी है ज्ञान। जब कर्म और भक्ति के दोनों चक्र टूट जाते हैं तो ज्ञान बेचारा चलने में अशक्त हो जाता है और आत्मविश्लेषण में लीन हो जाता है। इस विश्लेषण में वह पाता है कि सब-कुछ मिथ्या है और वह स्वयं भी मिथ्या भ्रम-मात्र है।"

"मेरा कहना है कि इस नाटक के खेलने के पश्चात् आपका पत्ता कन्नौज में से कट गया समझना चाहिए।"

"देवी ! यह कट जाए तो वास्तव में मेरा उद्धार हो जाएगा।"

"क्यों ? यह वैभव और सुख-सुविधा आपको कहाँ मिलेगी ?"

"पत्रलता ! तुम लेखिका नहीं हो। होतीं तो समझ जातीं कि मैं कितनी बड़ी यंत्रणा को सहन कर रहा हूँ।"

"सत्य ? मैं नहीं जानती कवि ! क्या आप बता सकेंगे कि आपको धन से समृद्ध इस नगर में क्या कष्ट हो रहा है ? सकलोत्तर-पथ के विजेता तथा अधिपति की राजधानी में विजेता के मुख्य कवि को क्या यह धन-समृद्धि और मान-प्रतिष्ठा चुभने लगी है ?"

"इसमें अधिपति का दोष नहीं है। वे तो मुझको आवश्यकता से अधिक देते हैं, परंतु उनके अधिकारी लोग चाहते हैं कि मैं लिखूँ तो उनकी इच्छा के अनुसार। अधिपति दयालु, कृपालु, उदार और संज्जन होता हुआ भी उन अधिकारियों को इस बात से मना नहीं कर सकता।

"महाराज की दिग्विजय को मैंने व्यर्थ खोया हुआ अवसर का नाम देकर, उनकी जीवनी के कुछ पृष्ठ लिखे थे। कहीं अवलोकितेश्वर की दृष्टि उन पर पड़ गई और उन्होंने हँसते हुए मेरे लेख को फाड़ डाला। मैंने इस पर विस्मय प्रकट किया, तो कहने लगे कि राज्य मुझको इतना स्वर्ण इसलिए नहीं देता कि मैं उस राज्य के अधिपति की आलोचना करूँ।

"मैंने निवेदन किया कि मैं राज्याधिपति का दिया अन्न नहीं खाता, प्रत्युत राज्य का अन्न खाता हूँ और मेरा लेख राज्य अथवा देश के हित में है।

"वे पूछने लगे, 'कैसे ?'

"मैंने बताया, 'महाराज की इस समर-यात्रा में युद्ध तथा यात्रा में, ऋतु और रोगों के कारण सहस्रों सैनिक मर गए हैं। महाराज ने इस यात्रा में तीन सौ करोड़ स्वर्ण व्यय किया है। परंतु इस यात्रा से राज्य को लाभ कुछ भी नहीं हुआ। न तो राज्य की एक उँगली-भर भूमि बढ़ी है और न ही राज्य की प्रजा पहले से अधिक सुखी और सुरक्षित हुई है। यह समर-यात्रा महाराज की कीर्ति-प्रसार के लिए नहीं की गई थी। यह तो भारत की और विशेष रूप से श्रीकंठ तथा कन्नौज राज्य की प्रजा को, भरत-खंड की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पश्चिमोत्तरी सीमाओं के पार की म्लेच्छ जातियों के आक्रमण के भय से दूर करने के लिए थी।

"मैंने आगे कहा, 'महाराज की ख्याति बढ़ी है अथवा घटी है, मैं इस पर विवेचना नहीं करना चाहता। मैं तो केवल यह कहना चाहता हूँ कि राज्य को तथा भारत की प्रजा को इस समर-यात्रा से कुछ भी लाभ नहीं हुआ।'

"अवलोकितेश्वर कहने लगे, 'कवि! इस सुंदर, विशाल, सुसज्जित और सुख-सुविधा-संपन्न आवास में रहने और अपने गाँव के उस कच्चे, गंदे तथा संकीर्ण आवास में अपने आधे दर्जन भाई-बहनों के साथ रहने में अंतर देख लो।'

"पश्चात् उनका ध्यान नाटकों की ओर चला गया और मेरे विषय में बात समाप्त हो गई। नाटक में वे ज्ञान और कर्म की मीमांसा सुन अति प्रसन्न हो चले गए।

"मैं संसार में किसी का भी अधिकार नहीं समझता कि वह लेखक को आदेश दे कि वह क्या लिखे और क्या न लिखे। इस कारण अब महाराज हर्ष का चरित्र अधूरा ही रहेगा। मैं इसमें एक पंक्ति भी और नहीं लिखूँगा।"

पत्रलता भौचक्की हो कवि का मुख देखती रह गई। बाण ने धीरे से कह दिया, "मैंने इस नाटक पर बहुत परिश्रम किया है। इसी कारण मैं यहाँ टिका हूँ। इससे अवकाश पाते ही यहाँ से चल दूँगा।"

"सत्य?"

"हाँ देवी! मेरा मन अब कन्नौज में रहने को नहीं चाहता। यहाँ आया था देवी को अपनाने। उसमें सफल नहीं हो सका। देवी के लिए ही राज-सभा की चाटुकारी करने की नीचता स्वीकार की थी। अब यह प्रयोजन भी नहीं रहा। मुझसे व्यर्थ में चारणों का कार्य नहीं हो सकता। मैं उत्सव की अंतिम रात, उस नाटक के समाप्त होते ही यहाँ से चला जाऊँगा।"

"सत्य?"

"कवि स्थिर-प्रज्ञ व्यक्ति है।"

"तो कवि क्या रथ में प्रस्थान करेंगे अथवा पैदल?"

"यह प्रश्न किसलिए है?"

"कदाचित् कन्नौज की एक दुखिया अबला चोरी-चोरी आपके रथ में, आपके साथ जाने की इच्छा रखती हो?"

"सत्य? तब तो रथ का प्रबंध कर लूँगा। परंतु यह 'कदाचित्' का शब्द मिटाकर 'निश्चय' का शब्द प्रयुक्त हो जाए तो मैं एक बार तो अपने जीवन से भी खेलकर उस देवी को यहाँ से ले चलने के लिए तैयार हो जाऊँगा।"

"यदि यह संभव हो गया तो यह देवी जीवनपर्यंत आपकी आभारी रहेगी।"

"मैं देवी की सेवा करने में अपनी पूर्ण शक्ति लगा दूँगा।"

"तो बात निश्चित रही। जैसे कवि इस कन्नौज की परतंत्रतापूर्ण वायु से घबरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा है, वैसे ही वह देवी भी इस वायुमंडल से घृणा कर रही है। परंतु एक वचन आपको देना होगा।"

"क्या ?"

"उस क्षण तक, जब तक आप कन्नौज राज्य की सीमा से पार नहीं निकल जाते, किसी को भी आप यह नहीं बताएँगे कि आप कौन हैं, कहाँ जा रहे हैं और आपके साथ कौन जा रही है। एक ब्राह्मण अपनी बहन को ससुराल छोड़ने जा रहा है, यही विख्यात होना चाहिए।

"साथ ही जाने से पूर्व किसी को यह संदेह नहीं होना चाहिए कि कवि नगर छोड़ रहा है और कन्नौज की एक देवी को साथ ले जा रहा है।"

"मुझे सब-कुछ स्वीकार है।"

"तो ठीक है, नाटक के एक दिन पूर्व मैं इस प्रबंध के संबंध में कवि से मिलूँगी।"

"देवी ! मेरे साथ मेरे गृह पर रहने का वचन देती हैं ?"

"कैसा छोटा मन है कवि तुम्हारा ! स्त्रियों की सेवा करते समय उनसे शर्त नहीं की जाती। कर्म करो और फल मिलता है। कर्म का मूल्य पाना मनुष्य के अपने वश की बात नहीं। फिर भी कोई कर्म निष्फल नहीं जाता।"

१२

पत्रलता नित्य मलिंद, महाराज हर्ष और महारानी मृणालिनी से मिलती रहती थी। मलिंद वीणावादन करती थी। पत्रलता उसे पान खिलाती थी। जिस दिन भी वह जाती थी, वह कुछ लिखकर उसको देने के लिए साथ ले जाती थी और कुछ लिखा हुआ उससे ले आती थी।

दोनों में यह पत्र-व्यवहार पहले इस विषय पर चलता रहा कि मलिंद महाराज से विवाह कर ले तो महाराज उसे पटरानी घोषित कर देंगे और उसकी पुत्र-संतान के होने पर, उसे राजगद्दी पर बिठाएँगे। मलिंद का सदैव स्पष्ट उत्तर यह रहता था कि वह विष खाकर जीवन देना स्वीकार कर लेगी, परंतु यह विवाह नहीं करेगी।

पश्चात् पत्रलता ने पूछा कि वह कहाँ जाना पसंद करेगी। क्या उसके पिता को सूचित कर दिया जाए ? क्या उनके पास इतनी शक्ति है कि सूचित करने पर वे उसे छुड़ा सकेंगे ? मलिंद ने उत्तर में कहा कि वह अपने गुरु अग्निमित्र के पुत्र पुरुरुवा से प्रेम करती है। पत्रलता उसे मुक्त कराकर उनके पास भेज दे तो जीवनपर्यंत उसकी आभारी रहेगी।

महाराज हर्षवर्धन के साथ पत्रलता के वार्तालाप का भाव यह था कि महाराज मलिंद के साथ उत्कट प्रेम करने लगे थे। वे मृणालिनी को छोड़ मलिंद को पटरानी बनाने को तैयार हो गए थे और उसके पिता तुवर को अमात्य-पद पर नियुक्त करने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वचन देते थे। वे मलिंद के लिए अति विशाल, सुसज्जित और अत्यंत सुखकारक पृथक् राजप्रासाद बनाकर देने को तैयार थे और उसके पुत्र को राजगद्दी देने को तैयार थे।

पत्रलता मलिंद का उत्तर महाराज के पास लाती थी। मलिंद का उत्तर इस प्रकार था कि पहले उसे बंधनों से मुक्त किया जाए; बंदी अवस्था में वह विवाह कदापि स्वीकार नहीं करेगी। मुक्त करके उसके पिता को कन्नौज बुलाया जाए, उनसे क्षमा माँगी जाए और पश्चात् ही वह इस प्रस्ताव पर विचार करेगी।

महाराज हर्षवर्धन यह समझते थे कि इस प्रकार तो पक्षी उड़ जाएगा और वे हाथ मलते रह जाएँगे। उनका कहना था कि पहले विवाह हो जाए और पश्चात् वे मलिंद की प्रत्येक बात मानने को तैयार हो जाएँगे।

मलिंद ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया था। उसका कहना था कि यदि विवश करके उससे विवाह किया गया तो यह उसके साथ बलात्कार होगा।

इस प्रकार मलिन्द के विषय में बातचीत हो रही थी कि एकाएक पत्रलता की बाण से भेंट हुई और पत्रलता ने जब यह जाना कि बाण कन्नौज से भाग रहा है तो उसने मलिंद को उसके साथ भगाने का निश्चय कर लिया। पत्रलता ने बाण से इस प्रकार बात की थी, जिससे बाण यह समझा था कि पत्रलता उसके साथ भाग रही है और इस सबका रहस्य कन्नौज राज्य की सीमा पार जाकर खुलेगा। उसने बहुत विचारोपरांत एक योजना बना डाली।

अगले दिन वह मलिंद से मिलने गई तो अपनी योजना के अनुसार एक पत्र लिखकर ले गई। उसमें उसने लिखा :

"प्रिय राजकुमारी जी! मैं अभी तक यह प्रयत्न कर रही थी कि आप कन्नौज की महारानी बन जाएँ। मैंने महाराज को वचन दिया था कि यदि आपको स्वतंत्र कर दिया गया तो आपको मैं कन्नौज में रहने को तैयार कर लूँगी। पश्चात् आपके पूज्य पिता जी को बुलाकर विवाह का प्रबंध भी कदाचित् हो जाएगा। महाराज ने मेरा विश्वास नहीं किया और विवाह हो जाने से पूर्व आपको मुक्त करने को तैयार नहीं हुए।

"अब इन प्रयत्नों के विफल हो जाने पर मैंने आपके यहाँ से भागने की एक योजना बना डाली है। योजना बहुत ही सावधानी से बनाई है। फिर भी एक मनुष्य द्वारा बनाई जाने के कारण यह असफल भी हो सकती है। असफल हो जाने की संभावना और उसके परिणाम समझकर ही राजकुमारी जी इसके लिए तैयार हों। इस योजना का विवरण मैं अभी नहीं लिख सकती। यदि राजुकमारी अपने जीवन की होड़ लगाकर मुक्त होना चाहती हैं, तो स्वीकृति दें। योजना कार्यान्वित होने के काल के एक घड़ी पूर्व राजकुमारी को करने योग्य निर्देश दूँगी। राजकुमारी उस पर चलेंगी तो पूर्ण आशा है कि वे भागने में सफल हो जाएँगी।"

उस दिन पत्रलता ने मलिंद को पत्र दिया तो उसने उसे पढ़कर, बिना कुछ भी अधिक विचार किए 'हाँ' कह दिया। इसके पश्चात् पत्रलता ने मलिंद को यह लिखा कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह सदैव प्रसन्न रहना आरंभ कर दे और चाय-चेटियों से मेल-जोल रखना आरंभ कर दे। साथ ही वह महाराज के लिए प्रशंसात्मक शब्दों का प्रयोग आरंभ कर दे।

विजयोत्सव के उपलक्ष्य में चाय-चेटियों को पुरस्कार दे; यदि महाराज मिलने का यत्न करें तो इंकार न करे और शिष्टता की सीमा के भीतर रहकर महाराज से व्यवहार रखे, जिससे महाराज के मन में आशा का अंकुर जम जाए। शेष का प्रबंध वह स्वयं कर लेगी।

मलिंद को यह बताकर पत्रलता महाराज से मिलने गई और महाराज से उसने कहा, "महाराज! आपके लिए एक शुभ समाचार है। राजकुमारी ने यह इच्छा प्रकट की है कि यदि आप उससे विवाह करना चाहते हैं, तो आप स्वयं उससे मिल लें।"

महाराज ने प्रसन्न होकर कहा, "यह सत्य ही शुभ समाचार है; परंतु एक बात है। क्या वह मेरा अपमान तो नहीं करेगी?"

"महाराज!" पत्रलता ने कहा, "मैंने उसको बहुत समझाया है। यदि महाराज उसको पत्र लिखेंगे तो वह उसका उत्तर देगी। जहाँ तक मैं समझ सकी हूँ, महाराज का तेज इतना है कि कोई स्त्री उसको अधिक काल तक सहन नहीं कर सकती। यदि महाराज ठीक ढंग से चलें तो कोई कारण नहीं कि शीघ्र ही कुछ निर्णय न हो जाए।"

इस नई परिस्थिति पर महाराज गंभीरता से विचार करने लगे। उनको विदित था कि उनकी बहन राज्यश्री ने देवगुप्त की हत्या का प्रयत्न किया था। क्या उनके साथ भी कोई ऐसा प्रयत्न तो न होगा? एक बात वे समझते थे कि देवगुप्त ने राज्यश्री के साथ बिना उससे विवाह किए संबंध उत्पन्न करना चाहा था। राज्यश्री उस समय विधवा हो चुकी थी और नवीन विवाह नहीं कर सकती थी। वे ऐसी कोई बात विवशतापूर्वक करने को तैयार नहीं हैं। फिर भी इस विषय में सावधान होना उचित मान, उन्होंने यह संशय पत्रलता के सम्मुख रख दिया। उन्होंने कहा, "अभी तक जो व्यवहार मलिंद का मेरे साथ रहा है, उससे यह भी तो संभव है कि वह मुझे अपने आगार में बुलवाकर मेरे ऊपर कोई घातक आक्रमण करने का प्रयत्न करे।"

"महाराज! इस विषय में मैं क्या कह सकती हूँ। हाँ, मैं इतना जानती हूँ कि वह कई दिनों से आपके विषय में कई प्रश्न पूछने लगी है। बातों में आपकी विजय-यात्रा का भी उल्लेख आया था। आपकी उदारता और विद्वानों के प्रति आपके अनुराग की भी बात हुई थी। मुझको तो कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि उसके मन में परिवर्तन आरंभ हो गया है।"

"तो मैं उसको पत्र लिखूँ अथवा प्रतिहार के हाथ संदेश भेजूँ?"

"महाराज! संदेश भेजिए। प्रतिहार के स्थान चाय-चेटियों की नायिका इसके लिए उपयुक्त रहेगी।"

महाराज ने पत्रलता की राय के अनुसार चाय-चेटियों की नायिका दीप्ति के हाथ संदेश भेज दिया कि वे राजकुमारी मलिंद से मिलकर कुछ निवदेन करना चाहते हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनको इसके लिए अवसर दिया जाए।

राजकुमारी इस संदेश से आश्चर्यचकित हुई, पश्चात् इसमें भी पत्रलता की योजना का हाथ समझ उसने दीप्ति को संदेश दे दिया, "महाराज से मेरा प्रणाम निवेदन कर कहना कि मुझे महाराज के दर्शन कर अत्यंत प्रसन्नता होगी। परंतु शिष्टता की सीमा का पालन करना अत्यावश्यक है। यदि महाराज ने कुछ भी अनीति की तो मैं प्राणांत कर लूँगी।"

यह सूचना महाराज के पास पहुँची तो वे स्वयं मलिंद के सम्मुख उपस्थित हो गए। मलिंद प्रत्येक बात पत्रलता के संकेत पर कर रही थी। यद्यपि वह समझती थी कि इतनी चाय-चेटियों के रहते किस प्रकार वह मुक्त हो सकेगी, फिर भी इस समय सिवाय पत्रलता पर विश्वास रख कार्य करने का अन्य कोई चारा न था।

अतएव जब महाराज आए तो उसने उनका पूजागृह में स्वागत किया। उनको उच्च आसन पर बिठाकर स्वयं सामने खड़ी हो गई। महाराज हर्षवर्धन सामने खड़ी मलिंद के सौंदर्य को देख मुग्ध हो उसको देखने लगे। यद्यपि मलिंद ने कुछ भी शृंगार नहीं किया हुआ था, फिर भी वह अद्वितीय सुंदरी प्रतीत हो रही थी। महाराज को इस प्रकार अपनी ओर घूरते देख मलिंद ने उनका ध्यान भंग करने के लिए कहा, "महाराज ने किस अर्थ दर्शन देने की कृपा की?"

"मैंने अपना आशय देवी पत्रलता के द्वारा भेज दिया था। राजकुमारी ने इसका उत्तर आशाजनक नहीं भेजा। इस कारण मैंने यही उचित समझा कि स्वयं उपस्थित होकर निवेदन करूँ।

"जब से मैंने राजकुमारी को देखा है, मैं उससे विवाह के लिए लालायित हो रहा हूँ। देवी! मैं विश्वास दिलाता हूँ कि मैं तुमसे उत्कट प्रेम करने लगा हूँ। एक क्षण के लिए भी मुझे तुम विस्मरण नहीं हो पातीं। मैं राजकुमारी से प्रार्थना करता हूँ कि मुझ पर कृपा करें। मैं अत्यंत आभारी हूँगा। इससे मेरा कल्याण होगा और साथ ही मेरे राज्य और देश का भी।"

"मैं महाराज के मनोभावों को समझती हूँ; परंतु मेरा निवेदन है कि यह समस्या इतनी सुगम नहीं, जितनी महाराज समझते हैं। बंदी किए जाने से पूर्व मैं किसी अन्य व्यक्ति से प्रेम करती थी। यही कारण था कि देवी पत्रलता के सब संदेशों को मैं अस्वीकार करती रही थी। मुझको महाराज के प्रासाद में आए एक मास हो चुका है। इतने काल में मेरे प्रेमी ने मुझे छुड़ाने का कुछ भी उपक्रम किया प्रतीत नहीं होता। इस कारण मैं विचार करती हूँ कि जो मेरी रक्षा नहीं कर सकता, वह मेरा स्वामी कैसे बन सकता है!

"मुझको यह ज्ञान नहीं था कि मैं अति सुंदर हूँ और वास्तव में मेरी रक्षा करनी अति दुस्तर है। पत्रलता ने कई प्रमाण और उदाहरण देकर मुझे समझाया है कि मुझमें वास्तव में विशेष सौन्दर्य है, इस कारण मेरे सौन्दर्य की रक्षा का भार भी किसी विशेष व्यक्ति के पास रहना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"फिर भी मैं यह देखना चाहती हूँ कि मेरे साथ बंदियों-जैसा व्यवहार तो उचित नहीं। कदाचित् यह मुझ पर अविश्वास के कारण है। आज मैं एक बात विचार कर रही हूँ। मैं आपके मन पर इस बात का विश्वास बिठा दूँ कि मैं स्वेच्छा से भी यहाँ रह सकती हूँ। तब तो मैं बंदी नहीं रहूँगी। इस पूर्ण प्रक्रिया में श्रीगणेश तो आपको ही करना चाहिए। आप मुझसे मिलने का अवसर निकालिए। यदि आप मेरे मन में कुछ भी अनुराग उत्पन्न कर सके, तो फिर मैं अपने को आपकी बंदी न समझ, आपके प्रेम-बंधन में बँधी हुई समझने लगूँगी। पश्चात् ही मैं आपके साथ विवाह के प्रस्ताव पर विचार कर सकती हूँ।"

"यह कार्य तो सुगम है। मैं अपने को सौभाग्यवान मानूँगा, यदि राजकुमारी प्रतिदिन कुछ समय देकर मुझे सेवा का अवसर देंगी। मुझे पूर्ण विश्वास है कि मैं राजकुमारी को विश्वास दिला सकूँगा कि मैं उसकी सेवा के लिए सदैव तत्पर ही नहीं हूँ, प्रत्युत उसकी रक्षा करने में भी समर्थ हूँ।"

इस वार्तालाप के पश्चात् महाराज भी समझे कि राजकुमारी के इस मनोपरिवर्तन में पत्रलता का बहुत बड़ा हाथ है। इसी कारण उन्होंने अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए पत्रलता को वस्त्र-भूषणादि पुरस्कार में दिए और साथ ही राजकुमारी मलिंद को भी अपनी प्रथम भेंट एक मणि-माणिक्य-जड़ित माला भेज दी।

१३

उत्सव आरंभ हुआ और प्रत्येक कार्य बड़ी धूमधाम से संपन्न हुआ। कन्नौज राज्य की प्रजा, जो लक्ष-लक्ष संख्या में इन उत्सवों में उपस्थित होकर भाग ले रही थी, अत्यंत उत्साहित प्रतीत होती थी। मनोरंजन आदि संपूर्ण कार्यक्रम सफल हुए और प्रजा ने पागलों की भाँति प्रसन्नतापूर्वक इसमें भाग लिया।

सार्वजनिक सभा में हर्षवर्धन ने अपनी विजय का विवरण दिया। उसने कहा, "इस समय हम ब्रह्मपुत्र नदी से लेकर सिंधु-तट तक सब राज्यों से मैत्री की संधि किए हुए हैं और सब राज्य हमें अपना ज्येष्ठ समझते हैं तथा हमें कर देते हैं। इस प्रकार हमारा राज्य पूर्ण भरत-खंड में विस्तृत हो गया है।

"हमने अगणित धन-संपदा इस विजय-यात्रा में एकत्रित की है। उसका एक भाग तो हम इस आनंदोत्सव में प्रजा के लिए व्यय कर रहे हैं। यह व्यय किया जा रहा धन, उस प्राप्त धन का एक छोटा-सा अंश-मात्र है। शेष धन हमारे कोष में है, जिसका मूल्यांकन करोड़ों मुद्राओं के तुल्य होगा। फिर भी हम समझते हैं कि यह धन हमारी प्रजा का है और हमें इसे प्रजा में ही बाँट देना चाहिए। इस कारण हम घोषणा करते हैं कि आगामी मकर संक्रांति के दिन यह धन हम प्रजा में वितरित कर देंगे। हम पूर्ण राज्य-भर के नागरिकों में यह घोषणा करते हैं कि जिसको जो कुछ भी चाहिए, उस दिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयागराज, त्रिवेणी में उपस्थित हो। हम सबको सामर्थ्यानुसार देंगे।"

इस घोषणा को सुन प्रजा महाराज की जय-जयकार करने लगी। इसी दिन विशेष सभा में बाणभट्ट ने महाराज की प्रशंसा में उनको 'परमेश्वर, महाराजाधिराज, पुरुषोत्तम, सकल राजचक्र चूड़ामणि, सर्वदेवावतारभिवैकत्र' की उपाधि दी और महाराज की समर-यात्रा के विषय में कहा, "हूण हरिण केसरी, सिंधुराजज्वरो, गुर्जर प्रजागरो, गांधाराधिप गंधद्वीप पाकल, लाटपाट वपाटश्चरो, मालघ लक्ष्मीलता परशुः" (हूण रूपी हिरणों के लिए सिंह, सिंधुराज के लिए ज्वर, गुर्जर प्रदेश वालों के लिए नींद भंग करने वाले, गांधारराज-रूपी पदगंधी हाथी के लिए घातक महारारी, लाटों की चंचलता अथवा पटुता को हरने वाले और मालवा देश-रूपी लता की श्री नष्ट करने वाले परशु, महाराज हर्षवर्धन हैं।)

हर्षवर्धन इन प्रशंसासूचक शब्दों को सुन मन में बहुत प्रसन्न हुआ और इसके लिए उसने बाण को सवा लक्ष स्वर्ण उपहार में दिए।

उत्सव की तीनों रात्रि बाण के तीन नाटक होने वाले थे। नाटक के लिए मंच राजप्रासाद के एक प्रांगण में खड़ा किया गया था। बाण को, सवा लक्ष स्वर्ण पुरस्कार मिलने की घटना से, उसकी प्रशंसा बहुत बढ़ गई थी। इस प्रशंसा के कारण प्रजा बाण के दर्शनों के लिए व्याकुल हो उठी। इस कारण अंतिम नाटक के दिन जनसाधारण को भी राजप्रासाद के उस प्रांगण में आने की स्वीकृति मिल गई।

अंतिम दिन हर्षवर्धन ने पत्रलता को बुलवाया और कहा, "देवी! हमारी यह उत्कट अभिलाषा है कि यदि देवी मलिंद स्वीकार करे, तो इस अंतिम नाटक के उपरांत हम यह घोषणा करवा दें कि देवपुत्र तुवर की कन्या कुमारी मलिंद के साथ हमारा विवाह निश्चित हो रहा है।"

"महाराज! मैं कविवर बाणभट्ट के नाटकों में अत्यंत व्यस्त रही हूँ। इस कारण मैं राजकुमारी से मिलने जाकर भी उनकी मानसिक अवस्था का अनुमान भली-भाँति नहीं लगा सकी। श्रीमान् तो अवश्य मिले होंगे। राजकुमारी का इस विषय में क्या विचार है?"

"मैं चाहता हूँ कि देवी इस स्वीकृति में साक्षी रहे। इस कारण मैंने उल्लेख नहीं किया। चाय-चेटियों की नायिका दीप्ति राजकुमारी से मिलती रहती है। फिर भी मैं समझता हूँ कि तुम उससे मिलकर निर्णय करो।"

"अच्छी बात है। मैं राजकुमारी जी से मिलने जा रही हूँ और जो कुछ भी निश्चित होगा, श्रीमान् महाराज की सेवा में निवेदन कर दूँगी।"

जब पत्रलता महाराज के आगारों में से निकलकर मलिन्द के कक्ष की ओर जाने लगी, तो महारानी मृणालिनी की एक दासी ने उसके साथ-साथ चलते हुए कहा, "देवी! महारानी जी को कुछ पानों की आवश्यकता है। क्या अभी चल सकती हैं?"

पत्रलता उस दासी का मुख देखने लगी, तो उसको दासी की आँख में एक चमक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखाई दी। वह खड़ी हो गई और विचार करने लगी। पश्चात् उसने कहा, "मुझे महारानी जी की सेवा करने में अत्यंत प्रसन्नता होगी।"

"तो चलिए मेरे साथ। महारानी जी देवी की प्रतीक्षा कर रही हैं।"

पत्रलता दासी के साथ सीधी महारानी के निजी आगार में जा पहुँची। महारानी ने दासी को बाहर जाने का आदेश दिया। दासी के जाने के पश्चात् पत्रलता ने पूछा, "महारानी जी क्या चाहती हैं? आजकल इस आनंदोत्सव के कार्य में भाग लेने के कारण मैं पान नहीं लगाती।"

"मुझको पान की आवश्यकता नहीं है। मुझको चिंता इस बात की है कि महाराज मलिंद से विवाह करने में सफल हो रहे प्रतीत होते हैं।"

"कुछ-कुछ मुझको भी ऐसा ही भास हो रहा है। महाराज इस विषय में आज नाटक के उपरांत जनसाधारण में कुछ घोषणा भी करना चाहते हैं।"

"परंतु देवी! तुम तो कहती थीं कि मलिंद महाराज से विवाह के लिए कदापि तैयार नहीं होगी।"

"वह मेरा अनुमान था, महारानी जी! ऐसा प्रतीत होता है कि मेरा अनुमान असत्य सिद्ध हो रहा है।"

"क्या इसमें अब कुछ नहीं हो सकता?"

पत्रलता ने कुछ क्षण गंभीरतापूर्वक सोचते हुए कहा, "यत्न तो अभी भी किया जा सकता है। मेरा महारानी जी से निवेदन है कि महारानी जी को महाराज के विवाह में आपत्ति करने में कोई कारण नहीं होना चाहिए। महारानी जी के कोई संतान नहीं। इससे राज्य को हानि होने की संभावना है। कदाचित् राजकुमारी मलिंद राज्य को कोई उत्तराधिकारी दे सकें।"

"मैंने महाराज के सम्मुख यह प्रस्ताव रखा था कि मेरी छोटी बहन से उनका विवाह हो सकता है। मेरी बहन मुझसे कहीं अधिक सुंदर है।"

"तो महारानी जी! आप उन्हें बुला क्यों नहीं लेतीं? उनके यहाँ आने से कार्य सुगम हो सकता है।"

"मेरी योजना थी; परंतु इसमें समय लगेगा। शीघ्रता भी की जाए, तो इसमें एक मास तो लग ही सकता है।"

पत्रलता पुनः गंभीर हो गई। कुछ देर सोचने के पश्चात् उसने कहा, "महारानी जी! मैं यत्न कर सकती हूँ कि महाराज अपने विवाह की घोषणा कुछ काल के लिए स्थगित कर दें। वे अपने निर्णय के पूर्व महारानी जी की बहन को भी देख लें।"

"मैं देवी पत्रलता की सदैव आभारी रहूँगी।"

"इसके लिए महारानी जी यदि मेरी कुछ सहायता कर दें, तो मेरा कार्य सुगम हो जाएगा।"

"क्या सहायता चाहती हो, देवी!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"बिना किसी भी व्यक्ति की जानकारी के आज रात के लिए मुझे अपना निजी रथ प्रदान कर दें।"

"परंतु देवी के पास विरोचना देवी की पालकी जो है ?"

"आजकल उत्सव के कारण यह पालकी महामात्य के अतिथियों की सेवा में लगी हुई है। साथ ही मुझे नगर से बाहर कहीं दूर जाना है।"

"कहाँ ले जाओगी रथ को ?"

"यहाँ से पाँच कोस के अंतर पर एक दीर्घिका है। उसके तट पर एक महाकाल भैरव का मंदिर है। वहाँ आज अनुष्ठान के लिए जाना है। यदि आज मैं राजकुमारी मलिंद से भेंट करने गई, तो निश्चित ही इसमें विलंब हो जाएगा और मेरा अनुष्ठान सम्पन्न नहीं हो सकेगा।"

"सुना है, महाकाल नर-मांस खाता है और मद्य पीता है।"

"कालभैरव संपूर्ण संसार को खा रहा है। नर तथा पशु में उसे कोई अंतर प्रतीत नहीं होता।"

महारानी कुछ क्षण तक विचार करती रही। पश्चात् बोली, "रथ किस समय और कहाँ चाहिए ?"

"रात्रि के दूसरे प्रहर के आरंभ होते ही महारानी जी के पिछवाड़े वाले प्रांगण में। सारथि को मेरा नाम न बताया जाए। न ही वह मुझे उस समय देखने अथवा मुझसे बात करने का यत्न करे। मैं उस समय अर्ध-समाधिस्थ अवस्था में हूँगी और किसी बात का उत्तर नहीं दे सकूँगी। मैं वहाँ पहुँचूँगी और सीधी रथ में जा बैठूँगी। सारथि को मेरे बैठते ही रथ हाँककर उत्तर के मार्ग से नगर के बाहर हो, हरिद्वार के मार्ग पर चल पड़ना चाहिए। नगर से पाँच कोस के अंतर पर एक पुरानी दीर्घिका है। वहाँ एक कालभैरव का मंदिर है। उसके सामने रथ खड़ा कर दिया जाए। मैं उतर जाऊँगी और पश्चात् रथ वहाँ से सीधा नगर को वापस लौट आए।

"यदि कालभैरव प्रसन्न हो गए, तो निश्चित ही मलिंद की मति में परिवर्तन हो सकेगा।"

महारानी गंभीर विचार में बैठी रहीं। इस पर पत्रलता ने कह दिया, "यदि मैं आज मंदिर पहुँचने में सफल हो गई तो निस्संदेह आपकी मनोकामना पूर्ण होगी।"

"कौन-सी मनोकामना ?"

"यही कि महाराज तथा मलिंद के विवाह की घोषणा एक मास के लिए रुक जाए।"

"क्या देवी मेरी संतान के लिए प्रयत्न नहीं कर सकतीं ?"

"यह भी हो सकता है, परंतु इसके लिए मुझको गुरु जी से कहना होगा। मेरा विचार है कि पहले यह घोषणा स्थगित कराने का यत्न किया जाए। इस काल में यदि गुरु जी आ गए, तो इस विषय पर विचार कर लिया जाएगा। तब तक महारानी जी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बहन को बुलाने का यत्न करें।"

"परंतु महाराज तो आज सायंकाल घोषणा करना चाहते हैं।"

"महाराज से कह दिया जाएगा कि घोषणा वे कल सेना के सम्मुख करें। इसको रोकने का प्रयत्न तो हो जाएगा और कल के लिए मैं आज अनुष्ठान करूँगी।"

"अच्छी बात है। एक प्रहर रात गए तुम मेरे आगारों के पिछवाड़े वाले प्रांगण में रथ को खड़ा पाओगी।"

"मुझे पूर्ण आशा है कि कल घोषणा रोकने में मैं सफल हो सकूँगी।"

"तो ठीक है। देवता के सामने मेरी ओर से यह वचन देना कि अपनी मनोकामना सिद्ध होने पर मैं स्वयं वहाँ अनुष्ठान करने पहुँचूँगी।"

"यह भी तो गुरु ज़ी महाराज की कृपा पर निर्भर है।"

इतना कह पत्रलता उठ खड़ी हुई और प्रणाम कर जाने लगी। कुछ पग जाकर पुनः खड़ी हो उसने कहा, "सारथि को यह आदेश होना चाहिए कि वह मुझसे बात करने का यत्न न करे और उसको मेरे पहुँचने का स्थान भली-भाँति बता दिया जाए, जिससे मार्ग में मुझसे पूछने की आवश्यकता न पड़े।"

"ऐसा ही होगा।"

पत्रलता इस प्रबंध से अति प्रसन्न हो राजकुमारी मलिंद के आगारों में जा पहुँची। मलिंद वाराह-मूर्ति के सम्मुख बैठी चिंतन कर रही थी। पत्रलता गई तो उसका कुम्हलाया हुआ मुख खिल उठा। उसने पत्रलता से गले मिलकर अपनी प्रसन्नता प्रकट की। पत्रलता उसे संकेत से पिछले आगार में ले गई और पश्चात् धीरे-धीरे कहने लगी—"योजना पूर्ण हो गई है, राजकुमारी जी! इसमें एक त्रुटि रह गई थी और वह अभी-अभी पूर्ण कर आई हूँ। मैंने अपने विचार से यह योजना त्रुटिरहित बनाने की चेष्टा की है और मैं समझती हूँ कि आप इसमें सफल भी होंगी। आगे भगवान् की इच्छा पर निर्भर है।

"सायं होने से दो घड़ी पश्चात् नगर में दीपावली की शोभा को देखने के लिए आप प्रासाद की छत पर जाना चाहेंगी; परंतु वहाँ आपके स्थान पर आपकी दासी ही आपके वस्त्र पहनकर जाएगी। उसके साथ आपकी दो अन्य दासियाँ दासियों के वस्त्र पहनकर रहेंगी। आप दासियों के से वस्त्र पहने हुए और उस पर मेरी यह लाल रंग की चादर ओढ़े, अपनी एक अन्य दासी के साथ आज रात नाटक देखने के लिए चली जाएँगी। आप अपनी दासी की बाँह में बाँह डालकर जाएँ, जिससे देखने वाला यही समझे कि आप भी एक दासी-मात्र हैं।

"ठीक एक प्रहर पश्चात् आप महारानी के आगारों के पिछवाड़े चली जाएँ। वहाँ एक रथ खड़ा होगा। आपको उस रथ पर जाकर चुपचाप बैठ जाना है। आपका पूर्ण शरीर और मुख मेरी इस चादर से ढका होना चाहिए। सारथि को यह बता दिया गया है कि पत्रलता कहीं जा रही है। उसको यह भी बताया गया है कि पत्रलता अपने जप में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगी है और उससे किसी प्रकार की बातचीत न की जाए। वह आपसे कुछ नहीं पूछेगा। आपके बैठते ही वह नगर के उत्तर द्वार की ओर से निकल, हरिद्वार के मार्ग पर चल देगा। नगर से पाँच कोस के अंतर पर एक दीर्घिका है और उसके पास ही महाकाल भैरव का मंदिर है। रथ वहाँ जाकर ठहर जाएगा और आप उसमें से उतर पड़ेंगी। आप निर्भीकता से मंदिर में प्रवेश कर जाएँ। रथ आपको छोड़कर नगर वापस आ जाएगा।

"मंदिर के अंदर अँधेरा होगा और आप उसमें छिप जाएँ। रथ के वापस चल पड़ने पर आप मंदिर के द्वार पर, एक ओर पीपल के वृक्ष के नीचे खड़ी हो, एक अन्य रथ की प्रतीक्षा करें। उस रथ के आने पर आप उसमें चढ़ जाएँ। उसमें मेरे प्रेमी बाणभट्ट होंगे। वे समझेंगे कि मैं उनकी प्रतीक्षा में हूँ। आपके रथ में बैठते ही वह रथ भी राज्य की सीमा की ओर चल देगा और दिन निकलने तक राज्य की सीमा के पार हो जाएगा। तब आप कविवर को अपना परिचय दे दीजिएगा। वह आपको इच्छित स्थान तक पहुँचा देगा, अन्यथा आप स्वयं भी वहाँ से जा सकेंगी।

"कवि जी से कहिएगा कि मैं उनकी कृपा के लिए जीवनपर्यन्त आभारी रहूँगी। मेरी इच्छा है कि वे आपको किसी सुरक्षित स्थान पर छोड़ दें और नैमिषारण्य में जाकर वे मेरी प्रतीक्षा करें।

"भट्ट जी अति भद्र प्राणी हैं। एक बार राजकुमारी उनके रथ में जो बैठीं तो फिर उनको किसी प्रकार की चिंता नहीं करनी चाहिए। वे अपने जीवन के मोल पर भी आपकी रक्षा करेंगे।

"यदि भय का कोई कारण है तो उस दीर्घिका तक पहुँचने में ही है। उसके लिए राजकुमारी अपने साथ एक कटार अवश्य रख लें।

"कदाचित् दीर्घिका वाले मंदिर में पूजा चल रही होगी। राजकुमारी जी को द्वार लाँघ अँधेरे में छिप जाना है। फिर भी यदि पूजा करने वालों में से किसी ने आपको देख लिया तो आप निस्संकोच रूप में कह दें कि पत्रलता के कहने पर वहाँ आई हैं और पत्रलता की प्रतीक्षा कर रही हैं।"

"देवी पत्रलता मेरे साथ नहीं चलेंगी क्या?"

"नहीं; मैं यहाँ से राजकुमारी के भागने के लिए प्रबंध करने का कार्य करूँगी।"

१४

यह सब प्रबंध कर पत्रलता बाणभट्ट के गृह पर जा पहुँची। बाणभट्ट भी अपनी तैयारी पूर्ण कर चुका था। पत्रलता को आया देख वह लपककर उसके पास आया और उसे नमस्कार कर पूछने लगा, "ठीक है न?"

"हाँ कवि! सब प्रबंध हो गया है। मध्यरात्रि तीन घड़ी रहते उत्सव से खिसककर आपको चल देना है। यहाँ से आपको सीधा रथ में बैठकर, दीर्घिका वाले मंदिर पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहुँच जाना चाहिए। रथ अत्यंत वेग से जाना चाहिए और दो घड़ी-भर में पहुँच जाना चाहिए। यदि मार्ग में आपको कोई रथ मिले तो उससे किसी प्रकार की पूछगीछ न करिएगा। कदाचित् जिस रथ पर मैं जाऊँगी, वह रथ वापस लौट रहा होगा।

"आपके रथ के कालभैरव के मंदिर पर पहुँचते ही मैं आपके रथ में बैठ जाऊँगी। आप तुरंत उत्तर की ओर चल दें। सूर्य निकलने से पूर्व ही सीमा पार कर लेनी चाहिए। सीमा पार कर हम अपना भावी कार्यक्रम बना लेंगे।"

"अपना पूर्ण धन मैंने महेश्वर सेट्ठी के पास जमा कराकर डेढ़ लक्ष स्वर्ण की हुंडी ले ली है। उन्होंने लिख दिया है कि कौशांबी में उनकी दुकान से हुंडी देखते ही मुझे धन दे दिया जाए। सीमा पार कर हमें कौशांबी जाना है। वहाँ से धन प्राप्त कर हम तुषार-शैलभू में एक सुंदर छोटा-सा मकान बनवाकर रहेंगे।"

"इस विषय पर सीमा पार करके विचार करेंगे।"

"तो क्या तुम अभी ही कालभैरव मंदिर में जा रही हो?"

"हाँ, आज अमावस की रात्रि है। अघोरी बाबा से अपना भविष्य जानने का यत्न करूँगी। परंतु कवि भीतर नहीं आएगा। मैं उसको मंदिर के बाहर पीपल के वृक्ष के नीचे खड़ी मिलूँगी।"

"इसका कारण क्या है? क्या मुझको अघोरी बाबा से आशीर्वाद लेने की आवश्यकता नहीं?"

"ऐसी बात नहीं है। मैं उनको बताना नहीं चाहती कि मैं कवि से विवाह करने का विचार रखती हूँ। उन्होंने कहा है कि यह इस जन्म में संभव नहीं। अतएव उनको बताने से वे मेरे उत्साह को भंग भी कर सकते हैं।"

बाण चुप रहा और पत्रलता यह कहकर कि वह कालभैरव मंदिर के बाहर उसकी प्रतीक्षा करेगी, चली गई।

बाण आज अपना अंतिम नाटक खेल रहा था। नाटक था ज्ञान तथा कर्म। एक पंडित के दो जुड़वाँ पुत्र थे। एक का नाम था ज्ञान और दूसरे का नाम था कर्म। ज्ञान अति विद्वान् और विचारशील था और कर्म पहलवान और दृढ़ विचारों वाला था। पंडित जी दोनों को पढ़ाते थे। ज्ञान तुरंत समझ जाता था और समझकर शंका-समाधान करने के लिए प्रश्न पर प्रश्न करने लगता था। कर्म बात को समझकर पाठशाला से बाहर आकर डंड पेलने और घी-दूध पीने लग जाता था।

पिता ने पढ़ाया कि प्रकृति त्रिगुणात्मक और अष्टधा है। तीन गुण हैं—सत्, रज, तम। आठ रूप हैं—आदि प्रकृति, महातत्त्व, अहंकार तथा पाँच तन्मात्रा।

पंडित जी ने कह दिया कि इनके अतिरिक्त आत्मा है और परमात्मा है। ज्ञान पूछने लगा, "परंतु पिता जी! आत्मा की क्या आवश्यकता है? जब मन और इंद्रियाँ प्रकृति का विकार हैं, तो प्रकृति से भिन्न आत्मा को मानने की क्या आवश्यकता है?"

"आवश्यकता का मैं कैसे वर्णन कर सकता हूँ? यह तो बनाने वाले को पता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगा।"

"बनाने वाला कौन है?"

"परमात्मा।"

"उसने सृष्टि क्यों बनाई है?"

"सृष्टि बनी तो प्रकृति के गुणाधीन।"

"तो फिर परमात्मा की आवश्यकता क्या रही?"

"यही तो मैं कह रहा हूँ कि आवश्यकता को हम कैसे जान सकते हैं। यह तब जानी जा सकती है, जब हम प्रलय के उपरांत, जो कुछ उस समय उपस्थित हो, उसको देख आज की भाँति युक्ति करने की शक्ति रखते हों। आज जब सब कुछ बना हुआ हमारे सामने उपस्थित है, हम नहीं कह सकते कि उस समय किस बात का अभाव था। यह अभाव जानने से ही बनाने वाले की आवश्यकता का पता लग सकता है।"

"तो इस समय इस पर क्यों विचार किया जाता है?"

"इस कारण कि जब हम सृष्टि की उत्पत्ति और इसके कार्य करने पर विचार करते हैं, तो हमको कोई उसका निर्माता और संचालक मानना पड़ता है।"

"अर्थात् यदि मैं परमात्मा न मानूँ तो मेरी सृष्टि नहीं चल सकती?"

"नहीं।"

"यह असत्य है।"

कर्म अपने पिता और भाई ज्ञान में यह विवाद सुन रहा था। जब ज्ञान ने कहा कि यह असत्य है तो कर्म ने एक घूँसा ज्ञान की पीठ पर दे मारा। ज्ञान इससे तिलमिला उठा और अपनी पीठ पर हाथ फेरते हुए पूछने लगा, "कर्म! यह तुमने क्या किया है?"

"पिता जी को असत्यवादी कहने का दंड दिया है।"

"पर देखो न कर्म!····।"

कर्म ने उसे आगे बोलने नहीं दिया। उसकी बात बीच में ही काटकर कहने लगा, "देखो ज्ञान! तुम मन में कुछ भी विचार करो, परंतु पिता जी को झूठा नहीं कह सकते।"

"पर मैं तो शास्त्र को झूठा····।"

"बस-बस, चुप रहो। शास्त्र में लिखा है, परमात्मा है। पिता जी ने कहा है, परमात्मा है। तो फिर परमात्मा अवश्य है।"

"पर मैं कहता हूँ कि ऐसा मानने की आवश्यकता ही क्या है?"

"मानने में हानि भी क्या है?"

"मैं तो व्यर्थ की बात मानने के लिए तैयार नहीं हूँ।"

"मेरा मुक्का भी व्यर्थ था क्या?"

"उससे पीड़ा हुई है।"

"पर जैसे यह मुक्का व्यर्थ नहीं था, वैसे ही परमात्मा व्यर्थ नहीं है।"

"यह कहाँ की युक्ति है?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार नाटक चलता गया। ज्ञान प्रत्येक बात का विश्लेषण करने लगता। कर्म सदैव विचार करता था कि क्या करना है और पश्चात् उसे कर देता।

ज्ञान की दृष्टि एक लड़की पर पड़ी। वह उसके सौंदर्य को देख उस पर मोहित हो उठा। उसने उस लड़की से कहा, "प्रमदा! तुम बहुत सुंदर हो। तुम्हारे इस पंचभौतिक शरीर में तेज का समावेश कुछ अधिक है, अर्थात् तुम प्रकृति के रजोगुण की महान् स्वामिन् हो। देखो प्रमदा! प्रकृति के तीन गुण हैं। सत्, रज, तम। तेज और तम मिलकर पंच महाभूतों की सृष्टि होती है और उन पंच महाभूतों में तुममें तेज की मात्रा अधिक है। यही कारण है कि तुम चंचल हो, गौर वर्ण हो। तुममें रक्त का संचार अधिक है। तुम्हारा शरीर हलका-फुलका है।"

जब ज्ञान उसके शरीर का वर्णन कर रहा था, वह एक उड़ती हुई तितली को पकड़ने को लपकी। तितली पकड़, उसे अपने हाथ की हथेली पर रख पूछने लगी, "ज्ञान! इसमें प्रकृति का कौन-सा गुण अधिक है?"

ज्ञान तितली को देखकर कहता है, "इसमें भी रजोगुण और तेजस् अहंकार का समावेश अधिक है।"

"तो यह तितली और मैं एकसमान हो गए?"

"हाँ, आधारभूत दोनों में समानता है।"

इस समय प्रमदा तितली को उड़ा देती है और कहती है, "वह गया तुम्हारा तेज-पुंज और यह गई मैं।" ज्ञान तितली को पकड़ने के लिए लपकता है और प्रमदा मंच पर से चली जाती है। ज्ञान तितली पकड़कर उसकी वैसी ही विवेचना करने लग जाता है, जैसी वह प्रमदा को देखकर कर रहा था।

प्रमदा और कर्म का साक्षात्कार होता है। कर्म उसे देख उस पर मोहित हो जाता है और उसे कहता है, "सुंदरी! तुम अनुपम हो।"

"तो?"

"मैं एक विद्वान् ब्राह्मण हूँ और घर से सम्पन्न हूँ। तुमको सुखी रखूँगा।"

"तुम मुझको क्यों सुखी रखोगे?"

"इसलिए कि मैं तुम्हें अपनी पत्नी बनाऊँगा।"

"तुम मुझसे प्रेम करोगे?"

"बहुत।"

"तो मैं तुमसे विवाह करूँगी।"

दोनों पंडित जी के पास जाते हैं। ज्ञान वहाँ बैठा हुआ तितली की विश्लेषणात्मक विवेचना कर रहा है। इन दोनों को देख ज्ञान कहता है, "पिता जी! मैंने कहा था कि इस लड़की में तेज की मात्रा अधिक है। इससे यह रुष्ट हो चली गई थी।"

पंडित जी प्रमदा से पूछते हैं, "देवी! किस अर्थ आई हो?"

"आपके सुपुत्र कर्म ने मुझसे प्रेम करने का और मुझे सदैव सुखी रखने का वचन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया है। मैं इससे विवाह करने की स्वीकृति माँगनें आई हूँ।"

"परन्तु वह तो पहलवान है। खाने और व्यायाम करने के अतिरिक्त कुछ करना जानता ही नहीं।"

"परंतु पंडित जी! प्रेम तो करेगा ही। आपके दूसरे पुत्र की भाँति मेरे शरीर का विश्लेषण कर मुझमें तेज अंश का प्राचुर्य ही सिद्ध करने में नहीं लगा रहेगा। आपका यह पुत्र कर्म करना तो जानता है। उसके साथ रहकर मैं भूखी नहीं रह सकती।"

"तुम्हारी यह धारणा ही तो असत्य है। तनिक इससे पूछो कि इसने अभी तक क्या कमाया है?"

प्रमदा प्रश्नभरी दृष्टि से कर्म की ओर देखती है। कर्म अपने पाँव-तले से मिट्टी खिसकती अनुभव करता है। पश्चात् वह कहता है, "पिता जी! ज्ञान से ही पूछ लें कि उसने क्या कुछ कमाया है?"

पंडित जी निरुत्तर हो जाते हैं। प्रमदा कहती है, "पंडित जी! आप स्वीकृति दीजिए, मैं इन्हें काम पर लगा दूँगी।"

ज्ञान कहता है, "पिता जी! मैं कर्म से बड़ा हूँ और संसार के गुण-दोषों को समझता हूँ। मैं इस सुंदरी के गुण-दोष जानता हूँ। इसलिए इससे मेरा विवाह होना चाहिए।"

कर्म पूछता है, "ज्ञान! कितने बड़े हो मुझसे?"

"पिता जी कहते थे, एक घड़ी-भर।"

"बस? किंतु खड़े होकर तो देखो। मैं तुमसे कितनां ऊँचा हूँ।"

"तुममें बुद्धि नहीं है। तुम्हें यह भी पता नहीं कि किस समय क्या भोजन करना चाहिए।"

"परंतु मैं एक बात कर सकता हूँ, जो तुम नहीं कर सकते।"

"क्या?"

"मैं प्रमदा का अपहरण कर सकता हूँ। मैं ऐसा कर उससे विवाह कर लूँगा। तुमसे यह नहीं हो सकेगा।"

"मैं भी तो अपहरण कर सकता हूँ।"

"तो करके दिखाओ।"

"चलो प्रमदा, मेरे साथ।" ज्ञान प्रमदा से कहता है।

"क्यों चलूँ?" प्रमदा पूछती है।

"मैं तुम्हारा अपहरण करता हूँ।"

"करके तो दिखाओ।"

ज्ञान प्रमदा की बाँह पकड़कर उसको ले जाना चाहता है; परंतु तुरंत ही छोड़कर विस्मय में प्रमदा का मुख देखने लगता है।

"क्यों, क्या हुआ है?" प्रमदा पूछती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तुम अत्यंत ही कोमल हो। तुममें पृथ्वी का अंश बहुत कम है। वायु विशेष है।"

"तो फिर?"

"तुम अस्वस्थ रहा करोगी। तुमको घी और अन्न अधिक मात्रा में खाना चाहिए। घी और अन्न श्रीखंड प्रदेश में अच्छा मिलेगा, परंतु मेरा गृह तो मगध प्रदेश में है।"

"तो फिर तुम मेरा अपहरण मत करो।"

"तुम ठीक कहती हो, परंतु तुम अत्यंत सुंदर जो हो।"

पिता और कर्म हँसते हैं। कर्म प्रमदा की बाँह पकड़ता है और कहता है, "चलो प्रमदा, मेरे साथ।"

"कहाँ?"

"विवाह रचाने।"

"पिता जी से पूछ तो लो।"

"विवाह के पश्चात् पूछ लेंगे। वे तो पिता ही हैं, स्वीकृति दे देंगे।"

दोनों मंच से बाहर हो जाते हैं।

ज्ञान दोनों को जाता हुआ अवाक् मुख देखता रह जाता है।

पंडित पूछते हैं, "ज्ञान बेटा! क्या देख रहे हो?"

"यह मूर्ख कर्म अपना जीवन नष्ट करेगा ही, साथ ही प्रमदा को गड्ढे में गिरा देगा।"

"तो फिर क्या किया जाए?'

"उनको समझाना चाहिए। पिता जी! मूर्खों को पथ दिखाना विद्वानों का कर्तव्य है।"

"परंतु पथ दिखाने के लिए कर्म करना पड़ता है। अतएव विद्वानों को कर्म तो करना ही पड़ेगा।"

"परंतु मैं तो अभी विचार ही रहा था कि प्रमदा को विवाह के उपरांत कहाँ, किस देश में रखना उचित रहेगा कि वह उसे ले भागा है।"

"ठीक है, परंतु तुमने विचार करने में विलंब जो कर दिया था।"

"प्रमदा को इतनी शीघ्रता नहीं करनी चाहिए थी।"

"अब क्या हो सकता है!"

दोनों मंच पर से चले जाते हैं।

अगले दृश्य में प्रमदा और कर्म दोनों पति-पत्नी के रूप में एक गृह में दिखाई देते हैं। कर्म पीठ पर गठरी रखे हुए गृह में आता है। उस गठरी में आभूषण एवं वस्त्र हैं। प्रमदा उन्हें देखती है और कहती है, "आप तो गाय खरीदने गए थे, जिसका दूध पीकर मैं और मेरा होने वाला बच्चा, दोनों स्वस्थ हो जाते।"

"हाँ, गया तो गाय खरीदने था, परंतु मार्ग में जौहरी की दुकान पर दृष्टि पड़ गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने सोचा कि यह कंठी तुम्हारे गौरवर्णीय कंठ पर बहुत ही सुंदर दिखाई देगी। सो यह ले ली। पश्चात् धन इतना कम बचा कि गाय क्रय नहीं कर सकता था। इस कारण शेष के कपड़े बनवा लाया। विचार आया कि इनकी भी तो आवश्यकता पड़ेगी।"

"परंतु अब मुझे भूख लगी है। मेरे पेट में बच्चा भी तो भूखा है।"

"अच्छा, तो अभी बाजार जाता हूँ और कुछ दूध तथा अन्न ले आता हूँ।"

"हाँ, शीघ्र जाओ।"

कर्म जाता है और पंडित जी तथा ज्ञान आ पहुँचते हैं। ज्ञान पूछता है, "भाभी ! तुम कुछ उदास प्रतीत होती हो ?"

"हाँ, तुम्हारा भैया गाय खरीदने गया था और खरीद लाया है ये आभूषण और वस्त्र। मुझे लगी है भूख। बताओ, इन कपड़ों से भूख मिटेगी ? यही विचार कर रही थी।"

"तो कर्म अब कहाँ है ?"

"बाजार से दूध और अन्न खरीदने गया है।"

इस समय कर्म वापस आ जाता है। प्रमदा प्रश्नभरी दृष्टि से उसकी ओर देखती है। कर्म कहता है, "धन तो सारा आभूषण और वस्त्र खरीदने में व्यय हो गया। दूध और अन्न के लिए मेरे पास धन नहीं। हलवाई और दुकानदार बिना मूल्य के कुछ देता नहीं।"

"तो ?"

"तुम्हारे पास कुछ रजत हों तो दे दो।"

"मेरे पास तो कुछ नहीं है।"

"तो फिर खाने के लिए कहाँ से लाऊँ ?"

"तो ये आभूषण और वस्त्र बेचकर ले आओ।"

"इससे भी बहुत हानि होगी। यह कंठी साठ रजत की मिली है। अब यह कठिनाई से तीस-पैंतीस रजत में बिकेगी।"

"तो क्या करूँ? भूख जो लगी है। मुझसे इस अवस्था में भूखा नहीं रहा जाता।"

"तो जाता हूँ।"

कर्म कंठी उठाकर ले जाता है। परंतु पंडित जी उसे पुकारते हैं "ठहरो कर्म !"

"क्या है पिता जी ?"

"प्रमदा ! चलो मेरे साथ। इस मूर्ख कर्मयोगी को ज्ञान की आवश्यकता है और ज्ञानयोगी को कर्म की। क्यों ज्ञान ! अब क्या करना चाहिए ?"

"ठीक है पिता जी ! भगवान् करे आपका पौत्र हो और सब प्रकार से सबल, सुंदर और योग्य हो।"

यह नाटक का अंत था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाटक समाप्त हुआ तो प्रजा बाणभट्ट के दर्शनों के लिए लालायित हो उठी। महाराज हर्षवर्धन और महाप्रभु साथ-साथ ही बैठे थे। अवलोकितेश्वर ने कहा, "क्या सुंदर रचना की है बाण कवि ने ! प्रजा का दर्शनों की माँग करना उचित ही है।"

"परंतु वह है कहाँ ?"

"नाटककार उसे ढूँढ़ रहे प्रतीत होते हैं।"

महाराज ने समीप खड़े प्रतिहार को कहा, "जाकर बाण कवि से कहो कि शीघ्र मंच पर आकर दर्शकों की लालसा पूरी करे।"

प्रतिहार मंच के पीछे बाण को बुलाने चला गया। महारानी ने कहा, "भगवान् वासुदेव के गीता में दिए गए उपदेश की व्याख्या ही इस नाटक में है। कर्महीन मनुष्य श्री को नहीं पा सकता और केवल कर्मयोगी इसको पाकर अपने पास सुरक्षित नहीं रख सकता। ज्ञान और कर्म जिसका दूसरा नाम पुरुषार्थ है, का समन्वय संसार में सफलता लानेवाला होता है।"

अवलोकितेश्वर जी ने कह दिया, "यह महायान की हीनयान पर श्रेष्ठता प्रकट करता है।"

यह सुन महारानी मृणालिनी हँस पड़ीं।

बाणभट्ट को काफी ढूँढ़ा गया, परंतु वह नहीं मिला। दर्शकों को निराश होना पड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षष्ठ परिच्छेद

१

शकारादित्य ने नालंद में एक साधारण विहार की स्थापना की थी। मगध की प्राचीन राजधानी राजगृह के समीप, नालंद गाँव एक पहाड़ी पर था। वहाँ के विहार में नवयुवक भिक्षुओं को शिक्षा देने का प्रबंध किया गया था।

जब महात्मा बुद्ध अपनी विचारधारा का प्रचार विद्वत्-समाज में नहीं कर सके, तब उन्होंने देश की जनसाधारण की नित्य बोली जाने वाली भाषा में उसका प्रचार करना आरंभ कर दिया। वह भाषा पाली थी। इस समय तक पाली एक गँवारू भाषा मानी जाती थी। इसका प्रचलन ग्राम-देहातों में तथा अनपढ़ प्रजा के दिन-प्रतिदिन के कार्य के लिए होता था।

इसके साथ ही वेद, पुराण, उपनिषद् ग्रंथ, जो केवल संस्कृत भाषा में ही मिलते थे, वे पढ़ना भ्रममूलक और अशुद्ध विचारधारा वाला मानकर त्याज्य कह दिया गया। भिक्षुओं के लिए संसार एक त्याग के योग्य स्थान होने से पढ़ना-लिखना अनावश्यक समझा गया। परिणामस्वरूप चैत्य-विहार आलस्य और प्रमाद के अड्डे बन गए।

बौद्ध-प्रचार के विस्तृत होने पर ब्राह्मणों ने इस विचारधारा का खंडन आरंभ कर दिया। बौद्धों को उनकी युक्तियों का उत्तर देने के लिए साहित्य, पुराणादि ग्रंथों का पठन-पाठन करना पड़ा। इस समय बौद्ध-चैत्यों में युवा भिक्षु एवं भिक्षुणियों को पढ़ाने का प्रबंध होने लगा।

यह पठन-पाठन का कार्य महाराज अशोक के काल में विस्तार पा गया। इस काल में नालंद-चैत्य में पढ़ने-पढ़ाने का प्रबंध हुआ। फिर भी जो कुछ इस काल में लिखा गया, वह पाली भाषा में था और यह सत्य ही प्रतीत होता है कि इस काल के, पाली भाषा में बौद्ध-साहित्य को लिखने वाले प्रायः संस्कृत-साहित्य से अनभिज्ञ ही थे। यही कारण है कि जातकों में अति विकृत रूप में पौराणिक गाथाएँ लिखी गईं और सीता राम की बहन इत्यादि भ्रांतिकारक कथन घुस गए।

अशोक-काल के पश्चात् देश में अव्यवस्था फैल गई। विदेशियों के आक्रमण आरंभ हो गए। ज्ञान-विज्ञान और साहित्य की प्रगति रुक गई।

ब्राह्मण, जो लिखने और पढ़ने में अपना उत्साह संस्कृत-साहित्य से पाते थे, वे अशोक के काल में हीन तथा दीन कर दिए गए। जो कुछ साहित्य पाली भाषा में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बौद्ध-भिक्षुओं ने लिखा, वह न केवल अशुद्ध और निम्न कोटि का था, प्रत्युत वह देश और जाति को दासता की शृंखलाओं में सुख और चैन अनुभव करने की प्रेरणा देने वाला सिद्ध हुआ।

गुप्तकाल में देश का पुनरुद्धार हुआ। इस परिवार के राजा ब्राह्मणों अर्थात् विद्वानों को प्रोत्साहन देने वाले बन गए। परिणाम यह हुआ कि भारत के इतिहास का यह काल कला, साहित्य और ज्ञान के लिए स्वर्ण-युग बन गया। प्रजा की दृष्टि जातकों से हटकर पुनः वेद, ब्राह्मण आदि ग्रंथों की ओर आकर्षित होने लगी। यही काल था, जब कालिदास इत्यादि कवियों का देश में प्रादुर्भाव हुआ। शंकर और कुमारिल इसी काल में वैदिक मीमांसा की धूम मचाने वाले उत्पन्न हुए और पुनः भारत की सभ्यता एक ओर जावा, सुमात्रा और कदाचित् जापान, चीन और पाताल (अमेरिका) इत्यादि देशों और दूसरी ओर ईरान, अरब, मिस्र, रोम में फैलने लगी।

इस काल में नालंद केवल बौद्ध-साहित्य के पठन-पाठन का स्थान न रहकर भारतीय संस्कृति के विस्तार का केंद्र बन गया। नालंद में संस्कृत के पठन-पाठन का भी प्रबंध हो गया और प्राचीन साहित्य का अध्ययन भी आरंभ हो गया।

इस ज्ञान के आश्रय बौद्ध-संप्रदाय ने भी नवीन रूप धारण किया। यह रूप महायान के नाम से प्रसिद्ध हुआ। महायान हीनयान से दो बातों में विलक्षण था। एक तो महायान में यह माना गया कि निर्वाण-प्राप्ति संसार के त्याग न करने पर भी हो सकती है। सांसारिक कार्यों में लीन रहते हुए भी और संसार का भोग करते हुए भी भगवान् तथागत द्वारा प्रतिपादित जीवन-चर्या चल सकती है। दूसरी विलक्षणता यह थी कि महात्मा बुद्ध के, इस अंतिम जन्म से पूर्व, कई जन्म मान लिए गए और इन जन्मों की गाथाएँ प्रचलित कर दी गईं। इसका परिणाम यह हुआ कि आर्यों ने अन्य अवतारों की परंपरा में अंतिम अवतार संपूर्ण कलाओं से पूर्ण भगवान् बुद्ध को मान लिया।

बौद्ध-महायान विचारधारा का विस्तार नालंद में ही हुआ। गुप्तकाल के पश्चात् नालंद केवल बौद्ध-चैत्य ही नहीं रहा था, प्रत्युत एक विशाल विश्वविद्यालय बन गया था। इससे नालंद की ख्याति इतनी बढ़ी कि विदेशों से भी विद्यार्थी यहाँ आने आरंभ हो गए। ऐसा अनुमान था कि उस काल में प्रति सौ विद्यार्थियों के पीछे बीस से अधिक विद्यार्थी विदेशी होते थे।

जिस काल का हम वर्णन कर रहे हैं उस काल में नालंद में सैकड़ों की संख्या में चीन देश से आए विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। भारत के प्रायः प्रत्येक राज्य से इस विश्वविद्यालय के लिए धन आता था और लगभग तीस सहस्र विद्यार्थी वहाँ निःशुल्क भोजन, वस्त्र और शिक्षा पाते थे। विदेशी विद्यार्थियों को भी यहाँ वे सब सुविधाएँ प्राप्त थीं, जो भारत के विद्यार्थियों को थीं।

जब हर्षवर्धन कन्नौज के राजसिंहासन पर आसीन हो, भारत के पश्चिमोत्तरी देशों की विजय-समर पर गया हुआ था, तब वह नालंद में एक विवाद का विषय बन गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। यह माना जाता था कि महाराज हर्षवर्धन बौद्ध विचारधारा का अनुयायी है। यह सबको ज्ञात था कि स्थानेश्वर और कन्नौज में बौद्ध-चैत्य देश के अन्य राज्यों से अधिक धनधान्य से पूर्ण हैं। महाप्रभु बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर महाराज का यह प्रताप माना जा रहा था कि हर्षवर्धन दो राज्यों का अधिष्ठाता होकर तथा शक्तिशाली बनकर भी किसी पड़ोसी राज्य पर आक्रमण नहीं कर रहा है।

जब यह समाचार मिला कि हर्षवर्धन की सेना श्रीकंठ राज्य की सीमा पार कर प्रमथम राज्य की सीमाओं पर पहुँच, उस राज्य से संधि कर गांधार की ओर चल पड़ी है, तो नालंद के बौद्ध-पंडितों में यह एक विवाद का विषय बन गया। नालंद में छोटी-छोटी अनेक गोष्ठियाँ बन गईं, जो महाराज हर्षवर्धन की इस यात्रा पर टीका-टिप्पणी, समालोचना आदि करने लगीं।

इन सब गोष्ठियों में चीन का एक विद्यार्थी ह्वेन-सांग महाराज हर्षवर्धन के पक्ष की पुष्टि कर रहा था। इस पुष्टि के कारण ह्वेन-सांग की ख्याति बढ़ रही थी। इस चर्चा को सुन एक दिन नालंद विश्वविद्यालय के मुख्याचार्य शीलभद्र ने इस विषय पर वाद-विवाद रख दिया। ह्वेन-सांग का पक्ष था कि एक राजा के लिए, दुष्टों के दमन तथा धर्म तथा संघ की जय कराने के लिए युद्ध किसी प्रकार भी भगवान् तथागत द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों के विपरीत नहीं। जब वह युक्ति करता था, तो इसके विपक्ष के लोग कहते थे कि यही बात तो भगवान् कृष्ण ने अपने भगवद्गीता में कही है। तब ह्वेन-सांग कह देता कि भगवान् कृष्ण भी भगवान् बुद्ध की भाँति निर्वाण-पद पर पहुँचा हुआ व्यक्ति था। अतएव दोनों के विचार और प्रचार में समानता विस्मयजनक नहीं होनी चाहिए।

विवाद खूब तीव्र चल रहा था। महात्मा बुद्ध की अपनी लिखी कोई प्रमाणित पुस्तक नहीं थी। भगवान् तथागत के शिष्यों द्वारा संकलित भगवान् के प्रवचन ही थे, जो पक्ष-विपक्ष के विद्वान् उपस्थित करते थे। भगवान् के शिष्य अनेक थे और भगवान् के प्रवचन भी अनेक थे। वे भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में दिए गए थे। अतएव उन शिष्यों द्वारा प्रचारित प्रवचन भिन्न-भिन्न अर्थवाचक हो गए थे। यही मुख्य कारण था महायान और हीनयानियों में विवाद छिड़ने का।

ह्वेन-सांग द्वारा महाराज हर्षवर्धन के समर को धर्म-युद्ध का नाम दिए जाने से एक बात अवश्य हुई कि ह्वेन-सांग की ख्याति अत्यंत बढ़ गई।

२

नागार्जुन द्वारा प्रतिपादित महायान ही ह्वेन-सांग का प्रिय विषय बन गया। यों तो यह स्पष्ट ही था कि भगवान् बुद्ध के मत में भगवान् कृष्ण का गीता में दिया हुआ मत मिलकर ही महायान पंथ बना है। फिर भी रूढ़िवादी बौद्ध मानते थे कि बौद्ध धर्म के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सार्वभौमिक विस्तार के लिए महायान ही स्वीकार करना होगा। उनको यदि आपत्ति थी तो यह कि महायान को भगवान् बुद्ध के नाम के साथ यदि न जोड़ा गया, तो भगवान् बुद्ध की महिमा कम पड़ जाएगी।

ह्वेन-सांग का कहना था कि महायान को भी भगवान् तथागत के नाम से ही प्रचारित करना चाहिए। इस प्रकार महायान शीघ्रता से संसार में फैलेगा। अतएव, उसका पक्ष यह था कि हर्षवर्धन ने किंचित् मात्र भी भगवान् बुद्ध से प्रतिपादित धर्म का विरोध नहीं किया; भगवान् बुद्ध बौद्ध धर्म के महायान पंथ का ही प्रचार करते थे।

जिन दिनों यह वाद-विवाद नालंद विश्वविद्यालय में चल रहा था, उन दिनों हर्ष अपनी समर-यात्रा से लौट आया था और कन्नौज में विजयोत्सव संपन्न हो रहा था। इस उत्सव पर की गई घोषणा कि महाराज अपनी समर-यात्रा पर एकत्रित पूर्ण धन तथा अपनी पूर्ण संपत्ति मकर संक्रांति को प्रयागराज में त्रिवेणी पर दान में दे देंगे, पूर्ण भारत में गूँज उठी। परिणाम यह हुआ कि देश-भर के भिक्षु-भिक्षुणियाँ, ब्राह्मण, निर्धन, अपाहिज आदि प्रयागराज की ओर चल पड़े। प्रत्येक के मन में महाराज से कुछ प्राप्त करने की लालसा जाग्रत हो उठी थी।

महाराज की यह घोषणा नालंद विश्वविद्यालय में भी पहुँची और इस पर भी विवाद चल पड़ा। प्रश्न यह था कि महाराज के मन में क्या बात थी, जिससे उन्होंने यह करने का निश्चय किया है। हीनयान वालों का कहना था कि महाराज हर्षवर्धन अपनी अंतरात्मा में यह अनुभव करते हैं कि उनकी समर-यात्रा एक अधर्म का कार्य था। इस अधर्म-कार्य का प्रायश्चित्त करने के लिए, वे उसके द्वारा प्राप्त पूर्ण धन दान में देने की इच्छा करने लगे हैं।

महायान के पक्ष के लोग इसी बात को दूसरे शब्दों में कहते थे। वे कहते थे कि संसार में रहने वाले जीव धनोपार्जन करते समय धर्म-अधर्म में भेदभाव नहीं कर सकते। अतएव धन का सदुपयोग ही धनोपार्जन में संदेहकारक उपायों के फल का निराकरण कर सकता है और धन का सबसे बढ़िया उपयोग दान करना है।

आर्य विचारधारा ऐसी नहीं थी। जब महाराज की घोषणा पर चर्चा चली तो पद्मराज इस योजना पर गंभीरतापूर्वक विचार करने लगा। प्राचीनकाल में अश्वमेध यज्ञ होते थे और ऐसे अवसरों पर राजा-महाराजा अपना सर्वस्व दान में दे देते थे, परंतु वह दान इसलिए नहीं करते थे कि उनको अपने अर्जित धन-संपदा के श्रेष्ठ होने में संदेह होता था। वे तो यह समझकर दान देते थे कि उनका धन धर्म और न्याययुक्त अर्जित है। धर्म से अर्जित धन को धर्म-कार्यों में व्यय करना है। इसके अतिरिक्त दान लेने के अधिकारी पर भी विचार-विनिमय होता था। ब्राह्मण जो विद्यादान का कार्य करता हो, अथवा कोई अंगहीन होने के कारण निर्धन हो, ऐसे लोग दान पाने के अधिकारी माने जाते थे।

इसके अतिरिक्त राज्य की अवस्था इतनी सुदृढ़ नहीं थी, जितनी कि चक्रवर्ती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्य की होनी चाहिए थी। ऐसी अवस्था में सर्वस्व दान तो उचित प्रतीत नहीं होता था।

पद्मराज यह भी विचार करता था कि उसको महाराज के इस कार्य पर किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होनी चाहिए। इस कारण वह चुप ही था।

विजयोत्सव की अंतिम रात्रि की घटना ने महाराज को चकित कर दिया। अगले दिन बहुत प्रातःकाल दीप्ति, जो राजकुमारी मलिंद की रक्षा में नियुक्त चाय-चेटियों की मुखिया थी, महाराज से मिलने आई। उसने अंतःपुर में, जहाँ महाराज उस समय थे, सूचना भेजी तो महाराज ने उसे भीतर बुला लिया। महाराज तथा महारानी दोनों वहीं बैठे थे।

दीप्ति ने झुककर प्रणाम किया और कहा, "महाराज ! भारी अपराध हो गया।"

"क्यों, क्या हुआ है ?"

"राजकुमारी मलिंद लापता हैं।"

"कब से ?" महाराज ने उद्विग्न होकर पूछा।

"महाराज ! नित्य की भाँति मैं प्रातःकाल ही राजकुमारी को नमस्कार करने गई थी। उनकी शैया खाली देख मैं उनकी दासियों से पूछने लगी तो वे रोने लगीं। उनका कहना है कि राजकुमारी रात को एक प्रहर गए प्रासाद की छत पर, नगर में हो रही दीपावली की शोभा देखने के लिए चढ़ी थीं। उनके साथ दो दासियाँ थीं। राजकुमारी ने उनमें से एक के कपड़े पहन लिए और दूसरी को साथ लेकर नाटक देखने चली गईं।

"चेटियों ने दोनों को दासी समझ रोका नहीं। नाटक देखते-देखते राजकुमारी भीड़ में विलीन हो गई और दासी जब राजकुमारी को नहीं पा सकी तो वापस लौट आई। तब से राजकुमारी नहीं लौटीं।"

यह कथा सुन महाराज कितने ही काल तक स्तब्ध बैठे रहे। पश्चात् यह विचारकर कि राजकुमारी अवश्य अभी तक नगर में ही कहीं छिपी बैठी होगी, उन्होंने राजप्रासाद के रक्षक तथा नगरपाल को बुलवाया। उनको यह आज्ञा दे दी कि देवपुत्र तुवर की लड़की मलिंद नगर अथवा राजप्रासाद में कहीं छिपी है, उसको ढूँढ़ना चाहिए।

दोनों को आदेश देकर महाराज ने महामात्य को बुलवाया और उनके गुप्तचर विभाग को यह समाचार दे दिया। महामात्य ने भी ख़ोज का वचन दिया।

महामात्य मन-ही-मन मलिंद के भाग जाने से प्रसन्न था, परंतु वह जिस चतुराई से भागी थी, उसकी जाँच करना चाहता था। वह इस घटना को इस प्रकार समझा था कि राजप्रासाद में ऐसा कोई व्यक्ति है, जिसने मलिंद को भाग जानें में सहायता दी है। महामात्य उस व्यक्ति को पकड़ना चाहता था, जिससे राजप्रासाद के नियम भंग करने वाले को उचित दंड दिया जा सके।

इस विचार से उसने सबसे पहले पत्रलता से यथासंभव पूर्ण जानकारी प्राप्त करने का विचार किया। पत्रलता आचार्य जी के घर पर ही रहती थी। इस कारण महामात्य राजप्रासाद से सीधा आचार्य जी के गृह पर पहुँच गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह अभी आचार्य जी के घर के बाहर पहुँचा ही था कि पत्रलता भी एक रथ में वहाँ पहुँच गई। महामात्य को, पत्रलता को इतने सवेरे कहीं से आता देख, उस पर संदेह हो गया। इस कारण उसने पत्रलता से इतने प्रातः कहीं बाहर जाने के विषय में पूछना आरंभ कर दिया।

उसने पूछा, "पत्रलता ! कहाँ से आ रही हो ?"

"अघोरी बाबा ने दीर्घिका वाले मंदिर में बुलाया था। मैं वहाँ गई थी। वहाँ से लौटने लगी तो यह रथ गाँव से नगर को आता मिल गया। इसको भाड़े पर कर यहाँ पहुँची हूँ।"

इतना कह पत्रलता ने घूमकर सारथि को दो रजत भाड़ा देकर विदा कर दिया। महामात्य और पत्रलता आचार्य जी के गृह में प्रवेश कर गए। महामात्य ने पूछा, "तुम काल-भैरव के मंदिर में कब गई थीं ?"

"एक प्रहर रात गए मैं यहाँ से चली गई थी और मध्यरात्रि से पूर्व ही वहाँ जा पहुँची।"

"किस प्रकार गई थीं ? क्या पैदल ही गई थीं ?"

"नहीं, महारानी जी ने वहाँ पहुँचाने के लिए रथ दे दिया था।"

"क्यों, उनको क्या आवश्यकता पड़ गई थी कि तुम्हें वहाँ भेजतीं ?"

"पिता जी ! महारानी जी के रहस्य को मैं कैसे बता सकती हूँ ?"

"पत्रलता !" महामात्य ने कुछ कठोर स्वर में कहा, "यहाँ एक भयानक घटना घट गई है। मुझको भय है कि उस घटना में तुम्हारा हाथ है। यदि तुम स्पष्ट नहीं बताओगी तो मेरे संदेह की पुष्टि करोगी।"

पत्रलता ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा, "क्या घटना हो गई है ?"

"पहले तुम बताओ कि महारानी ने तुम्हें वहाँ क्यों भेजा था ?"

"मैं अपनी इच्छा से जा रही थी। महारानी जी मेरे द्वारा राजकुमारी मलिंद को कुछ संदेश भेजना चाहती थीं। मैंने कह दिया कि मुझे नगर के बाहर पाँच कोस पर जाना है। अतएव मेरे पास समय नहीं कि मैं संदेश लेकर जा सकूँ। उन्होंने मुझसे पूछा कि मुझे वहाँ क्यां काम है। मैंने कहा कि आज अमावस की रात्रि है और वहाँ अघोरी बाबा पूजा के लिए आएँगे; मुझे उनसे अपने भविष्य के जीवन के विषय में पूछना है। यदि आज नहीं गई तो फिर उनसे एक मास पश्चात् ही भेंट हो सकती है, इस कारण मेरा वहाँ जाना आवश्यक है। तब उन्होंने मुझे कह दिया कि मैं यदि उनका संदेश मलिंद के पास ले गई, तो वे मुझे अपना रथ दे देंगी।

"मैं महारानी जी के रथ पर यहाँ से गई थी और वहाँ पहुँच मैंने रथ वापस भेज दिया था। मेरा अनुमान था कि मैं पाँच कोस आसानी से पैदल वापस आ सकूँगी। जब मैं लौट रही थी, तो मुझे मार्ग में यह रथ आता हुआ मिल गया। मैंने इसे भाड़े पर कर लिया और यहाँ चली आई हूँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्रलता की कहानी इस प्रकार बनी थी कि महामात्य को उस पर कुछ विशेष संदेह नहीं रहा। फिर भी उसने पूछा, "क्या भविष्यवाणी की है अघोरी बाबा ने तुम्हारे विषय में?"

"भट्ट जी मुझसे विवाह का आग्रह कर रहे हैं। एक बार अघोरी बाबा ने कहा था कि उनसे मेरा विवाह नहीं हो सकता। अतएव इस विषय में कालभैरव का आदेश लेने गई थी। वह आदेश यही है कि उनसे मेरा विवाह नहीं होगा। अतः अपने भाग्य पर संतोष करके चली आई हूँ।"

"तो तुम्हारा किसी अन्य स्थान पर विवाह होगा?"

"नहीं, मैं कुँआरी ही रहूँगी।"

"तो अब भट्ट को क्या क़होगी?"

"आज मध्याह्न के समय उनके पास जाऊँगी और उन्हें बता दूँगी।"

"बहुत विश्वास है अघोरी बाबा के ज्योतिष पर?"

"यह ज्योतिष नहीं पिता जी! यह तो सिद्धि कही जाती है, जिससे कोई व्यक्ति दूर भविष्य को देख सकता है।"

इस समय बाण के घर का सेवक आया और कहने लगा, "देवी! स्वामी रात्रि नाटक खेलने गए थे और अभी तक वापस नहीं आए।"

महामात्य इस सूचना पर चौंक उठा। उसने पूछा, "कल किस समय गए थे?"

"सायंकाल। वे रथ पर राजप्रासाद को गए थे।"

महामात्य को संदेह हो गया कि बाणभट्ट राजकुमारी को ले भागा है। इस कारण मलिंद के भाग जाने का समाचार देकर उसने पत्रलता से पूछा, "पत्रलता! इन दोनों में क्या संबंध हो सकता है?"

"जहाँ तक मेरा ज्ञान है, कोई संबंध नहीं हो सकता। वे दोनों कभी परस्पर नहीं मिले। एक-दूसरे को जानते तक नहीं। कवि को तो राजकुमारी का यहाँ बंदी होने का भी ज्ञान नहीं था। फिर भी जाँच तो होनी ही चाहिए। मुझे कवि कल तीसरे प्रहर मिले थे और विवाह के लिए प्रस्ताव कर रहे थे। मैंने कहा था कि मैं अघोरी बाबा के पास अपना भविष्य पूछने जा रही हूँ। यदि उनकी सम्मति हुई, तो मैं विवाह की स्वीकृति दे दूँगी। उस समय तक कवि से मलिंद के विषय में कुछ बात नहीं हुई थी।"

महामात्य आचार्य जी के घर से सीधा राजप्रासाद में जा पहुँचा। वहाँ महाराज से मिलकर उसने निवेदन कर दिया, "श्रीमान्! कल रात्रि महारानी जी का रथ नगर से बाहर दीर्घिका की ओर गया था। उनसे पूछिए कि किस कारण से गया था। यह सूचना यदि मुझे मेरे गृह पर मिल जाए, तो मैं राजकुमारी के विषय में कुछ पता कर सकूँगा।"

महामात्य वहाँ से लौटते समय महारानी के रथ के सारथि के पास जा पहुँचा। सारथि का गृह राजप्रासाद के पिछवाड़े में अन्य सारथियों के साथ था। वहाँ जाकर उस सारथि का पता किया गया, जो रात्रि वहाँ से अनुपस्थित था। ढूँढ़कर महामात्य ने पूछा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि वह रात्रि कहाँ और किसके साथ गया था। सारथि ने बताया, "देवी पत्रलता को लेकर हरिद्वार के मार्ग पर, पाँच कोस के अंतर पर दीर्घिका तक गया था और देवी को वहाँ कालभैरव के मंदिर पर छोड़कर चला आया था।" सारथि ने महामात्य के पूछने पर यह भी बताया कि देवी पत्रलता किस प्रकार के वस्त्र पहने हुए थीं और मार्ग-भर वे जप करती हुई गई थीं। इसी कारण वह उनसे कोई बात नहीं कर सका।

इस प्रकार खोज चलती रही। दो दिन की खोज के पश्चात् पता चला कि एक रथ राज्य-सीमा पार कर कौशांबी की ओर अमावस की रात्रि को भागता हुआ गया था। उसमें दो व्यक्ति बैठे थे। प्रातःकाल के घुसमुसे प्रकाश में पुरुष का हुलिया बाण कवि जैसा प्रतीत हुआ। स्त्री मुख, सिर लपेटे बैठी थी। रथ पर बैठे पुरुष से पूछने पर पता चला था कि वह अपनी भगिनी को साथ ले जा रहा है।

३

मकर संक्रांति के समय प्रयाग संगम पर बाँस के डंडों से घिरा हुआ एक वर्गाकार अहाता तैयार किया गया, जो तीन सौ गज लंबा-चौड़ा था। इस अहाते के भीतर घास-फूस के बहुत-से घर बनवाए गए थे और इनमें दान दिया जाने वाला संपूर्ण कोष भर दिया गया था। इस कोष में सोना-चाँदी, अनमोल मोती, लाल, इंद्रनील, महानील इत्यादि रत्न थे। इनके अतिरिक्त रेशमी, सूती वस्त्रों के भंडार भी थे।

दान लेने वालों में श्रमण, ब्राह्मण, निर्ग्रंथ, निर्धन, अनाथ, असहाय व्यक्ति पूर्ण भरत-खंड से वहाँ पर पहुँचे हुए थे। नालंद विश्वविद्यालय से वहाँ के मुख्याधिष्ठाता शीलभद्र, एक सौ प्रमुख विद्यार्थियों-सहित, जिनमें ह्वेन-सांग भी था, इस उत्सव में सम्मिलित हुए थे।

उत्सव में भिन्न-भिन्न देवताओं की मूर्तियाँ स्थापित की गईं। प्रथम दिवस भगवान् बुद्ध की, दूसरे दिन भगवान् सूर्य की, तीसरे दिन महादेव की पूजा की गई। इन तीन दिनों भारी मात्रा में दान दिया गया। पहले भगवान् बुद्ध की मूर्ति स्थापित होने पर सबसे अधिक दान दिया गया।

चौथे दिन दस सहस्र बौद्ध पंडितों और भिक्षुकों को प्रति व्यक्ति एक सौ स्वर्ण, एक मोती तथा वस्त्र एवं अन्य कई प्रकार के खाद्यपेय आदि पदार्थ दिए गए।

इसके पश्चात् निरंतर बीस दिन तक ब्राह्मणों को दान दिया गया। फिर दस दिन तक अन्य मतावलंबियों को दान दिया गया।

इस प्रकार पाँच वर्ष में जितना धन-माल कोष में एकत्रित हुआ था, वह सब सम्राट् हर्ष ने दान में वितरण कर दिया। अंत में हर्षवर्धन ने अपने पहनने के लिए, अपनी बहन से भिक्षा में वस्त्र माँगकर पहन लिए और अपने वस्त्र भी दान में दे दिए।

जहाँ इस महान् त्याग की प्रशंसात्मक चर्चा पूर्ण देश-भर में हुई, वहाँ यह भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विख्यात हो गया कि दान देते समय यद्यपि सभी मतावलंबियों को ध्यान में रखा गया, फिर भी प्रथम स्थान बौद्ध मतावलंबियों को मिला और पूजा में प्रथम स्थान महात्मा बुद्ध को दिया गया।

इस महादान-उत्सव के समय महाराज का मंत्रिमंडल भी महाराज के साथ था। समय-समय पर मंत्रिमंडल की बैठक होती रहती थी। फिर भी महाराज इस उत्सव में पूर्ण कार्य बौद्ध गुरुओं के आदेश पर कर रहे थे। मंत्रिमंडल तो प्रायः बौद्ध संप्रदाय के बनाए कार्यक्रम पर छाप लगाने का कार्य करता था।

महामात्य का परिवार, जिसमें पत्रलता भी थी, प्रयाग-संगम पर मकर संक्रांति के स्नानार्थ पहुँचा हुआ था। दिन-भर जो कुछ महाराज करते थे, उसकी चर्चा पूर्ण उत्सव में होती थी। महामात्य का परिवार इस चर्चा से अछूता नहीं रह सकता था। महामात्य स्वयं इस चर्चा से पृथक् रहते थे।

उत्सव के दसवें दिन महामात्य मंत्रिमंडल से अति उद्विग्न होकर आए थे। वे आकर अपने शिविर के पृथक् आगार में लेट गए, तो पत्रलता इस चिंता, क्रोध तथा उद्विग्नता का कारण जानने के लिए उनके पास जा पहुँची। पत्रलता के वहाँ पहुँचने पर महामात्य ने प्रश्न-भरी दृष्टि में उसके मुख पर देखा तो पत्रलता ने कहा, "मैं समझती हूँ कि मुझे अपने पान लगाने का धंधा पुनः आरंभ करना पड़ेगा।"

"क्यों?" महामात्य ने त्योरी चढ़ाकर पूछा।

"आपको पान खाने की आवश्यकता रहने लग गई है। आप उद्विग्न प्रतीत हो रहे हैं न?"

महामात्य मुस्कराया और बोला, "मेरी पुत्री पत्रलता मेरी बहुत चिंता करती है।"

"क्या करूँ, आपने अपनी दूसरी पुत्री का विवाह कर उसे बहुत दूर कर दिया है न। वह होती तो मेरी आधी चिंता कम हो जाती।"

"यह राज-कार्य ऐसा ही है पत्रलता! वायु हमारे विपरीत दिशा की ओर बह रही है। इस कारण मार्ग पर चलने में अधिक बल लगाना पड़ रहा है और कभी-कभी आगे चलने के स्थान पर वायु हमें पीछे की ओर धकेल देती है।"

"तो आज वायु का वेग अति तीव्र हो गया है?"

"हाँ। हमारे विपुल प्रयत्न से दस वर्ष में निर्माण की हुई सेना का आज अंतिम संस्कार होने वाला था। बौद्ध पंडितों ने महाराज को यह सम्मति दी थी कि महाराज अशोक की भाँति हमारे महाराज भी सेना का विघटन कर दें। सेना की पूर्ण सामग्री अश्व, रथ, अस्त्र-शस्त्र आदि भी दान में दे दें।

"नियमानुकूल महाराज ने यह प्रस्ताव मंत्रिमंडल में रखा। मैंने इस प्रस्ताव का विरोध किया। मेरे विरोध का आधार यह था कि सेना राज्य का मुख्य स्तंभ है, इसको निःशेष करने से राज्य ही समाप्त हो जाएगा। इसको पुनः संगठित करने की असंभावना पर भी विचार प्रकट किए। फिर भी महाराज अपने विचारों पर डटे रहे। अंत में मुझे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहना पड़ा कि यह राज्य महाराज की सम्पत्ति नहीं है। महाराज तो केवल मात्र इसके संरक्षक हैं। यह प्रजा की धरोहर, बिना प्रजा की सम्मति के, किसी को नहीं दी जा सकती।

"महाराज के माथे पर त्योरी चढ़ गई। वास्तव में जो कुछ भी महाराज ने इन दिनों दान-दक्षिणा में दिया है, वह भी महाराज की निजी वस्तु नहीं थी। यह राज्य की सम्पत्ति थी। महाराज यदि चाहते तो अपने निजी कोष में से इच्छानुसार दान दे सकते थे, परंतु राजकोष से नहीं दे सकते थे। फिर भी मैं इतने दिन तक चुप रहा। मैं समझता था कि यदि राज्य और सेना रही, तो इतना कुछ पुनः एकत्रित हो सकता है। आज जब सेना के विघटन का प्रश्न उपस्थित हुआ, तो विवश मुझे यह कटु सत्य महाराज को कहना पड़ा कि राज्य उनका नहीं, प्रजा का है। परिस्थिति उस समय इतनी भयानक हो उठी थी कि मुझे कदाचित् प्राणदंड ही दे दिया जाता। महारानी मृणालिनी ने कह दिया कि मेरा दृष्टिकोण भी विचारणीय है, राज्य किसी एक व्यक्ति की धरोहर नहीं; यदि महाराज यह समझते हैं कि मेरा विचार गलत है, तो अन्य विद्वानों को बुलाकर सम्मति ले सकते हैं।

"महारानी का दूसरे विद्वानों से मतलब बौद्ध विद्वानों से था। महाराज उनसे तो पहले ही राय कर आए थे। अतएव वे मान गए और उसी समय वह चीनी ह्वेन-सांग और उसके प्रशंसकों की एक टोली मंत्रिमंडल की बैठक में आ गई।

"मैं इस परिस्थिति को अशुद्ध मानता था। किसी मत-विशेष के गुरुओं को मंत्रिमंडल में राय देने की अनुमति कभी नहीं होनी चाहिए थी। महाराज अशोक मौर्य ने भी यही भूल की थी। उसका परिणाम तो बहुत ही भयंकर हुआ था। पश्चात् महाराज गृहवर्मन ने भी यही किया और उसके परिणाम से तुम अवगत ही हो। अब हमारे महाराज हर्षवर्धन पुण्य-मूर्ति ने इस दिशा में पग उठाया है।

"धर्मगुरुओं के प्रमुख वक्ता ह्वेन-सांग थे। वह चीनी यात्री संस्कृत का विद्वान् है और वाग्शक्ति का स्वामी है। उसकी प्रेरणात्मक शक्ति को सब लोग जानते हैं। परंतु उसकी धारणा देश की वर्तमान परिस्थिति और यहाँ के प्रचलन से सर्वथा भिन्न है। फिर भी आज की समस्या में वह मेरे दृष्टिकोण को समझ सका।

"उसका कहना था कि देश की पूर्ण प्रजा महाराज के इस त्याग को प्रशंसा की दृष्टि से देखती है और महाराज के बौद्ध सिद्धांतों का समर्थन करती है। जब मैंने उसके इस कथन को चुनौती दी तो अन्य उपस्थित लोग मेरा मुख देखने लगे। पश्चात् उस विदेशी महाशय ने कहा कि जैसे पकती दाल में से एक दाना देखकर दाल पकने का अनुमान लगाया जाता है, उसी प्रकार किन्हीं भी बीस यात्रियों को बुलवाकर इसका निर्णय कर लिया जाए।

"मैंने कहा भी कि यहाँ तो केवल दान पाने वाले ही एकत्रित हुए हैं। प्रजा का वह अंश, जो कर देकर इस दान से हुए घाटे को पूरा करने वाला है, वह तो यहाँ आया नहीं, अतएव इन भिक्षुओं का मत देश का मत नहीं हो सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"फिर भी महाराज ने प्रतिहारों को आज्ञा दी कि त्रिवेणी घाट पर स्नान करते हुए किन्हीं पचास व्यक्तियों को पकड़ लिया जाए।

"पचास व्यक्ति पकड़कर वहाँ उपस्थित किए गए। महाराज ने उनको कहा, 'मेरे कुछ सम्मतिदाताओं ने सम्मति दी है कि मैं सेना का विघटन कर सैनिक सामग्री भी आप लोगों में वितरित कर दूँ। आप लोग स्वतंत्रता तथा निर्भीकता से बताइए कि आप इस प्रस्ताव को कैसे पसंद करेंगे?'

"भाग्य से एक तिलक और यज्ञोपवीतधारी ब्राह्मण भी उनमें था। उसने आगे बढ़कर कहा, 'महाराज! हमने आपसे बहुत धन-संपदा पाई है। आशा है कि दो-तीन वर्ष तक तो हमें हाथ पसारने की आवश्यकता नहीं रहेगी। परंतु महाराज! यदि आपने सेना का विघटन कर दिया तो आपका राज्य तो रहेगा नहीं। हमको विश्वास है कि एक ही वर्ष में हूण और गांधार हू-हू करते हुए भारत-भूमि पर छा जाएँगे और पश्चात् यह धन-संपदा और अश्व-रथ आदि जो हमें आप देंगे, वे हमसे छीन लेंगे। इससे हमें क्या लाभ होगा?'

'हम तो महाराज की जय-जयकार करते हैं कि महाराज का राज्य बना रहे और उनमें यह दान-दक्षिणा देने की सामर्थ्य बनी रहे; परंतु सेना-विघटन के पश्चात् हम कितनी भी प्रार्थना अथवा जय-जयकार करेंगे, यह कुछ नहीं रहेगा।

'यद्यपि हमारे बौद्ध-बंधुओं को इस दान-दक्षिणा का विशेष भाग मिला है, फिर भी मेरा उनसे यही निवेदन है कि स्वर्ण का अंडा देने वाली मुर्गी ही समाप्त हो गई तो पश्चात् स्वर्ण-अंडा कैसे मिलेगा?'

"ह्वेन-सांग इस पंडित की युक्ति से चकित रह गया। फिर भी उसने उस ब्राह्मण से प्रश्न पूछने आरंभ कर दिए। उसने पूछा, 'क्या सेना राज्य है और प्रजा राज्य नहीं?'

"ब्राह्मण का उत्तर था, 'महापंडित! क्या टाँगें, पेट, नाक, कान इत्यादि अंग शरीर नहीं? ये सब अंग, आकार और तोल में भुजाओं से अधिक होते हुए भी शरीर की रक्षा वैसे नहीं कर सकते, जैसे ये दुबली-पतली बाँहें कर सकती हैं। सेना, राज्य न होते हुए भी, राज्य का आवश्यक तथा अनिवार्य भाग है। इसके कट जाने से भुजाओं के कट जाने के समान शरीर की भाँति राज्य भी दासता तथा नाश को प्राप्त होगा।'

"ह्वेन-सांग भी इस साधारण ब्राह्मण की युक्ति के सम्मुख नहीं ठहर सका और उसने महाराज को सम्मति दी कि सेना का विघटन न किया जाए। फिर भी महाराज ने उन पचास व्यक्तियों की सम्मति ली। सौभाग्य से उस ब्राह्मण की युक्ति का सब पर प्रभाव पड़ चुका था और केवल दो बौद्ध-भिक्षुओं को छोड़ सबने उस ब्राह्मण का समर्थन किया।

"बौद्धों का यह प्रयास आज तो विफल गया है, परंतु इसका परिणाम यह हुआ कि ह्वेनसांग महाराज के प्रमुख सम्मतिदाताओं में आ गया है और उसको विशेष निमंत्रण देकर मंत्रिमंडल की बैठक में सम्मिलित होने का प्रस्ताव कर दिया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ह्वेनसांग ने उस ब्राह्मण को पृथक् में बुलाकर पूछा, 'तुमको दान में क्या कुछ मिला है ?'

'कुछ नहीं। मैं दान लेने के लिए इस स्थान पर नहीं आया।'

'तो किसलिए आए हो ?'

'इस वर्ष महाकुंभ का समागम है और इस समय त्रिवेणी के पवित्र स्थान पर बैठ भगवत्-भजन करने चला आया हूँ।'

'तो तुमने यह क्यों कहा कि इतना कुछ मिला है कि कई वर्ष तक दान लेने की आवश्यकता न रहेगी ?'

'इस कथन का कुछ उद्देश्य था। साथ ही मैं केवल अपनी बात ही तो नहीं कर रहा था। मैं तो यहाँ दान लेने आई प्रजा की बात कह रहा था।'

'तो तुम कल आना। महाराज तुमको पुरस्कृत करेंगे।'

'वह पुरस्कार मेरे स्थान पर तुम ले लेना। मैं कदाचित् कल यहाँ नहीं रहूँगा।' "

४

पत्रलता ने महामात्य से पूछा, "आपने उस ब्राह्मण का नाम-धाम नहीं पूछा ? वह अवश्य कोई योग्य निष्ठावान ब्राह्मण प्रतीत होता है।"

महामात्य ने हँसकर कहा, "तुमने मुझे ह्वेनसांग की तरह साधारण बुद्धि का समझ लिया है, पत्रलता ! मैंने अपना एक गुप्तचर उसके पीछे लगा दिया। वह उसके ठहरने के स्थान तक गया और उसके नाम-धाम का पता लगा आया है। उसका नाम पुरुरवा है। वह गंगा-पार एकांत में एक केवट के झोंपड़े में रहता है।"

"पुरुरवा !" पत्रलता को स्मरण हो आया कि मलिंद का प्रेमी भी पुरुरवा था। कहीं यह वही व्यक्ति न हो। मलिंद अवश्य उसके पास गई होगी। कदाचित् विवाह हो चुका हो और वह उसके साथ ही यहाँ आई हो।

पत्रलता को गंभीर, विचारमग्न देख महामात्य ने पूछा, "क्या विचार कर रही हो, पत्रलता ?"

"मैं इस ब्राह्मण से मिलने जा रही हूँ। कदाचित् मैं इसे जानती हूँ, परंतु उससे मिलने के पश्चात् ही आपको बताऊँगी कि यह वही है अथवा कोई अन्य।"

महामात्य पत्रलता का मुख देखता रह गया और पत्रलता उठकर शिविर से बाहर निकल, उसी समय पुरुरवा से मिलने चली गई। महामात्य भी तुरंत उठ खड़ा हुआ और उसने अपना एक गुप्तचर उसकी रक्षार्थ उसके पीछे-पीछे भेज दिया। अँधेरा हो रहा था और उन्हें गंगा-पार जाना था।

नदी पार करने में कोई कठिनाई नहीं हुई। किनारे पर छोटी-छोटी कई नौकाएँ बँधी थीं। पत्रलता ने एक नाव खोल ली और उसे स्वयं ही खेती हुई नदी पार कर गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नदी पार कर केवटों की बस्ती में पहुँच पत्रलता को पुरुरवा के ठहरने का स्थान पता करने में कोई कठिनाई नहीं हुई। उस बस्ती में एक ही ब्राह्मण टिका था और वह भी दान-दक्षिणा लेने नहीं जाता था। त्रिवेणी पर एकत्रित हुई प्रजा में से कदाचित् कोई ही ऐसा व्यक्ति था, जिसने महाराज से दान न लिया हो। इस कारण पुरुरवा अपनी बस्ती में सर्वप्रसिद्ध हो चुका था।

पत्रलता कुटिया के बाहर पहुँची तो अँधेरा हो चुका था। पत्रलता ने कुटिया में झाँककर देखा। उसका अनुमान सत्य निकला। उसने देखा कि मलिंद अपने पतिदेव को भोजन करा रही है।

उसने आवाज दी, "क्या अतिथि को भी भोजन मिलेगा, देवी ?"

"निस्संदेह।" मलिंद ने उत्तर दिया, "अतिथि किस वर्ण का है ?" पत्रलता को, अँधेरे के कारण न पहचानकर मलिंद ने पूछा।

"जन्म से वर्णसंकर, व्यवसाय से शूद्र और योग्यता से ब्राह्मण।"

"हम व्यवसाय से ही वर्ण मानते हैं। अतिथि बाहर बैठे। अभी पंडित जी भोजन कर लें, तो उसे भी मिल जाएगा।"

पत्रलता बाहर ही द्वार पर बैठ गई। कुटिया के भीतर प्रकाश हो रहा था। पत्रलता पंडित जी की ओर देख रही थी। उसने देखा कि पुरुरवा ओजस्वी युवक है। वह पलथी मारे कुशासन पर बैठा, बायाँ हाथ बाएँ घुटने पर रखे, दाहिने हाथ से भोजन कर रहा था। भोजन बहुत ही साधारण था। भात था, दाल थी और आम की चटनी थी।

पंडित जी ने भोजन समाप्त किया और उठकर कुटिया से बाहर आकर हाथ धो कुल्ला किया। बाहर पत्रलता को बैठे देखकर उसने अपनी पत्नी को पुकारा और कहा, "देवी ! बाहर अतिथि प्रतीक्षा कर रहा है। इसको भोजन परस दो।"

इसके पश्चात् उसने पत्रलता को संबोधन कर कहा, "बहन ! क्षमा करना। मैं भोजन आरम्भ कर चुका था। यदि कुछ पहले आतीं, तो तुम्हारा अधिकार भोजन पाने का पहले होता।"

"कुछ हानि नहीं हुई पंडित जी !"

मलिंद बाहर आई और बोली, "आओ बहन ! भीतर आ जाओ।"

पत्रलता उठकर भीतर प्रकाश में आई। मलिंद ने उसे प्रकाश में देखा, तो एक क्षण तक देखती रह गई। पश्चात् उसने कहा, "पत्रलता ! तुम ?" और वह उससे गले मिलने लगी।

पंडित दोनों को विस्मय में देखने लगा। जब दोनों मिल चुकीं और बैठ गईं तो मलिंद ने उससे पूछा, "बहन ! तुमने अपने को शूद्र क्यों कहा ?"

"तांबूलिन का कार्य जो करती हूँ।"

"मैं तो तुम्हें क्षत्रिय वर्ण की समझती हूँ। तुमने जो कुछ मेरे लिए किया है, वह भला मैं जीवन-भर कैसे भूल सकती हूँ ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"क्या किया था मैंने ?" पत्रलता ने मुस्कराते हुए पूछा।

इस समय मलिंद ने अपने और पत्रलता, दोनों के लिए पत्तल बिछा लिए और उसमें दाल-भात, चटनी रखकर दोनों ने खाना आरंभ कर दिया। खाना आरंभ कर मलिंद ने कहा, "तुम-जैसी शूद्र के साथ खाने में तो मुझे कोई आपत्ति नहीं।

"पत्रलता बहन! बहुत ही अच्छा हुआ है, जो तुम मिल गई हो। मैं, वहाँ से निकलने के पश्चात् मेरे साथ घटित वृत्तांत तुम्हें बताने के लिए लालायित हो रही थी। मैं नहीं जानती थी कि तुमसे कैसे संबंध स्थापित करूँ। मुझको यह भी विदित नहीं था कि तुम इस उत्सव में आई हो। मुझको तो विश्वास हो रहा था कि महाराज ने तुम्हें यदि फाँसी पर नहीं लटकवाया तो कम-से-कम बंदी अवंश्य बना डाला होगा।

"जब मैं तुम्हारे कहने के अनुसार महारानी जी के आगारों के पिछवाड़े पहुँची तो अपने साथ वाली दासी को मैंने कह दिया कि वह जाकर नाटक देखे। मेरे रथ में बैठते ही रथ तीव्र गति से नगर के उत्तर की ओर चल दिया। हम दो घड़ी-भर में दीर्घिका के तट पर जा पहुँचे। मंदिर के बाहर पहुँच रथ खड़ा हुआ तो मैं उतर पड़ी। मेरे उतरते ही रथ पुनः तीव्र गति से वापस चल पड़ा। रथ के शब्द से मंदिर में से दो भयंकर प्राणी, एक स्त्री तथा एक पुरुष बाहर निकल आए। अमावस की रात में भी वे मुझे देख अट्टहास करने लगे। स्त्री ने मेरे समीप आकर पूछा, 'क्यों आई हो यहाँ ?'

"मैंने डरते हुए उत्तर दिया, 'मैं देवी पत्रलता के कहने पर आई हूँ।'

'और उसके प्रेमी कवि की प्रतीक्षा कर रही हो ?'

'हाँ।' मैंने उनके ज्ञान पर विस्मित होकर कहा। तुमने बताया नहीं था कि वे सब-कुछ जानते होंगे।

"उस पुरुष ने कहा, 'कब तक यहाँ खड़ी रहोगी। अभी कवि के आने में आधा प्रहर है।'

'मुझको पीपल के वृक्ष के नीचे खड़े रहने की आज्ञा है।'

'आज्ञा!' यह कहकर दोनों पुनः हँस पड़े। पश्चात् उस स्त्री ने कहा, 'यहाँ अँधेरे में खड़े रहने में तुम्हें भय नहीं लगेगा ?'

'जो मरने के लिए तैयार हो, वह और किससे भय खाएगा ?'

"इस पर वे पुनः हँस पड़े और मुझसे बोले, 'भीतर चलकर भगवान् के दर्शन करो और उनसे आशीर्वाद लो।'

"इसके पश्चात् वे भीतर चले गए और मैं, मानो बँधी हुई उनके पीछे-पीछे चलती हुई, कालभैरव की विकराल मूर्ति के सामने जा खड़ी हुई। वे तो बैठ गए और मैं खड़ी रही। कुछ काल पश्चात् मूर्ति के पीछे से शब्द हुआ, 'भक्तिनी! तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी।'

"मैं विस्मय में देखती रह गई। वही ध्वनि फिर कहने लगी, 'तुम्हारा भाग्य पंडित पुरुरवा से जुड़ा हुआ है। जाओ, बाहर कवि तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इस कथन-मात्र से मेरा शरीर, जो पहले बँधा-सा प्रतीत होता था, अब ढीला पड़ गया। मैं प्रणाम कर बाहर आई। मेरे पीपल के वृक्ष के नीचे पहुँचते ही कवि का रथ आया। मैं उस पर सवार हो गई। रथ चल पड़ा। कन्नौज की सीमा पार करते समय भी अँधेरा पूरी तरह दूर नहीं हुआ था। कवि ने प्रहरियों के पूछने पर कहा कि वह अपनी भगिनी को ससुराल पहुँचाने जा रहा है।

"सीमा पार कर समीप ही एक गाँव में हमने प्रवेश किया और कवि ने घोड़ों को विश्राम देने के लिए उन्हें खोल दिया। वहाँ एक चैत्य में पहुँच स्नानादि से निवृत्त हो, हम भोजन करने बैठे। इस समय तक काफी प्रकाश हो चुका था। हमको ठहरने के लिए एक आगार मिल गया था। कवि ने मुझे देखा, तो आश्चर्यचकित देखता रह गया। वह इतना डोल गया था कि कठिनाई से एक खंभे का आश्रय लेकर, उसने अपने-आपको गिरने से बचाया। मैं उसको देखकर मुस्करा रही थी। बहुत कठिनाई से उसने अपने मुख से स्वर निकाला। उसने पूछा, 'तुम कौन हो और देवी पत्रलता कहाँ है?'

'वह कन्नौज में है। मुझको उसी ने भेजा है। आप अपनी भगिनी को ससुराल छोड़ने जा रहे हैं न?'

'पर तुम हो कौन?'

'मैं देवपुत्र तुवर की कुँवारी लड़की मलिंद हूँ। महाराज हर्षवर्धन ने मुझे कन्नौज में बंदी बनाकर रखा हुआ था। वे मुझे विवश कर मुझसे विवाह करना चाहते थे। पत्रलता देवी की सहायता से मैं आपके साथ आने में सफल हुई हूँ।'

"इस समय तक कवि ने अपने मस्तिष्क पर नियंत्रण पा लिया था। उसने खंभे का आश्रय छोड़ सीधा खड़े होकर कहा, 'तो क्या तुम्हारे कन्नौज राज्य से भागने में मैं एक अचेतन साधन बन गया हूँ? तुम बहुत सुंदर हो, परंतु राजकुमारी! मेरी साधना तो पत्रलता है और उसके न आने से मुझे अत्यंत निराशा हुई है। मैं तो ऐसा अनुभव कर रहा हूँ कि इस आघात के पश्चात् मेरे लिए जीना असंभव हो जाएगा।

'देवी! देखा नहीं, मैं तो यहीं चक्कर खाकर गिरने वाला था। अब मैं समझता हूँ कि वह पुण्य कार्य जो देवी पत्रलता ने मेरे हाथों सौंपा है, पूर्ण कर दूँ। यह मेरा उसके प्रति प्रेमोपहार होगा। शीघ्र तैयार हो जाओ, कहाँ जाना है तुमको?'

'मैं अपने पिता के पास नहीं जाऊँगी। मेरी सगाई मेरी स्वीकृति से आचार्य अग्निमित्र के सुपुत्र पंडित पुरुरवा से हो चुकी है। वे इस समय मिहिर नाम के गाँव में बाण गंगा के तट पर रहते हैं। वहाँ उनका गुरुकुल है। यहाँ से पचास कोस और आगे जाना होगा।'

'वे तुमको इस प्रकार स्वीकार कर लेंगे?'

'मुझे पूर्ण आशा है। यदि यह आशा फलीभूत न हुई, तो वहीं अपने प्राणांत कर लूँगी।'

"इसके पश्चात् हमने मध्याह्न तक विश्राम किया और पुनः चल पड़े। उस रात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सायंकाल हम एक अन्य चैत्य में रहे और अगले दिन मध्याह्न से पूर्व हम आश्रम में पहुँच गए। मैंने अपने ससुर के चरणों में सिर रख, अपनी पूर्ण कथा वर्णन कर दी। वे कुछ काल तक विचार कर बोले कि मैं उन्हें तो प्रातःकाल की उषा के समान सुंदर और स्वच्छ प्रतीत हुई हूँ। फिर भी मैं अपने होने वाले पतिदेव से पूछ लूँ। यदि वह आपत्ति न करेगा, तो हम दोनों का तुरंत विवाह हो जाएगा।

"पंडित जी तुरंत मान गए। हमारे विवाह-काल तक कवि वहीं थे। उन्होंने विवाह के पश्चात् मेरे ससुर से कहा, 'मैं देवी मलिंद को अपनी बहन घोषित करके यहाँ आया हूँ। अतः उसके विवाह पर भाई की ओर से कुछ भेंट करना मेरा अधिकार है। अतएव यह तुच्छ भेंट मैं उसके प्रति आदर और स्नेह-रूप में देता हूँ।'

"इतना कह उन्होंने एक हुंडी डेढ़ लाख स्वर्ण की, जो कौशांबी के एक सेठ के नाम थी, मेरे हाथ पर रख दी। मैं उस पर डेढ़ लाख लिखा देख अवाक्-मुख देखती रही। मैंने कहा, 'मैं अपने को इतने की अधिकारिणी नहीं मानती। इसे तुड़वाकर कुछ मुझे भेजना चाहें, तो भेज दीजिएगा!'

'नहीं देवी! इसमें मेरे काम के लिए अब कुछ भी नहीं है। यह भगवान् ने तुम्हारे लिए ही दिया है।'

"पश्चात् वे हुंडी के पीछे पावती लिखकर चले गए। वे बता नहीं गए कि वे कहाँ जा रहे हैं।"

५

बाण की निराशा का ज्ञान प्राप्त कर पत्रलता को भी दुःख हुआ। फिर भी वह गृहस्थ में प्रवेश करने के लिए अपने मन को तैयार नहीं कर सकी।

महामात्य को जब इस संपूर्ण घटना का पता चला तो उसे पत्रलता के व्यवहार, मलिंद को भागने में उसके हाथ होने पर विस्मय हुआ। उसे पत्रलता के, बाण के साथ विवाह के लिए तैयार न होने पर और भी आश्चर्य हुआ, परंतु वह समझता था कि यदि बाणभट्ट को पता चल गया तो वह पत्रलता को कहेगा कि वह उससे विवाह स्वीकार कर लें। इसलिए उसने अपने गुप्तचरों को बाण की खोज में भेज दिया। इतना निश्चित हो चुका था कि बाण अपने गाँव नहीं लौटा।

इस समय एक अन्य घटना घटी। ह्वेनसांग महाराज हर्षवर्धन के साथ कन्नौज चलने को तैयार हो गया और यह घोषणा कर दी गई कि कन्नौज में एक महान् सर्वधर्म-सम्मेलन होगा, जिसमें सब मतावलंबियों को विचार-विनिमय का अवसर दिया जाएंगा। महायानियों की ओर से ह्वेनसांग पक्ष का समर्थन करेंगे।

महामात्य, ह्वेनसांग की वाक्शक्ति से परिचित था; परंतु वह यह भी देख चुका था कि उसकी युक्ति में कहाँ शिथिलता है। इस कारण वह अनुभव करता था कि ह्वेनसांग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की पराजय से महाराज को अत्यंत दुःख होगा और वे ह्वेनसांग की विजय घोषित करने की चेष्टा करेंगे, जिसके परिणामस्वरूप झगड़ा हो जाएगा।

कन्नौज पहुँचने पर इस धर्म-सभा की घोषणा कर दी गई। इस घोषणा की व्यवस्था करते समय राज्य की ओर से यह कह दिया गया कि सभा बीस दिन तक चलेगी और बीस दिन तक निरंतर भिन्न-भिन्न धार्मिक विषयों पर वादविवाद होगा। इस वादविवाद में ह्वेनसांग्र मध्यस्थ रहेगा।

यह एक और चिंता का विषय बन गया। प्रयागराज में महायानोत्सव के अवसर पर भगवान् बुद्ध को ब्राह्मण देवताओं से श्रेष्ठ पदवी देना, बौद्ध-चैत्यों और संप्रदायों को सबसे अधिक दान देना और पश्चात् बौद्ध विद्वानों की अन्य मतावलंबियों से अधिक मान-प्रतिष्ठा करना ब्राह्मणों तथा अन्य मतावलंबियों के लिए रोष का कारण बन चुका था। अब ह्वेनसांग को मध्यस्थ मान, उनके ही मत वालों के वादविवाद का निमंत्रण ब्राह्मणों को भला प्रतीत नहीं हुआ।

निश्चित तिथि से पूर्व ही भारत के विद्वान् एकत्रित हो गए और राजकीय धर्म-सभा से पूर्व अपने-अपने मत वाले परस्पर विचार-विनिमय करने लगे। लगभग तीन सौ ब्राह्मण, वेद-वेदांगों के ज्ञाता और दर्शनशास्त्रों के प्रकाण्ड विद्वान् सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए आए। इनके अतिरिक्त जैन मतावलंबी तथा हीनयान और महायानवादी भी सहस्त्रों की संख्या में उपस्थित थे। बिरले अनीश्वरवादी भी आए थे।

ब्राह्मणों ने अपनी गोष्ठी अलग बुला ली और उसमें यह निश्चय किया गया कि महाराज से यह निवेदन किया जाए कि ह्वेनसांग, जो स्वयं एक पक्ष की ओर से विवाद करेगा, को मध्यस्थ न बनाकर किसी अन्य निष्पक्ष व्यक्ति को मध्यस्थ बनाया जाए। जैन मतावलंबियों ने भी इसी प्रकार अपना निश्चय प्रकट करने का विचार कर लिया।

ब्राह्मणों के नेता आचार्य वाराहमित्र और जैनियों के आचार्य भृगुदेव, दोनों महाराज के समक्ष उपस्थित होकर कहने लगे, "महाराज! श्रीमान ने धर्म-चर्चा का आयोजन कर एक बहुत बड़ा धर्म-कार्य किया है। हम अपने मत के, भारत-भर के विद्वानों की ओर से महाराज को, इस आयोजन के लिए धन्यवाद देते हैं। साथ ही एक अन्य निवेदन भी करना चाहते हैं। आज्ञा हो तो कहें।"

"हाँ-हाँ, कहिए।"

"ह्वेनसांग हमारे ग्रंथों का ज्ञाता नहीं। वह दर्शनों से अनभिज्ञ होने के कारण युक्ति करने के ढंग से परिचित नहीं। हाँ, वह भाषा का विद्वान् अवश्य है। अतएव उसकी अध्यक्षता में इस वादविवाद में सम्मिलित होना, अंधे के सामने रुदन करने के समान है। इस कारण हमारा यह निवेदन है कि मध्यस्थ किसी निष्पक्ष तथा दर्शनशास्त्र के ज्ञाता व्यक्ति को बनाया जाए।"

"कौन ऐसा व्यक्ति हो सकता है जो विद्वान् भी हो और किसी भी मत से संबंध न रखता हो?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"एक हैं महाराज ! मिहिर के आचार्य अग्निमित्र मध्यस्थ बनाए जाने के योग्य हैं। वे जहाँ वैदिक ग्रंथों के प्रकांड विद्वान् हैं, वहाँ जैन और बौद्ध ग्रंथों के ज्ञाता भी हैं।"

"ठीक है, परंतु वे भी तो वैष्णव मतानुयायी हैं।"

"फिर भी महाराज ! वे विद्वान् हैं, धर्मशास्त्र और न्याय के प्रकांड विद्वान् हैं। उनसे हम अन्याय की अथवा पक्षपात की आशा नहीं रख सकते।"

महाराज ने कहा, "देखिए आचार्य जी ! सभा का अध्यक्ष तो ह्वेनसांग ही होगा। इस प्रकार हम देश-विदेश में अपनी न्यायप्रियता की धाक जमा सकेंगे।"

"महाराज ! धाक जम सकेगी अथवा नहीं, यह संदेहात्मक बात है, परंतु न्याय नहीं होगा यह निश्चित बात है।"

"क्यों, न्याय क्यों नहीं होगा ? हमने आदेश दिया है कि ह्वेनसांग इस धर्म-सभा का अध्यक्ष होगा। फिर भी सबको अपनी-अपनी बात कहने का पूर्ण अधिकार होगा।"

इसके पश्चात् कहने को कुछ रहा नहीं था। दोनों नेता निराश होकर लौट गए। पश्चात् दोनों अपने-अपने मतानुयायियों के साथ बैठकर विचार-विनिमय करने लगे। जैनियों ने यह निश्चय किया कि वे इस वादविवाद में भाग नहीं लेंगे। अतः वे अपने बिस्तर उठाकर, अगले दिन अपने-अपने स्थानों को लौटने लगे। ब्राह्मणों की मंडली में इस विषय पर मतभेद हो गया।

आचार्य वाराहमित्र और पत्रलता एवं महामात्य की सम्मति यह थी कि वे विद्वानों को कह दें कि वे भी वाद-विवाद में भाग नहीं लेंगे। आचार्य जी ने यह सम्मति ब्राह्मणों के समक्ष रख दी। दूसरा पक्ष था कि वादविवाद में भाग लिया जाए और अपना विचार एवं मत सभा में रखा जाए। इस पक्ष के नेता अग्निमित्र थे। उनका कहना था कि पक्ष का समर्थन कम-से-कम एक बार अवश्य हो जाए।

आचार्य जी का यह भी कहना था कि इस प्रकार वादविवाद में भाग न लेने से तो सिद्धांतों और धर्म के नियमों की हीनता प्रकट होगी। इस प्रकार हम ऋषि-ऋण से मुक्त हो सकेंगे।

दिन-भर के वादविवाद से यह निश्चय हुआ कि पहले दिन सब ब्राह्मण-दल पूर्ण रूप से तैयार होकर सभा में उपस्थित हो और वैदिक मत, जहाँ-जहाँ बौद्ध मत से भिन्न है, सभा में प्रतिपादित करे तथा पश्चात् बिना किसी प्रकार का, सभा तथा अध्यक्ष से निर्णय माँगे, वहाँ से चला आए।

यह भी निश्चय हुआ कि बारी-बारी से दो अथवा तीन-तीन ब्राह्मण सभा में नित्य उपस्थित हुआ करें और जो कुछ भी वैदिक धर्म पर आक्षेप हो, उसका विचार-विनिमय ब्राह्मण अपनी सभा में किया करें। इस प्रकार ब्राह्मणों की अपनी सभा नित्य सायंकाल हुआ करे।

परन्तु सभी को अत्यन्त निराशा हुई, जब पहले ही दिन अबौद्धों को, जिनमें ब्राह्मण भी सम्मिलित थे, सभा-मण्डप में प्रवेश करने ही नहीं दिया गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म-महासभा के लिए घास-फूस के दो विशाल भवन बनवाए गए थे। इन प्रत्येक भवन में एक-एक सहस्र के लगभग व्यक्तियों के बैठने का प्रबन्ध किया गया था। सभा-मण्डप में महात्मा बुद्ध की मूर्ति के लिए एक बहुमूल्य सिंहासन निर्माण किया गया था। गंगा-तट पर पश्चिम की ओर एक विशाल संघाराम बनवाया गया था और उसके पूर्व में तैंतीस गज ऊँची एक भव्य लाट बनाई गई थी। इस लाट के मध्य में मनुष्य आकार की एक स्वर्ण की बुद्ध-प्रतिमा स्थापित की गई थी।

बौद्ध-धर्म के तीन सहस्र के लगभग विदग्ध आचार्य आए हुए थे। इनके अतिरिक्त एक सहस्र नालन्द विश्वविद्यालय के आचार्य तथा प्रमुख विद्यार्थी भी उपस्थित थे। इन बौद्ध आचार्यों में हीनयान तथा महायान दोनों मतों के लोग थे।

सभा का कार्यक्रम इक्कीस दिन चलना था।

६

धर्म-सभा का कार्य भगवान् बुद्ध की एक भव्य सवारी से आरम्भ हुआ। सम्राट् हर्ष के स्थायी प्रासाद से भगवान् बुद्ध की मनुष्य-आकार की स्वर्ण-मूर्ति को लाया गया और उसको एक हाथी पर बिठाकर, हाथी के माथे पर और शरीर पर चित्रकारी कर, घुमाया गया। हाथी पर स्वर्ण-रजत की जाजम डालकर, ऊपर गंगा-यमुनी हौदा रख, उस पर बुद्ध की मूर्ति स्थापित की गई।

भगवान् बुद्ध की मूर्ति के एक ओर हर्षवर्धन, इन्द्र के रूप में, हाथ में चँवर लिए, बुद्ध की मूर्ति पर हिलाते-झुलाते हुए बैठे थे। मूर्ति की दूसरी ओर कामरूप के भास्करवर्मन, ब्रह्मा के रूप और वेश में चँवर झुला रहे थे।

भगवान् बुद्ध की मूर्ति के पीछे दो हाथियों पर हीरे-मोतियों से तथा स्वर्ण-रजत पुष्पों से भरे हुए पिटार थे और ये हीरे-मोती इत्यादि भगवान् बुद्ध की मूर्ति पर न्योछावर किए जा रहे थे।

भगवान् बुद्ध की मूर्ति वाले हाथी के आगे हाथियों पर गायक वृन्द गाते-बजाते और संगीत की ध्वनि लहराते हुए बैठे थे। मूर्ति के पीछे ह्वेनसांग और प्रमुख परिचायकगण हाथियों पर सवार थे। इनके पश्चात् राज्य के मित्र, अन्य देशों के राज़े-महाराजे और सामन्त अपने-अपने हाथियों पर सवार थे।

हाथियों के साथ दो पंक्तियों में दोनों ओर विभिन्न देशों के प्रमुख पुरोहित और पण्डित थे, जो सवारी के साथ बढ़ते हुए बुद्ध का स्तुति-गान कर रहे थे।

सवारी जब सभा-भवन में पहुँची, वे सब लोग हाथियों पर से उतर पड़े और भगवान् बुद्ध की मूर्ति को हर्षवर्धन अपने कन्धों पर उठाकर राज्य-सभा भवन में ले गया। वहाँ मूर्ति को बहुमूल्य सिंहासन पर आसीन कर दिया गया।

इस समय हर्षवर्धन और ह्वेनसांग ने भगवान् की मूर्ति के सम्मुख उपहार चढ़ाए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा सैकड़ों और सहस्रों रत्नों से जड़ित वस्त्र मूर्ति के अर्पण किए।

जो लोग बौद्ध-धर्म में आस्था नहीं रखते थे, उन्हें भवन में प्रवेश-द्वार पर बैठने को कहा गया। उनमें से किसी को भीतर प्रवेश नहीं मिला।

पश्चात् ह्वेनसांग को एक उच्च मंच पर बिठाया गया और उसे सभा का प्रधान एवं वक्ता घोषित किया गया।

इसके पश्चात् ह्वेनसांग ने नालन्द के एक श्रमण द्वारा यह घोषणा करवा दी कि जो विद्वान् चाहे महायान-धर्म के विषय में ह्वेनसांग से तर्क-वितर्क कर सकता है। यह सूचना लकड़ी के एक तख्ते पर लिखवाकर सभा-भवन के बाहर भी टँगवा दी गई। साथ ही ह्वेनसांग की ओर से यह लिख दिया गया कि, 'यदि कोई उसके तर्क के विरुद्ध किसी प्रकार असत्यता प्रमाणित कर सकेगा अथवा उसे विवाद में उलझा सकेगा, वह विरोधी के अनुरोध पर अपना सिर तक कटवा देगा।'

प्रथम दिवस की सभा में प्रमुख प्रवक्ता ह्वेनसांग था, जिसने महायान-धर्म के सिद्धांतों की व्याख्या और उसकी महानता सिद्ध करने का यत्न किया।

७

ब्राह्मण वर्ग, हर्षवर्धन की घोषणा कि सब मतानुयायियों में धर्म-चर्चा होगी, पर विश्वास कर दूर-दूर से यात्रा कर आया था। उनका विचार था कि सम्राट् यद्यपि बौद्ध-धर्म को श्रेष्ठ मानता है, तथापि दूसरे धर्मों का विरोध नहीं करता; परन्तु यह धारणा कि बौद्धों के साथ पक्षपात किया जाता है, जो प्रयाग-संगम पर अबौद्धों के साथ व्यवहार से बनी थी, इस महाधर्म-सम्मेलन में और भी पुष्ट हो गई।

इस धर्म-सम्मेलन में तो बौद्ध-वर्ग के लिए पक्षपात नग्न रूप धारण कर सामने आया। ब्राह्मण वर्ग को, जो बौद्ध-धर्म पर विश्वास नहीं करते थे, सभा-मण्डप में प्रवेश करने ही नहीं दिया गया। अतएव वे बाहर से ही लौट गए। ब्राह्मणों में वे लोग, जो हठधर्मीपूर्वक सभा-मण्डप में जाकर अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन करना चाहते थे, इस व्यवहार से अति लज्जित हुए।

ह्वेनसांग का महायान न केवल यह था कि महात्मा बुद्ध के सिद्धान्तों और शिक्षा को गृहस्थी तथा राजा-महाराजा ग्रहण कर सकते हैं, प्रत्युत यह भी था कि भगवान् बुद्ध, राम, कृष्ण, नरसिंह, वाराह इत्यादि अवतारों की भाँति एक अवतार थे और अपने से पूर्व हुए सभी अवतारों से श्रेष्ठ थे। ह्वेनसांग के महायान में यह भी माना गया कि राम, कृष्ण, शिवादि की भाँति भगवान् बुद्ध की उपासना से भी निर्वाण-प्राप्ति हो सकती है।

वस्तुस्थिति के स्पष्टीकरण के लिए आचार्य अग्निमित्र ने आचार्य वाराहमित्र के सम्मुख प्रस्ताव रखा कि ब्राह्मणों की ओर से एक विज्ञप्ति निकाली जाए, जिसे महाराज हर्षवर्धन, ह्वेनसांग तथा अन्य प्रमुख लोगों को भेज दिया जाए एवं सर्वसाधारण में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वितरित कर दिया जाए। विज्ञप्ति में हर्षवर्धन के निरपेक्ष होने के ढोंग को प्रकाश में लाया जाए तथा यह भी विख्यात किया जाए कि वैदिक-वैष्णव प्रजा द्वारा वंचना से महात्मा बुद्ध को महान् व्यक्ति मानने का प्रयास ही महायान है। महायान के द्वारा बौद्ध-धर्म को, जिसको भारत के विद्वान् अस्वीकार कर चुके हैं, एक नया रूप देकर भोली-भाली प्रजा के गले में उतारने का प्रयास किया जा रहा है।

बौद्ध-धर्म वास्तव में निरीश्वरवाद और अनात्मवाद का दूसरा नाम है। अब महात्मा बुद्ध को भगवान् विष्णु का अवतार घोषित कर यह प्रयत्न किया जा रहा है कि भारतीय प्रजा बुद्ध की भी वैसी ही महिमा का गान करे, जैसी ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा राम, कृष्ण आदि की करती है।

बौद्ध-धर्म के अनुयायी महाराज अशोकवर्धन ने, जहाँ मौर्य-वंश का नाश किया था, वहाँ पूर्ण प्रजा को नपुंसक और पंगु बनाकर विदेशी आक्रमणकारियों की दया पर छोड़ दिया था। अब उसकी पुनरावृत्ति की जा रही है।

वेदों में लिखित जीवन-मीमांसा यथायोग्य व्यवहार की समर्थक है। इसमें दुष्टों के साथ क्रूर व्यवहार और श्रेष्ठजनों के साथ मानवता का व्यवहार उपयुक्त माना गया है। शान्ति का व्यवहार पशुओं के साथ उचित नहीं।

इस प्रकार इस विज्ञप्ति में वैदिक पक्ष की संक्षेप में व्याख्या कर महायान तथा हीनयान के झगड़े को ढोंग बताया जाए और यह प्रकट किया जाए कि दोनों में सिद्धान्तात्मक ऐक्य है।

आचार्य वाराहमित्र ने इस विज्ञप्ति की स्वीकृति दे दी। पत्रलता, जो उस समय वहाँ उपस्थित थी, कहने लगी, "श्रीमान्! यह सब-कुछ निष्फल जाएगा। पूर्ण बौद्ध-प्रजा इस सवारी के साथ होगी। इससे हीनयान पक्ष वाले, क्रोध और निराशा से जल-भुन जाएँगे।

"हीनयान वालों में अपने गुरुओं का मान ह्वेनसांग से कहीं ऊँचा माना जाता है। ह्वेनसांग की इतनी मान-प्रतिष्ठा हीनयान के मानने वाले सहन नहीं कर रहे। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि उनका यह क्रोध किसी-न-किसी रूप में अवश्य प्रकट होगा। कदाचित् वे कुछ गड़बड़ करने का प्रयत्न करें।

"ऐसे अवसर पर यदि आपकी विज्ञप्ति निकली और यदि कुछ गड़बड़ हुई, तो इसका सारा दोष आप लोगों के ऊपर पड़ सकता है।"

पत्रलता के इस भय की सम्भावना बताने पर आचार्यजी गम्भीर विचार में पड़ गए। कुछ क्षण विचार करने के उपरान्त उन्होंने पूछा, "पत्रलता! इस विषय में तुम्हारा विचार कि हीनयानी कुछ गड़बड़ करेंगे, कैसे बन गया?"

"मैं आज महारानी मृणालिनी से मिलने गई थी। वहाँ यह चर्चा थी कि हीनयान अपने श्रमणों के साथ बार-बार गुप्त गोष्ठियाँ कर रहे हैं। यह मेरा अनुमान है कि उन गुप्त-सभाओं का उद्देश्य उत्सव में किसी प्रकार की गड़बड़ करने का है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यह अनुमान तो बहुत दूर की बात है। मुझको विश्वास नहीं होता कि हीनयान वाले इस प्रकार की मूर्खता करेंगे।"

"आपने उन्हें बुद्धिमान कब से समझा है?"

"बुद्धिमान न सही। इतनी नीचता का कार्य वे नहीं कर सकते कि उत्सव में बाधा खड़ी हो जाए।"

"मेरा तो यह कहना है कि इन मूर्खों की मण्डली में किसी प्रकार भी बात करनी भिड़ों के छत्ते में हाथ डालने के समान होगा।"

अभी यह विचार-विनिमय हो ही रहा था कि सूचना मिली कि सभा-मण्डप में; जो घास-फूस का बना हुआ था, आग लग गई है। सब आश्चर्यचकित एक-दूसरे का मुख देखने लगे।

८

आग बुझाने का यत्न किया गया और महाराज हर्षवर्धन स्वयं आग बुझाने वालों को उत्साहित करने के लिए घटनास्थल पर जा पहुँचे।

आग बुझ गई और भगवान् बुद्ध की मूर्ति इस आग में जल जाने से बच गई। यह देखने के लिए कि आग से कितनी हानि हुई है, महाराज मण्डपों के बीच में बनी लाट पर चढ़कर देखने लगे।

जब महाराज लाट के नीचे उतर रहे थे तो सहसा एक व्यक्ति हाथ में कटार लिए, उन पर आक्रमण करने के लिए झपटा। हर्षवर्धन इस आकस्मिक आक्रमण से बचने के लिए पीछे हटकर, कुछ सीढ़ियाँ ऊपर चढ़ गया। पश्चात् झपटकर उसने आक्रमणकारी को पकड़ लिया।

आक्रमण करने वाले को बन्दी बना लिया गया और पश्चात् जब उस पर न्याय करने के लिए उसे धर्म-सम्मेलन की प्रबन्ध-समिति के सम्मुख उपस्थित किया गया तो उसने कह दिया कि वह ब्राह्मणों के उकसाने पर आक्रमण कर बैठा था।

इस षड्यंत्र की छानबीन करने के लिए लगभग पाँच सौ ब्राह्मणों को पकड़ लिया गया। इन पकड़े हुओं में आचार्य वाराहमित्र, आचार्य अग्निमित्र तथा अन्य सभी प्रमुख विद्वान् भी थे। पत्रलता भी आचार्य जी के गृह पर ब्राह्मणों को समझाती हुई पकड़ ली गई।

उसी दिन ह्वेनसांग तथा अन्य बौद्ध-मण्डल के लोग इन ब्राह्मणों पर न्याय करने और इनको दण्ड देने के विषय में विचार-विनिमय करने के लिए एकत्रित हुए। इनमें महाराज हर्षवर्धन भी सम्मिलित हुए। उत्सव की सफलता से उत्साहित महायानी बौद्ध, अहिंसा-हिंसा का विचार छोड़, भारत को विद्वान् ब्राह्मणों से रहित करने के स्वप्न देखने लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्रलता तथा आचार्य वाराहमित्र के पकड़े जाने का समाचार महामात्य पद्मराज को मिला तो वह भी चिन्ता अनुभव करता हुआ महाराज से मिलने जा पहुँचा। इस धर्म-महासम्मेलन में महामात्य ने सक्रिय भाग नहीं लिया था। महामात्य होने के नाते वह अतिथियों के स्वागत, खान-पान और ठहरने के प्रबन्ध में लगा हुआ था, परन्तु धर्म-सम्मेलन में जो कुछ हो रहा था, उस ओर उसकी किंचित्मात्र भी रुचि नहीं थी।

महाराज के अस्थायी प्रवास में जब महामात्य पहुँचा तो उसको प्रतिहारों से पता चला कि भीतर बौद्ध-मण्डल की बैठक यह विचार करने के लिए हो रही है कि बन्दी ब्राह्मणों को क्या दण्ड दिया जाए।

महामात्य भी उस बैठक में जा उपस्थित हुआ। उसे देख ह्वेनसांग ने उससे पूछा, "महामात्य! यह राज्य में क्या हो रहा है?"

"अनर्थ श्रीमान्।"

"और महामात्य इसको रोकने के लिए क्या कर रहे हैं?"

"शक्तिहीन हो मुख देख रहा हूँ।"

"किसने शक्तिहीन किया है?"

"जिसने यह धर्म-सम्मेलन का प्रबन्ध अपने हाथ में लिया हुआ है।"

"किसने लिया है?"

"यह तो महाराज ही बता सकेंगे। मैं तो यही कह सकता हूँ कि इस आयोजन का और इससे पूर्व त्रिवेणी पर दान-महोत्सव का प्रबन्ध मेरी सम्मति से नहीं हुआ।"

इस समय महाराज हर्षवर्धन ने बात को बदलते हुए पूछा, "महामात्य इस गोष्ठी में किस प्रयोजन से आए हैं?"

"महाराज! यहाँ कोई गोष्ठी हो रही है? क्या यह कोई गुप्त गोष्ठी है?"

"महामात्य इन सबके एकत्रित होने का प्रयोजन समझते हैं?"

"मैं तो समझा था कि महाराज का जीवन बच जाने पर महाराज को बधाई देने तथा भगवान् तथागत का धन्यवाद करने के लिए यह सब महानुभाव एकत्रित हुए हैं। मैं तो इसी प्रयोजन से आया था।"

"अब तो महामात्य की बधाई बासी हो गई है। भगवान् तथागत की कृपा से जहाँ भवन की अग्नि बुझ गई है, वहाँ हत्या करने वाला पकड़ लिया गया है। उसने सभी षड्यन्त्रकारियों के नाम बता दिए हैं।"

"तब तो ठीक है महाराज! इस सेवक को अभी-अभी अधूरी घटना की सूचना मिली है और वह भी एक अन्य ढंग से। मैं अपने अधूरे और श्रीमान् से भिन्न ज्ञान रखने के लिए क्षमा चाहता हूँ। तो महाराज! आपकी इस गोष्ठी में बाधा न पड़े, अतः जाने के लिए आज्ञा चाहता हूँ।

"साथ ही महाराज से एक बात जानना चाहता हूँ कि हत्यारा कौन से बन्दीगृह में भेजा गया है?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"क्यों ?"

"मैं नगरपाल को उसकी जाँच करने के लिए नियुक्त करना चाहता हूँ।"

"हमने जाँच कर ली है। हत्यारे को क्षमा कर दिया गया है। और वास्तविक दोषियों को पकड़कर यहाँ मँगवा लिया गया है। उनके दण्ड का हम विधान कर रहे हैं।"

"बहुत अच्छा महाराज! मैं इसका एक अर्थ समझा हूँ कि अब महाराज को पद्मराज की महामात्य के कार्य के लिए आवश्यकता नहीं रही। आपको अपने धार्मिक आयोजनों में तो कदाचित् राज्याधिकारियों की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए थी, परन्तु महाराज की हत्या का प्रयत्न और फिर उसके साथियों के विषय में जाँच तथा दण्ड-विधान तो शुद्ध राज्य-कार्य है। अब यह कार्य भी आपने तथा साधु-सन्त महात्माओं ने अपने ऊपर ले लिया है। मुझे आशा है कि इससे देश का कल्याण पूर्ण हो जाएगा।"

इस पर ह्वेनसांग ने कहा, "महामात्य की बात मैं समझता हूँ। महामात्य ब्राह्मण हैं और वे जन्म से ब्राह्मणों का बुद्धि और ज्ञान पर अधिकार मानते हैं। हम ऐसा नहीं मानते। हम जन्म से किसी का कुछ भी अधिकार नहीं समझते। भला आपमें ऐसी कौन-सी विशेषता है कि केवल आप ही राज्य को चौपट होने से बचा सकते हैं?"

"मैं समझता हूँ कि ह्वेनसांग मेरे कथन का अर्थ नहीं समझे। मैंने यह नहीं कहा कि वे राज्य का प्रबन्ध नहीं कर सकते। मैंने तो यह कहा है कि राज्य-कार्य साधु-सन्त-महात्मा नहीं कर सकते।

"अब सुन लीजिए। जिस व्यक्ति ने महाराज पर कटार से आक्रमण किया था, वह लोगों के सिखाने से ऐसा कार्य करने आया था, उनका नाम नहीं बता सका। उसने असत्य भाषण कर उन व्यक्तियों का नाम ले दिया है, जिसके विरुद्ध हमारे सन्तजी हैं। उनको न तो महाराज से किसी प्रकार का द्वेष है और न ही कोई कारण है कि द्वेष हो।"

"तो महामात्य जानते हैं कि किसने उसे हत्या करने के लिए भेजा था?"

"यही जानने के लिए तो जाँच करना चाहता था। मैं समझता हूँ कि जिसने महाराज को यह सम्मति दी है कि उसे क्षमा कर तुरन्त मुक्त कर दिया जाए, कदाचित् वही व्यक्ति है, जिसने उसे महाराज की हत्या करने के लिए भेजा था।

"यह भी हो सकता है कि उसने वास्तविक दोषियों को बचाने के लिए झूठ-मूठ के कुछ लोगों को पकड़वा दिया हो और इस भय से कि हत्यारे से कहीं कुछ रहस्योद्घाटन न हो जाए, उसको क्षमा दिलवाकर यहाँ से भगा देने में इतनी शीघ्रता की हो।"

महाराज हर्षवर्धन महामात्य के इस कथन से गम्भीर विचार में पड़ गए। उनकी बुद्धि में कुछ-कुछ बात समझ आने लगी थी। फिर भी वे चुप रहे। पद्मराज ने आगे कहा, "महाराज! पिछले अठारह दिन तक वादविवाद चलता रहा है महायानवादियों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हीनयानियों के साथ। ब्राह्मण-वर्ग को तो मण्डप में प्रवेश तक करने नहीं दिया गया। उनमें न तो किसी ने कोई विवाद किया और न ही उनके विरुद्ध किसी ने कुछ कहा। तो ब्राह्मणों का रुष्ट होने में कोई कारण नहीं है। रुष्ट होने का कारण हीनयान वालों को है। उनको बुलाकर उनका भारी अपमान किया गया है। हीनयान सम्प्रदाय वालों के गुरुजी को पीछे कर एक विदेशी विद्यार्थी को विजयी घोषित कर सम्मानित किया गया है। इससे क्या यह सम्भव नहीं कि यह हत्या का आयोजन हीनयान वालों ने किया हो?"

"महामात्य इस विषय में क्या जानते हैं?"

"मुझे कुछ विदित नहीं। मैं प्रत्येक प्रकार की सम्भावना पर विचार करना और पश्चात् प्रमाण ढूँढ़ना चाहता था; परन्तु इस विषय में किसी रुचि रखने वाले ने वास्तविक व्यक्ति को, जिससे रहस्योद्घाटन हो सकता था, लापता कर दिया है।

"अच्छी बात है महाराज! अब मुझे आज्ञा दीजिए। मैं आपके कार्य में विघ्न नहीं डालना चाहता।"

"नहीं, महामात्य! ठहरो!" महाराज ने यह कहकर ताली बजाई। मण्डप के बाहर से एक प्रतिहार आया। महाराज ने आज्ञा दी कि सब बन्दियों को यहाँ लाया जाए।

प्रतिहार ने महाराज की आज्ञा सुन भय से काँपते हुए कहा, "महाराज! उनको तो प्राणदण्ड की आज्ञा हो चुकी है और उन्हें दण्ड देने के लिए सैनिक नदी-तट पर ले गए हैं।"

"किसने प्राणदण्ड दिया है?" महाराज ने आश्चर्यचकित हो पूछा।

"यह तो मैं नहीं जानता महाराज! कुछ श्रमण कह रहे थे कि सभी ब्राह्मणों को प्राणदण्ड हुआ है। उन्होंने वधिकों को बुलाया और सैनिकों को कहा कि उन्हें गंगा-तट पर ले जाया जाए और वहाँ जाकर प्राणदण्ड दिया जाए।"

हर्षवर्धन इससे घबरा उठा। पद्मराज क्रोध से लाल-पीला होने लगा। ह्वेनसांग तथा अन्य बौद्ध-प्रमुख व्यक्ति आश्चर्य में एक-दूसरे का मुख देखने लगे। महाराज ने आज्ञा दी, "तुरन्त भागकर जाओ और सबको यहाँ वापस लेकर आओ।"

पद्मराज ने कहा, "महाराज! उन निर्दोषों का जीवन इस प्रकार नहीं बचेगा। श्रीमान् स्वयं रथ पर जाएँ तो यह अन्याय होता-होता रुक सकता है।"

हर्षवर्धन उठा और महामात्य तथा ह्वेनसांग को अपने रथ में साथ बिटाकर गंगा-तट पर जा पहुँचा। वहाँ प्राणदण्ड का आयोजन हो रहा था। लगभग बीस श्रमण उच्च स्वर में 'शान्तं पापं! शान्तं पापं!!' की रट लगा रहे थे और एक श्रमण के कहने पर हत्यारे एक-एक ब्राह्मण को आगे कर खड्ग के नीचे कर रहे थे और खट से उसका सिर धड़ से पृथक् किया जा रहा था।

इस घोर अन्याय को होता देख हर्षवर्धन काँप उठा और उसने इस कृत्य को तुरन्त बन्द करने की आज्ञा दे दी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९

जब महाराज ने घटनास्थल पर पहुँचकर हत्याकाण्ड रोका, तब तक पाँच सौ ब्राह्मणों में से लगभग पच्चीस प्रमुख ब्राह्मणों की हत्या की जा चुकी थी। शेष ब्राह्मणों को हर्षवर्धन ने मुक्त करने की आज्ञा दे दी।

पद्मराज जानना चाहता था कि किन-किनका जीवनान्त हो चुका है। इस कारण उसने उस श्रमण को, जो ब्राह्मणों को हत्यारे के पास आगे कर रहा था, बुलाकर पूछा, "भन्ते ! किन-किनको हत्या-दण्ड मिल चुका है ?"

"श्रीमान् ! नाम तो मैं नहीं जानता। जहाँ सभा बैठी थी, वहीं से एक व्यक्ति ने बाहर आकर कहा कि सभी दोषी सिद्ध हो चुके हैं और सबको प्राणदण्ड दे दिया जाए। अतएव मैं यह कार्य कराने के लिए यहाँ आ गया।"

महामात्य आचार्य वाराहमित्र, अग्निमित्र और पत्रलता के विषय में जानना चाहता था। उसने एक ब्राह्मण से इनके विषय में पूछा, तो उसने बताया कि सभी प्रमुख ब्राह्मणों की हत्या की जा चुकी है।

"पत्रलता को जानते हो ?" महामात्य ने पूछा।

"नहीं श्रीमान् ! हाँ, एक स्त्री इनमें थी। सबसे पहले उसी को बलि चढ़ाने के लिए लाया गया था, परन्तु उसने सैनिकों को चकमा दे, नदी में छलाँग लगा दी। कुछ सैनिक उसे पकड़ने के लिए उसके पीछे कूदे परन्तु वह पकड़ी नहीं जा सकी। कदाचित् वह नदी में डूब गई।"

पद्मराज को और अधिक जानने की आवश्यकता नहीं थी। उसने झुककर महाराज को प्रणाम किया और बिना कुछ कहे अपने निवासस्थान को लौट आया। हर्षवर्धन पत्रलता का महामात्य से सम्बन्ध जानता था। इस कारण वह उसके दुःख को अनुभव करता था। फिर भी जो कुछ हुआ था, वह उसकी इच्छा से नहीं हुआ था।

महाराज की इच्छा थी कि इस सब षड्यन्त्र की नए ढंग से जाँच कराई जाए। वे समझ गए थे कि द्वेष-भाव के कारण सब ब्राह्मणों को पकड़वा दिया गया है, परन्तु वास्तविक अपराधी को ढूँढ़ निकालने की क्षमता तो महामात्य में ही थी।

सब ब्राह्मणों को मुक्त कराकर महाराज ने उन्हें आज्ञा दे दी कि वे शीघ्रातिशीघ्र कन्नौज छोड़ चले जाएँ, क्योंकि यहाँ उनके जीवन का भय है। पश्चात् वे शिविर को लौट गए। वहाँ अभी भी बौद्ध-मण्डली बैठी थी। महाराज बैठक स्थगित कर अपने आगार में चले गए।

भीतर महारानी मृणालिनी बैठी उनकी प्रतीक्षा कर रही थीं। महाराज अभी भी पीत-मुख घबरा रहे थे और विश्राम करना चाहते थे।

मृणालिनी को पूर्ण घटना का पता लग चुका था। इस कारण जब महाराज आए तो उसने कहा, "भगवान् का कोटि-कोटि धन्यवाद है कि आपको इस दासी का भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्मरण हो आया है।"

"देवी! भगवान् को धन्यवाद करो कि हम जीवित आ पहुँचे हैं। आज हमारी हत्या का षड्यन्त्र रचा गया था।"

"महाराज! परसों एक सिद्ध पुरुष ने मुझे बताया कि वैधव्य मेरे जीवन में नहीं लिखा। मैं यह संसार आपसे पहले छोड़ जाऊँगी।"

"परन्तु देवी! हमारे ऊपर तो एक हत्यारे ने आक्रमण भी किया था। वह तो भगवान् तथागत की कृपा का फल समझो कि तुम्हारे सौभाग्य के लिए मैं अभी जीवित हूँ।"

"महाराज! भगवान् तथागत की बात मैं नहीं मानती। हाँ, अघोरी बाबा की भविष्यवाणी पर मुझे अटूट विश्वास है। कदाचित् वह हत्यारा श्रीमान् को मारना न चाहता हो और उसको भेजने वाले आपको केवल भय-त्रसित करना चाहते हों तथा पश्चात् आपसे वह अन्याय करवाना चाहते हों, जो अभी-अभी घटित हुआ है। यह भी हो सकता है कि वह मारना ही चाहता हो; परन्तु कालभैरव आपका रक्षक सिद्ध हुआ है। कुछ भी हो महाराज! अभी आपकी आयु काफी लम्बी है।"

"यह तुम कालभैरव की भक्तिनी कब से बनी हो?"

"जब से मलिन्द आपके बन्दीगृह से भागने में सफल हुई है।"

"कालभैरव का उससे क्या सम्बन्ध है?"

"उसकी कृपा से ही वह बचकर भाग सकी और इस समय अपने प्रेमी से विवाह कर आनन्द-जीवन भोग कर रही है।

"सुना है कि आचार्य अग्निमित्र के सुपुत्र पुरुरवा से उसका विवाह हुआ है और वह उसके साथ एक फूस की कुटिया बनाकर अपना जीवन आनन्द से व्यतीत कर रही है। मैं उससे संगम पर मिली थी। वह अति प्रसन्न थी और उसके बच्चा होने वाला था।"

"सत्य? तो तुमने उस समय मुझे क्यों नहीं बताया?"

"इस कारण कि श्रीमान् जी ने जैसे आज उसके ससुर की हत्या करवा दी है, वैसे ही पुरुरवा की हत्या न करवा बैठते। इससे मैं ब्रह्म-हत्या की भागी बन जाती।"

अगले दिन पद्मराज का महामात्य-पद से त्यागपत्र आया, जिसमें महामात्य ने लिखा, "महाराज! अब मैं वृद्ध हो चुका हूँ और आपकी सेवा करने में असमर्थ हूँ। मैं संन्यास लेकर तपोवन में जा रहा हूँ।"

सम्राट् हर्षवर्धन के पास जब यह पत्र पहुँचा, तो उसने प्रतिहार को महामात्य के घर भेजकर बुलवाया। एक घड़ी में वह प्रतिहार लौट आया और बोला, "महाराज! महामात्य का घर रिक्त पड़ा है। पड़ोसियों से पूछने पर पता चला है कि महामात्य तथा विरोचना देवी काषाय वस्त्र पहनकर हरिद्वार के लिए प्रस्थान कर गए हैं।"

□□

081
167930
167930
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या R 089.9143 GUR-P आगत संख्या 167930

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए। अन्यथा 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब शुल्क लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL ... RARY
... Date
Access No.
Class No.
Cat No.
T... etc. SM
... by.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री गुरुदत्त

1894-1989　　　शिक्षा : एम. एस-सी.

प्रथम उपन्यास ''स्वाधीनता के पथ पर'' से ही ख्याति की सीढ़ियों पर जो चढ़ने लगे कि फिर रुके नहीं।

विज्ञान की पृष्ठभूमि पर वेद, उपनिषद् दर्शन इत्यादि शास्त्रों का अध्ययन आरम्भ किया तो उनको ज्ञान का अथाह सागर देख उसी में रम गये।

वेद, उपनिषद् तथा दर्शन शास्त्रों की विवेचना एवं अध्ययन अत्यन्त सरल भाषा में प्रस्तुत करना गुरुदत्त की ही विशेषता है।

उपन्यासों में भी शास्त्रों का निचोड़ तो मिलता ही है, रोचकता के विषय में इतना कहना ही पर्याप्त है कि उनका कोई भी उपन्यास पढ़ना आरम्भ करने पर समाप्त किये बिना छोड़ा नहीं जा सकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar